वैदिक धर्म

ईश्वर अवतार नहीं लेता

MAY 18, 2016 LEAVE A COMMENT

ईश्वर अवतार नहीं लेता

– डॉ. ब्रजेन्द्रपाल संह

ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, अनादि व अनन्त अजन्मा आदि गुणों वाला है, ऐसा वेद में वर्णन है, परन्तु पौरा णक भाई मानते हैं क ईश्वर जन्म लेता है, जिसे अवतारवाद कहते हैं। राम को ईश्वर का अवतार मानते हैं, कृष्ण को भी ईश्वर का अवतार मानते हैं। यह भी मानते हैं क कसी भी रूप में ईश्वर धरती पर जन्म लेकर आता जाता है।

अवतारवाद पूर्णतः वेद वरुद्ध है। वेद में ईश्वर के जन्म लेने व अवतार का कहीं वर्णन नहीं, अ पतु वह अजन्मा है, जन्म नहीं लेता, अनादि है। उसका न आदि है, न अन्त है। वह एक स्थान पर नहीं रहता, सर्वव्यापक है, कण-कण में समाया है। हमारे अन्दर बाहर है, आकाश- जल- थल- पृथ्वी- चन्द्रमा- सूर्य और उससे आगे तक भी है, जहाँ हमारा मन नही पहुँचता, वहाँ भी है। पहले से है, सृष्टि की उत्प त्त से पहले भी रहता है, प्रलय के बाद भी रहता है, सर्वशक्तिमान् है, अपनी शक्ति से ग्रह, तारों को घुमा रहा है। यह सब जगत् उसी का है, उसने ही तो बनाया है, नियम से चला रहा है-

ईशावास्य मदं सर्वयत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा मा ग्रधः कस्यस्विद्धनम्।।

– ईशोपनिषद्

अर्थात् इस संसार में जो भी यह जगत् है, सब ईश्वर से आच्छादित है, अर्थात् ईश्वर सृष्टि के कण-कण में बसा है, सर्वव्यापक है। यह सब धनादि जिसका हम उपयोग कर रहे हैं, सब उसका ही है। हम यह सोच कर प्रयोग करें क यह हमारा नहीं है। जो कुछ हमें उस प्रभु ने दिया है, उस सबका त्याग के भाव से प्रयोग करें।

सृष्टि में जो कुछ भी है, उसी का है। ग्रह, उपग्रह, पृथ्वी व चन्द्रमा आदि निश्चित वेग से घूम रहे हैं, एक नियम से चक्कर काट रहे हैं, गति कर रहे हैं। समय पर ऋतुएँ आती है, जाती हैं। वह जगत् को नियम में चला रहा है।

वह बिना जन्म लए ही सब काम कर रहा है। उसे जन्म लेने की क्या आवश्यकता है? कहते हैं, रावण को मारने के लए राम के रूप में ईश्वर ने अवतार लया या जन्म लया- ये सब बातें काल्पनिक हैं, मन गढ़न्त हैं। पूरी सृष्टि को चलाने वाला बिना जन्म लये ही सब कार्य कर रहा है, सब पर उसकी दृष्टि है, सब देख रहा है। ब्रह्माण्ड में ग्रह तारे सब गति कर रहे हैं, कभी कसी से टकराते नहीं, जैसे क चौराहे पर ट्रै फक कण्ट्रोलर यातायात को कण्ट्रोल करता रहता है। यदि यातायात को नियन्त्रण न कया जाय तो यातायात अवरुद्ध हो जाएगा,

गा ड़याँ आपस में टकराएँगी, परन्तु यातायात नियंत्रक के कारण सब ओर की गा ड़याँ बिना अवरोध के ही आती-जाती रहती हैं। यही प्र क्रया सृष्टि को चलाने वाले उस परमात्मा की है, वह सबको देखने वाला है, कर्मों के अनुसार फल देने वाला है, जो हम सोचते हैं वह सब जानता है, परन्तु वह भोक्ता नहीं, वह सत्य चेतन आनन्द स्वरूप है। यहाँ जन्म तो वही लेगा, जिसे कर्मों का फल भोगना है। जीव बार-बार जन्म लेता है, मोह माया में बँधा हुआ है। ईश्वर मोह माया में बँधा नहीं, वह तो जगत् नियन्ता है, जगत् को चला रहा है, सबको देख रहा है, अनादि है, अनन्त है। तीन तत्त्व अनादि अनन्त है- परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते

तयोरन्यः पप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नवन्यो अ भचाक शीतिः।

– ऋग्वेद 1/164/20

यहाँ यही बताया है क एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं, उनमें एक उस वृक्ष के खट्टे-मीठे फलों का स्वाद चख रहा है, दूसरा उस पक्षी को देख रहा है, स्वाद नहीं चख रहा। आलंकारिक भाषा में यहाँ त्रि वध अनादि तत्त्व ईश्वर, जीव व प्रकृति का वर्णन है। वृक्ष प्रकृति के रूप में दर्शाया है, देखने वाले पक्षी का संकेत ईश्वर के लए तथा फल खाने वाला पक्षी का जीव की ओर संकेत है। ईश्वर इस प्रकृति में जीव के कर्मों को देख रहा है। वह कर्मों का भोक्ता नहीं है। जब भोक्ता नहीं तो जन्म कस लए? वह तो सर्वव्यापक वभु है, सर्व शक्तिमान् है, अपनी शक्ति से सृष्टि को चला रहा है। रावण हो या दुर्योधन, सबने अपने कर्मों को भोगा। ईश्वर के अवतार से राम का कोई समबन्ध नहीं। वे कौशल्या के गर्भ से पैदा हुए, संसार में आए और उन्होंने अपने कर्म कए। उनका कर्म उनके साथ था। वे दशरथ के पुत्र थे। ईश्वर कसी का पुत्र नहीं, अ पतु सबका पता है। कर्मफल भोक्ता तो गर्भ में भी रहेगा, जन्म भी लेगा, दुःख भी सहेगा, क्लेश भी सहेगा, माया-मोह के बन्धन में भी रहेगा, मृत्यु भी होगी। यह गुण कर्मफल भोक्ता जीव के तो हैं, ईश्वर के नहीं, अतः राम को ईश्वर बताना न तर्कसंगत है, न युक्ति युक्त। राम दशरथ नन्दन थे, राजा मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वेदानुसार चलने वाले थे। उनका जीवन हमारे लए प्रेरणा प्रदान करता है।

एक ओर हम महापुरुषों को अवतार बताते हैं, दूसरी ओर उनके चरित्र पर लांछन लगाते हैं। जिन राम का हम सुबह-शाम, उठते-बैठते जागते-सोते समय नाम लेते हैं, उनके आचरणों का पालन नहीं करते, उनके जीवन से शक्षा नहीं लेते। मुँह में पान, तबाकू, बीड़ी, सगरेट, हुक्का लगा रहता है और राम का नाम लेते हैं। उससे क्या लाभ? राम तो धूम्रपान नहीं करते थे, मद्य नहीं पीते थे, हुक्का, तमबाकृ नहीं लेते थे, फर हम क्यों करते हैं? हमें इन मादक द्रव्यों को त्याग कर जैसा आचरण राम का भाइयों के साथ माताओं के साथ प्रजा के साथ था, वैसा करना चाहिए। राम मनुष्य थे, राजा थे, कर्तव्य परायण थे, माता पता के आज्ञाकारी थे, धर्म व मर्यादा पालक थे, निराभीमानी थे, प्रजा वत्सल थे, जन-जन के प्यारे थे, वह ईश्वर नहीं थे, अवतार नहीं थे।

हमें सत्यासत्य का ववेकपूर्ण निर्णय लेना चाहिए और अपने सत्याचारी वेदानुयायी महापुरुषों को जैसे थे वैसा ही मानकर उनके सद्गुणों को जीवन में उतारने का प्रयत्न करना चाहिए।

– चन्द्रलोक कॉलोनी खुर्जा (बुलन्दशहर)

मो. **8979794715**

प्राणोपासना-2

MAY 16, 2016 LEAVE A COMMENT

प्राणोपासना-2

– तपेन्द्र कुमार

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि मनुष्य प्राण द्वार से प्राण को परमात्मा में युक्त करके तथा योगाभयास द्वारा प्राण नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। महर्षि यह भी घोषणा करते हैं कि हृदय देश के अतिरिक्त दूसरा परमेश्वर के मिलने का कोई उत्तम स्थान व मार्ग नहीं है। पूर्व उल्लेख अनुसार प्राण अचेतन भौतिक तत्त्व है, शुद्ध ऊर्जा है तथा हृदय प्राण का केन्द्र है। यह हृदय स्थूल इन्द्रिय नहीं है। प्राणों में जीवात्मा प्रतिष्ठित है तथा परमात्मा हृदयाकाश में रहने वाले जीवात्मा के मध्य रहता है।

1. श्वास-प्रश्वास एवं प्राण- जो वायु बाहर से भीतर को जाता है, उसको श्वास और जो भीतर से बाहर आता है, उसको प्रश्वास कहते हैं। परन्तु श्वास के द्वारा जो वायु शरीर में जाती है तथा जो वायु बाहर आती है, वह प्राण नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास प्राणाऽपान-निमेषजीवन………चात्मनो लिङ्गानि। (वैशेषिक) की व्याखया करते हुए महर्षि लिखते हैं, ''(प्राण) जो भीतर से वायु को बाहर निकालना, (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना…….।'' सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में प्राणमय कोश के समबन्ध में लिखा है, ''दूसरा'' 'प्राणमय' जिसमें 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर आता, 'अपान' जो बाहर से भीतर आता……प्रच्छर्दन विधारणायां वा प्राणस्य। योग के भाषार्थ में भी भीतर के वायु को बहार निकालकर सुखपूर्वक रोकने का अभयास बार-बार करने से प्राण उपासक के वश में होने जाने का उल्लेख महर्षि ने किया है। स्वामी सत्यबोध सरस्वती जी के अनुसार ये (श्वास-प्रश्वास की) क्रियाएँ शरीर में प्राणों का कथित ऊपर व नीचे की गति कराने का एक मात्र साधन है। जब प्राणी श्वास लेता है तो वायु शरीर में जाती है तथा शरीर की प्राण नाड़ियों में प्राण की गति नीचे की ओर हो जाती है- यह अपानन क्रिया है। जब प्राणी प्रश्वास लेता है, अर्थात् दूषित वायु बाहर निकालता है तो शरीर की प्राण नाड़ियों में प्राण की गति उर्ध्व गति होती है-यह प्राणन क्रिया है। इस प्रकार श्वास-प्रश्वास प्राण क्रियाओं का साधन है। श्वास-प्रश्वास में शरीर के भीतर जाने वाली वायु तथा बहार आने वाली वायु प्राण नहीं है, वह आक्सीजन आदि गैसों का मिश्रण है। प्राण किन्हीं गैसों आदि का मिश्रण नहीं है बल्कि शुद्ध ऊर्जा है।
2. प्राण के पाँच भेद-एषोऽणुरात्मा चेतसा विदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश। मुण्डकोपनिषद् 3.1.9 के भाषार्थ में पण्डित भीमसेन शर्मा लिखते हैं, ''(यस्मिन्) जिस शरीर में (प्राणः) प्राण (पञ्चधा) प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान नाम पाँच प्रकार के भेदों से (संविवेश) अच्छे प्रकार प्रविष्ट हो रहा है…..।''

यथा सम्राट्रेवा धकृ तन्विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामान धतिष्ठस्वेष्मेवैष प्राण इतरान्प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते। (प्रश्न 3.4) का अर्थ करते हुए डॉ. सत्यव्रत सद्धान्तालंकार लखते हैं, ''जैसे सम्राट् अपने अधीन कर्मचारियों को अपने-अपने काम में नियुक्त करता है, कसी को इस तथा कसी को उस ग्राम में अ धष्ठाता बनाता है, इसी प्रकार यह प्राण अन्यप्राणों को पृथक्-पृथक् अपने-अपने काम में नियुक्त करता है।'' स्वामी सत्यबोध सरस्वती जी के अनुसार जीवों के शरीरों में प्राणतत्त्व तो एक ही है, कार्य भेद से उसके अनेक नाम हो जाते हैं। -प्र+अन=प्राण, उप+अन=अपान, सम+आ+अन =समान, उद+आ+अन= उदान, व+आ+अन= व्यान। इस प्रकार प्र, अप आदि उपसर्गों को 'अन' के साथ जोड़ने से प्राण, अपान, समान,उदान और व्यान शबद सद्ध हो जाते हैं।

वृहदारण्यक उपनिषद् 1.5.3………प्राणोऽपानोव्यान उदानः समानोऽन इत्येत्सर्व प्राण एव…… का अर्थ करते हुए महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज लखते हैं, ''(प्राणः अपानः व्यानः उदानः) प्राण, अपान, व्यान, उदान, (समानः अनः इति) और समान 'अन'- प्राण है। (एतत् सर्वं प्राणः एव) ये सब (पाँचों) प्राण ही हैं।'' इस प्रकार स्पष्ट है क प्राणतत्त्व एक ही है जो शरीर में अपने को पाँच भागों में वभक्त कर पाँच प्रकार के कार्यों को समपादित करता है। प्राण का शास्त्रीय नाम 'अन' ही है।

3. प्राणों की स्थिति एवं कार्य- प्रश्नोपनिषद् त्रितीय प्रश्न में ''पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रेमुखना सकायां प्राणः स्वयं प्रतिष्ठते मध्ये तु समानः। …….अत्रैतदेकशातं नाडीनां…… भवन्त्यासु व्यानश्चरति। अथैकयोर्ध्वम् उदानः पुण्येन पुण्यंलोकं नयति पापेन पापयुभायामेव मनुष्यलोकम्।।शांकरभाष्यार्थ में उक्त की व्याखया इस प्रकार है- यह प्राण अपने भेद अपान को पायूपस्थ में – पायु (गुदा) और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) में मूत्र और पुरीष (मल) आदि को निकालते हुए स्थित यानी नियुक्त करता है तथा मुख ना सका इन दोनों से निकलता हुआ सम्राट् स्थानीय प्राणचक्षुः श्रोत्रे – चक्षु और श्रोत्र में स्थित रहता है। प्राण और अपान के स्थानों के मध्य ना भ देश में समान रहता है। ……..इस हृदय देश में एक शत यानी एक ऊपर सौ (एक सौ एक) प्रधान ना ड़याँ हैं। उनमें से प्रत्येक प्रधान नाड़ी के उन सौ-सौ भेदों में से प्रत्येक से बहत्तर बहत्तर सहस्र अर्थात् दो ऊपर सत्तर सहस्र प्रतिशाखा ना ड़याँ हैं। …..इन सब ना ड़यों में व्यान वायु संचार करता है तथा उन एक सौ एक ना ड़यों में से जो सुषुमणा नाम्नी एक उर्ध्वगा मनी नाड़ी है, उस एक के द्वारा ही ऊपर की ओर जाने वाला तथा चरण से मस्तक पर्यन्त सञ्चार करनेवाला उदान वायु (जीवात्मा को) पुण्य कर्म यानी शास्त्रोक्त कर्म से देवादि-स्थान रूप पुण्य लोक को प्राप्त करा देता है……।''

मह षे सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में प्राणमय कोश के समबन्ध में लखते हैं, ''दूसरा 'प्राणमय' जिसमें 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर जाता, 'अपान' जो बाहर से भीतर आता, 'समान' जो ना भस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुँचाता, 'उदान' जिससे कण्ठस्थ अन्न-पान खैंचा जाता और बल पराक्रम होता, 'व्यान' जिससे सब शरीर में चेष्ठा आदि कर्म जीव करता है।'' महात्मा नारायण स्वामी जी अनुसार अपान नामक प्राण मल और मूत्रेन्द्रिय वभाग में रहकर अपना काम करता है। मुख, ना सका, आँख और कान के क्षेत्र में प्राण स्वयं रहकर उनके कार्यों का साधन बनता है। शरीर के मध्य ना भ क्षेत्रादि में समान नामक प्राण रहता है और खाये हुए अन्न को पचाता है। हृदय की प्राण ना ड़यों में व्यान नामक प्राण परिभ्रमण

करता है तथा हृदय की एक सौ एक ना ड़यों में से एक के द्वारा ऊपर जानेवाले प्राण का नाम उदान है, जो मृत्यु समय जीव को कर्मानुसार भन्न- भन्न स्थानों को पहुँचाया करता है।

स्वामी सत्यबोध सरस्वती जी के शबदों में, ''मुखय प्राण हृदय (यह हृदय रक्त प्रेषण करने वाले अवयव से भन्न है) में स्थित होकर मुख ना सका पर्यन्त प्राण ना ड़यों में ऊर्ध्व गति करता है। 'अपान' पायु तथा उपस्थ इन्द्रियों में स्थित होकर ना सका, मुख, कण्ठ, हृदय, ना भ से लेकर पायु इन्द्रिय तक प्राण ना ड़यों में नीचे की ओर संचरण करता है। 'ना भ जो प्राण और अपान का सन्धि स्थल है, में स्थित होकर भुक्त आहार के रस आदि धातुओं को शरीर के समस्त अवयवों में पहुँचाने का काम करता है। 'उदान' पाद तल से लेकर शर के शीर्ष पर्यन्त ना ड़यों में उर्ध्व गति का हेतु है। 'व्यान' समस्त शरीर में ना ड़यों में व्याप्त पवन को कहते हैं।'' उपरोक्त उद्धरणों से शरीर में प्राणों की स्थिति तथा कार्य स्पष्ट है। उदान प्राण के द्वारा, उदान वृ त्त होने पर आत्मा/परमात्मा का साक्षात्कार संभव है, अतः उदान प्राण के बारे में पृथक् से वचार कया जावेगा।

4. प्राण की उत्प त्त –

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृ थवी मन्द्रियम्।

मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपोमन्त्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च।।

– प्रश्न.6.4

परमेश्वर ने प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृ थवी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्मलोक और नाम-इन सोलह कलाओं की रचना की।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वोन्द्रिया ण च।

खं वायुर्ज्योतिरापः पृ थवी वश्वस्य धारिणी।।

– मुण्डक 2.13

द् वतीय मुण्डक प्रथम खण्ड में चेतन सत्ता रूप वराट पुरुष की व्याखया करते हुए कहा गया है क

प्राण, मन, सब इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, ज्योति, जल, वश्व को धारण करने वाली पृ थवी उसी से उत्पन्न होती है।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रपगस्यति।

मध्ये वामनासीनं वश्वे देवा उपासते।।कठो. 2.2.3

जो प्राण को ऊपर की ओर ले जाता है और अपान को नीचे की ओर ढकेलता है, हृदय के मध्य में हरने वाले उस वामन-भजनीय की सब देव उपासना करते हैं।

यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेदयस्य प्राणः शरीरं।

यः प्राणमन्तरोय मयत्येष स आत्मान्तर्यायमृतः।

– वृहद्. 3.7.16

जो प्राण में रहता हुआ भी प्राण से अलग है, जिसको प्राण नहीं जानता, परन्तु प्राण ही जिसका शरीर है, जो प्राण के भीतर रहता हुआ उसका नियमन कर रहा है, वही सर्वान्तर्यामी परमात्मा है।

इस प्रकार प्राण चेतन सत्ता नहीं है, अ पतु भौतिक तत्त्व है जो परमात्मा से उत्पन्न होता है तथा परमात्मा ही जिसका नियमन करता है। परमात्मा प्राण में रहता हुआ भी प्राण से अलग है तथा प्राण उसको नहीं जानता है। प्राण पाँच प्रकार से वभाजित हो जिन क्रयाओं को करता है, उनका कराने वाला परमात्मा है। बाह्य प्राण जीवों को सूर्य रश्मियों के माध्यम से नेत्रों द्वारा प्राप्त होता है तथा सर्वत्र व्याप्त है । इसको वद्वान् आ धदै वक प्राण के नाम से कहते हैं। दूसरा- जीवों के शरीर में स्थित परमात्मा वैश्वानराग्नि रूप से अन्नपानादि आहार को पचाता है, जैसा क वृहदारण्यक उपनिषद् 5.11 में कहा गया है-

अयमग्निवैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषेयेनेदमन्नं पच्यते सदिदमद्यते।।

परम पता परमात्मा ही अन्न, जल और घृतादि तैजस् आहार के अणुतम भाग से मन, प्राण और वाग् बलों को उत्पन्न करता है।

अन्नमयं हि सोमय मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वा गति।

– छान्दोग्य.6.5.4

अन्न से मन की शक्ति के अतिरिक्त स्थूल बल की भी प्राप्ति होती है जो प्राणबल का अ धष्ठान है-

प्राणः स्थूणाऽन्नं दाम। वृहद.2.2.1

इस प्राण को आध्यात्मिक प्राण भी कहा जाता है, यह प्राण ऊपर उठकर हृदय में आ धदै वक प्राण से मल जाता है-

अपां सौमय पीयमानानां योऽ णमा स ऊर्ध्वः समुदिशति स प्राणो भवति।

इस प्रकार प्राण परमात्मा से ही उत्पन्न होता है तथा परमात्मा से ही इसका नियमन होता है।

– 53/203, वी.टी.रोड, मानसरोवर, जयपुर, राज

हृदय की साक्षी-सद्ज्ञान वेदः प्रा राजेन्द्र जिज्ञासु

MAY 7, 2016 LEAVE A COMMENT

हृदय की साक्षी-सद्ज्ञान वेदः-पं. गंगाप्रसाद जी चीफ जज की पुस्तक 'धर्म का आदि स्रोत' की कभी धूम थी। मेरे एक कृपालु मौलाना अदुल लतीफ प्रयाग ने भी इसे पढ़ा है। निश्चय ही वह इससे प्रभा वत हैं। ईश्वर सर्वव्यापक है। उसके नियम तथा ज्ञान वेद भी सर्वव्यापक हैं। कोई ॠ ष की बात माने अथवा न माने, परन्तु ''दिल से मगर सब मान चुके हैं योगी ने जो उपकार कमाये।''

दे खये, इस समय मेरे सामने लण्डन की ईसाइयों की सन् 1871 की एक पत्रिका है। इसमें लखा है, The land is honestest thing in the world, whatever you give it you will get back again:. So in a far more certain sense, is it with the sowing of moral seed the fruit is certain अर्थात्- भू म संसार में सबसे प्रामा णक (सत्यवादी) वस्तु है। आप इसे जो कुछ देंगे, यह आपको उपज के रूप में वही लौटायेगी। इससे भी बड़ा अटल सत्य यह है क जो नैतिक बीज (कर्म) आप बोओगे, उसका फल भी अवश्य भोगोगे, पाओगे। इस अवतरण का प्रथम भाग वहाँ के कृषकों की लोकोक्ति है। पूरे कथन का अर्थ या सार यही तो है, जो करोगे सो भरोगे। वेद की कई ॠचाओं में कर्मफल सद्धान्त को कृ ष के दृष्टान्त से ही समझाया है। पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने वेद प्रवचन में एक मन्त्र की व्याया में लखा है क ईश्वर के कर्म फल के अटल नियम का साक्षी, सबसे बड़ा साक्षी और वश्वासी कसान होता है। जुआ व लाटरी में लगे लोग इससे उलट सम झये। ईसाइयों की पत्रिका का यह अवतरण वैदिक कर्मफल सद्धान्त की गूञ्ज नहीं तो क्या है? धर्म का, सत्य का स्रोत वेद है- यह इससे प्रमा णत होता है। ऐसी-ऐसी कहावतें वैदिक धर्म की दिग्विजय हैं।

हमारी वदेश मन्त्री सुषमा स्वराज जी ने टी.वी. पर एक करवा चौथ उपवास की बड़े लुभावने शदों में वकालत की थी। दैनिक पत्र-पत्रिकायें भी इसे सुहागनों का त्यौहार प्रचारित करती हैं। पत्नी के कर्मकाण्ड से पति की आयु बढ़ जाती है। कर्म पत्नी ने कया, फल पति को मलता है। इन्हीं सुषमा जी ने गीता को राष्ट्रीय ग्रन्थ घो षत करके ता लयाँ बटोरी थीं। गीता कर्मफल सद्धान्त का सन्देश देती है। करवा चौथ जैसे कर्मकाण्ड या इस प्रकार के अंध वश्वासों से गीता के मूल सद्धान्त का खण्डन है या नहीं? इसी प्रकार पापों के क्षमा होने या क्षमा करवाने की मान्यता का उपरोक्त अवतरण से घोर खण्डन होता है । इस कथन में तो कर्म के फल की प्राप्ति Certain (सुनिश्चित) बताई गई है। कोई मत इस वैदिक सद्धान्त के सामने नहीं टिकता । इसके अनुसार कुभ स्नान, तीर्थ यात्रायें व हज आदि सब कर्मकाण्ड ईश्वरीय आज्ञा के वपरीत हैं।

क्या ईश्वर के दर्शन होते हैं?: अ भषेक कुमार

APRIL 18, 2016 LEAVE A COMMENT

प्रश्न: क्या ईश्वर के दर्शन होते हैं?

उत्तर : अवश्य होते हैं पर वैसे नहीं जैसे आप इस समय सोच रहे हैं!

* ईश्वर स्वभाव से चेतन है और चेतन तत्त्व निराकार होता है इस लए ईश्वर का दीदार, देखना या दर्शन करने का तात्पर्य होता है – उसकी सत्ता का ज्ञान होना, उसकी अनुभूति (feeling) होना! इसी feeling को दार्शनिक भाषा में 'ईश्वर साक्षात्कार' कहते हैं।

* "दृश्यन्ते ज्ञायन्ते याथातथ्यत आत्मपरमात्मनो बुद् धन्द्रियादयोतिन्द्रियाः सूक्ष्म वषया येन तद दर्शनम् "॥
अर्थात् जिससे आत्मा, परमात्मा, मन, बुद् ध, इन्द्रियों आदि सूक्ष्म वषयों का प्रत्यक्ष = ज्ञान होता है, उसको दर्शन कहते हैं। इस लए कहते हैं क ईश्वर को देखने के लए ज्ञान-चक्षुओं की आवश्यकता होती है, चरम-चक्षुओं (भौतिक नेत्रों) की नहीं!।

* पदार्थ दो प्रकार के होते हैं – 1) जड़ और 2) चेतन। जड़ वास्तु ज्ञानरहित होती है और चेतन में ज्ञान होता है। प्रकृति तथा उससे बनी सृष्टि की प्रत्येक वास्तु जड़ होती है। परमात्मा और आत्मा दोनों चेतन हैं।

* चेतन (आत्मा) को ही चेतन (परमात्मा) की अनुभूति होती है। चेतनता अर्थात् ज्ञान।

* हमारे नेत्र जड़ होते है, देखने के साधन हैं और जो उनके द्वारा वस्तुओं को देखता है वह चेतन (जीवात्मा) होता है। जह वस्तुचेतन को नहीं देख सकती क्यों क उसमें ज्ञान नहीं होता पर चेतन वास्तु (आत्मा और परमात्मा) जड़ और चेतन दोनों को देख सकती है।

* अतः ईश्वर का साक्षात्कार आत्मा ही कर सकता है शर्त यह है क आत्मा और परमात्मा के बीच कसी भी प्रकार का मल, आवरण या वक्षेप न हो अर्थात् वह शुद्ध, प वत्र और निर्मल हो अर्थात् वह सुपात्र हो।

* ईश्वर की कृपा का पात्र (सुपात्र) बनाने के लए मनुष्य को चाहिए क वह अपने अमूल्य जीवान को वैदिक नियमों तथा आज्ञाओं के अनुसार बनाए, निय मत योगाभ्यास करे और अष्टांग योग के अनुसार समध्यावस्था को प्राप्त करे। समाध्यावास्था में ही ईश्वर के साक्षात्कार हो सकते हैं, अन्य कोई मार्ग नहीं है।

* इस स्थिति तक पहुँचने के लए साधक को चाहिए क वह सत्य का पालन करे और कसी भी परिस्थिति में असत्य का साथ न दे। जब तक जीवन में सत्य का आचरण नहीं होगा ईश्वर की प्राप्ति या उसके आनन्द का अनुभव (feeling) नामुम कन है जिस की सब को सदा से तलाश रहती है।

<u>See translation:-</u>

योग के सन्दर्भ में, स्वस्थ जीवन, आध्यात्मिक ज्ञान, तथा मोक्ष की प्राप्ति के लये आवश्यक यम- नियमः–

The 5 (यम)Yamas listed by Patañjali in Yogasūtra are:

–**<u>Ahiṃsā (अहिंसा)</u>**: Nonviolence, non-harming other living beings.

–**<u>Satya (सत्य)</u>**: truthfulness, non-falsehood.

–**<u>Asteya (अस्तेय)</u>**: non-stealing.

–**Brahmacharya (ब्रह्मचर्य)**: chastity, marital fidelity or sexual restraint.

–**Aparigraha (अपरिग्रहः)**: non-avarice, non-possessiveness.

The 10 (यम) Yamas listed in Śāṇḍilya Upanishad, are:

–**Ahiṃsā (अहिंसा)**: Nonviolence.

–**Satya (सत्य)**: truthfulness.

–**Asteya (अस्तेय)**: not stealing.

–**Brahmacharya (ब्रह्मचर्य)**: chastity, marital fidelity or sexual restraint.

–**Kṣamā (क्षमा)**: forgiveness.

–**Dhṛti (धृति)**: fortitude.

–**Dayā (दया)**: compassion.

–**Ārjava (आर्जव)**: non-hypocrisy, sincerity.

–**Mitāhāra (मतहार)**: measured diet.

–**Sauch (शौच)**: purity, cleanliness.

The 5 (नियम) Niyamas listed by Patañjali in Yogasūtra are:

–**Śaucha(शौच)**: purity, clearness of mind, speech and body.

–**Santoṣha(सन्तोष)**: contentment, acceptance of others and of one's circumstances as they are, optimism for self.

–**Tapas(तपस)**: accepting and not causing pain.

–**Svādhyāya(स्वाध्याय)**: study of self, self-reflection, introspection of self's thoughts, speeches and actions.

–**Īśvarapraṇidhāna(ईश्वरप्र णधान)**: contemplation of the Ishvara (God/Supreme Being, True Self, Unchanging Reality).

The 10 (नियम) Niyamas listed in Śāṇḍilya Upanishad/Varuha Upanishad/ Hatha Yoga Pradipika are:

–**Tapas(तपस)**: persistence, perseverance in one's purpose, austerity.

–**Santoṣa(सन्तोष)**: contentment, acceptance of others and of one's circumstances as they are, optimism for self

–**Āstika(आस्तिक्य)**: faith in Real Self (jnana yoga, raja yoga), belief in God (bhakti yoga), conviction in Vedas/Upanishads (orthodox school).

–**Dāna(दान)**: generosity, charity, sharing with others.

–**Īśvarapūjana(ईश्वरपूजन)**: worship of the Ishvara (God/Supreme Being, Brahman, True Self, Unchanging Reality).

–**Siddhānta vakya śrāvaṇa(सद्धान्तवाक्यश्रवण)**: listening to the ancient scriptures.

–**Hrī(हृ)**: remorse and acceptance of one's past, modesty, humility.

–**Mati(मति)**: think and reflect to understand, reconcile conflicting ideas.

–**Japa(जाप)**: mantra repetition, reciting prayers or knowledge.

–**Huta(हुत)**: rituals, ceremonies such as yajna sacrifice.

[REGVEDA–1-164-44–N —1-164-1–N 10-5-7–N 164-22 N 10-177-1 N 10-177-2 N ATHARWAVED KA PARMAN –10-8-17 AND 1-164-20 YA]

धन्यवाद।

आर्य समाज द्वारा वैदिक धर्म के उत्थान के लए।

‘वैदिक प्राचीन पर्व नव संवत्सर’

APRIL 17, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

‘वैदिक प्राचीन पर्व नव संवत्सर’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मनुष्य के जीवन में पर्वों की महत्वपूर्ण भू मका होती है। वर्ष या संवत्सर के रूप में पर्व को इस रूप में जान सकते हैं क एक वर्ष की समाप्ती व उसके अगले दिन से दूसरे वर्ष का आरम्भ। मनुष्य जीवन में एक शशु के रूप में जन्म लेता है और समय के साथ शशु की अवस्था समाप्त होकर बाल व कशोरावस्था आ जाती है। इसके बाद युवावस्था, फर प्रौढ़ावस्था और अन्त में वृद्धावस्था आती है। यह जीवन की व भन्न अवस्थाओं का आना व पछली का पूरा होना एक प्रकार का पर्व ही होता है परन्तु हमें इसका पता ही नहीं चलता और न इसे मनाने की परम्परा ही हैं। हां, इसका एक अन्य रूप जन्म दिवस को मनाने की परम्परा को कह सकते हैं। मनुष्य की आयु एक-एक दिन, एक-एक माह और एक-एक वर्ष करके बढ़ती है। हर दिन और हर माह तो पर्व व उत्सव मना नहीं सकते, अतः वर्ष में एक दिन जन्मोत्सव मनाने की परम्परा कुछ समय से चल पड़ी है। लोगों को इस दिवस को मनाने का कोई ज्ञान भी नहीं है। लोग सोचते हैं क मत्रों व सम्बन्धियों को एकत्रित कर केक आदि काटकर व प्रीतिभोज करा दिया जाये। वैदिक परम्परा के आधार पर दृष्टि डाले तो जन्म दिवस मनाने में कोई आप त्त नहीं है परन्तु इसको मनाने के रूप में गुणवर्धन कया जा सकता है। यदि जन्म दिवस के दिन लोग वृहत यज्ञ करें तो यह जीवन में अनेक दृष्टियों से लाभप्रद व प्रेरणादायक हो सकता है। सुधी आर्य परिवारों में यज्ञ के द्वारा ही जन्म दिवस व अन्य पर्व मनाये आते हैं। यह अल्पव्यय साध्य तो हैं ही, साथ ही परिणाम में और अनुष्ठानों की तुलना में अ धक लाभदायक हैं। ऐसे ही अनेक पर्व हैं जिनमें से एक नव-संवत्सर का पर्व भी होता है। यह भारतीय परम्परा का पर्व है जो प्रत्येक वर्ष चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को मनाया जाता है। यह नवसंवत्सर एक प्रकार से इस सृष्टि व ब्रह्माण्ड का जन्म दिवस है। इससे हमें यह लाभ होता है क अनेक तथ्यों का स्मरण इस पर्व को मनाकर हो जाता है। मुख्य तथ्य तो यह है क हमारी सृष्टि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन आज से **1,96,08,53,116** एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार एक सौ सोलह वर्ष पूर्व आरम्भ हुई थी। आज चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को इस सृष्टि में मानव उत्प त्त का **1,96,08,53,117** हवां वर्ष आरम्भ हुआ है। यह तथ्य है और यह सारे वश्व के लए मार्गदर्शक होना चाहिये। हमें ज्ञात है क सृष्टि में मानव धर्म, सभ्यता व संस्कृति का सर्वप्रथम आ वर्भाव व वकास भारत में ही हुआ। संसार के जितने भी देश हैं उनका इतिहास कुछ सौ या हजार वर्ष पुराना है जब क भारत का इतिहास 1.96 अरब वर्ष पुराना है। सृष्टि के आरम्भिक काल में लखी गई मनुस्मृति के एक श्लोक को भी स्मरण कर लेते हैं। ’एतददेशस्य प्रसुतस्य सकाशाद अग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं

शक्षरेन् पृ थव्याम् सर्वमानवाः।।' इस श्लोक में मह र्ष व राजा मनु जी ने आर्यावर्त्त देश की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है क प्राचीन काल से हमारा देश ही संसार के अग्रणीय मनुष्यों को जन्म देता, उत्पन्न करता अर्थात् श क्षत कर अनका निर्माण करता आ रहा है। संसार के देशों के लोग हमारे देश में अपने-अपने योग्य चरित्र व ज्ञान- वज्ञान की शक्षा लेने हमारे देश में ही आते थे। इससे यह अनुमान होता है क सृष्टिकाल के आरम्भ से लेकर कुछ हजार वर्ष पूर्व तक हमारा भारत वा आर्यावत्र्त देश ही संसार के लोगों को ज्ञान- वज्ञान सहित परा व अपरा वद्या एवं चरित्र आदि की शक्षा दिया करता था और संसार के लोग अध्ययन के लए भारत में ही आया करते थे। यह इस कारण से सम्भव हुआ था क सृष्टि के आरम्भ में प्रथम दिन ही ईश्वर ने मनुष्यों को युवावस्था में अमैथुनी सृष्टि कर आर्यावत्र्त में जन्म दिया था और साथ हि उन्हें सभी सत्य वद्याओं से सम्पन्न कराने के लए वेदों का ज्ञान भी दिया था।

हिमाद्रि ज्योतिष का प्र सद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में एक श्लोक आता है 'चैत्रे मा स जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदये सति।।' इसका अर्थ है क चैत्र शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्मा ने जगत की रचना की। प्र सद्ध ज्योतिषाचार्य भास्कराचार्या र चत '' सद्धान्त शरोम ण" का एक श्लोक 'लंकानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारं प्रथमं बभूव। मघोः सतादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत्प्रवृ त्तः।।' है। इसका भावार्थ है क लंका नगरी में सूर्य के उदय होने पर उसी सूर्य के वार अर्थात् आदित्यवार को चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के आरम्भ में दिन, मास, वर्ष व युग आदि (अर्थात् सृष्टि संवत्सर) एक साथ आरम्भ हुए। आज भी संसार के अ धकांश वद्वान इन तथ्यों से अपरि चत है। जिन को इसका ज्ञान भी होता है तो वह संस्कृत में होने के कारण इसे स्वीकार नहीं करते। हां, यदि इसी प्रकार का कोई लेख अंग्रेजी व अन्य कसी यूरोपीय भाषा के पुराने ग्रन्थ में होता तो सारा वश्व इसे कभी का एक मत से स्वीकार कर लेता। कोई स्वीकार करे या न करे परन्तु यह दोनों श्लोक व इसमें लखी व कहीं बातें आप्त-प्रमाण, सृष्टि क्रम, युक्ति, तर्क व ज्ञान वज्ञान के आधार पर सत्य सद्ध होती हैं। इन तथ्यों व पूर्व से चली आ रही परम्पराओं से यह ज्ञात होता है क चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के इस दिवस से ही ब्रह्म दिन, सृष्टि संवत्, वैवस्वतादि मन्वन्तर का आरम्भ, सतयुग आदि युगारम्भ, क लसंवत्, वक्रम संवत् का आरम्भ होता है।

आर्यसमाज के वद्वान पं. भवानी प्रसाद लखते हैं क आदि सृष्टि से ही आर्य जाति में नवसंवत्सरारम्भ का वर्ष मानने की प्रथा प्रच लत है। मुसलमानी राज्य में आर्यों की सनातन संस्थाएं अस्त–व्यस्त होने पर भी नवसंवत्सरोत्सव को समारोहपूर्वक मनाने की परिपाटी बराबर बनी हुई थी। इसका प्रमाण देते हुए उन्होंने दूसरे मतों के प्रति असहिष्णु, पक्षपाती व अत्याचारी मुगल सम्राट् औरंगजेब के अपने ज्येष्ठ पुत्र युवराज मुहम्मद मोअज्जम के नाम लखे एक पत्र से मलता है। अपने पत्र में औरंगजेब ने धृणा के शब्दों में लखा था क 'ईरोज ऐयाद मजू सअ स्त, व एकाद–कफ्फार हू–नूद रोज ए जलूस वक्रमाजीत लाईन व मबदाए तारीख ए हिंदू।' अर्थात् यह दिन अग्निपूजक (पार सयों) का पर्व है, और का फर (धर्मशून्य) हिन्दुओं के वश्वासानुसार धक्कृत वक्रमाजीत की राज्या भषेक ति थ है और भारतवर्ष का नव संवत्सरारम्भ दिवस है।

नवसंवत्सर-आरम्भ-उत्सव संसार की प्रायः सब सभ्य जातियों में मनाया जाता है। ईसाइयों के यहां उसको न्यू इयर्स डे (New Years Day) कहते हैं और वह पहली जनवरी को होता है। फारस देश के पार सयों के यहां वह जश्न नौरोज के नाम से प्र सद्ध है। अन्य जातियों में जहां इस अवसर पर केवल प्रसन्नता प्रदर्शन और रंग-रे लयां मनाने की रीति है, वहां धर्मप्राण आर्य जाति में आनन्दानुभव के साथ-साथ यज्ञ आदि धर्मानुष्ठानपूर्वक इस उत्सव को मनाने की परम्परा है। पं. भवानी प्रसाद जी ने आगे लखा है क प्रतीत होता है क सृष्टि के आरम्भ के प्रथम दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन सौर मेष संक्रान्ति एक साथ ही पड़ी थी, कन्तु पीछे से सौर और चान्द्र वर्षों की दो प्रकार की गणना संसार में प्रच लत होने पर सौर और चान्द्र संवत्सरों का नवसंवत्सरारम्भ भी पृथक् पृथक् ति थयों पर होने लगा। चान्द्र संवत्सरारम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को और सौर संवत्सरारम्भ मेष संक्रान्ति के दिन होता है। अतः ऋतुओं की गणना सौर वर्ष के अनुसार ही होती है, इस लए भूमण्डल की अ धकांश सभ्य जातियों में सौर संवत्सर प्रच लत है। भारतवर्ष के भी अ धकांश प्रांतों में सौर वर्ष का ही व्यवहार है। बंगाल प्रांत में बंगाब्द, द क्षण में शा लवाहन शक और पंजाब में प्र वष्टा सौर वर्ष गणना पर ही चलते हैं। अतएव आर्य जाति में जहां चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को चान्द्र नव-संवत्सरारम्भ का समारोह होता है, वहां मेष संक्रांति के दिन सौर संवत्सरेष्टि भी की जाती है। अतएव जिन प्रांतों में चान्द्र संवत्सर का व्यवहार होता हो, वहां चैत्र सुदि प्रतिपदा को नवसंवत्सरारम्भोत्सव वा संवत्सरेष्टि पर्व मनाना चाहिए। इस दिवस को वृहत यज्ञ कर मनाने के साथ सामूहिक प्रीतिभोज वा लंगर तथा काव्य गोष्ठी सहित बालक-बा लकाओं एवं युवाओं की अनेक प्रतियो गतायें आयोजित कर मनाया जा सकता है। इस पर्व के महत्व को जानकर और इसे सामूहिक रूप से वृहत यज्ञ, सामूहिक प्रीतिभोज व अनेक प्रतियो गताओं के आयोजन के साथ मनाने से समाज में अच्छी परम्पराओं के स्था पत होने से लाभ मल सकता है।

समय के साथ नववर्षा भनन्दन के इस दिन से अनेक ऐतिहा सक महत्वपूर्ण घटनायें जुडती व वस्मृत होती गई हैं। सम्प्रति सुप्र सद्ध राजा वक्रमादित्य का राज्या भषेक भी इस नववर्षारम्भ के दिन से जुड़ा हुआ है जो अब से 2072 वर्ष पूर्व हुआ था। महाभारत युद्ध के बाद महाराज यु धष्ठिर जी ने भी इस नवसंवत्सराम्भ के दिवस पर ही राज्यारोहण कया था। ऐसी अन्य कई घटनायें हो सकती हैं परन्तु इस दिन मुख्य महत्व इस दिन से इस सृष्टि, मानवोत्प त्त व ईश्वर से सब सत्य वद्याओं की पुस्तक वेदों का चार ऋ षयों अग्नि, वायु,आदित्य व अं गरा को ज्ञान प्राप्त होना है जो हमारे ऋ ष व पूर्वजों की तपस्या से आज तक सुर क्षत है। यही वेद ज्ञान आज सभी परा व अपरा अर्थात् आध्यात्मिक व भौतिक वद्याओं का आधार है। इस नववर्ष को मनाते हुए यदि हम वेदाध्ययन का संकल्प लें और वेदों के संरक्षण की योजना बनायें, तो यह भी उ चत होगा।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

वैदिक मान्यतायें ही धर्म व इतर वचारधारायें मत-पन्थ-सम्प्रदाय

APRIL 13, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

'वैदिक मान्यतायें ही धर्म व इतर वचारधारायें मत–पन्थ–सम्प्रदाय'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

धर्म शब्द की उत्प त्त व इसका शब्द का आरम्भ वेद एवं वैदिक साहित्य से हुआ व अन्यत्र फैला है। संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है। वेद ईश्वर प्रदत्त वह ज्ञान है जो सब सत्य वद्याओं की पुस्तक है। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में इस संसार के रचयिता परमेश्वर वा सृष्टिकर्त्ता से आदि चार ऋ षयों वा मनुष्यों को मला था। परमात्मा ने वेदों का ज्ञान क्यों दिया और इस बात का क्या प्रमाण है क वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है? वेदों का ज्ञान परमात्मा ने दिया है, इसका प्रमाण यह है क ज्ञान व वज्ञान का धारक व पालक संसार में एकमात्र ईश्वर है, अन्य कोई नहीं है। मनुष्यों को सखना पड़ता है। यह उन्हीं से सीख सकता है जो पहले से कुछ सीखे हुए होते हैं। अब प्रश्न होता है क सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्य उत्पन्न हुए उनको सखाने वाला कौन था? इसका उत्तर एक ही है क वह इस सृष्टि की रचना करने वाला ईश्वर ही था। उसने ज्ञान, वज्ञान व अपनी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमतता से इस समस्त अनन्त संसार को पूर्व कल्प के अनुसार रचा है। मनुष्य को आंख, नाक, कान, जिह्वा व त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियां भी उसी ने अपने ज्ञान, वज्ञान, सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमतता के गुण से ही बनाकर मनुष्यों को प्रदान की हैं। मनुष्य सृष्टि के आरम्भ काल में अब प्रथम उत्पन्न हुआ तो उसका पालन करने के लए माता व पता तथा ज्ञान व शक्षा देने के लए गुरु, अध्यापक व आचार्य संसार में नहीं थे। उत्पन्न हुए सभी युवा स्त्री-पुरुष भाषा व ज्ञान से शून्य थे क्यों क बिना पढ़े कोई ज्ञानी नहीं हो सकता अर्थात् जन्म से ही कोई भी मनुष्य भाषा व ज्ञान से युक्त नहीं होता। भाषा मनुष्यो को सीखनी पड़ती है। पहले माता- पता व बाद में वद्यालय मे आचार्य व गुरु भाषा सखाने के साथ ज्ञान व वज्ञान पढ़ाते हैं। संसार के आरम्भ में माता- पता व आचार्यों के न होने के कारण एक ईश्वरीय सत्ता ही बचती है जिनसे मनुष्य को भाषा व ज्ञान प्राप्त होता व हो सकता है। यह इस कारण से आदि सृष्टि के मनुष्यों को भाषा व धर्माधर्म का ज्ञान ईश्वर से मलना ही प्रमा णत तथ्य है। इसका अन्य कोई उत्तर नहीं है। ईश्वर से मनुष्यों को ज्ञान मलना निर्दोष उत्तर है तथा अन्य सभी कल्पनायें व अनुमान दोषपूर्ण हैं जो परीक्षा करने पर असत्य व प्रमाणहीन सद्ध होते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी व सर्वज्ञ सत्ता होने के कारण जीवात्मा की आत्मा में ही ज्ञान को भाषा सहित स्था पत करती है व देती है। ज्ञान भाषा में ही निहित होता है, अतः ज्ञान के साथ भाषा का मलना भी सुनिश्चित है। आजकल भी सम्मोहन द्वारा प्रेरणा करके ज्ञान के उदाहरण मलते हैं। बहुत से लोग इस वद्या को सीख लेते हैं और इसी से अपनी आजी वका चलाते हैं। ईश्वर तो जीवात्मा के भीतर भी वद्यमान और सर्वज्ञ है तो वह जीवात्मा को आत्मस्थ होने से प्रेरणा क्यों नहीं कर सकता? यह सर्वथा सम्भव है। हम जानते हैं क माता का गर्भस्थ शशु माता के व्यवहार के अनुरूप गुण-कर्म-

स्वभाव वाला बनता है। इसका कारण है क गर्भ में होते हुए जब क उसका शरीर निर्माणाधीन होता है वह अपनी माता के आचार, वचार, भाषा व भोजन आदि से प्रभा वत होता रहता है। जन्म के बाद माता की गोद में वह स्वयं सुर क्षत अनुभव करता है और शान्त रहता है जब क अन्य कसी के लेने पर वह प्रायः रोना आरम्भ कर देता है। यह भी एक प्रकार का वज्ञान है जिससे पता चलता है क माता के साथ बच्चे का तादात्मय अर्थात आत्मा का आत्मा के साथ वाला सम्बन्ध होता है। शरीर से पृथक होने पर भी दोनों आत्मा से आबद्ध रहते हैं। अतः सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर का वेदों का ज्ञान देना सत्य सद्धान्त है।

वेदों की संहितायें, उनके संस्कृत व हिन्दी भाषा में भाष्य तथा वेदों के अनेक व्याख्या ग्रन्थ 4 ब्राह्मण ग्रन्थ, 6 दर्शन, 11 मुख्य उपनिषदें, मनुस्मृति आदि ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध हैं। इनका अध्ययन करने पर ज्ञात होता है क मनुष्य को जितना सत्य-सत्य ज्ञान आवश्यक है वह चार वेदों में सृष्टि के आदि काल से ही वद्यमान है। सभी प्राचीन ऋ षयों से लेकर मह र्ष दयानन्द तक ने वेदों को सब सत्य वद्याओं का कोष व ग्रन्थ स्वीकार कया है। वेद में आध्यात्म के साथ सभी भौतिक वद्याओं का भी सूत्र रूप में समावेश है। इसका स वस्तार उल्लेख मह र्ष दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभू मका ग्रन्थ में कया है। अतः वेद ज्ञान- वज्ञान सहित कर्तव्याकर्तव्य वा धर्माधर्म के ग्रन्थ सद्ध होते हैं। धर्म उस ज्ञान को ही कहते हैं जिससे मनुष्य को अपने कर्तव्य व अकर्तव्य का बोध होता है व जिसका पालन करने से अभ्युदय व निःश्रेयस की सद् ध हो। क्या वेदों में व वैदिक साहित्य में कहीं कसी मान्यता व सद्धान्त की कोई कमी थी जिसकी देश-देशान्तर के कसी मनुष्य ने अनुसंधान व खोज की हो जिसने अधूरे वेद ज्ञान को पूर्णता प्रदान की हो? जब ऐसा कोई सन्दर्भ व प्रमाण कसी मत व पन्थ में उपलब्ध नहीं होता और व वह इसका दावा ही करते हैं तो फर वश्व के मनुष्यों के लए कसी नवीन मत की आवश्यकता ही नहीं रहती। मनुष्य के सभी कर्तव्य व अकर्तव्य वेदों व महाभारत के पूर्व काल के वैदिक साहित्य में सर्वांगपूर्ण रूप से वद्यमान होने के कारण वेद अपने आप में पूर्ण मनुष्य जाति का धर्म है। वेदों की सर्तमान समय में वद्यमानता के कारण मनुष्यों के लए कसी नये मत की आवश्यकता ही नहीं है। वेद धर्म ईश्वर द्वारा प्रादूर्भूत धर्म है और सभी मनुष्यों के लए यही धर्म आचरणीय व कर्तव्य है। हमारे मनुस्मृति, उपनिषद्, दर्शन, रामायण, महाभारत व अन्य जितने भी ग्रन्थ हैं उनमें धर्म शब्द का प्रयोग वेद के सद्धान्तों के आचरण करने से ही सम्बन्ध रखता है। वेदों का धर्म सर्वथा पूर्ण धर्म है। यही कारण है क सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक और महाभारत काल के भी बहुत बाद तक वैदिक धर्म ही भारत सहित वश्व का एकमात्र धर्म रहा है। महाभारत काल तक अन्य कसी धर्म के अस्तित्व का उल्लेख व ववरण वश्व के साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

महाभारत काल के बाद संसार में अनेक मत-मतान्तर जिन्हें रिलीजन, मजहब, सम्प्रदाय व पन्थ भी कह सकते हैं, अस्तित्व में आये। कारणों पर वचार करने पर ज्ञात होता है क महाभारत के महायुद्ध के बाद आलस्य व प्रमाद के कारण वैदिक धर्म व वैदिक सामाजिक व्यवस्था वशृंख लत हो गई। समयानुसार जै मनी ऋ ष पर आकर ऋ षयों की परम्परा भी

समाप्त हो गई और वेदों के पारदर्शी वद्वानों की संख्या भी नगण्य हो गई। वश्व में वेदों का प्रचार बन्द हो गया। देश के अल्पज्ञानी वद्वान मनमानी करने लगे और सर्वत्र अल्पज्ञता से पूर्ण नये नये अवैदिक वधान दिखाई देने लगे। अन्धकार बढ़ता गया और कुछ अच्छे आशय वाले सज्जन पुरुषों ने देश व वदेश मं समाज के हित की दृष्टि से अपनी-अपनी योग्यता व क्षमता के अनुसार लोगों को अपने मत में संगठित व दी क्षत कया। यह सभी लोग वेदों के ज्ञान से परि चत नहीं थे। उन लोगों के सम्मुुख वेदों का पुराना आचार, वचार व व्यवहार ही अनेकों वकृतियों के साथ प्रच लत था। उन्हें जो उ चत लगा उन्होंने प्रच लत कया और उन-उन के नये मत, पन्थ, सम्प्रदाय ही प्रच लत होकर वस्तार को प्राप्त हुए। अनेकों प्रकार के चमत्कार आदि भी इन वेदेतर नये मतों के अनुयायियों ने समय-समय पर अपने-अपने मत में मला लए। नये मतों की संख्या समय व स्थान के अनुसार वृद् ध को प्राप्त होती रही। यह मत व पन्थ धर्म न होकर मत, पन्थ, रिलीजन, मजहब व सम्प्रदाय आदि श्रेणी में आते हैं। भारत से इतर मत व पन्थ जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उन भाषाओं में धर्म नाम का शब्द भी नहीं है। धर्म वेद, वैदिक साहित्य व संस्कृत का शब्द है। अन्य मतों की अपनी-अपनी भाषायें होने से उनके अपने-अपने शब्द हैं, उन्हीं से उनको सम्बो धत कया जाना चाहिये। भारत में यह कुछ फैशन सा हो गया है क देशी व वदेशी सभी मतों व पन्थों को धर्म मान लया गया है जिससे यथार्थ व सदधर्म वैदिक धर्म के बारे में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैल गई हैं। वैदिक धर्म जो क वेद व वेदानुकूल वैदिक साहित्य पर आधारित है औरयुक्ति, तर्क व प्रमाणों पर आधारित जो सत्य मान्यतायें व सद्धान्त है, वही वैदिक धर्म है। इससे इतर देश व वश्व में जितने भी मत व सम्प्रदाय हैं वह धर्म न होकर, मत-पन्थ-सम्प्रदाय-रिलीजन-मजहब आदि श्रेणी में ही आते हैं और उनके लए उनकी भाषाओं के उपयुक्त शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये।

हमारा इस लेख को लखने का अ भप्राय यही है क सत्य, सनातन, ईश्वर प्रदत्त वेद व इसकी शक्षाओं, मान्यताओं, सद्धान्तों व वधानों का पालन ही वैदिक धर्म है। इससे इतर, वपरीत, सत्यासत्य म श्रत आध्यात्मिक व सामाजिक मान्यतायें धर्म नहीं हैं। जो सद्धान्त व मान्यतायें वेद, ज्ञान व पूर्ण सत्य के अनुरूप व अनुकूल है, वह वैदिक धर्म के अन्तर्गत आ जाते हैं। वैदिक मत से इतर मान्यता व सद्धान्तों वाले सभी संगठन व समुदाय मत व पन्थ की ही श्रेणी में आते हैं। अतः सुधी व वज्ञ लोगों को वेद से इतर मत-पन्थों के लए धर्म का प्रयोग न कर उनके लए उ चत व यथार्थ शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये जिससे धर्म वषयक यथार्थ स्थिति का सबको ज्ञान रहे। धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है और इसका प्रयोग मनुस्मृति, दर्शन, उपनिषद, रामायण व महाभारत आदि ग्रन्थों में वेद मत व वैदिक मान्यताओं व सद्धान्तों के लए ही हुआ है। इस स्थिति को जान व समझ कर ही सभी मनुष्यों को धर्म शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः09412985121

‘होली और उसके पूर्व महाभारतकालीन स्वरुप पर वचार’

MARCH 25, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

‘होली और उसके पूर्व महाभारतकालीन स्वरुप पर वचार’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

भारत और भारत से इतर देशों में जहां भारतीय मूल के लोग रहते हैं, प्रत्येक वर्ष फाल्गुन माह की पू र्णमा के दिन रंगों का पर्व होली हर्षोल्लास पूर्वक मनाया जाता है। होली के अगले दिन लोग नाना रंगों को एक दूसरे के चेहरे पर लगाते हैं, मठाई व पकवानों का वतरण आदि करते हैं और कुछ हुड़दंग भी करते हैं। क्या होली का प्राचीन स्वरुप भी वर्तमान जैसा था? इससे कुछ भन्न था वा यह वर्तमान स्वरूप पूर्व की वकृति वा रूपान्तर है?

वचार करने पर ज्ञात होता है क भारत की धर्म व संस्कृति 1.96 अरब पुरानी है। महाभारत काल, आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व, तक वैदिक संस्कृति अपने मूल स्वरूप में देश देशान्तर में वद्यमान रही। इसका प्रमाण है क भारत में वेदों के साक्षात ज्ञानी, ऋ ष, मुनि व योगी महाभारत काल तक बहुतायत में रहे हैं। दूसरा प्रमाण यह है क न भारत में और न हि वश्व के कसी अन्य देश में आज से पांच हजार वर्ष पूर्व की कसी अन्य धर्म, संस्कृति का कोई प्रमाण मलता है। महाभारत ग्रन्थ में ऐसे अनेक प्रमाण है क प्राचीन काल में भारत के लोग वश्व वा यूरोप के प्रायः सभी देशों में आते जाते थे। मनुस्मृति ग्रन्थ सृष्टि के आदि में रचा गया जिसमें वर्णन है क यह आर्यावर्त्त देश ही संसार का अग्रजन्मा देश है। संसार के सभी देशों के लोग यहां वद्यार्जन करने आते थे और अपने योग्य चरित्र आदि की शक्षा लेते थे। यहां से वेदों आदि व सभी वद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर अपने देश में उसका प्रचार व उपयोग करते कराते थे।

वेद मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के लए ईश्वरोपासना सहित पंचमहायज्ञों का वधान करते हैं। इन पंच महायज्ञों में मनुष्यों के अनेक व अ धकांश कर्तव्य आ जाते हैं। वैदिक धर्म व संस्कृति “वसुधैव कुटुम्बकम” की भावना को मानने वाली संस्कृति है। यहां सभी लोग सृष्टि के आदि काल से ‘सर्वे भवन्तु सु खनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्रा ण पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।’ की प्रार्थना करते आ रहे हैं। अतः आज जैसी होली महाभारतकाल तक भारत व वश्व में कहीं होने की कोई सम्भावना नहीं है। अनुमान है क वर्तमान जैसी होली का प्रचलन मध्यकाल में पुराणों की रचना से कुछ समय पूर्व व रचना होने से प्रच लत हुआ। प्राचीन काल में तो प्रत्येक माह पूर्णमास पर बड़े-बड़े यज्ञों का प्रचलन होने का अनुमान होता

है। वृहत यज्ञों के उस प्राचीन स्वरूप का अनुसरण ही मध्यकाल से प्रच लत होकर वर्तमान काल तक फाल्गुन की पू र्णमा के दिन रात्रि को होली जलाकर कया जा रहा है। यज्ञ से वायुमण्डल शुद्ध, प वत्र, सुगन्धित व स्वास्थ्यवर्धक होता है। यज्ञ से बादल बनते हैं, समय पर आवश्यकतानुसार वर्षा होती है, अतिवृष्टि वा अनावृष्टि नहीं होती, शुद्ध, प वत्र व स्वास्थ्यवर्धक अन्न उत्पन्न होता है व यज्ञ में देवपूजा, संगतिकरण व दान करने से ऐसे अनेक लाभों सहित हमारे अन्दर पाप की प्रवृ त्त का भी शमन होता है। इसके साथ अदृष्ट धर्म लाभ भी होता है जिससे हमारा वर्तमान, भ वष्य, परजन्म सुधरता है व अच्छे कर्मों के सग्रंह से मोक्ष की प्राप्ति की ओर जीवात्मा प्रवृत्त होता है।

फाल्गुन की पू र्णमा को मनाये जाने का एक कारण यह भी है क भारत में सृष्टि के आदि काल से प्रच लत चैत्र, बैसाख, ज्येष्ठ, आषाण आदि बारह हिन्दी महीने जो चैत्र से आरम्भ होकर फाल्गुन की पू र्णमा को समाप्त होते हैं, उनमें फाल्गुन पू र्णमा वर्ष का अन्तिम दिन होता है। आज हिन्दी के बारह महीनों का अन्तिम महिना फाल्गुन का अन्तिम दिन है। एक प्रकार से वर्ष का अन्त हो रहा है। कल से चैत्र का महीना आरम्भ होगा। यह वर्ष का पहला महीना होता है। अतः वर्ष के अन्त पर वृहत्त यज्ञ का आयोजन कर उसे वदाई दी जाती थी और हो सकता है क नये वर्ष के प्रथम महीने चैत्र के प्रथम दिन को नये वर्ष के रूप में हर्षोल्लास पूर्वक मनाया जाता रहा हो। इसका इतना अ भप्राय हो सकता है क यदि कसी का कसी के प्रति कोई द्वेष भाव होता रहा होगा तो इस दिन उसे छोड़ने का संकल्प लया जाता होगा व ऐसे लोग परस्पर मलकर आपस में प्रेम व मैत्री पूर्ण संबंध पुनः स्था पत करने की प्रतिज्ञा करते होंगे। उसी का कुछ वकृत रूप आज एक दूसरे पर रंग लगाकर, गले मलकर, स्वादिष्ट पदार्थों का परस्पर वतरण करके व रंग डालकर मनाने की परम्परा मध्यकाल व उसके बाद से चल पड़ी है। ऐसा देखा जाता है क इस दिन लोग हुड़दंग करते हैं, कुछ नशा करके गलत उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं तथा कहीं कहीं परस्पर लड़ाई झगड़े आदि भी हो जाते हैं। वर्तमान का समय शक्षा व आधुनिकता का युग है अतः सभी को सभ्यता का अच्छा उदाहरण इस दिन प्रस्तुत करना चाहिये।

यह भी वचारणीय है क होली से पूर्व शीत के महीने होते हैं। शीत ऋतु वृद्ध लोगों के लए तो कष्टकर होती ही है परन्तु साथ हि युवा व बच्चों सहित निर्धन लोगों के लए भी अति कष्टदायक होती है। अतः ऋतु परिवर्तन से शीत की निवृ त्त व सबके लए सुखद ऋतु वसन्त के होने पर सबका ह र्षत व प्रसन्न होना स्वाभा वक ही है। देश के कृषक लोग भी इस अवसर पर प्रसन्नता व सुख का अनुभव करते हैं क्यों क उनकी गेहूं व अन्य फसलें पक कर तैयार होती हैं। सारा वातावरण नये नये फूलों की सुगन्ध से सुवा सत होता है। सभी वृक्ष अपने पुराने पत्ते-प त्तयों का त्याग कर नये हरे पत्ते धारण करते हैं जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करता है। इससे सारा वातावरण व उसका परिदृश्य मनमोहक व लुभावना बन जाता है। ऐसे में सामान्य मनुष्य का मन कुछ आमोद प्रमोद की बातों में लगना स्वाभा वक होता है जिसकी अ भव्यक्ति होली के चैत्र कृष्ण प्रथमा के पर्व से होती है। इतना ही निवेदन है क मनुष्य को जोश के साथ होश भी रखना चाहिये। कहीं कसी के द्वारा इस पर्व पर कोई अमर्यादित बात व कार्य नहीं होना चाहिये। वैदिक साहित्य

का अध्ययन कर हमें लगता है क सभी परिवारों में पू र्णमा व अगले दिन प्रथमा को अनिवार्य रूप से अग्निहोत्र व हवन का प्रचलन होना चाहिये जिसमें कसान अपनी नई फसल वा गेहूं की बा लयों की आहुतियां भी दे सकते हैं जिससे यह पर्व मनाना सार्थक होता है। इस प्रकार यज्ञ पूर्वक होली को मनाना होली का मुख्य प्रतीक बनना चाहिये। इससे लाभ ही लाभ होगा। समाज, पर्यावरण व देश सभी उन्नत होंगे और ईश्वर प्रदत्त प्राचीन वैदिक धर्म व संस्कृति उन्नति को प्राप्त होगी।

होली के दिन प्रायः सभी घरों में स्वादिष्ट भोजन व नाना प्रकार के पकवान बनते हैं और लोग परस्पर अपने पड़ोसयों व मत्रों में इसका वतरण व सेवन आदि करते हैं। यह अच्छी प्रथा है। लेख को वराम देने से पूर्व इतना और निवेदन है क इस दिन सभी समर्थ व सम्पन्न लोगों को समाज क निर्धन व साधनहीन लोगों तक अपनी ओर से उनके उपयोग की कुछ वस्तुयें वतरित करने का प्रयास करना चाहिये और उनको आगे बढ़ाने का कुछ सहयोग कया जा सके तो इसका वचार करना चाहिए। आज होली के दिन हमने कुछ क्षण जो चन्तन कया है, उसे आपको सादर भेंट करते हैं और सभी बन्धुओं व मत्रों को हमारी होली के पर्व की बहुत बहुत शुभकामनायें हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196 चुक्खूवाला-2**

देहरादून-**24800 248001**

फोनः**09412985121**

यम-यमी का वैदिक स्वरूप - शवदेव आर्य

MARCH 20, 2016 LEAVE A COMMENT

प्रत्येक मनुष्य समाज को एक नई दिशा व दशा देने की पूर्णरूपेण योग्यता रखता है।अब दिशा व दशा कैसे हो, यह दिशा व दशा दिखाने वाले पर आ श्रत है, वह अपने ज्ञान के आलोक से मार्गप्रशस्त करता है अथवा ज्ञान के आलोक के अभाव में सत्य मार्ग से हटा कर असत्य मार्ग का अनुसरण कराता है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल का दशवा्ं सूक्त यम-यमी सूक्त है। इसी सूक्त के मन्त्र कुछ वृध्दि सहित तथा कुछ परिवर्तनपरक अथर्ववेद (18/1/1-16) में दृष्टिपथ होते हैं, अब वचारणीय है क- यम-यमी क्या है? अर्थात् यम-यमी कसको कहा । इस प्रश्न का उदय उस समय हुआ जब आचार्य सायणादि भाष्यकारों ने यम-यमी को भाई-बहन के रूप में प्रस्तुत कया गया है। भाई-बहन का इतना अश्लीलता परक अर्थ करके पाश्चात्य वद्वानों तथा पाखण्डियों को वेदों पर आक्षेप करने का अवसर प्राप्त करा दिया। इस अश्लील परक अर्थ को कोई भी सभ्य समाज का नागरिक कदा प स्वीकार नहीं कर सकता है।

प्रो. मैक्समूलर के मत में यम-यमी कोई मानवीय सृष्टि के पुरुष न थे कन्तु दिन का नाम यम और रात्री का नाम यमी है इन्हीं दोनों से ववाह वषयक वार्तालाप है। इस कल्पना में दोष यह है क जब यम और यमी दोनों दिन और रात हुए तो दोनों ही भन्न-भन्न कालों में होते हैं। इससे यहा ंं इनको रात्री तथा दिन रूप देना सर्वथा वरु(है।

अनेक भारतीय लेखकों ने भी इन मन्त्रों के व्याख्यान को अलंकार बनाकर यम-यमी को दिन-रात सद्ध कया है, इनके मत में भी कथा सर्वथा निरर्थक ही प्रतीत होती है, क्यों क न कभी दिन-रात को ववाह की इच्छा हुई और न कोई इनके ववाह के निषेध से अपूर्वभाव ही उत्पन्न होता है। आर्य समाज के उच्चकोटि के वद्वानों को भी इस वषय में भन्न-भन्न मत हैं।

आचार्य यास्क जी ने 'यमी' का निर्वचन लंभेद मात्र से 'यम' से माना है। 'यमो यच्छतीत सतः' अर्थात् यम को यम इस लए कहा जाता है, क्यों क यह प्रा णयों को नियन्त्रित करता है। पं. चन्द्रम ण जी के अनुसार 'यम' प्राण को कहते हैं, क्यों क यह जीवन प्रदान करता है। (निरु.चन्द्रम णभाष्य-10/12) निरुक्त भाष्यकर्ता स्कन्दस्वामी जी ने यम-यमी को आदित्य और रात्रि मानकर (10/10/8) मन्त्र की व्याख्या की है। स्वामी ब्रह्ममुनि यम-यमी को पति-पत्नी, दिन-रात्री और वायु- वद्युत् का बोधक मानते हैं। पं. भगवद्दत्त जी ने यम को अग्नि, आदित्य, वायु, मध्यम तमोभाग तथा यमी से पृ थवी और माध्य मका वाक् अर्थ ग्रहण कये हैं।

चन्द्रम ण वद्यालप्रार जी ने अपने निरुक्त परि शष्ट में सम्पूर्ण यम-यमी सूक्त की व्याख्या की है, जो भाई-बहन परक है, कन्तु सहोदर भाई बहन न दिखा कर सगोत्र दिखाने का प्रयास कया है।

कन्तु व भन्नतत्व वद्निष्णातों के भाव को शायद मैं ऋ षवर देव दयानन्द के वचारों से जोड़ने में असमर्थ हो रहा हू ंं, अतः मैं ऋ षवर के पथ का अनुसरण करता हू ंं ऋ ष को समझने का प्रयास करता हू ंं यद्य प ऋ षवर ने इस सूक्त का भाष्य नहीं कया है, पुनर प सत्यार्थ-प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास के नियोग प्रकरण में इसी सूक्त के मन्त्र को प्रस्तुत कया है। ऋ षवर की उन पंक्तियों को प्रमाण रूप से यहा ंं उद्धृत करना अनिवार्य ही नहीं अ पतु प्रसां िक भी होता है।

''जब पति सन्तानोत्प त में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे क हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा कर क्यों क अब मुझसे सन्तानोत्प त न हो सकेगी।'' (चतुर्थसमुल्लास, सत्यार्थ-प्रकाश)

ऋ षवर की इन पक्तियों से स्पष्ट प्रतीत होता है क इस सूक्त में पति-पत्नि का संवाद है न क भाई-बहन का। हम स्वामी दयानन्द क इन पक्तियों को इस लए और भी प्रमाण रूप में स्वीकार करेंगे क्यों क दयानन्द जी एक मन्त्रद्रष्टा ऋ ष थे। जिनके समान वेदों का भाष्य, मन्त्रों का यथार्थ स्वरूप कसी अन्य का प्रतीत नहीं होता।

अब हम व्याकरण क दृष्टि से यम-यमी शब्द को जानने का यत्न करते हैं। मह र्ष पा णनि के व्याकरण के अनुसार 'पुंयोगादाख्याम्'(अष्टा.-4/1/48) इस सूक्त से यमी शब्द में ङीष्

प्रत्यय हुआ है। इससे ही पत्नी का भाव द्योतित होता है। यदि यम-यमी का अर्थ भाई-बहन लया जाता तब यम-यमा ऐसा प्रयोग होना चाहिए था, जब क ऐसा प्रयोग नहीं है। जैसे हम लोकव्यवहार में देखते हैं क आचार्य की स्त्री आचार्याणी, इन्द्र की स्त्री इन्द्राणी आदि प्र सध्द है न क आचार्याणी से आचार्य की बहन अथवा इन्द्राणी से इन्द्र की बहन स्वीकार की जाती है। ऐसे ही यमी शब्द से पत्नी और यम शब्द से पति स्वीकार करना चाहिए। अर्थात् यम की स्त्री यमी ही होगी।

सायण के यम-यमी संवाद भाई-बहन का संवाद कदा प नहीं हो सकता। ये तो सायण ने अपनी इच्छानुसार ही कल्पित अर्थ को जन्म दे दिया है। जिसको हम आज भी स्वीकार करते चले आ रहे हैं। इस अर्थ के कारण पाश्चात्य वद्वानों के आक्षेप तथा वध र्मयों के ववाद सदैव हम सबके समक्ष उपस्थित होते रहे हैं। आर्य वद्वान् जो सायण आदि से प्रभा वत हुए हैं। वे भी वैसा ही अर्थ कर गए। भाई-बहन का ऐसा पशु तुल्य व्यवहार वैदिक कदा प नहीं हो सकता। मानव समाज में शष्टाचार और सभ्यतापूर्वक सम्बन्धों की परम आवश्यकता है। ऋ षवर देव दयानन्द ने जो तिरोहित वेद ज्ञान की ज्योति को पुनर्जी वत कया है। उसके प्रकाश में जो पथभ्रष्ट हो रहे हैं, वे निश्चित ही अंधकार से सं लप्त हैं।

इस सूक्त के ग्यारहवें मन्त्र में भ्राता तथा स्वसा नाम दिये गये हैं। जिसको पढ़ने से कोई भी जन पूर्वापर प्रसंग को समझ सकता है। इस पूर्वापर प्रकरण को देखकर मन्त्रार्थ पर वचार- वमर्श करें तो स्वतः ही भ्रान्ति का निवारण हो जाएगा।

आ घा तो गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजा म।

उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्य मच्छस्व सुभगे पतिं मत्।। (10/10/10)

इस मन्त्र के माध्यम से सन्तति उत्प त्त में असमर्थ पति अपनी पत्नी को कहता है क हे सौभाग्यशा लनी! तू अन्य वीर्यवान् पुरुष के बाहु का सहारा ले और इस प्रकार सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ मुझ पति से अतिरिक्त पति की इच्छा कर।

इस मन्त्र के भाव से यथार्थ स्पष्ट हो जाता है क इन मन्त्रों में पति-पन्ति परक अर्थ का ही ज्ञान करना चाहिए। क्यों क इससे अगले ही मन्त्र-

कं भ्रातासद्यदनायं भवाति कमुस्वसा कमुस्वसा यन्ऋृनटी तिर्निगच्छात्।

काममूता बह्वे तद्रपा म मे तन्वं सं पपृग्धि॥ (**10/10/11)**

इन मन्त्र की व्याख्या में पत्नी पति की भर्त्सना करती हुयी कहती है क- क्या अब मै तुम्हारी पत्नी न होकर बहन हो गई हूँ। क्या तुम मेरे पति न होकर भाई हो, जो मैं अन्यत्र चली जाऊँ।

इससे अगले मन्त्र अर्थात् 12 वें मन्त्र में यम के उत्तर से सम्पूर्ण सूक्त की यर्थाथता समझी जा सकती है। मन्त्र इस प्रकार है –

न वा उ ते तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।

अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्।। (10/10/12)

इस मन्त्र में पति कहता है क – जब मैं असमर्थ हो तुझे दूसरे पति से नियोग की आज्ञा दे दी तो तू मेरी बहन समान हुयी और मैं तेरा भाई समान। अतः मैं तूझे आदेश देता हूँ क तू मुझ से अन्य श्रेष्ठ पुरुष का समागम कर।

जो सायण आदि ने भाई-बहन परक अर्थ कया है, शायद वह इस मन्त्र भाव को न समझ कर कया होगा।

इस सूक्त में अलंकारिक वर्णन कया गया है। यह सर्वथा ज्ञात रहे क यम-यमी मानुषी सृष्टि के स्त्री या पुरुष नहीं हैं, यहाँ नियोग प्रकरण को समझाने के लए यम-यमी को पति-पत्नी का रूप दिया गया है।

यह सम्पूर्ण कृत नियोग पध्दति का है। सामान्य स्थिति के लए यह पध्दति नहीं है। नियोग के समस्त नियम-उपनियम व अ धकार स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ सम्मुल्लास को देखें।

पूर्वापर मन्त्रार्थ की संगति से स्पष्ट हो जाता है क भ्राता तथा स्वसा इन दोनों शब्दों का वहाँ पर क्या भाव है और सम्पूर्ण सूक्त की संगति पति-पत्नी परक मन्त्रार्थ ही सत्य ही प्रतीत होता है अन्यार्थ तो बस लोगों की कल्पनामात्र ही प्रतीत होती है।

- शवदेव आर्य

गुरुकुल-पौन्धा, देहरादून (उ.ख.)

मो.-08810005096

shivdevaryagurukul@gmail.com

To malign the Vedic scripture western writers as well as communist have always try their best by way of un authenticate articles and by using other means.

One of the main topic out of that is " Yam Yami Sukt" . They have used it as a tool to show adultery in vedas. Lets read this article to know the what does :Yam Yami sukt actually means

To read different commentaries on Ved mantra pls visit www.onlineved.com

सृष्टि वज्ञान, वैदिक साहित्य और स्वामी दयानन्द

MARCH 1, 2016 1 COMMENT

ओ३म्

‘सृष्टि वज्ञान, वैदिक साहित्य और स्वामी दयानन्द’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

सृष्टि की उत्प त्त से जुड़े अनेक रहस्य हैं जिन्हें वज्ञान आज भी खोज नहीं पाया अथवा जिसका वज्ञान जगत व हमारे धा र्मक व सामाजिक लोगों का यथो चत ज्ञान नहीं है। मह र्ष दयानंद सत्य-ज्ञान के जिसाज्ञु थे। उन्होंने धर्म-समाज-ज्ञान- वज्ञान कसी भी पक्ष की उपेक्षा न कर सभी वषयों का यथो चत ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से देश का भ्रमण कर उस समय उपलब्ध प्राचीन व प्राचीनतम ग्रन्थों सहित अ धकारी वद्वानों के उपलब्ध ग्रन्थों का भी अध्ययन कर उनमें उपलब्ध ज्ञान को प्राप्त कया। ऐसा कर उनको अनेक नये तथ्यों व रहस्यों का ज्ञान हुआ जिसे वह अपने प्रवचनों में प्रस्तुत करते थे और जब उन्होंने साहित्य सृजन का कार्य कया तो सत्यार्थप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों में उस ज्ञान का प्रसंगानुसार वर्णन कया। उनसे प्राप्त सृष्टि के रहस्य सम्बन्धी ज्ञान के लए तो उनके सभी ग्रन्थों को पढ़ना आवश्यक है परन्तु आज के लेख में हम सत्यार्थप्रकाश से उनके कुछ वचार प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे कुछ प्रमुख बातों का ज्ञान हो सके।

जगत की उत्प त्त में कतना समय व्यतीत हुआ, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मह र्ष दयानन्द कहते हैं क एक अरब, छानवें करोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्प त्त और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इस का स्पष्ट व्याख्यान उन्होंने अपनी पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्यभू मका में वस्तार से कया है, वहीं देखना उ चत है। वह आगे बताते हैं क सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जा सकता उसका नाम परमाणु है। साठ परमाणुओं के मले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्वयणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्वयणुक का अग्नि, चार द्वयणुक का जल, पांच द्वयणुक की पृ थवी अर्थात् तीन द्वयणुक का त्रसरेणु और उस का दोगुना होने से पृ थवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मला कर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं। यहां हम वचार करते हैं क यदि स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में कोई व्यक्ति उनसे परमाणु वषयक इस ववरण पर वस्तृत व्याख्या लखने का अनुग्रह करता तो उत्तम होता जिससे हमें इस वषय के व्याख्या सहित उनके वस्तृत वचार ज्ञात हो सकते थे। उनसे इनका श्रोत व सन्दर्भ भी जाना जा सकता था। अब उनके न रहने पर हमें नहीं लगता की कोई ऐसा वद्वान है जो परमाणु वज्ञान उनके इन कथनों का आधुनिक वज्ञान से संगति लगाकर व समाधान कर सके।

अगला प्रश्न मह र्ष दयानन्द यह लेते हैं क इस सृष्टि का धारण कौन करता है। कोई कहता है शेष अर्थात् सहस्र फण वाले सप्र्प के शर पर पृ थवी है। दूसरा कहता है क बैल के सींग पर, तीसरा कहता है क कसी पर नहीं, चैथा हता है क वायु के आधार, पांचवां कहता है क सूर्य के आकर्षण से खंची वा खैंची हुई अपने स्थान पर स्थित, छठा कहता है क पृ थवी भारी होने से नीचे-नीचे आकाश में चली जाती है इत्यादि। इनमें से कस बात को सत्य मानें? इसके उत्तर में वह कहते हैं क जो शेष, सर्प्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृ थवी स्थित बतलाता है उस को पूछना चाहिये क सर्प्प और बैल के मां बाप के जन्म समय कस पर

थी? तथा सर्प्प और बैल आदि कस पर हैं? बैल वाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे। परन्तु सप्र्प वाले कहेंगे क सर्प्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर तथा वायु आकाश में ठहरा है। उन से पूछना चाहिये क सब कस पर हैं? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर। जब उन से कोई पूछेगा क शेष और बैल कस का बच्चा है? शेष कश्यप-कद्रू और बैल गाय का। कश्यप मरीची, मरीची मनु, मनु वराट्, वराट् ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टि का था। जब शेष का जन्म ही नही हुआ था, उसके पहले पांच पीढ़ी हो चुकी है, तब कस ने धारण की थी? अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृ थवी कस पर थी? तो 'तेरी चुप मेरी भी चुप' और लड़ने लग जायेंगे। इस का सच्चा अ भप्राय यह है क जो 'बाकी' रहता है उस को शेष कहते हैं। कसी क व ने 'शेषाधारा पृ थवीत्युक्तम्' ऐसा कहा क शेष के आधार पृ थवी है। दूसरे ने उसके अ भप्राय को न समझ कर सर्प्प की मथ्याकल्पना कर ली। परन्तु जिस लये परमेश्वर उत्प त्त और प्रलय से बाकी अर्थात् पृथक रहता है इसी से उसको, परमेश्वर को, 'शेष' कहते हैं और उसी के आधार पर पृ थवी है। 'सत्येनोत्त भता भू मः' यह ऋग्वेद का वचन है। इसका अर्थ है क जो त्रैकाल्याबाध्य है अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वर ने भू म, सूर्य और सब लोक–लोकान्तरों का धारण कया है। 'उक्षा दाधार पृ थवीमुत द्याम्', यह भी ऋग्वेद का वचन है। इसमें ''उक्षा'' शब्द को देखकर कसी ने बैल का ग्रहण कया होगा क्यों क उक्षा बैल का भी नाम है। परन्तु उस मूढ को यह वदित न हुआ क इतने बड़े भूगोल के धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहां से आयेगा? वैदिक साहित्य में उक्षा वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से सूर्य का नाम है। उस ने अपने आकर्षण से पृ थवी को धारण कया है। परन्तु सूर्यादि का धारण करने वाला बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है। अतः मह र्ष दयानन्द सभी उपलब्ध ववरणों की वैदिक साहित्य से तुलना कर यह निष्कर्ष निकालते हैं क इस सृष्टि को धारण करने वाला ईश्वर वा परमेश्वर ही है, और कोई नहीं। मह र्ष दयानन्द समा ध सद्ध अर्थात् ईश्वर का प्रत्यक्ष वा साक्षात्कार कये हुए अथवा ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति कये हुए मनुष्य वा वद्वान थे। वह वैज्ञानिकों के मत क समस्त सौर्य मण्डल वा ब्रह्माण्ड को आकर्षण-अनुकर्षण, प्रत्येक पण्ड की अपनी-अपनी धुरी व वृत्ताकार गति के कारण स्थित-स्थिर हैं वा गति कर रहे हैं, इनको स्वीकार करने के साथ परमेश्वर का इन सबका उत्प त्तकर्ता व धारणकर्ता स्वीकार करते हैं।

इसी प्रसंग में एक अन्य प्रश्न मह र्ष दयानन्द ने यह कया है क इतने बड़े-बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा? इसका उत्तर वह यह कहकर देते हैं क जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं, वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् ' वभूः प्रजासु' (यजुर्वेद वचन), वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सब का धारण कर रहा है। जो वह ईसाई, मुसलमान व पुरा णयों के कथनानुसार वभू न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी नहीं कर सकता था क्यों क वना प्राप्ति (ईश्वर के सर्वव्यापक अर्थात् सबको सर्वत्र प्राप्त हुए बिना) के कसी को कोई धारण नहीं कर सकता। वह आगे कहते हैं क यदि कोई कहे क ये सब लोक-लोकान्तर परस्पर आकर्षण से धारित होंगे, पुनः परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है? उन को यह उत्तर देना चाहिये क यह सृष्टि अनन्त है वा सान्त (अन्त वाली वा सी मत)? जो अनन्त कहें तो आकार वाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती और जो सान्त कहें तो उनके पर भाग सीमा

अर्थात् जिस के परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है, वहां कस के आकर्षण से धारण होगा? जैसे समष्टि कहाता है और एक-एक वृक्षादि को भन्न- भन्न गणना करें तो व्यष्टि कहाता है, वैसे सब भूगोलों को समष्टि गनकर जगत् कहें तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्ता वना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। इस लए जो सब जगत् को रचता है वही 'स दाधार पृ थवीमुत द्याम्।।', यह यजुर्वेद का वचन है, इसमें कहा गया है क जो पृ थव्यादि प्रकाशरहित लोक-लोकान्तर पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाश वाले लोक और पदार्थों का रचन व धारण परमात्मा ही करता है। जो सब में व्यापक हो रहा है वही सब जगत् का कर्ता और धारण करने वाला है।

मह ष दयानन्द सौर मण्डल वषयक कुछ प्रश्नोत्तर प्रस्तुत करते हुए कहते हैं क पृथव्यादि लोग घूमते हैं वा स्थिर हैं? वह उत्तर में कहते हैं क घूमते हैं। (प्रश्न) कतने ही लोग कहते हैं क सूर्य घूमता है और पृ थवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं क पृ थवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाये? इसका उत्तर मह ष दयानन्द वेदों के आधार पर देते हैं। यह वेद सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए। वेदों का ज्ञान और आधुनिक वज्ञान की खोजे परस्पर एक समान व पूरक हैं। पूर्व प्रश्न के उत्तर में मह ष दयानन्द यजुर्वेद के अध्याय 3 के मन्त्र 63 'आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पतरं च प्रयन्त्स्वः।।' को प्रस्तुत कर उसका अर्थ बताते हुए कहा है क यह भूगोल समुद्र व नदी के जल सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इस लए भू म अर्थात् सम्पूर्ण पृ थवी घूमा करती है। एक अन्य वैज्ञानिक खोज को वेदों में दिखाने हेतु वह यजुर्वेद के 33/43 मन्त्र 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन स वता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।' को प्रस्तुत कर कहते हैं क जो स वता अर्थात् सूर्य वर्षादि का कर्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीयस्वरूप के साथ वर्तमान, सब प्राणी अप्रा णयों में अमृतरूप, वृष्टि वा करण के साथ आकर्षण गुण से सह वर्तमान, अपनी परि ध में घूमता रहता है कन्तु कसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। इसी प्रकार एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक-लोकान्तर प्रकाश्य हैं। जैसे- दि व सोमो अ ध श्रतः।। यह अथर्ववेद का 14/1/1 मन्त्र है। इसका तात्पर्य बताते हुए दयानन्द जी कहते हैं क यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रका शत होता है वैसे ही पृ थव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रका शत होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्तमान रहते हैं क्यों क पृ थव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है उतने में रात। अर्थात् उदय, अस्त, सन्ध्या, मध्यान्ह, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देश–देशान्तरों में सदा वर्तमान रहते हैं अर्थात् जब आर्यावर्त में सूर्यादय होता है उस समय पाताल अर्थात् 'अमेरिका' में अस्त होता है और जब आर्यावर्त में अस्त होता है तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्यावर्त में मध्य दिन वा मध्य रात है उसी समय पाताल देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है।

मह ष दयानन्द ने सृष्टि रचना व इससे जुड़े वषयों पर जो तथ्य वैदिक साहित्य के आधार पर प्रस्तुत कये हैं वह अति वस्तृत एवं वज्ञानसम्मत हैं। इसके लए उनके समस्त ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। महाभारत काल के बाद भारत के ब्राह्मण कहे जाने वाले वद्वानों ने वैदिक साहित्य की उपेक्षा कर अज्ञानयुक्त पुराणों आदि की रचना कर मूर्तिपूजा, फ लत ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, जन्मना जाति आदि की मथ्या परम्पराओं को प्रच लत कया। उन्होंने सांगोपांग वेदाध्ययन न कर इसका परिणाम सामाजिक व वैज्ञानिक उन्नति का कार्य

बन्द कर दिया था जिसके कारण भारत का पतन हुआ। वहीं दूसरी ओर यूरोप के सुधीजनों ने वहां की वज्ञान वरूद्ध व वज्ञान रहित धा र्मक मान्यताओं की उपेक्षा कर वज्ञान की उन्नति पर अपना ध्यान व शक्ति को केन्द्रित कया जिसका परिणाम आज का आधुनिक वज्ञान है। हमारे पौरा णक वद्वान व संसार के अन्य मतवाले आज भी वहीं हैं जहां वह मध्यकाल में थे। मह र्ष दयानन्द (1825-1883) ऐसे पहले वैदिकधर्मी वद्वान उत्पन्न हुए जिन्होंने वज्ञान को धर्म को आवश्यक अंग स्वीकार कया और वज्ञान की उपेक्षा न कर उसका पोषण कया। महाभारत काल से पूर्व वैदिक धर्म वज्ञान का पूर्ण पोषक व आधार रहा है। इसी कारण महाभारत काल तक भारत में ज्ञान व वज्ञान सर्वोच्च रहा। ज्ञान व वज्ञान से युक्त धा र्मक मान्यतायें एवं इनके परस्पर समन्वय से धर्म, समाज व वज्ञान की उन्नति होकर मानवजाति को लाभ वा सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है। आज भी मध्यकालीन अज्ञानतापूर्ण मान्यतायें चाहे वह कसी भी मत व मतान्तर की हों, उ चत नहीं कही जा सकती। सभी मतों व धर्मों को वज्ञान के आलोक में अपनी मान्यताओं व सद्धान्तों का संशोधन कर अपने-अपने मत व धर्म को मनुष्यों के लए अ धक उपयोगी, स्वीकार्य एवं परिणाम प्राप्ति में सहायक बनाना चाहिये। हम स्वामी दयानन्द के धर्म व वज्ञान के सन्तु लत सद्धान्तों का अध्ययन करने व उसमें निहित धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति की प्रेरणा को आज के युग में सर्वा धक प्रासं गक व सभी मनुष्यों द्वारा ग्रहण कये जाने की आवश्यकता को अनुभव करते हैं क्यों क इसी में मनुष्यजाति का कल्याण है।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196 चुक्खूवाला-2**

देहरादून-248001

फोनः**09412985121**

अग्निहोत्र यज्ञ से अनेक लाभ व इसके कुछ पक्षों पर वचार

FEBRUARY 27, 2016 5 COMMENTS

ओ३म्

'अग्निहोत्र यज्ञ से अनेक लाभ व इसके कुछ पक्षों पर वचार'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

प्रतिदिन प्रातः व सायं अग्निहोत्र करने का वधान वेदों में है। वेद के इन मन्त्रों को मह र्ष दयानन्द ने अपनी पंचमहायज्ञ व ध में प्रस्तुत कया है। यहीं से यज्ञ व अग्निहोत्र परम्परा का आरम्भ हुआ। वेद के मन्त्र 'ओ३म् स मधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयताति थम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।। इदमग्नये–इदन्न मम।।' में कहा गया है क वद्वान लोगों ! जिस प्रकार प्रेम और श्रद्धा से अति थ की सेवा करते हो, वैसे ही तुम स मधाओं तथा घृतादि से

व्यापनशील अग्नि का सेवन करो और चेताओ। इसमें हवन करने योग्य अच्छे द्रव्यों की यथा व ध आहुति दो। एक अन्य मन्त्र 'सुस मद्धाय शो चषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे–इदन्न मम।।' में वधान है क हे यज्ञकर्ता ! अग्नि में तपाये हुए शुद्ध घी की यज्ञ में आहुति दो, जिससे संसार का कल्याण हो। यह सुन्दर आहुति सम्पूर्ण पदार्थों में वद्यमान ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लए है, मेरे लए नहीं। अन्य अनेक मन्त्र हैं जो यज्ञ के प्रेरक व पोषक हैं तथा जिनका यथास्थान वधान यज्ञ की व ध में कया गया है। वेद के वधान व शक्षाओं का पालन करना मनुष्य का धर्म कहलाता है और न करना अधर्म। धर्म सुख का कारण होता है व अधर्म दुःख का कारण। यह ध्यान रखना चाहिये क मनुष्य के सभी कर्मों का फल साथ साथ नहीं मलता। कुछ क्रयमाण कर्मों का मल जाता है और कुछ कर्म कर्मों के सं चत खातों में जमा हो जाते हैं जिनका फल कालान्तर व परजन्मों में मलता है। ऋ षयों ने स्वानुभूति के आधार पर घो षत कया है क यज्ञ एक श्रेष्ठतम कर्म है। यज्ञ करने से अभीष्ट सुख की प्राप्ति होती है। निष्काम भावना से कए गये यज्ञ से भी मनुष्य को लाभ होता है। ऐसा साक्षात्कृतधर्मा ऋ ष अर्थात् यज्ञ से सुख प्राप्ति का अनुभव कये हुए ऋ षयों का कथन है। ऋ ष ईश्वर का साक्षात्कार कये हुए वेदों के सत्य अर्थों के ज्ञानी व धर्म का आचरण करने वाले परोपकारी महात्माओं को कहते हैं। अतः इस प्रमाण के आधार पर संसार के सभी मनुष्यों को यज्ञ अवश्य करना चाहिये। इससे होने वाले सम्पूर्ण लाभों का तो पूर्ण ज्ञानर अभी तक नहीं है, परन्तु जितना ज्ञान है उसके अनुसार यज्ञ का परिणाम इस जन्म व परजन्म में निश्चय ही कल्याणकारी व शुभ होता है।

यज्ञ करने के अनेक कारण व इससे प्राप्त होने वाले अनेक लाभ है जो वचार करने पर ज्ञात होते हैं। पहला कारण तो यह है क हम जहां रहते हैं वहां हमारे मल मूत्र, श्वास-प्रश्वास, भोजन निर्माण, वस्त्र प्रक्षालन आदि कार्यों से वायु, जल व पर्यावरण में अनेक वकार व प्रदुषण उत्पन्न होता है। अतः हमारा कर्तव्य है क हम ऐसे उपाय करें क जिससे हमसे जितनी मात्रा में प्रदुषण हुआ है, उतना व उससे कुछ अ धक प्रदुषण निवारण का कार्य हो। इसका समाधान व उपाय यज्ञ वा अग्निहोत्र करने से होता है। प्रदुषण को दूर करने का अन्य कोई उपाय आज भी वज्ञान द्वारा सुलभ नहीं कराया गया है। यज्ञ के अन्तर्गत पहला कार्य तो यह है क हम अपने निवास को अ धकतम हर प्रकार से स्वच्छ रखें। दूसरा यह है क आम्र आदि प्रदुषण न करने वा न्यूनतम कार्बन-डाइ-आक्साईड उत्पन्न करने वाली पूर्णतया सूखी व छोटे आकार मे कटी हुई स मधाओं से यज्ञ कुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त कर उस अग्नि के तीव्र व प्रचण्ड होने पर उसमें शुद्ध गो घृत सहित वायु, जल, पर्यावरण व स्वास्थ्य की पोषक व उसके अनुकूल सामग्री व पदार्थों की आहुतियां दी जायें। इसके लए चार प्रकार की सामग्री का वधान कया गया है जिसमें मुख्य गोघृत है। अन्य पदार्थों में मष्ट पदार्थ जिसमें शक्कर आदि सम्मि लत हैं। तीसरे वर्ग में सुगन्धित पदार्थ आते हैं जिसके अन्तर्गत केसर, कस्तूरी आदि पदार्थों का प्रयोग कया जाता है। चतुर्थ प्रकार के पदार्थ आयुर्वेदिक ओष धयों सोमलता व गलोय आदि सहित बादाम, काजू, नारीयल, छुआरे, कश मस आदि पोषक पदार्थ सम्मि लत हैं। इनका यज्ञ में आहुति हेतु वधान कया गया है। इन पदार्थों की अग्नि में आहुति देने से यह पदार्थ अतिसूक्ष्म होकर वायुमण्डल में फैल जाते हैं जिनसे वायुमण्डल की शुद् ध सहित वायुस्थ वाष्पीय जल की शुद् ध होती है जो बाद में वर्षा के होने पर खेत ख लहानों के अन्न को शुद्ध व प वत्र बनाते हैं। यज्ञ करते समय यज्ञकर्ता में

धर्मभाव अर्थात् स्वहित-परहित दोनों व अहित कसी का नहीं, का भाव होता है। इससे ईश्वर यज्ञकर्ता के इस शुभ व पुण्य कार्य के लए उसे सुख व आनन्द की अनुभूति कराने सहित अभीष्ट पदार्थों को उपलब्ध कराता है। आरोग्य व स्वास्थ्य लाभ तो यज्ञ का एक मुख्य गुण है। गोघृत के गुण तो सभी को ज्ञात हैं। गोघृत का सेवन करने से मनुष्य निरोग रहने के साथ ब लष्ठ होता है। ईश्वर की प्राप्ति से पूर्व यह स्वास्थ्य व बल ही मनुष्य के लए अभीष्ट होता है जिसकी प्राप्ति गोघृत आदि के सेवन करने से होती है। यज्ञ में इसका प्रयोग करने से इसका सूक्ष्म रूप वायुमण्डल में वद्यमान रहता है जो न केवल यज्ञकर्ता अ पतु यज्ञ स्थान के चारों दिशाओं में दूर दूर तक लोगों व प्रा णयों को लाभान्वित करता है। यज्ञ में दी गई घृत व सभी पदार्थों की आहुतियां सूर्य की करणों के साथ हल्की होने के कारण आकाश में काफी ऊंचाई तक जाती है जिससे वायु में जो सूक्ष्म जीव, बैक्टीरिया आदि होते हैं उनसे होने वाले दुष्प्रभाव से भी मनुष्य बचा रहता है।

यज्ञ में हमारे ऋ षयों ने वेद मन्त्रोच्चार का वधान भी कया है। वेद मन्त्रों का उच्चारण होने से ईश्वर से सम्पर्क जुड़ता है व उससे मत्रता उत्पन्न होने के साथ वेद मन्त्रों के कण्ठ=स्मरण होने से उनकी रक्षा होती है और साथ हि मन्त्रों में निर्दिष्ट लाभों का ज्ञान भी होता है। इन मन्त्रों के प्रयोग व उनके अर्थों को पढ़ने से यज्ञकत्रता संस्कृतनिष्ठ शुद्ध हिन्दी बोल पाते हैं। इससे अनेक वैदिक शब्दों का ज्ञान, उनके प्रति प्रेम व उनके प्रयोग की भावना को बल भी मलता है। हम अपने अनुभव से यह समझते हैं क वेदमन्त्रों का उच्चारण करना मनुष्य के परमार्थ की दृष्टि से भी अ धक लाभप्रद है। अन्य मानुष पद्य व गद्य वाक्यों का प्रयोग व उच्चारण इतना लाभप्रद नहीं है जितना वेदमन्त्रों के अर्थ के ज्ञान सहित उनका उच्चारण होता है। यज्ञों में प्रमुख मन्त्रों का उच्चारण करने से ईश्वर की कृपा व सहायता प्राप्त होती है और जीवन हर दृष्टि से उन्नत व सुखी होता है। इससे हमारा वर्तमान और परजन्म दोनो बनता है जब क इससे इतर कार्यों से परजन्म की उन्नति में अ धक लाभ नहीं होता। घरों में यज्ञ करने से एक लाभ यह होता है क यज्ञ करने से गृह वा निवास स्थान की दू षत वायु यज्ञाग्नि के सम्पर्क में गर्म होकर हल्की हो जाती है और वह दरवाजों, खड़ कयों व रोशनदानों से बाहर चली जाती है। हल्की होकर दू षत वायु के बाहर जाने से जो अवकाश बनता है उसमें बाहर की कं चत शुद्ध वायु स्वतः निवास के भीतर प्र वष्ट हो जाती है जो स्वास्थ्य के लए हितकर व सुखदायक होती है। अग्निहोत्र में यज्ञीय पदार्थों की आहुतियों से वह जलकर सूक्ष्म हो जाते हैं और वायु से मलकर वायु के दुर्गन्धादि अनेक दोषों को दूर करते हैं जिनमें हानिकारक बैक्टिरिया व सूक्ष्मजीव भी प्रभा वत होकर उनका अनिष्टकारी प्रभाव यज्ञकर्ता व उसके परिवार के सदस्यों पर नहीं होता। गोघृत वषनाशक भी होता है। वषैले सांप के काटे हुए मनुष्य को गोघृत पलाने से शरीर पर वष का प्रभाव समाप्त होता है। गोघृत के इसी गुण के कारण वायु में उपस्थित सूक्ष्म कीट व बैक्टिरियां नष्ट होते हैं। आर्यजगत के एक यज्ञप्रेमी वद्वान पण्डित वीरसेन वेदश्रमी जी, इन्दौर ने अनेक छोटे-बड़े यज्ञ कराये और परिक्षणों में उन्होंने पाया क हृदय रो गयों, जन्म के बहिर व मूक व्यक्तियों तक को यज्ञ से पूर्ण लाभ हुआ। दैनिक यज्ञ करने वाले लोग यज्ञ न करने वाले परिवारों से अ धक स्वस्थ, निरोगी व दीघार्यु होते हैं ऐसा अनुमान व प्रत्यक्ष ज्ञान अध्ययन करने पर प्राप्त होता है। हमारा यह भी अनुभव है क यज्ञ करने वाला व्यक्ति जीवन में अनेक छोटी-बड़ी दुर्घटनाओं के होने पर भी अनेक बार उसमें पूर्णतः सुर क्षत रहता

है। यह वैदिक जीवन व्यतीत करने सहित यज्ञ करने का लाभ ही ज्ञात होता है। यह भी हमारा अनुभव है क यज्ञ करने से मनुष्यों की बुद् ध सभी प्रकार के ज्ञान व वषयों को ग्रहण करने में तीव्रतम व महत् क्षमता वाली होती है तथा वह अपने जीवन का कोई भी लक्ष्य निर्धारित कर उसे प्राप्त कर सकता है।

यज्ञ के लाभ का एक उदाहरण प्रस्तुत कर इस लेख को वराम देंगे। आर्यसमाज में प्रभु आ श्रत जी का यश व कीर्ति यज्ञों के प्रचारक के रूप में आज भी सर्वत्र वद्यमान है। उनके एक अनुगामी दम्पती ऐसे थे जो उनके सत्संग में सम्मि लत होते थे परन्तु उनके पास धन का नितान्त अभाव था। वह उन दिनों यज्ञ करने के लए घृत व सामग्री तक का व्यय करने में समर्थ नहीं थे। महात्मा जी के सामने उन्होंने यज्ञ करने की अपनी इच्छा व्यक्त की और धनाभाव की यथार्थ स्थिति भी उन्हें बताई। महात्मा जी ने उन्हें संकल्प लेकर यज्ञ करने का परामर्श दिया और कहा क ईश्वर की कृपा से धीरे-धीरे सभी साधन प्राप्त हो जायेंगे। इस परिवार ने दैनिक यज्ञ आरम्भ कर दिया। शनैः शनैः इनकी आ र्थक, शारीरिक व सामाजिक उन्नति होती गई। आ र्थक उन्नति इतनी हुई क इन्होंने जीवन में लाखों वा करोड़ों रूपये शुभ कार्यों के लए दान दिये। आज भी इनके पुत्र प्रातः व सायं यज्ञ करते हैं। अनेक संस्थाओं के अ धकारी हैं। उनका यश सर्वत्र व्याप्त है तथा वह सुखी व सम्पन्न हैं। हमारी यदा-कदा उनसे भेंट होती रहती है। आपने पछली एक भेंट में बताया क जब 1947 में वैदिक राष्ट्र भारत का वभाजन हुआ तो लोग अपनी धन-सम्प त्त लेकर पा कस्तान से भारत आये थे परन्तु यह परिवार अपनी सारी सम्प त्त वहीं छोड़कर केवल यज्ञ कुण्ड अपने गले में टांग कर व उसमें वद्यमान अग्नि को सुर क्षत रखते हुए भारत पहुंचा था। इस परिवार ने उस अग्नि की रक्षा करते हुए उसे बुझने नहीं दिया। वगत लगभग 75 वर्षों से यह यज्ञाग्नि निरन्तर प्रज्जव लत है। वर्तमान में श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री जी सपत्नपीक व परिवार सहित इस अग्नि में ही प्रातः व सायं यज्ञ करते हैं। ऐसे व्यक्ति, परिवार व उनसे जुड़े लोग धन्य हैं। हम तो इनके दर्शन कर ही स्वयं को कृतकृत्य मानते हैं। हमने अपने जीवन में भी यज्ञ के अनेक चमत्कार अनुभव कये हैं। यह सब ईश्वर सच्चे वचारों वाले अपने अनुयायियों को उनकी पात्रता व योग्यता के अनुसार प्रदान करता है। मह र्ष दयानन्द ने पंचमहायज्ञ व ध और संस्कार व ध ग्रन्थों में पंच महायज्ञों का वधान कया है। इसे जान व समझकर सभी मनुष्यों को इसका सेवन कर लाभ उठाना चाहिये। इसको करने से यज्ञकर्ता को अवश्य लाभ मलेगा, ऐसा हमें पूर्ण वश्वास है जिसका आधार हमारा अध्ययन, ज्ञान व अनुभव है। हमने यज्ञ का भौतिक व व्यवहारिक स्वरूप प्रस्तुत कया है। इस वषय में और बहुत कुछ कहा जा सकता है। और अ धक वस्तार न कर लेख को यहीं वराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

. क्या वैदिक धर्म के मानने वाले शास्त्रों के अलावा दूसरे धर्म शास्त्रों को मानने वाले को मुक्ति मलेगी? : आचार्य सोमदेव जी

FEBRUARY 23, 2016 LEAVE A COMMENT

जिज्ञासाः- . क्या वैदिक धर्म के मानने वाले शास्त्रों के अलावा दूसरे धर्म शास्त्रों को मानने वाले को मुक्ति मलेगी?

समाधान

हमने लखा-मुक्ति ज्ञान से होती है और शुद्ध ज्ञान का भण्डार वेद व वेदानुकूल शास्त्र हैं। इनके अतिरिक्त जितने भी मतवादियों ने अपने-अपने ग्रन्थ बना रखे हैं, उनमें पूर्ण सत्य नहीं है और जो सत्य है भी, वह वेदादि का ही है। अन्य मतवादियों के ग्रन्थों में सृष्टि वरुद्ध बातें प्रचुर मात्रा में हैं, पाखण्ड और अन्ध वश्वास से पूर्ण बातें उनके ग्रन्थों में हैं। इस प्रकार की बातों से युक्त ग्रन्थों को मानने वाली मुक्ति कैसे हो सकती है, यह आप भी वचार कर देखें।

इस लए वैदिक धर्म के मानने वाले शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य मतवादियों के ग्रन्थों को मानने वालों की मुक्ति सभव नहीं है। मह ष दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भू मका के पठन-पाठन वषय में स्पष्ट लखा क-

यो मनुष्यो वेदार्थान्न वे त्त स नैव तं बृहन्तं

परमेश्वरं धर्मं वद्यासमूहं वा वेत्तुमर्हति।

कुतः सर्वासां वद्यानां वेद एवा धकरणमस्त्यतः।

न हि तम वज्ञाय कस्य चत् सत्य वद्या प्राप्तिभ वतुर्महति।।

यहाँ मह ष का कहने का भाव है क जो मनुष्य वेदार्थ को नहीं जानता, वह कभी उस महान् परमेश्वर, धर्म और वद्या समूह को जानने में समर्थ नहीं हो सकता, क्यों क सभी सत्य वद्याओं का वेद ही आधार है, इस लए उस वेद को जाने बिना कसी को सत्य वद्या प्राप्त नहीं हो सकती।

Moksh

क्या यम-नियम का पालन करने वाले व धा मक सेवा कार्य में लगे हुए व्यक्ति को मुक्ति मलेगी?: आचार्य सोमदेव जी

जिज्ञासा-

क्या यम-नियम का पालन करने वाले व धा र्मक सेवा कार्य में लगे हुए व्यक्ति को मुक्ति मलेगी?

समाधानः-

मुक्ति के लए मनुष्य यम-नियम का पालन करते हुए धा र्मक कार्य करे, इससे उसके अच्छे संस्कार बनेंगे। मुक्ति के लए रास्ता तो खुलेगा, कन्तु केवल इतने मात्र से मुक्ति नहीं होगी। मुक्ति के लए मह र्ष ने कहा है, ''प वत्र कर्म, प वत्रोपासना और प वत्र ज्ञान ही से मुक्ति…….''। स.प्र. 9

यहाँ प्रमाण देने का तात्पर्य यह है क केवल यम-नियम अनुष्ठान और धा र्मक सेवाकार्य से मुक्ति नहीं होगी। इसका यह अर्थ कदा प नहीं है क धा र्मक सेवा कार्य आदि मुक्ति में बाधक हैं।

यम-नियम के अनुष्ठान और धा र्मक सेवा कार्य से व्यक्ति के अन्तःकरण में श्रेष्ठ संस्कार पड़ते हैं, जिससे व्यक्ति का उपासना में मन लगता है और उससे ज्ञान ग्रहण करने की योग्यता बढ़ती है। जैसा जिसका जितना शुद्ध ज्ञान होगा, वह वैसा उतना अपने अ वद्या के संस्कारों को नष्ट करेगा। जब पूर्ण रूप से अ वद्या के संस्कार नष्ट हो जाते हैं, तब मुक्ति की अवस्था आती है। मुक्ति न तो कर्म से होती और न ही उपासना से, मुक्ति तो ज्ञान से ही सभव है। मह र्ष क पल ने अपने शास्त्र में लखा- ''ज्ञानात् मुक्तिः।।'' जीवात्मा की मुक्ति ज्ञान से होती है। ''बन्धो वपर्ययात्।।'' अज्ञान से बन्धन होता है। ''नियतकारणत्वान्न समुच्चय वकल्पौ '' मुक्ति प्राप्ति में ज्ञान की नियतकारणता है, अनिवार्य कारणता है, अर्थात् मुक्ति प्राप्ति में ज्ञान ही निश्चित कारण है। इस लए न तो ज्ञानके साथ अन्य साधन मलकर मुक्ति देते हैं और न ही ऐसा है क ज्ञान से भी मुक्ति हो सकती है अथवा शुद्ध कर्म व उपासना से भी। मुक्ति के लए तो केवल ज्ञान ही साधन बनता है, अन्य नहीं।

इसका कोई यह अर्थ न निकाले क कर्म और उपासना की कोई महत्ता ही नहीं है, क्यों क मुक्ति के लए तो ज्ञान की ही आवश्यकता है। कर्म और उपासना का अपना महत्त्व है। शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना के करने से व्यक्ति के अन्दर सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं। इस सात्विक स्थिति में ही व्यक्ति शुद्ध ज्ञान को ग्रहण करता चला जाता है। शुद्ध ज्ञान के होने पर अ वद्या के संस्कार ढीले होने लगते हैं। धीरे-धीरे शुद्ध ज्ञान से साधक अपने अ वद्यादि क्लेशों को पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है। जब अ वद्यादि क्लेश पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं, तब साधककी मुक्ति सभव हो जाती है।

इस लए केवल यम-नियम का पालन करने अथवा धा र्मक सेवा कार्य करने से मुक्ति मल जायेगी-ऐसा नहीं है। यम-नियम का पालन और धा र्मक सेवा कार्य का अपना एक फल है और वह अच्छा ही फल होगा, कन्तु इनका फल मुक्ति नहीं है। ये सब करते हुए योगायास करें और ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जायें।

क्या नाम व शब्द सृष्टि के साथ पैदा हुए हैं?:- आचार्य सोमदेव

FEBRUARY 23, 2016 LEAVE A COMMENT

जिज्ञासा :

क्या नाम व शब्द सृष्टि के साथ पैदा हुए हैं? (जैसे पृथ्वी, आकाश, पानी, इन्द्रियों के नाम या पदार्थों के व वनस्पतियों के नाम)

समाधान :

सृष्टि का रचने वाला परमेश्वर है, उसी ने संसार के समस्त पदार्थ रचे हैं। परमात्मा ने जितने भी पदार्थ रचे हैं, उनके नाम पहले से ही परमात्मा के ज्ञान में सदा बने रहते हैं। जब रचना करता है तो उनका नामकरण भी परमात्मा करता है, अर्थात् जो पदार्थ उत्पन्न होता है, उसका नाम भी साथ-साथ होता चला जाता है। सृष्टि में जो भी पदार्थ हैं, उन सबके नाम उनकी उत्प त्त के साथ ही साथ हैं। इस वषय में मह र्ष मनु लखते हैं-

सर्वेषां तु नामानि कर्मा ण च पृथक्-पृथक्।

वेदशदेय एवाऽऽदौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।। 1.21

उस परमात्मा ने सब पदार्थों के नाम पृ थवी, सूर्य, गो, अश्व और मनुष्यादि और इनके भन्न- भन्न कर्म- जैसे ब्राह्मण का वेदाध्ययन, अध्यापनादि, क्षत्रिय का रक्षा करना आदि, वैश्य का व्यापारादि अथवा मनुष्य तथा अन्य प्रा णयों के हिंस्र, अहिंस्र आदि कर्म उसी परमात्मा ने निश्चित कये हैं। सबकी भन्न-भन्न व्यवस्था सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने वेदों के शद से ही बनायी, अर्थात् मन्त्रों के द्वारा यह ज्ञान दिया।

इस लए जो भी संसार में है, उसका नाम व काम परमेश्वर द्वारा नियत कया हुआ है।

Creation of universe

अध्यात्मवाद – कृष्णचन्द्र गर्ग

FEBRUARY 23, 2016 LEAVE A COMMENT

आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इन दोनों का आपस में सबन्ध क्या है- इस वषय का नाम अध्यात्मवाद है। आत्मा और परमात्मा दोनों ही भौतिक पदार्थ नहीं हैं। इन्हें आँख से देखा नहीं जा सकता, कान से सुना नहीं जा सकता, नाक से सूँघा नहीं जा सकता, जिह्वा से चखा नहीं जा सकता, त्वचा से छुआ नहीं जा सकता।

परमात्मा एक है, अनेक नहीं। ब्रह्मा, वष्णु, महेश आदि उसी एक ईश्वर के नाम हैं। (एकं सद् वप्रा बहुधा वदन्ति। ऋग्वेद – 1-164-46) अर्थात् एक ही परमात्मा शक्ति को वद्वान लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। संसार में जीवधारी प्राणी अनन्त हैं, इस लए आत्माएँ भी अनन्त हैं। न्यायदर्शन के अनुसार ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख- ये छः गुण जिसमें हैं, उसमें आत्मा है। ज्ञान और प्रयत्न आत्मा के स्वाभा वक गुण हैं, बाकी चार गुण इसमें शरीर के मेल से आते हैं। आत्मा की उपस्थिति के कारण ही यह शरीर प्रका शत है, नहीं तो मुर्दा अप्रका शत और अप वत्र है। यह संसार भी परमात्मा की वद्यमानता के कारण ही प्रका शत है।

आत्मा और परमात्मा-दोनों ही अजन्मा व अनन्त हैं। ये न कभी पैदा होते हैं और न ही कभी मरते हैं, ये सदा रहते हैं। इनका बनाने वाला कोई नहीं है। आत्मा परमात्मा का अंश नहीं है। हर आत्मा एक अलग और स्वतन्त्र सत्ता है।

आत्मा अणु है, बेहद छोटी है। परमात्मा आकाश की तरह सर्वव्यापक है। आत्मा का ज्ञान सी मत है, थोड़ा है। परमात्मा सर्वज्ञ है, वह सब कुछ जानता है। जो कुछ हो चुका है और हो रहा है, सब कुछ उसके संज्ञान में है। अन्तर्यामी होने से वह सभी के मनों में क्या है- यहाी जानता है। आत्मा की शक्ति सी मत है, थोड़ी है, परन्तु परमात्मा सर्वशक्तिमान है। सृष्टि को बनाना, चलाना, प्रलय करना- आदि अपने सभी काम करने में वह समर्थ है। पीर, पैगबर, अवतार आदि नाम से कोई एजेंट या बिचौ लए उसने नहीं रखे हैं। ईश्वर सभी काम अपने अन्दर से करता है, क्यों क उसके बाहर कुछ भी नहीं है। ईश्वर जोाी करता है, वह हाथ-पैर आदि से नहीं करता, क्यों क उसके ये अंग है ही नहीं। वह सब कुछ इच्छा मात्र से करता है।

ईश्वर आनन्द स्वरूप है। वह सदा एक रस आनन्द में रहता है। वह कसी से राग-द्वेष नहीं करता। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से परे है। ईश्वर की उपासना करने से अर्थात् उसके समीप जाने से आनन्द प्राप्त होता है, जैसे सर्दी में आग के पास जाने से सुख मलता है। ईश्वर निराकार है। उसे शुद्ध मन से जाना जा सकता है, जैसे हम सुख-दुःख मन में अनुभव करते हैं।

यह आत्मा जब मनुष्य शरीर में होती है, तब वह कार्य करने में स्वतन्त्र रहती है। उस समय कए कार्यों के अनुसार ही उसे परमात्मा सुख, दुःख तथा अगला जन्म देता है। दूसरी योनियाँ या तो कसी दूसरे के आदेश पर चलती हैं या स्वभाव से काम करती हैं। उनमें वचार शक्ति नहीं होती, इस लए उन योनियों में की गई क्रयाओं का उन्हें अच्छा या बुरा फल नहीं मलता। वे केवल भोग योनियाँ हैं जो पहले कए कर्मों का फल भोग रही हैं। मनुष्य योनि में कर्म और भोग दोनों का मश्रण है। मनुष्य स्वतन्त्र रूप से कर्म भी करता है और कर्म फल भी भोगता है।

मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। शरीर मेरा संसार में व्यवहार करने का साधन है। कर्ता और भोक्ता आत्मा है। सुख-दुःख आत्मा को होता है।

जीवात्मा न स्त्री लंग है, न पु लंग है और न ही नपुंसक है। यह जैसा शरीर पाता है, वैसा कहा जाता है। (श्वेताश्वतर उपनिषद्)

ईश्वर की पूजा ऐसे नहीं की जाती, जैसे मनुष्यों की पूजा अर्थात् सेवा सत्कार कया जाता है। ईश्वर की आज्ञा का पालन अर्थात् सत्य और न्याय का आचरण- यही ईश्वर की पूजा है।

कठोपनिषद् में मनुष्य-शरीर की तुलना घोड़ा गाड़ी से की गई है। इसमें आत्मा गाड़ी का मा लक अर्थात् सवार है। बुद् ध सारथी अर्थात् कोचवान है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन्द्रियों के वषय वे मार्ग हैं, जिन पर इन्द्रियाँ रूपी घोड़े दौड़ते हैं। आत्मा रूपी सवार अपने लक्ष्य तक तभी पहुँचेगा, जब बुद् ध रूपी सारथी मन रूपी लगाम को अपने वश में रखकर इन्द्रियाँ रूपी घोड़ों को सन्मार्ग पर चलाएगा।

उपनिषद् में घोड़ा गाड़ी को रथ कहा जाता है और रथ पर सवार को रथी। मनुष्य शरीर में आत्मा रथी है। जब आत्मा निकल जाती है, तब शरीर अरथी रह जाता है।

परमात्मा हम सबका माता, पता और मत्र है। हम सब प्रा णयों का भला चाहता है। जब मनुष्य कोई अच्छा काम करने लगता है तो उसे आनन्द, उत्साह, निर्भयता महसूस होती है। वह परमात्मा की तरफ से होता है, और जब वह कोई बुरा काम करने लगता है, तब उसोय, शंका, लज्जा महसूस होती है । वह भी परमात्मा की तरफ से ही होता है।

– 831 सैक्टर **10,** पंचकूला**,** हरियाणा।

दूरभाषः **095014-67456**

Adhayatmvad

सृष्टि उत्प त्त क्यों और कैसे ? मानव का प्रादुर्भाव कहाँ? – आचार्य पं. उदयवीर जी शास्त्री

FEBRUARY 23, 2016 2 COMMENTS

सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव है। मानव को अपनी इस स्थिति के वषय में कदा चत् अ भमान हो सकता है, पर अ धका धक उन्नति कर लेने परी यह सृष्टि रचना में सर्वथा असमर्थ रहता है। इसका कारण है, मानव जब अपने रूप में प्रकट होता है, उससे बहुत पूर्व सृष्टि की रचना हो चुकी होती है, इस लये यह प्रश्न ही नहीं उठता क मानव सृष्टि रचना कर सकता है। तब यह समस्या सामने आती है क इस दुनिया को कसने बनाया होगा?

भारतीय प्राचीन ऋ षयों ने इस समस्या का समाधान कया है। जगत को बनाने वाली शक्ति का नाम 'परमात्मा' है, इसको ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। यह ठीक है क परमात्मा इस पृ थवी, चाँद, सूरज आदि समस्त लोक-लोकान्तर रूप जगत् को बनाने वाला है, परन्तु जिस मूलतत्त्व से इस जगत् को बनाया जाता है, वह अलग है। उसका नाम प्रकृति है। प्रकृति त्रिगुणात्मक कही जाती है। वे तीन गुण हैं- सत्व, रजस् और तमस्। इन तीन प्रकार के मूल तत्त्वों के लये 'गुण' पद का प्रयोग इसी लये कया जाता है क ये तत्त्व आपस में गु णत होकर, एक-दूसरे में मथुनीभूत होकर, परस्पर गुँथकर ही जगद्रूप में

परिणत होते हैं। जगत् की रचना पुण्यापुण्य, धर्माधर्म रूप शुभ-अशुभ कार्मों के करने और उनके फलों को भोगने के लये की जाती है। इन कर्मों को करने और भोगने वाला एक और चेतन तत्त्व है, जिसको जीवात्मा कहा जाता है। ये तीनों पदार्थ अनादि हैं-ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति।

जगत उत्पन्न होता है या नहीं?

प्रश्न-यह जगत् कभी उत्पन्न नहीं होता, अनादि काल से ऐसा ही चला आता है और अनन्त काल तक ऐसा ही चला जायगा, ऐसा मान लेने पर इसके बनने-बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता, तब इसको बनाने के लए ईश्वर की कल्पना करना व्यर्थ है। यह चाहे प्रकृति का रूप हो या कोई रूप हो, अनादि होने से ईश्वर की कल्पना अनावश्यक है।

उत्तर-जगत् को जिस रूप में देखा जाता है, उससे इसका वकारी होना स्पष्ट होता है। यदि जगत् अनादि-अनन्त एक रूप हो, तो यह नित्य माना जाना चाहिये, नित्य पदार्थ अपने रूप में कभी परिणामी या वकारी नहीं होता, परन्तु जागतिक पदार्थों में प्रतिदिन परिणाम होते देखे जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है क पृ थव्यादि लोक-लोकान्तरों की दृश्यमान स्थिति अपरिणा मनी अथवा अ वकारिणी नहीं है। इसमें परिणाम का निश्चय होने पर यह मानना पड़ेगा क यह बना हुआ पदार्थ है, तब इसके बनाने वाले को भी मानना होगा।

प्रश्न-पृ थव्यादि को वकारी मानने पर भी बनाने वाले की आवश्यकता न होगी। जिन मूलतत्त्वों से इनका परिणाम होना है, वे स्वतः इस रूप में परिणत होते रहते हैं। संसार में अनेक पदार्थ स्वतः होते देखे जाते हैं। अनेक स्वचा लत यन्त्रों का आज निर्माण हो चुका है।

उत्तर-पृ थव्यादि समस्त जगत् जड़ पदार्थ है, चेतना-हीन। इसका मूल उपादान तत्त्व भी जड़ है। कसीाी जड़ पदार्थ में चेतन की प्रेरणा के बिना कोई क्रया होना संभव नहीं। चेतना के सहयोग के बिना कसी जड़ पदार्थ में स्वतः प्रवृ त्त होती नहीं देखी जाती। इसके लये न कोई युक्ति है, न दृष्टान्त। स्वचा लत यन्त्रों के वषय में जो कहा गया, उन यन्त्रों का निर्माण तो प्रत्यक्ष देखा जाता है। उनको बनाने वाला शल्पी उसमें ऐसी व्यवस्था रखता है, जिसे स्वचा लत कहा जाता है। यन्त्र अपने-आप नहीं बन गया है, उसको बनाने वाला एक चेतन शल्पी है और उस यन्त्र की निगरानी व साज-सँवार बराबर करनी पड़ती है, यह सब चेतन-सहयोग-सापेक्ष है, इस लये यह समझना क पृ थव्यादि जगत् अपने मूल उपादान तत्त्वों से चेतन निरपेक्ष रहता हुआ स्वतः परिणत हो जाता है, वचार सही नहीं है। फलतः जगत् के बनाने वाले ईश्वर को मानना होगा।

प्रकृति की आवश्यकता?

प्रश्न – आपने यह स्पष्ट कया क ईश्वर को मानना आवश्यक है। यदि ऐसा है, तो केवल ईश्वर को मानने से कार्य चल सकेगा। ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् माना जाता है, वह अपनी शक्ति से जगत् को बना देगा, उसके अन्य कारण प्रकृ ति की क्या आवश्यकता है? कतिपय आचायरें ने इस वचार को मान्यता दी है।

उत्तर- ईश्वर जगत् को बनाने वाला अवश्य है, पर वह स्वयं जगत् के रू प में परिणत नहीं होता। ईश्वर चेतन तत्त्व है, जगत् जड़ पदार्थ है। चेतना का परिणाम जड़ अथवा जड़ का परिणाम चेतन होना संभव नहीं। चेतन स्वरूप से सर्वथा अपरिणामी तत्त्व है। यदि चेतन ईश्वर को ही जड़ जगत् के रूप में परिणत हुआ माना जाय तो यह उस अनात्मवादी की कोटि में आजाता है, जो चेतन की उत्प त्त जड़ से मानता है। कारण यह है क यदि चेतन जड़ बन सकता है, तो जड़ को भी चेतन बनने से कौन रोक सकता है? इस लये चेतन से जड़ की उत्प त्त अथवा जड़ से चेतन की उत्प त्त मानने वाले दोनों वादी एक ही स्तर पर आ खड़े होते हैं। फलतः यह सद्धान्त बुद् धगय है क न चेतन जड़ बनता है और न जड़ चेतन बनता है। चेतन सदा चेतन है, जड़ सदा जड़ है। इससे यह स्पष्ट होता है क जड़ जगत् जिस मूल तत्त्व का परिणाम है, वह जड़ होना चाहिये, इस लये चेतन ईश्वर से अतिरिक्त मूल उपादान तत्त्व मानना होगा, उसी का नाम प्रकृति है।

जब यह कहा जाता है क सर्वशक्तिमान् ईश्वर अपनी शक्ति से जगत् को उत्पन्न कर देगा, उस समय प्रकृति को ही उसकी शक्ति के रूप में कथन कर दिया जाता है। वैसे सर्वशक्तिमान् पद के अर्थ में यही भाव अन्तर्निहित है क जगत् की रचना करने में ईश्वर को अन्य कसी कर्त्ता के सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती। वह इस कार्य के लये पूर्ण शक्त है, अप्रतिम समर्थ है। फलतः यह जगत् परिणाम प्रकृ ति का ही होता है, ईश्वर केवल इसका नि मत्त, प्रेरयिता,नियन्ता व अ धष्ठाता है। यही सत्य स्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है।

इस प्रसंग में सत्यार्थप्रकाश [स्थूलाक्षर, वेदानन्द संस्करण, पृ. 191, पंक्ति 10-12] के अन्दर एक वाक्य है, जिसे अस्पष्टार्थ कहा जाता है। वह वाक्य है – 'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था- इस वाक्य के अ भमत अर्थ को स्पष्ट करने व समझने के लये इसमें से दो अवान्तर वाक्यांशों का वभाजन करना होगा। इस वाक्य में से 'और जीवात्मा ब्रह्म' इन पदों को अलग करके रख लीजिये फर शेष वाक्य को पढ़िये, वह इस प्रकार होगा- 'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था, आाव न था।' इतना वाक्य एक पूरे अर्थ को व्यक्त करता है। जगत् जो अब हमारे सामने वद्यमान है, यह सृष्टि के पूर्व अर्थात् प्रलय अवस्था में असत् के सदृश था, सर्वथा असत् या तुच्छ न था, कारण यह है क यह प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, तात्पर्य यह क कारण-रूप से वद्यमान था, इससे प्रतीत होता है क ऋ ष ने कार्य-कारणभाव में सत्कार्य सद्धान्त को स्वीकार कया है। प्रलय अवस्था में जगद्रूप कार्य कारण रूप से वद्यमान रहता है, उसका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता।

जो पद हमने उक्त वाक्य में से अलग करके रक्खे हैं, वे दो अवान्तर वाक्यों को बनाते हैं -1- 'और जीवात्मा वर्त्तमान था'। 2- 'ब्रह्म वर्त्तमान था' तात्पर्य यह क प्रलय अवस्था में प्रकृति के साथ जीवात्मा और ब्रह्म भी वर्तमान थे। इस प्रकार उक्त पंक्ति से ऋ ष ने उस अवस्था में तीन अनादि पदार्थों की सत्ता को स्पष्ट कया है तथा इस मन्तव्य का एक प्रकार से प्रत्यायान कया है, जो उस अवस्था में एक मात्र ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं, जीव तथा प्रकृति की स्थिति को नहीं मानते, इनका उद्भव ब्रह्म से ही मान लेते हैं।

तीन अनादि पदार्थों के मानने पर जगद्रचना की व्याया सर्वा धक निर्दोष की जा सकती है। कारण यह है क लोक में कसी रचना के हेतु तीन प्रकार के देखे जाते हैं। प्रत्येक कार्य का कोई बनाने वाला होता है, कुछ पदार्थ होते हैं, जिनसे वह कार्य बनाया जाता है, कुछ सहयोगी साधन होते हैं। पहला कारण नि मत्त कहलाता है, दूसरा उपादान और तीसरा साधारण। संसार में कोई ऐसा कार्य संभव नहीं, जिसके ये तीन कारण नहीं है। जब दृश्यादृश्य जगत् को कार्य माना जाता है तो उसके तीनों कारणों का होना आवश्यक है। इसमें जगत् की रचना का नि मत्त कारण ईश्वर, उपादान कारण प्रकृति तथा जीवों के कृत शुभाशुभ कर्म अथवा धर्माधर्म आदि साधारण कारण होते हैं, इस लये इन तीनों पदार्थों को अनादि माने बिना सृष्टि की निर्दोष व्याया नहीं की जा सकती।

ब्रह्म से ही जगत्-उत्प त्त नहीं?

प्रश्न-वेदान्त दर्शन पर वचार करने वाले तथाक थत नवीन आचार्यों की यह मान्यता है क एक मात्र ब्रह्म को वास्त वक तत्त्व मानने पर सृष्टि की व्याया की जा सकती है। उनका कहना है क जगत् के नि मत्त और उपादान कारण को अलग मानना आनावश्यक है। एक मात्र ब्रह्म स्वयं अपने से जगत् को उत्पन्न कर देता है, उसे अन्य उपादान की अपेक्षा नहीं। लोक में ऐसे दृष्टान्त देखे जाते हैं। मकड़ी अपने आप से ही जाला बुन देती है, बाहर से उसे कोई साधन-सहयोग लेने की अपेक्षा नहीं होती, ऐसे ही जी वत पुरुष से केश-नख स्वतः उत्पन्न होते रहते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही जगत् को उत्पन्न कर देता है।

उत्तर – यह बात पहले कही जा चुकी है क यदि ब्रह्म अपने से जगत् को बनावे तो वह वकारी या परिणामी होना चाहिये। ब्रह्म चेतन तत्त्व है, चेतन कभी वकारी नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह बात भी है क चेतन ब्रह्म का परिणाम जगत् जड़ कैसे हो जाता? क्यों क कारण के वशेष गुण कार्य में अवश्य आते हैं। या तो जगत् भी चेतन होता, या फर कार्य जड़-जगत् के अनुसार उपादान कारण ईश्वर या ब्रह्म को भी जड़ मानना पड़ता, पर न जगत् चेतन है, और न ईश्वर जड़, इस लये ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता।

ब्रह्म उपादान से जगत् की उत्प त्त में मकड़ी आदि के जो दृष्टान्त दिये जाते हैं, उनकी वास्त वकता की ओर कसी ब्रह्मोपादानवादी ने क्यों ध्यान नहीं दिया, यह आश्चर्य की बात है। ये दृष्टान्त उक्त मत के साधक न होकर केवल बाधक हैं। मकड़ी एक प्राणी है, जिसका शरीर भौतिक या प्राकृतिक है और उसमें एक चेतन जीवात्मा का निवास है। उस प्राणी द्वारा जो जाला बनाया जाता है, वह उस भौतिक शरीर का वकार या परिणाम है, चेतन जीवात्मा का नहीं। यही ध्यान देने की बात है क शरीर से जाला उसी अवस्था में बन सकता है, जब शरीर का अ धष्ठाता चेतन जीवात्मा वहाँ वद्यमान रहता है। वह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है क केवल जड़ तत्त्व चेतन के सहयोग के बिना स्वतः वकृत या परिणत नहीं होता। दृष्टान्त से स्पष्ट है क जाला रूप जड़ वकार जड़ शरीर का है, चेतन जीवात्मा का नहीं। इस दृष्टान्त का उद्भावन करने वाले उपनिषद् (यथोर्णना भः सृजते गृह्णते च) वाक्य में यही स्पष्ट कया है क जैसे मकड़ी जाला बनाती और उसका संहार करती है, उसी प्रकार अ वनाशी ब्रह्म से यह वश्व प्रादुर्भूत होता है।

उपनिषद् के उस वाक्य में 'यथा' और 'तथा' शद ध्यान देने योग्य हैं। जैसे मकड़ी जाला बनाती और उपसंहार करती है- 'तथाऽक्षरात्संभवतीह वश्वम्', वैसे अ वनाशी ब्रह्म से यहाँ वश्व प्रादुर्भूत होता है। अब देखना यह है क जाला मकड़ी के भौतिक शरीर से परिणत होता है और बनाने वाला अ धष्ठाता चेतन आत्मा वहाँ इस प्रवृति का प्रेरक है, चेतन स्वयं जाला नहीं बनता, ऐसे ही ब्रह्म अपने प्रकृति रूप देह से वश्व का प्रादुर्भव करता है। समस्त वश्व परिणाम प्रकृति का ही है, प्रकृति से होने वाली समस्त प्रवृ त्तयों का प्रेरक व अ धष्ठाता परमात्मा रहता है। वह स्वयं वश्व के रूप में परिणत नहीं होता, इस लए वह वश्व का केवल नि मत्त कारण है, उपादान कारण नहीं हो सकता।

जगत् का निर्माण क्यों?

प्रश्न- यह ठीक है क सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है और वह प्रकृति मूल उपादान से जगत् की रचना करता है, परन्तु प्रश्न है, जगत् की रचना में उसका क्या प्रयोजन है? जगत् की रचना कस लक्ष्य को लेकर की जाती है? यदि इसका कोई प्रयोजन ही नहीं, तो रचना व्यर्थ है, उसने क्यों ऐसा कया? वह तो सर्वज्ञ है, फर ऐसी निष्प्रयोजन रचना क्यों?

शेष भाग अगले अंक में…..

Creation of life: Aachary Udayveer ji

आवागमन पर पं. लेखराम जी के अनूठे तर्कः: राजेन्द्र जिज्ञासु

FEBRUARY 23, 2016 LEAVE A COMMENT

आवागमन पर पं. लेखराम जी के अनूठे तर्कः- अमरोहा से प्रका शत होने वाले साप्ताहिक आर्य सामाजिक -पत्र का एक अंक नजीबाबाद गुरुकुल में एक आर्य बन्धु ने दिखाया। उसमें पुनर्जन्म पर एक लेख का शीर्षक पढ़कर ऐसा लगा क मेरे कसी प्रेमी ने मेरे पुनर्जन्म वषयक (परोपकारी में छपे) तर्कों पर कुछ प्रश्न उठाये होंगे, परन्तु बात इससे उलटी ही निकली। वचारशील लेखक ने परोपकारी में दिये गये मेरे वचारों व तर्कों को उजागर करते हुए जोरदार लेख दिया। उस आर्य भाई को व सपादक जी को धन्यवाद!

उस लेख को पढ़ने से पूर्व ही मेरे मन में 'तड़प-झड़प' में पं. लेखराम जी का पुनर्जन्म वषयक मौ लक चन्तन व प्रबल युक्तियाँ देने का निश्चय था। हमारे मान्य आचार्य सत्यजित् जी तथा आदरणीय आचार्य सोमदेव जी पाठकों का शंका-समाधान करते हुए बड़े सुन्दर प्रमाण व तर्क देते रहते हैं। उनका परिश्रम वन्दनीय है। उनसे भी वनती की है क हमें अपने पुराने दार्शनिक वद्वानों यथा- पं. लेखराम जी, पं. गुरुदत्त जी, पूज्य दर्शनानन्द जी, श्रद्धेय देहलवी जी के तर्क उनका नामोल्लेख करके देने चाहिये।

पं. लेखराम जी का पुनर्जन्म वषयक ग्रन्थ पढ़कर अनेक सुपठित हिन्दू युवक, जो ईसाइयों, मुसलमानों व ब्राहम समाजियों के घातक प्रचार से भ्र मत तथा धर्मच्युत हो रहे थे, निष्ठावान् आर्य बन गये। कस- कसका नाम यहाँ दूँ? डी.ए.वी. के पूर्व प्राचार्य बशी रामरत्न, महात्मा

वष्णुदास जी लताला वाले (स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को आर्य बनाने वाले) ला. देवीचन्द जी एम. ए. इत्यादि सब पं. लेखराम जी को पढ़-सुनकर आर्य समाज से जुड़े।

1. **1**. पं. लेखराम जी का तर्क है क पुराने भवन ढहते जाते हैं, नये-नये भवनों का निर्माण होता रहता है। सब नये-नये भवन इसी धरती पर वद्यमान पहले के ईंट, पत्थर, मट्टी व गारे से ही बनाये जाते हैं। नई सामग्री कहीं से नहीं आती।
2. **2**. सब नदियाँ जो बह रही हैं, उनका जल कहाँ से आता है? सब जानते हैं, यह वही जल है, जो पहले सागर में गया था। वर्षा का जल, नदियों का जल कहीं परलोक से, अभाव से तो आता नहीं।
3. **3**. जितने पेड़, पौधे, वृक्ष उग रहे हैं, फल-फूल रहे हैं, ये सब धरती पर वद्यमान पहले की सामग्री से ही उपजते व फूलते-फलते हैं। अभाव से भाव यहाँ भी नहीं होता और न ही परलोक से इनके बीज आदि आते हैं।
4. **4**. सब प्रा णयों के शरीर धरती पर वद्यमान सामग्री से (अन्न, जल आदि) से नि र्मत व वक सत होते हैं। कहीं से नई-नई सामग्री नहीं आती। जब लाखों-करोड़ों शरीर उसी सामग्री से बनते हैं, जिससे पहले के शरीर बनते रहे हैं, इससे स्पष्ट है क इस धरा पर नये-नये जीव भी उत्पन्न नहीं होते। जीवात्मायें भी वही हैं, जो इससे पूर्व कसी शरीर का परित्याग कर चुकी हैं। जैसे प्रकृति अनादि है, नई पैदा नहीं होती है, इसी प्रकार परमात्मा नये-नये जीव गढ़-गढ़ कर इस धरती पर नहीं भेजता। जैसे प्रकृति नई-नई नहीं पैदा होती, वैसे ही जीवात्मा भी वही-वही आते-जाते रहते हैं।

   Logic’s on rebirth by Pandit lekrham Ji

ईश्वर का साक्षात्कार समा ध अवस्था में ही सम्भव

FEBRUARY 14, 2016 1 COMMENT

ओ३म्

‘ईश्वर का साक्षात्कार समा ध अवस्था में ही सम्भव’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

संसार के अ धकांश मत-सम्प्रदाय और लोग ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं क इस संसार को उसी ने बनाया है। यह बात अलग है क सृष्टि रचना के बारे में वेद मत के आचार्यों व अनुयायियों के अतिरिक्त अन्य मत के आचार्यों व अनुयायियों को वैसा यथार्थ ज्ञान नहीं था व है जैसा क तर्क व युक्ति संगत यथार्थ मत वेदों व वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है क यदि ईश्वर है तो वह अन्य पदार्थों की भांति हमें आंखों से दिखाई क्यों नहीं देता? इसके अनेक कारण हैं। यह प्रश्न वैदिक मत के अनुयायियों से उत्तर व समाधान की अ धक अपेक्षा रखता है। जो मत व सम्प्रदाय ईश्वर को एकदेशी अर्थात् एक स्थान पर रहने वाला मानते हैं, वह कह सकते हैं क ईश्वर यहां पृ थवी पर है ही नहीं तो उसके दिखने का प्रश्न ही नहीं होता। वैदिक धर्म ईश्वर को सर्वव्यापक मानता है। अतः ईश्वर हमारे अन्दर व बाहर दोनों स्थानों पर हमारे समीपस्थ है। अब यदि ईश्वर हमारे समीपस्थ है तो वह हमें अवश्य दिखना चाहिये। ईश्वर वैदिक ध र्मयों व अन्यों को दिखाई

नहीं देता तो इसका एक कारण तो उसका सर्वव्यापक न होना वा एकदेशी होना ही ठीक प्रतीत होता है। यह बात कहने व सुनने में उ चत लगती है परन्तु यह सत्य नहीं है। ईश्वर वस्तुतः सर्वव्यापक है जो क हमारे सम्मुख, पीछे, दायें, बायें, ऊपर व नीचे आदि सभी दशों दिशाओं में होने पर भी इस कारण दिखाई नहीं देता क वह सर्वातिसूक्ष्म है। हम वायु के कणों वा परमाणुओं को क्यों नहीं देख पाते? इसका कारण होता है क वह परमाणु इतने सूक्ष्म हैं क वह आंखों से दिखाई नहीं देते। सभी मनुष्यों के शरीर में एक चेतन जीवात्मा होता है जो हमें अपनी आंखों से दूसरों के शरीर से पृथक दिखाई नहीं देता परन्तु शरीर में प्राणों व अन्य क्रयाओं से ही उसका साक्षात् व प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। ईश्वर जीवात्मा व वायु के परमाणु से भी कहीं अ धक सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देता। यह तर्क व युक्तिसंगत स्वीकार करने योग्य प्रमाण है। इसका दूसरा कारण है क अति दूर व अति समीपस्थ वस्तुयें भी दिखाई नहीं देती हैं। हम अपने से 1 कमी. दूर की वस्तु भी नहीं देख पाते। इसी प्रकार हम आंखों में पड़े तिनके को भी अपनी ही आंख से नहीं देख पाते जिसका कारण होता क आंखों का तिनका आंख के अति निकटस्थ है। ईश्वर दूरतम भी है और समीपतम भी है। इस कारण भी वह दिखाई नहीं देता। अन्य कारणों में से एक प्रमुख कारण ईश्वर का अभौतिक होना भी है। हम आंखों से केवल भौतिक पदार्थ जो एक सीमा से आकार में अ धक बड़े होते है, उन्हें ही देख पाते हैं। उससे छोटे पदार्थों को देखने के लए हमें माइक्रोस्कोप की सहायता की आवश्यकता होती है। ईश्वर इन सूक्ष्मतम भौतिक पदार्थों से भी अत्यन्त सूक्ष्म अभौतिक पदार्थ होने के कारण आंखों से दिखाई नहीं देता। अतः ईश्वर का आंखों से दिखाई न देना आंखों की सी मत दृष्य शक्ति के कारण है। इससे यह सद्ध नहीं होता क ईश्वर नहीं है।

हम पुस्तकें पढ़ते हैं तो बहुत सी बातों का ज्ञान हमें हो जाता है जिन्हें हम पहले से जानते नहीं हैं। हमने सन्ध्या व हवन के मन्त्र व उसकी व ध को पुस्तक पढ़कर ही जाना व समझा है। उपदेशों को सुनकर भी हमें नाना वषयों का ज्ञान होता है। ईश्वर वषयक ज्ञान भी हमें वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन करने वा वेदानुकूल अन्य पुस्तकें मुख्यतः सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, आर्या भ वनय तथा मह र्ष दयानन्द का वेदभाष्य पढ़कर हो जाता है। वैदिक वद्वानों के उपदेश भी ईश्वर का ज्ञान कराने में सहायक होते हैं। ग्रन्थों को पढ़कर व उपदेशों की बातों पर वचार व चन्तन कर हम ईश्वर के सत्य स्वरुप से परि चत होते हैं व हुए हैं। हमें यह ज्ञान व अनुभव हुआ है क ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी है। इस कारण वह हमारी आत्मा में निहित व वद्यमान है। यदि हम उसका ध्यान व चन्तन करते हैं वा उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हैं अथवा यज्ञ अग्निहोत्र व अन्य शुभ-अशुभ कर्मों को करते हैं, तो संसार में होने वाले प्रत्येक कार्य का साक्षी ईश्वर हमारी उस क्रया को अपनी सर्वव्यापकता व सर्वान्तर्या मत्व के गुण से जान लेता है, यह ज्ञान, प्रतीती व अनुभूति हमें ईश्वर के वषय में होती है। यह जानकर, अपने आप से तर्क- वतर्क करने व इस ज्ञान को स्थिर व दृण कर लेने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं क ईश्वर निराकार है अतः उसकी पूजा, उपासना एवं सत्कार आदि कार्य केवल उस ईश्वर का अपनी जीवात्मा में ध्यान, चन्तन, स्तुति, प्रार्थना व उपासना आदि के द्वारा ही हो सकता है। अन्य कार्य यथा मूर्तिपूजा, कुछ ग्रन्थों का पाठ व नाना प्रकार के आसन आदि क्रयायें करके हम उसे प्राप्त व प्रसन्न नहीं कर सकते। ईश्वर के गुणों व स्वरूप का ध्यान तथा प्रार्थना आदि करने से हमारे अन्तःकरण के दोष व मल दूर होने आरम्भ हो जाते हैं। यह कार्य मुख्यतः 'ओ३म् वश्वानि देव स वतर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रन्तन्न आसुव।।'

द्वारा भली प्रकार कया जा सकता है जिसमें ईश्वर से जीवात्मा के सभी दुर्गुण, दुव्र्यसन व दुःखों को दूर करने तथा जीवात्मा के लए जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव व पदार्थ हैं, वह प्रदान करने की प्रार्थना की जाती है। जैसे-जैसे व जितने समय तक हम ईश्वर की उपासना आदि कार्यों को करते हैं, उसे व धपूर्वक करने से उसके प्रभाव से हमारा अन्तःकरण शुद्ध, प वत्र व निर्मल हो जाता है और उसमें ईश्वर का ज्ञान व प्रकाश का आभास होने लगता है। वेदों व ऋ षयों के वचनों के सत्य होने के कारण ईश्वरोपासना के हमारे साधनों व उपायों में दृणता व स्थिरता उत्पन्न होती है व उसके सत्य होने से निभ्र्रान्त अनुभव होता है। यह उपासना वा योगाभ्यास नियत समय पर करते रहने से समा ध की अवस्था उत्पन्न होकर ईश्वर साक्षात्कार व ईश्वर का प्रत्यक्ष कया जा सकता है। इसके लये योगदर्शन के अध्ययन के साथ निष्कपट व निर्लोभी अनुभवी योग गुरू की शरण ली जा सकती है। सच्चा व सद्ध योगी ही गुरु हो सकता है। ऐसा व्यक्ति मलना कठिन अवश्य है।

ईश्वर साक्षात्कार को वस्तार से जानने व समझने के लए मह ष पतंज ल र चत योगदर्शन का अध्ययन आवश्यक है। इसके लए महात्मा नारायण स्वामी व दर्शनाचार्य पं. उदयवीर शास्त्री जी के योगदर्शन पर हिन्दी में भाष्य उपलब्ध हैं, उन्हें देखा जा सकता है। इसके साथ ही आर्यजगत के वख्यात संन्यासी व दर्शनों के वद्वान स्वामी सत्यपति जी के प्रवचनों पर तीन खण्डों में आचार्य श्री सुमेरू प्रसाद, सम्प्रति स्वामी ब्रह्म वदानन्द, द्वारा सम्पादित 'वृहती ब्रह्म मेधा' ग्रन्थ भी उपयोगी है। मह ष दयानन्द सरस्वती ईश्वर का साक्षात्कार कये हुए सद्ध योगी थे। ऋग्वेदादिभाष्यभू मका के उपासना प्रकरण में उन्होंने ईश्वर साक्षात्कार का वर्णन करते हुए लखा है क 'जिस समय इन (योग, ध्यान व उपासना के) सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उस (ईश्वर) में प्रवेश कया चाहें, उस समय इस रीति से करें क कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर से ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार का वेश्म अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रका शत स्थान के बीच में खोज करने (ध्यान, चन्तन, धारणा, स्तुति, प्रार्थना आदि करने) से मल जाता है। दूसरा उसके मलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।' यहां आनन्दस्वरूप परमेश्वर मल जाता है से मह ष दयानन्द का अ भप्राय समा ध अवस्था में योगी व उपासक को ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है, से ही है।

आजकल ईश्वर वा सृष्टिकर्त्ता को प्राप्त करने के लए भन्न- भन्न मतों में जो कर्मकाण्ड व उपासना पद्धतियां हैं, वह योगदर्शन की वैदिक उपासना प़द्धति के अनुरूप न होने के कारण उनसे ईश्वर की प्राप्ति व साक्षात्कार होने की संभावना नहीं है। यम व नियमों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्र णधान ये युक्त जिस आचरण की अपेक्षा योगी से की गई है, वह भी अन्य मत-मतान्तरों के अनुयायी व आचार्य पूरी नहीं करते। अतः वह ईश्वर साक्षात्कार व ईश्वर का प्रत्यक्ष होने का अनुभव प्राप्त नहीं कर सकते। यदि कसी को ईश्वर का साक्षात्कार करना है और इससे जीवन का लक्ष्य 'ईश्वर साक्षात्कार सहित मोक्ष' प्राप्त करना है तो वेद व वैदिक साहित्य के ज्ञान सहित योग व वैदिक उपासना पद्धति को अपनाना ही होगा। वैदिक उपासना पद्धति ही ईश्वर साक्षात्कार की एकमात्र

वह प्रद्धति है जो ईश्वर का साक्षात्कार कराने के साथ मनुष्य जीवन के लक्ष्य ''मोक्ष'' को प्राप्त कराती है। इन्हीं शब्दों के साथ इस लेख को वराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

पृ थवी पर श्रेष्ठ धर्म वैदिक धर्म और श्रेष्ठ संगठन आर्यसमाज

FEBRUARY 14, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

'पृ थवी पर श्रेष्ठ धर्म वैदिक धर्म और श्रेष्ठ संगठन आर्यसमाज'

–मनमोहन कुमार आर्य**,** देहरादून।

ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति का अस्तित्व सत्य है। कसी भी वषय में सत्य केवल एक ही होता है। जिस प्रकार दो व दो को जोड़ने से चार होता है, कुछ कम व अ धक नहीं हो सकता इसी प्रकार ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि, धर्म, समाज, मानवीय आचार व वचार आदि सद्धान्त व मान्यतायें भी भन्न- भन्न न होकर सर्वत्र एक समान ही होनी चाहिये। यदि यह पूछा जाये क वेद पर आधारित वैदिक धर्म और आर्यसमाज संगठन की प्रमुख वशेषता क्या है तो इसका एक वाक्य में उत्तर है क यह धर्म व संगठन सत्य पर आधारित है। दूसरा उत्तर यह है क वैदिक धर्म व आर्य समाज का संगठन प्राणीमात्र के हित व कल्याण के लए हैं। यह कभी कसी के अकल्याण की बात न सोचता है और न ही करता है। एक अन्य उत्तर यह भी हो सकता है क यह दोनों ज्ञान पर आधारित है तथा अन्ध वश्वास**,** पाखण्ड**,** कुरीति**,** रूढ़ि**,** मथ्या परम्परा आदि से पूर्णतः रहित हैं। आर्यसमाज की मान्यता है क वेद मन्त्रों के अर्थ वही स्वीकार्य होंगे जो सत्य हों व मानव सहित प्राणीमात्र के हित के लए हों। यदि कहीं कोई भ्रान्ति हो तो उसे इस कसौटी पर कस कर संशो धत कर लेना चाहिये। अन्य मतों, सम्प्रदायों वा धर्मों में सत्य, तर्क व युक्ति को वैदिक धर्म की भांति महत्व नहीं दिया जाता। तर्क व युक्ति से सद्ध बातें ही सत्य हुआ करती हैं। इसी से ज्ञान की उन्नति व अज्ञान की निवृ त्त होती है और यही मनुष्य के सुख व उन्नति का मुख्य कारण व आधार है।

वैदिक धर्म का आरम्भ कब, कसने व क्यों कया? इस प्रश्न पर वचार करना भी समीचीन है। इसका उत्तर है वैदिक धर्म का आरम्भ चार वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के ज्ञान से सृष्टि के आरम्भ में हमारे पहली पीढ़ी के ऋ षयों ने कया। यह सभी ऋ ष ईश्वर,

जीवात्मा व प्रकृति का साक्षात व यथार्थ ज्ञान रखने के साथ-साथ वेदों के पूर्ण वेत्ता व वद्वान थे। वेदों में जो मन्त्र व उनमें अलौ कक ज्ञान है वह कसी मनुष्य व ऋ ष द्वारा र चत, नि र्मत व उत्पन्न नहीं है अ पतु यह वेद, इसके मन्त्र व ज्ञान इस सृष्टि के रचयिता व संचालक ईश्वर का निज ज्ञान है जो वह सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न आदि मनुष्यों, स्त्री व पुरूषों को, उनके कल्याणार्थ देता है। चार वेदों का यह ज्ञान सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ ईश्वर ने सृष्टि के आदि में चार ऋ षयों अग्नि, वायु, आदित्य व अं गरा की आत्माओं में प्रेरणा द्वारा स्था पत कया था। ईश्वर ने ही जीवात्मा को मनुष्य शरीर दिये, इन शरीरों में व्यवहार के लए पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां व बुद् ध आदि प्रदान करने सहित सृष्टि के आरम्भ में वेदमन्त्रों का उच्चारण, परस्पर संवाद एवं व्यवहार करना भी सखाया है। तर्क व ववेचन से यह सद्ध है क यदि ईश्वर इस सृष्टि के आदि मनुष्यों को वेदों का ज्ञान न देता, जिससे क वह परस्पर संवाद आदि कर सके और सत्य व असत्य में भेद कर सकें, तो उनका जीवन व्यतीत करना संभव नहीं था। मान लीजिए हमें बोलना नहीं आता और हमारे आसपास के अन्य मनुष्यों को भी नहीं आता। हममें ज्ञान भी नहीं है। ऐसी स्थिति में हम क्या कोई व्यवहार कर सकते हैं? इसका उत्तर है क हम परस्पर कसी प्रकार का कोई व्यवहार नहीं कर सकते। व्यवहार के लए कसी न कसी भाषा सहित उठने, बैठने, चलने, फरने, सोचने, समझने, खाद्य-अखाद्य पदार्थों का ज्ञान, भोजन की व ध, मल-मूत्र वसर्जन आदि सभी आवश्यक क्रयाओं का ज्ञान आवश्यक है। अतः सृष्टि की रचना के बाद अमैथुनी सृष्टि में मनुष्यों की उत्प त्त के साथ ही उनको ईश्वर से ज्ञान मलना तर्क संगत है। यही ज्ञान उसे परमात्मा से मलता है और इसी का नाम वेद है।

परमात्मा प्रदत्त इसी ज्ञान से प्रथम चार ऋ षयों से अध्ययन, अध्यापन, शक्षा, प्रचार, प्रवचन व उपदेश की परम्परा आरम्भ हुई और सभी लोग ज्ञान सम्पन्न हुए। यह वेद ज्ञान आज भी अपने मूल स्वरूप में सुर क्षत है। महाभारत के बाद यह ज्ञान लुप्त हो गया था जिसके कारण देश व वश्व में अज्ञान का घोर अन्धकार फैला और अज्ञान पर आधारित अनेक मत व मतान्तर उत्पन्न हुए। मह र्ष दयानन्द, जो क वेदों के उच्च कोटि के मर्मज्ञ वद्वान थे, उन्होंने चारों वेदों की परीक्षा कर घोषणा की क वेद सब सत्य वद्याओं की पुस्तक हैं। वेद का पढ़ना व पढ़ाना तथा सुनना व सुनाना सभी मनुष्यों वा आर्यों का परम धर्म है। अपनी इस घोषणा को उन्होंने सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभू मका आदि अनेक ग्रन्थों को लखकर पुष्ट कया। उन्होंने वेदों के सभी मन्त्रों का भाष्य करना आरम्भ कया था। ऋग्वेद आं शक व यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य उन्होंने कया है। आकस्मिक मृत्यु के कारण वह वेदों के भाष्य को पूर्ण नहीं कर सके। उन्होंने जितने ग्रन्थ लखे और उनकी जो शक्षायें, उपदेश, पत्र, पुस्तकें, शास्त्रार्थों के ववरण आदि उपलब्ध हैं, उनसे वैदिक धर्म का वस्तृत सत्य स्वरूप प्रकट होता है। इस पर वचार करने पर यह पूर्व व पश्चात प्रच लत सभी धर्मों में श्रेष्ठ सद्ध होता है। अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने प्रमुख सभी मतों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत कया है जो वेद को वश्व के सभी मनुष्यों के धर्म की उनकी मान्यता को पुष्ट करता है।

वेद धर्म की पहली वशेषता तो यह है क वेद की सभी मान्यताओं तर्क व युक्ति की कसौटी पर सत्य सद्ध होती हैं। वेद, तर्क व युक्तियों से डरता नहीं अ पतु उनका स्वागत करता है। वेदों की सभी मान्यतायें ज्ञान व वज्ञान की कसौटी पर भी सत्य सद्ध हैं। ईश्वर, जीव व प्रकृति का जो स्वरूप वेदों में उपलब्घ होता है वह अपूर्व व आज भी सर्वोत्तम हैं एवं ववेक पर आधारित है। अन्य मतों में यह बात नहीं है। वेदाधारित ईश्वरोपासना वा पंचमहायज्ञ व ध में भी मुनष्यों के सर्वोत्तम कर्तव्यों का वधान कया गया है जिससे मनुष्य की व्यक्तिगत व सामाजिक उन्नति होने के साथ सभी प्रा णयों का कल्याण होता है। कर्म-फल सद्धान्त भी वेद प्रदत्त ज्ञान के अन्र्तगत ही सत्य सद्धान्त है जिसके अनुसार मनुष्य जो शुभ व अशुभ कर्म करता है उसका फल उसे जन्म व जन्मान्तरों में अवश्य ही भोगना होता है। अशुभ कर्मों का त्याग व शुभ कर्मों को करके तथा साथ हि वेद वहित ईश्वरोपासना, यज्ञादि कार्य, मातृ- पतृ-आचार्यों की सेवा, परोपकार व वद्यायुक्त कर्मों को करने से ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त होता है। यह वैदिक धर्म की वशेषता व युक्तिसंगत सद्धान्त है।

आर्यसमाज वेदों के सत्य ज्ञान को संसार में फैलाने के लए स्था पत कया गया एक संगठन है जिसकी स्थापना मह र्ष दयानन्द सरस्वती ने 10 अप्रैल सन् 1875 को मुम्बई में की थी। इस संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य मह र्ष दयानन्द के समय में वैदिक धर्म का संगठित रूप से प्रचार करना था और उनके बाद भी ‘कृण्वन्तो वश्वमार्यम्’ (संसार को श्रेष्ठ बनाओ) के लक्ष्य की प्राप्ति तक संसार में वेदों का प्रचार अबा धत रूप से हो, यह मुख्य प्रयोजन था। मह र्ष दयानन्द ने पृ थवी के सभी मनुष्यों के कल्याणार्थ वेदों की सार्वभौ मक व सार्वजनीन मान्यताओं व सद्धान्तों के प्रचार के लए अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, संस्कार व ध, आर्या भ वनय, ऋग्वेद आं शक व यजुर्वेद सम्पूर्ण वेदभाष्य आदि ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के अनेक भाषाओं में अनुवाद भी उपलब्ध हैं। ग्रन्थ लेखन के इस स्थाई कार्य के अतिरिक्त मह र्ष दयानन्द ने देश के प्रमुख स्थानों पर जाकर वैदिक वचारधारा का प्रचार कया और सभी मतों को अपनी-अपनी धर्म व समाज वषयक मान्यताओं पर शंकाओं का निवारण करने का अवसर दिया। प्रतिपक्षी मतों के आचार्यों को उन्होंने शंका समाधान का अवसर देने के साथ शास्त्रार्थ करने की चुनौती भी दी और अनेक प्रमुख मतों के वद्वानों से शास्त्रार्थ कर वैदिक मत की श्रेष्ठता, ज्येष्ठता, ज्ञानसम्पन्नता व सत्यता को प्रतिपादित व सम्पादित कया। इसके साथ ही मह र्ष दयानन्द ने उदयपुर, शाहपुर, जोधपुर आदि अनेक देशी रियासतों के शासकों को भी अपना शष्य व अनुगामी बनाया और वहां वैदिक मत की स्थापना में आं शक सफलतायें प्राप्त कीं। अनेक पादरी व मुस्लिम वद्वान भी उनकी मत्र मण्डली में थे जो उनकी सभी मतों के अनुयायियों के प्रति सदाशयता के उदाहरण हैं। स्वामी दयानन्द जी ने अनेक अवसरों पर हिन्दी के प्रचार व प्रसार सहित गोरक्षा आदि आन्दोलनों का सूत्रपात भी कया जब क ऐसे कार्य व उदाहरण पूर्व इतिहास में कहीं उपलब्ध नहीं होते। इस प्रकार से प्रचार करते हुए उन्होंने वेदों के ज्ञान को फैलाकर वश्व के मनुष्यों को प्राणी मात्र के लए कल्याणकारी वैदिक धर्म की स्थापना व वश्व समुदाय में इसकी स्वीकृति में यथाशक्ति योगदान कया।

ईश्वर इस सृष्टि के सभी मनुष्यों व पूर्वजों का आदि गुरू है। इस सृष्टि में अब तक उत्पन्न हुए सभी आचार्य, वद्वान व ऋ ष-मुनि ईश्वर के शष्य सद्ध होते हैं जिन्होंने अपने-अपने काल में ईश्वर द्वारा आदि ऋ षयों को प्रदत्त वेद ज्ञान को ही जाना, समझा व प्रचारित कया। जिस प्रकार सृष्टि की आदि में ईश्वर अग्नि, वायु, आदित्य व अं गरा को चार वेदों का उपदेश देने से उनका गुरू व चारों ऋ ष ईश्वर के शष्य सद्ध होते हैं, उसी प्रकार से चार ऋ षयों से आरम्भ आचार्य- शष्य परम्परा के अनुसार उनके बाद के सभी आचार्य उसी ईश्वरीय ज्ञान के प्रचारक व प्रसारक सद्ध होते हैं। सच्चा आचार्य माता- पता के समान होता है। इस प्रकार से संसार में जितने भी सच्चे उपदेशक, ज्ञानी व ऋ ष आदि हुए हैं वह-वह ज्ञानदाता व ज्ञानप्रसारक होने से अपने शष्यों के मातृ- पतृ तुल्य ही रहे हैं। उसी परम्परा व ज्ञान प्रवाह का परिणाम ही आज का अन्यान्य वषयक ज्ञान- वज्ञान है। यदि उन्होंने वैदिक ज्ञान को सुर क्षत रखते हुए उपदेश आदि से उसका देश-देशान्तर में प्रचार न कया होता तो आज का मानव ज्ञान- वज्ञान सम्पन्न न हो पाता। संसार के सभी मनुष्यों का कर्तव्य है क वह ज्ञान वज्ञान का क्षेत्र हो या मत-मतान्तरों का, उनकी सभी मान्यताओं वा सद्धान्तों की परीक्षा कर उनमें वद्यमान सत्य को ही अपनायें और मथ्या का त्याग करें। मत-मतान्तरों में निहित अज्ञान व भ्रम की बातें क जिससे मनुष्यों में समरसता में बाधा पहुंचती है, उनका त्याग करें। सत्य का ग्रहण व असत्य का त्याग ही वैदिक धर्म व आर्यसमाज का मुख्य प्रयोजन है। आर्यसमाज सत्य का पोषक व प्रचारक है और वश्व के सभी मनुष्यों में वेदों के सत्य ज्ञान का प्रचार कर उनका कल्याण करना चाहता है। वैदिक ज्ञान ही एकमात्र मनुष्य के अभ्युदय व निःश्रेयस क कारण है, यह नि र्ववाद सत्य है। आर्यसमाज के संगठन में कुछ दुर्बलतायें हो सकती हैं परन्तु वश्व के कल्याण की दृष्टि से आर्यसमाज की अवधारणा व उसका प्रभावशाली सशक्त रूप ही मानवता के हित में है। वेद और आर्यसमाज वश्व में मानवता को वद्यमान रखने की गारण्टी है। इसके साथ वश्व के सभी मनुष्यों को अभ्युदय व निःश्रेयस के मार्ग पर अग्रसर करने का एकमात्र संगठन हैं। इसके महत्व को जानकर सभी मनुष्यों को इसे सहयोग देना चाहिये और अपनी सर्वांगीण उन्नति करनी चाहिये।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

पाप दूर करने का वैदिक साधन अघमर्षण के तीन मन्त्र व उनके अर्थ

FEBRUARY 14, 2016 2 COMMENTS

ओ३म्

‘पाप दूर करने का वैदिक साधन अघमर्षण के तीन मन्त्र व उनके अर्थ’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मनुष्य जाग्रत अवस्था में कोई न कोई कर्म अवश्य करता है। यह कर्म दो प्रकार के होते हैं जिन्हें शुभ व अशुभ अथवा पुण्य व पाप कह सकते हैं। मनुष्य का जन्म ही पूर्वजन्मों के शुभ व अशुभ कर्मों के फलों के भोग के लए हुआ है। शुभ व सत् कर्मों का फल सुख व वपरीत कर्मों का फल दुःख होता है। संसार में मनुष्य अन्य प्रा णयों से इस अर्थ में भन्न है क उसके पास निश्चयात्मक बुद् ध होती है जिससे निर्णय करके वह कसी कर्म को करता है। मनुष्येतर अन्य प्रा णयों में बुद् ध होती तो है परन्तु वह अपने स्वभा वक ज्ञान के अनुसार ही कार्य करती है। वह सत्य व असत्य का निर्णय नहीं कर सकती। यदि वह वचार व चन्तन कर सकते तो सम्भव था क वह मनुष्य की तुलना में अ धक अच्छे व श्रेष्ठ कर्म करते। वर्तमान में भी गाय, बैल, घोड़ा, भैंस, भेड़, बकरी आदि पशु मनुष्यों से कहीं अ धक मनुष्यों का उपकार करते हुए दिखते हैं। मनुष्य तो इन पशुओं का उपयोग व दुरुपयोग ही करता है। मनुष्य योनी उभय-योनी है। इसमें मनुष्य पूर्व व वर्तमान जन्मों के कर्म भोगने के साथ नये शुभ-अशुभ कर्म भी करता है। अशुभ कर्मों का परिणाम दुःख होता है जिससे मनुष्य बच सकता है यदि दुःखों का कारण अशुभ कर्मो वा पाप को हटा दे अर्थात् अशुभ कर्म न करे। अतः मनुष्य को शुभ व अशुभ कर्मों का ज्ञान होना चाहिये और भ वष्य में दुःखों से बचने के लए उसे केवल शुभ कर्म ही करने चाहिये। बुरे कर्मों को ववेक पूर्वक रोक देना चाहिये। इन पाप कर्मों से बचने के लए मह ष दयानन्द ने अपनी ‘वैदिक सन्ध्या पद्धति’ में ‘अघमर्षण मन्त्र’ को लखकर कर व इनकी व्याख्या करके शुभ व अशुभ कर्मों के परिणाम व फलों को जानकर पाप कर्मों के त्याग करने का वधान कया है जिससे हमारा भ वष्य सुर क्षत व सुखी हो।

जिन अघमर्षण मन्त्रों की चर्चा हमने की है वह वैदिक सन्ध्या पद्धति का एक भाग है। मह ष दयानन्द ने ईश्वर के सम्यक् ध्यान के लए की जाने वाली वैदिक सन्ध्या में गायत्री मन्त्र से शखा बन्धन, आचमन मन्त्र, इन्द्रियस्पर्शमन्त्र, मार्जनमन्त्र, प्राणायाममन्त्र, अघमर्षणमन्त्र, मनसापरिक्रमामन्त्र, उपस्थानमन्त्र, समर्पणमन्त्र और समाप्ती पर नमस्कारमन्त्र के मन्त्रों का पाठ करने का वधान कया है। मह ष दयानन्द के यह वधान बहुत ही युक्तिसंगत हैं और साधक व उपासक को सन्ध्या के फल प्राप्त कराने में पूर्णतः समर्थ हैं। सन्ध्या करने का प्रयोजन है क ईश्वर से हमें मनोवांछित आनन्द अर्थात ऐहिक सुख-समृद् ध, हम पर सर्वदा सुखों की वर्षा और पूर्णानन्द की प्राप्ति वा मोक्ष के आनन्द की प्राप्ति हो। इन लाभों के अतिरिक्त सन्ध्या में शरीर की रक्षा व इसको स्वस्थ रखने आदि की अनेक प्रार्थनायें निहित हैं। अघमर्षण के सन्ध्या में सम्मि लत तीन मन्त्र हैं-‘ओ३म्। ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः।।1।। समुद्रादर्णवाद ध संवत्सरोऽअजायत। अहोरात्रा ण वदधद् वश्वस्य मषतो वशी।।2।। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृ थवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।3।।’ अपने जीवन से पापों को दूर करने के लए इन मन्त्रों का पाठ करने के बाद इनके यथार्थ अर्थों पर वचार करना व उससे मलने वाली शक्षा का पालन करना आवश्यक है। पहले मन्त्र का अर्थ है क सब जगत का धारण और पोषण करनेवाला और सबको वश में करनेवाला परमेश्वर, जैसा क उसके सर्वज्ञ

वज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी और जैसे जीवों के पुण्य-पाप थे, उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्रा णयों के देह बनाये हैं। जैसे पूर्व कल्प में सूर्य-चन्द्रलोक रचे थे, वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था, वैसा ही इस कल्प में रचा है तथा जैसी भू म प्रत्यक्ष दीखती है, जैसा पृ थवी और सूर्यलोक के बीच में पोलापन है, जितने आकाश के बीच में लोक हैं, उनको ईश्वर ने रचा है। जैसे अनादिकाल से लोक-लोकान्तर को जगदीश्वर बनाया करता है, वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा, क्यों क ईश्वर का ज्ञान वपरीत कभी नहीं होता, कन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है, उसमें वृद् ध, क्षय और उलटापन कभी नहीं होता। इसी कारण से 'यथापूर्वम–कल्पयत्' इस पद का ग्रहण कया है। इस मन्त्र व मन्त्रार्थ में सृष्टि रचना, उसका प्रयोजन, जीवों के पूर्व कर्मों के अनुसार मनुष्यादि देह बनाने पर प्रकाश डाला है। इससे यह भी ज्ञात होता है क इस सृष्टि का स्वामी ईश्वर है और जीवों के कर्मों के फल, दण्ड-दुःख व सुख, देने के लए उसने मनुष्यादि प्रा णयों के देह बनाये है।

अघमर्षण के दूसरे मन्त्र का अर्थ है क उसी ईश्वर ने सहजस्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका, पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही रचे हैं। इसमें कोई ऐसी शंका करे क ईश्वर ने कस वस्तु से जगत् को रचा है? उसका उत्तर यह है क ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रका शत होता और सब जगत के बनाने की सामग्री ईश्वर के अधीन है। उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब वद्या के खजाने वेदशास्त्र को प्रका शत कया है जैसा क पूर्व सृष्टि में प्रका शत था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा। जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व, रज और तमोगुण से युक्त है, जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है, सो भी कार्यरूप होके पूर्वकल्प के समान उत्पन्न हुआ है। उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे एक हजार चुतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है, सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है। इसमें ऋग्वेद का प्रमाण है क–''जब जब वद्यमान सृष्टि होती है, उसके पूर्व सब आकाश अन्धकाररूप रहता है, उसी का नाम महारात्रि है।" तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृ थवी और मेघ मण्डल=अन्तरिक्ष में जो महासमुद्र है, सो पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुआ है। तीसरे मन्त्र में ईश्वर ने मनुष्यों को शक्षा देते हुए कहा है क उसी समुद्र की उत्प त्त के पश्चात् संवत्सर, अर्थात् क्षण, मुहुर्त, प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है। वेद से लेके पृ थवीपर्यन्त जो यह जगत् है, सो सब ईश्वर के नित्य सामथ्र्य से ही प्रका शत हुआ है और ईश्वर सबको उत्पन्न करके, सबमें व्यापक होके अन्तर्या मरूप से सबके पाप-पुण्यों को देखता हुआ, पक्षपात छोड़के सत्यन्याय से सबको यथावत् फल दे रहा है।

इन अर्थों को प्रस्तुत कर मह र्ष दयानन्द कहते हैं क क ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उ चत है क मन, वचन और कर्म से पापकर्मों को कभी न करें। इसी का नाम अघमर्षण है अर्थात् ईश्वर सबके अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है, इससे पापकर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ देवें। मह र्ष दयानन्द के इस सत्परामर्थ और प्रातः व सायं दोनों समय सन्ध्या करते समय अघमर्षण मन्त्रों के अर्थों पर वचार करते हुए

मनुष्य जान लेता है क वह जैसे पाप व पुण्य कर्म करेगा, ईश्वर की व्यवस्था से उसको उन कर्मों का सुख व दुःख रूपी फल वा दण्ड आदि यथायोग्य अवश्य मलेगा। इससे वह पाप व अशुभ कर्मों को छोड़ देता है। अतः सन्ध्या के यह तीन मन्त्र एवं इनके अर्थ पर वचार करने से मनुष्य पापों को करना छोड़ देता है। इस पर भी यदि कोई पाप करता रहता है तो उसे बुद्‌ धहीन व म लन मन व आत्मा वाला मनुष्य ही कह सकते हैं जो अन्धकार में पड़कर दुःख का भागी होता है। यदि मनुष्य व संसार को पापों से बचाना है तो उसे वेदों की शरण में लाकर वेदों का अध्ययन कराकर अटल कर्म-फल सद्धान्त को जनाकर अशुभ व पाप कर्मों को करने से छुड़ाना ही होगा। पाप कर्मों को छोड़ने व सन्ध्यादि करने से मनुष्य व जीवात्मा को अनेकानेक लाभ होंगे जिसमें इहलौ कक उन्नति सहित परजन्मों में उन्नति होने के साथ मोक्ष की सद्‌ ध भी हो सकती है। हम आशा करते हैं पाठक पाप त्याग के लए इन मन्त्रों का प्रातःसायं पाठ करने के साथ इनके अर्थों पर भी गम्भीरता से वचार करेंगे और वैदिक साहित्य का अध्ययन कर अपने-अपने जीवन को वेदानुकूल बनायेंगे।

मनुष्य बुरे कर्मों के कठोर दण्ड के भय से ही बुराईयों व पापों से दूर रहता है। देश व समाज में जो लोग अपराध नहीं करते उनका एक कारण यह है क वह ईश्वर व सरकारी दण्ड व्यवस्था दोनों से डरते हैं। मह र्ष दयानन्द ने सन्ध्या में वधान कये अघमर्षण मन्त्रों में भी ईश्वर की सर्वोपरि सत्ता व उसके दण्ड वधान 'कर्म–फल सद्धान्त' का उल्लेख कया है जो अनादि काल से चला आ रहा और अनन्त काल यथापूर्व चलता रहेगा। ज्ञानी व सज्जन पुरूष ईश्वर के दण्ड व मोक्ष वधान को जानकर अपने समस्त जीवन में अपराध, पाप व अशुभ कर्मों से बचे रहते हैं व सुख-शान्ति-समृ ि द्‌ध का अनुभव व भोग करते हैं। अतः मह र्ष दयानन्द द्वारा अघमर्षण मन्त्रों का वधान सर्वथा उपयुक्त व समाज को अपराध मुक्त बनाने की दिशा में एक प्रशंसनीय कार्य है। अन्य मतों में तो संख्या बढ़ाने के लए पाप क्षमा का वधान कया गया है जो क सत्य नहीं हो सकता क्यों क पापों को क्षमा करना एक प्रकार पाप को बढ़ावा देना है जिसे ईश्वर कदा प नहीं करेगा।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

ईश्वर का अवतार होना सत्य वैदिक सद्धान्तों के वरुद्ध है।

FEBRUARY 14, 2016 5 COMMENTS

ओ३म्

‘ईश्वर का अवतार होना सत्य वैदिक सद्धान्तों के वरुद्ध है।’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

महाभारत काल के बाद भारत में ज्ञान का लोप होने से अन्धकार फैला। ऐसे ही समय में वेद व वैदिक साहित्य से अनेक प्रसंगों में अज्ञान व कल्पनाओं का मश्रण कर संस्कृत व काव्य रचने में प्रवीण वद्वानों ने पुराणों आदि ग्रन्थों की रचना की। ऐसे ही समय में, देश, काल व परिस्थितियों व बौद्ध-जैन मत के प्रभाव के कारण, ईश्वर के अवतार की भी कल्पना की गई जो आज भी प्रच लत है। अवतार सृष्टि की रचना व पालन करने वाले अजन्मा, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ ईश्वर के मनुष्य जन्म लेने को कहा जाता है। महाभारत काल के बाद जिन लोगों ने ईश्वर के अवतार लेने की कल्पना की है, वह ईश्वर को पूर्णतया जानते ही नहीं थे और न हि वह पूर्णतः निष्कपट व स्वार्थहीन थे, ऐसा आभास मलता है। यदि वह वेदों को जानते होते तो उन्हें ईश्वर के सत्यस्वरूप का ज्ञान अवश्य होता और वह अवतारवाद की अज्ञानपूर्ण व मथ्या कल्पना न करते। अवतार पर चर्चा करने से पूर्व ईश्वर के वैदिक व यथार्थ स्चरूप को जानना आवश्यक है। ईश्वर सत्य, चत्त व आनन्दस्वरूप, अनादि, अजन्मा, शरीर-नस-नाड़ी-बन्धन-से-रहित, नित्य, अनन्त, अमर, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय और सृष्टि का रचयिता है। हर कार्य का कारण होता है। ईश्वर का यदि अवतार मानेंगे तो उसका स्वीकार्य कारण भी बताना ही होगा। अवतारवाद मानने वालों के पास ऐसा कोई ठोस कारण नहीं है जिससे ईश्वर के अवतार लेने का प्रयोजन सद्ध हो सके। अवतारवाद के पोषक कहते हैं क दुष्टों का दमन व हनन करने के लए ईश्वर मनुष्य का जन्म लेता है। यह कथन हास्यापद ही लगता है। यह इस लए क जो ईश्वर अपनी अनन्त सामथ्र्य से निराकार रूप से इस सृष्टि व जड़-जंगम जगत का निर्माण करता है, क्या वह अपने द्वारा उत्पन्न रावण व कंस जैसे क्षुद्र प्रा णयों को अपने अनन्त बल व शक्ति से धराशायी व नष्ट नहीं कर सकता? यदि श्री रामचन्द्र जी का जन्म रावण को मारने के लए ही हुआ था तो वह युवावस्था में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न होकर सीधे रावण के पास जाकर उसका वध कर देते और वहां के सभी धा र्मक लोगों को उपदेश देते क मैंने रावण को इसके दुष्ट स्वभाव के कारण मारा है क्यों क मैं स्वयं भी सर्वव्यापक रूप से ऐसा नहीं कर सकता था और न हि संसार का कोई मनुष्य ऐसा कर सकता था। ईश्वर या रामचन्द्र जी ने ऐसा नहीं कया और न रामायण के रचयिता वाल्मी क जी ने ऐसा लखा है, अतः यह मान्यता वाल्मी क, ईश्वर व रामचन्द्रजी की नहीं है। देश काल व परिस्थितियों के अनुसार ही यह सब कार्य हुए हैं जैसे क आजकल वश्व धरातल पर यत्र तत्र हो रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी एक राज परिवार में जन्में होने से एक राजा था। वैदिक राजा का दायित्व होता है क वह वेद धर्म के अनुयायियों, ऋ ष, मुनियों व वद्वानों की आतं कयों व दुष्टों से रक्षा करे। श्री रामचन्द्र जी ने वैदिक राजा होने का अपना कर्तव्य निभाया। रावण क्यों क अपने बुरे कार्यों को करता रहा, उसने छोड़ा नहीं, अतः परिस्थितियों के अनुसार ही उसका वध हुआ। यह सारा वर्णन वाल्मी क रामायण में उपलब्ध है। वाल्मी क जी श्री रामचन्द्र जी को अवतार नहीं मानते थे। यह मान्यता तो वगत दो से ढ़ाई सहस्र वर्ष पूर्व ही प्रच लत हुई है। यही स्थिति महाभारत में श्री कृष्ण जी की है। एक सर्वव्यापक व निराकार सत्ता जो असंख्य जीवों को मनष्यादि जन्म देती है और उनका नियमन करती है, अब भी कर रही है, वह कसी एक जीवात्माधारी मनुष्य को मारने के लए यदि स्वयं मनुष्य का जन्म लेती है, यह वजय नहीं पराजय है व युक्ति-तर्क से सद्ध नहीं होती। यदि श्री रामचन्द्र जी को ईश्वर मान भी लें तो

सर्वशक्तिमान होने के कारण उन्हें न तो सुग्रीव, न हनुमान, न अंगद न अन्य महावीरों की आवश्यकता पड़ती। भारत व वश्व में केवल रावण और कंस दो ही क्रूरर शासक नहीं हुए अ पतु इन, इनके जैसे व इनसे भी अ धक क्रूर अमानुष शासक हुए हैं। परन्तु अवतार केवल दो ही महापुरूषों को माना जाता है। इससे भी अवतारवाद का सद्धान्त अप्रमा णक सद्ध होता है। क्या महाभारतकाल के बाद औरंगजेब व उससे पूर्व व पश्चात के मानवीयता के शत्रुओं के हनन के लए ईश्वर के अवतार की आवश्यकता नहीं थी? यदि थी तो ईश्वर का अवतार क्यों नहीं हुआ? ऐसे अमानुषों को ईश्वर ने अपने सर्वान्तर्यामी स्वरूप से ही उनकी जीवन ज्योति को बुझा दिया, यह सर्वज्ञात व सद्ध है। अतः अतवारवाद प्रमाणों के अभाव में सत्य सद्ध नहीं होता।

हमारे देश में और वह भी केवल हिन्दुओं में ही अवातारवाद का सद्धान्त पाया जाता है जिसका प्राचीन साहित्य वेद व वैदिक साहित्य में कहीं कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। हमें भी अपने पौरा णक परिवारों में बाल्यकाल से ही बताया गया क मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी और योगेश्वर श्री कृष्ण जी ईश्वर थे। बचपन में जो बताया जाता है उस पर स्वतः वश्वास हो जाता है। युवावस्था में हम वेद व वैदिक साहित्य के सम्पर्क में आये और हमने मह र्ष दयानन्द के वचारों को पढ़ा, समझा व जाना तथा अनेक वद्वानों के उपदेश व ग्रन्थों को पढ़ा तो इस वषयक पूर्व का हमारा वश्वास अन्ध वश्वास सद्ध हुआ। ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वदेशी है अतः वह सकुड़ कर एक अत्यन्त सी मत आकर का एकदेशी पदार्थ नहीं बन सकता। यदि बनेगा तो वह ईश्वर नहीं जीवात्मा ही होगा। मह र्ष दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर वषयक प्रश्न करते हुए बताया है क ईश्वर सर्वशक्तिमान है तो क्या वह दूसरा ईश्वर बना सकता है? क्या वह स्वयं को नष्ट कर सकता? इसका उत्तर देते हुए मह र्ष दयानन्द जी कहते हैं क सर्वशक्तिमान का अर्थ यह है क वह अपने सभी कार्य अपने-आप, अकेले, बिना कसी अन्य की सहायता आदि के कर सकता है परन्तु वह सत्य व सत्य नियमों के वरुद्ध न कोई कार्य करता है और न कर सकता है। ईश्वर न तो दूसरा ईश्वर ही बना सकता है और न स्वयं को नष्ट ही कर सकता है। इसी प्रकार से वह सदैव ही अपने सत्यस्वरूप सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक, अनादि, अजन्मा, नित्य, अनुत्पन्न, अ वनाशी, अमर, अजर आदि स्वरूप में वद्यमान रहता है। अवतार लेना उसके स्वरूप, स्वभाव व सामर्थ्य में नहीं है और न सम्भव है। अतः वह कभी अवतार नहीं लेता। यदि ऐसा होता तो महाभारत काल के बाद उत्पन्न अल्प व स्वार्थ बुद् ध वालों से कहीं अ धक वद्वान, ज्ञानी, ईश्वर के साक्षात्कर्ता ऋ ष व योगी महाभारत व उससे पूर्व काल र चत अपने वैदिक साहित्य में अवतारवाद का वर्णन अवश्य करते। लगभग साढ़े दस हजार मन्त्रों वाले चार वेदों में भी इसका कहीं न कहीं उल्लेख अवश्य होता। और नहीं तो ईश्वर साक्षात्कार करने के ज्ञान के लए रचे गये योगदर्शन जिसमें ईश्वर प्राप्ति वषयक सभी साधनों का युक्ति व तर्कसंगत सत्यज्ञान प्रस्तुत कया गया है, ईश्वर के अवतार का भी अवश्य उल्लेख कया जाता। क्यों क यह मथ्या ज्ञान है, इसी कारण न वेद, न उपनिषद और न दर्शन आदि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों और न हि ईश्वर का साक्षात्कार कराने वाले योगदर्शन के प्रणेता मह र्ष पतंज ल ने इसका उल्लेख कया। वैदिक ज्ञान, युक्ति व तर्क के आधार पर केवल यही कहा जा सकता है क मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचन्द्र जी व योगेश्वर श्री कृष्ण जी आदि जो ऐतिहासक युगपुरूष हुए हैं वह ईश्वर के अवतार न होकर अपने समय के महापुरूष,

युगपुरूष, महामानव, महात्मा, दिव्य व श्रेष्ठ पुरूष थे। गीता में स्वयं योगेश्वर कृष्ण जी कहते हैं क ‘जातस्य हि धुरवो मृत्यु धुरवं जन्म मृत्यस्य च’ अर्थात् जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म निश्चित होता है। इस आधार पर जन्म लेना व मृत्यु को प्राप्त होना और फर जन्म लेना यह कार्य केवल जीवात्मा का होता है परमात्मा का नहीं। श्री कृष्ण जी का माता देवकी व पता श्री वसुदेव जी से जन्म हुआ, भगवान (ऐश्वर्यवान) श्री रामचन्द्र जी का भी माता कौशल्या और पता दशरथ से जन्म हुआ था और इनकी मनुष्यों की ही तरह एक सौ व एक सौ पचास वर्ष की आयु में मृत्यु होने से यह सृष्टि को रचने व चलाने वाले परमात्मा न होकर एक श्रेष्ठ व परमश्रेष्ठ जीवात्मा ही सद्ध होते हैं। ऐसे ही अन्य अवतार माने जाने वाले ऐतिहासक महापुरूषों व दे वयों के बारे में कहा जा सकता है।

वैदिक सनातन धर्मी भाग्यशाली हैं क इन्हें सृष्टि संवत् का ज्ञान है। इस समय यह सृष्टिसंवत एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार एक सौ सोलह वर्ष चल रहा है। लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व हुए महाभारत से पूर्व का हमारा इतिहास व इतर वैदिक साहित्य अनेक कारणों से सुर क्षत नहीं रखा जा सका। इस काल में श्री राम व श्री कृष्ण जी के समान सहस्रों महान दिव्य वभूतियों ने जन्म लया होगा जिनके शुभ कर्मो को जानकर उनकी पूजा व अनुसरण कया जा सकता था परन्तु उन पर रामायण व महाभारत समान ग्रन्थ वलुप्त होने के कारण ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। सौभाग्य से हमें श्री राम व श्री कृष्ण जी, मह र्ष दयानन्द आदि के सत्य इतिहास वाल्मी क रामायण, मह र्ष वेदव्यास कृत महाभारत व इतर ग्रन्थों से उपलब्ध होते हैं। अपनी ववेक बुद् ध से इन ग्रन्थों में मथ्या प्रक्षेपों को छोड़कर हम इन महापुरूषों के सत्य इतिहास को जानकर इनके अनुसार आचरण कर व वैदिक ग्रन्थों के प्रमाणों के अनुसार कर्मकाण्ड व योगयुक्त जीवन व्यतीत कर अपने मानव जीवन को सफल सद्ध कर सकते हैं। ऐसा करके ही हमारा जीवन श्रेष्ठ बनेगा व सफल होगा, देश भी संगठित सशक्त हो सकता है और वश्व का कल्याण भी इससे हो सकता है।

ईश्वर ईश्वर है जिसका कभी जन्म वा अवतार नहीं होता। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु और पुनर्जन्म अवश्य होता है और वह मनुष्य वा जीवात्मा ही होता है। श्री राम व श्री कृष्ण सहित मह र्ष दयानन्द हमारे आदर्श महापुरूष हैं। वैदिक शक्षाओं सहित इन महापुरूषों के जीवनों की सत्य शक्षाओं का आचरण व अनुकरण कर ही हम अपने जीवन को सही अर्थों में उन्नत व सफल कर सकते हैं। सत्य का आचरण व मथ्या का त्याग ही मनुष्य जीवन की उन्नति का कारण हुआ करता है, इसके वपरीत आचरण मनुष्य की इस जन्म व परजन्म में अवनति ही करता है, यह सुनश्चित वैदिक सद्धान्त है। हम आशा करते हैं क इस लेख से पाठकों पर ईश्वर व महापुरूषों वा महान आत्माओं का भेद स्पष्ट हो सकेगा।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

‘सर्वव्यापक ईश्वर मुनष्य की जीवात्मा में वास करता है’ -मनमोहन कुमार आर्य

FEBRUARY 7, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

वेदाध्ययन, चन्तन व मनन सहित ध्यान व समा ध से यह जाना गया है क मनुष्य जीवन जीवात्मा और मानव शरीर का संघात है। हमारा व सभी मनुष्यों का शरीर पांच भौतिक तत्वों यथा पृ थवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश से मलकर बनाया गया है। इसमें माता- पता की भू मका के साथ प्रमुख भू मका ईश्वर की है। माता- पता व जन्म लेने वाला जीवात्मा यह नहीं जानते क शरीर कैसे बनता है? अतः मानव व सभी प्रा णयों के शरीर अपौरूषेय सत्ता की ही रचनायें व कृतियां हैं। उसी अपौरूषेय सत्ता को वेदों व वैदिक साहित्य सहित अन्य अनेक ग्रन्थों में ईश्वर के नाम से प्रस्तुत कया गया है। सृष्टि की उत्प त्त, प्रा णयों के शरीरों की रचना व संचालन में ईश्वर की प्रमुख भू मका के कारण ही मनुष्य को सर्वशक्तिमान ईश्वर को अपने आचरण व अच्छे कार्यों से प्रसन्न रखने व उससे सुख-स्वास्थ्य-ज्ञान-बल-शान्ति की प्राप्ति के लए प्रार्थना वा यज्ञाग्निहोत्र पूजा आदि का वधान वेदों व वैदिक साहित्य में मलता है। ईश्वर सर्वव्यापक होने से सर्वज्ञ एवं मनुष्य एक देशी होने से अल्पज्ञ है। अल्पज्ञ होने के साथ मनुष्य काम, क्रोध, राग, द्वेष, अहंकार व अनेक बुराईयों से भी बद्ध व युक्त होता है। इन दुर्गुणों, दुर्व्यसनों व दुःखों को दूर करने के लए ही पूर्ण युक्ति व तर्क संगत वैदिक धर्म संसार में सृष्टि के आदि काल से प्रच लत है। सृष्टि के आदि काल से महाभारत काल तक वैदिक धर्म ही संसार के सभी मनुष्यों का एकमात्र धर्म व मत रहा। इसके बाद अज्ञान की वृद् ध के कारण नाना मतों की उत्प त्त हुई जिनमें अनेकानेक अज्ञानयुक्त वचार व मान्यताओं के साथ अन्ध वश्वास, रूढ़िवादिता, अवतारवाद, फ लत ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, सामाजिक असमानता वा वषमता, मांसाहार, अण्डों का सेवन, मदिरापान, धूम्रपान, अनाचार, मृतकों के शवों को जलाने के स्थान पर भू म में गाढ़ने जैसी मथ्या प्रथायें प्रच लत हो गई जो आज आधुनिक काल में भी प्रच लत हैं। यह सब अनु चत कार्य वेदों को न जानने व अ वद्या के कारण ही हो रहे हैं। इन्हीं अज्ञानों में से एक अज्ञान ईश्वर के सर्वव्यापक स्वरुप को भलीभांति न समझना भी है।

संसार में प्रायः हर पदार्थ एकदेशी और सीमाओं में आबद्ध या ससीम होता है। मनुष्य आदि सभी प्रा णयों की आत्मायें एकदेशी व ससीम हैं। यह आत्मायें हमारे शरीरों के अन्दर तो हैं परन्तु बाहर नहीं है। शरीर के अन्दर भी जीवात्मा पूरे शरीर में वद्यमान व व्यापक नहीं है अ पतु हृदय में एक स्थान पर है और इसका परिणाम कोई सेंटीमीटर या मीटर में न होकर 1 मलीमीटर से भी हजारों गुणा न्यून वा सूक्ष्म है। इसके वपरीत कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो सर्वव्यापक होते हैं। आकाश ऐसा ही पदार्थ है जो सर्वव्यापक है। दिशाओं व समय को भी सर्वत्र वद्यमान व उसका सर्वत्र व्यवहार होने से सर्वव्यापक कह सकते हैं। यह तो जड़ पदार्थ हैं

परन्तु ऐसा ही एक अन्य चेतन पदार्थ भी है जो सर्वव्यापक है और वही ईश्वर कहलाता है। यदि ईश्वर एकदेशी व ससीम होता तो उससे इस सृष्टि की रचना सहित सर्वत्र प्राणी सृष्टि व उसका संचालन नहीं हो सकता था। हमारी यह पृ थवी अति वशाल है। सूर्य इससे लाखों गुणा वशाल है। इसी प्रकार हमारे सौर मण्डल व समस्त ब्रह्माण्ड में हमारी पृ थवी, चन्द्र व सूर्य की भांति अनेक बड़े ग्रह व उपग्रह वद्यमान है। यह सब अपौरूषेय रचनायें होने से इनका रचयिता केवल ईश्वर ही सद्ध होता है।

सृष्टि का यह नियम है क ज्ञान पूर्वक की गई कोई भी रचना केवल चेतन सत्ता द्वारा अपने बुद् ध तत्व का उपयोग करने से ही होती है। हमारा सुन्दर घर व उपयोग की वस्तुएं यथा साइ कल, वस्त्र, खाद्यान्न का उत्पादन आदि समस्त कार्य केवल चेतन व बुद् ध रखने वाले प्राणी अपने ज्ञान से ही करते हैं। मनुष्यों की बुद् ध अत्यल्प व अल्पशक्ति होने से उनसे सृष्टि रचना व पालन का यह कार्य सम्पादित नहीं हो सकता। इसके लए सृष्टिकर्ता का सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान आदि गुणों वा स्वरूप वाला होना अपरिहार्य है। वेदों व ऋ ष-मुनियों द्वारा र चत वैदिक साहित्य में ईश्वर के ऐसे ही स्वरूप का वर्णन मलता है जिससे अध्येता की पूर्ण सन्तुष्टि हो जाती है। वैज्ञानिकों ने सृष्टि के पदार्थों में कार्यरत नियमों के अध्ययन व खोज से जो परिणाम प्रस्तुत कये हैं, उनसे भी सृष्टि के रचयिता का एक सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वव्यापक चेतन सत्ता होना सद्ध है। वचार करने पर यह तथ्य भी सम्मुख आता है क यदि ईश्वर सर्वव्यापक न होता, एकदेशी व ससीम होता तो वह भी मनुष्य की ही तरह का हो सकता था और वह भी तब जब कोई उसका शरीर बनाता अर्थात् अन्य ईश्वर की फर भी अपेक्षा थी। अतः सृष्टि में एक सर्वव्यापक व सर्वज्ञ ईश्वर अवश्यमेव है जो अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देता। ऋ ष व योगी अपनी सूक्ष्म ववेक बुद् ध व उच्च ज्ञान से उसका साक्षात व प्रत्यक्ष करते हैं। हमें भी अनेक घटनाओं से ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। मह र्ष दयानन्द ने भी इसे अनेक प्रमाणों से सद्ध कया है। यदि कोई कुछ भी न समझ सके तब भी सृष्टि की रचना व पालन तथा मनुष्य आदि प्रा णयों के जन्म व मृत्यु आदि की व्यवस्था के लए तो ईश्वर के अस्तित्व को माना ही जा सकता है। वह है इस लये यह कार्य हो रहे हैं, यदि वह न होता तो यह कार्य होने सम्भव नहीं थे।

हम मनुष्य हैं और एक अत्यन्त सूक्ष्म, एकदेशी, ससीम, चेतन, अल्पज्ञ, अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, सनातन, अमर, जन्म व मृत्यु के चक्र में आबद्ध, कर्मशील सत्ता हैं। जीवात्मा सूक्ष्म पदार्थ है और ईश्वर वा परमात्मा जीवात्मा से भी अत्यन्त सूक्ष्म वा सर्वातिसूक्ष्म पदार्थ है। सर्वातिसूक्ष्म और सर्वव्यापक होने से ईश्वर सर्वान्तर्यामी भी है। सर्वान्तर्यामी का अर्थ है क वह सबके भीतर भी है अर्थात् ईश्वर सभी जीवात्माओं, सृष्टि व इसके परमाणुओं के भीतर भी वद्यमान है और इनका पूरा हाल जानता व ज्ञान रखता है। इस आधार पर सर्वव्यापक ईश्वर का सभी जीवात्माओं के भीतर आवास, वास व निवास सद्ध होता है। अतः जीवात्मा को शुद्ध व प वत्र बनाने के लए जीवात्मा को योग वा ध्यान के द्वारा ईश्वर से जोड़ना होता है। जीवात्मा से जुड़ जाने से जीवात्मा का अशुद्ध ज्ञान व अशुद्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं और वह ववेक को प्राप्त होकर सत्याचरण व ईश्वरोपासना आदि श्रेष्ठ कार्यों में अपना समय व्यतीत करता है जिसके परिणाम से उसे ईश्वर के द्वारा दुःखों से मुक्ति मलती है। दुःखो

का कारण हमारी अ वद्या, अज्ञान, दुष्कर्म, संस्कार वहीनता आदि ही होते हैं जो ईश्वरोपासना व सत्कर्मों को करके ही दूर होते हैं। यह ईश्वरोपासना आदि कार्य मनुष्यों के लए सबसे बड़ी और प्रमुख उपलब्धि होती है। इसकी तुलना में धन व सम्प त्त व भोग सामग्री अत्यन्त हेय व निम्नतम होती है। ईश्वर को प्राप्त व्यक्ति को न तो कोई दुःख होता है और न हि उसकी कोई कामना अपूर्ण रहती है। वह सत्य की ही कामना करता है और वह ईश्वर की सहायता से पूरी होती है। मह र्ष दयानन्द जी का जीवन हमारे सामने है। उन्होंने कभी भक्षा नहीं मांगी। यहां तक की जब वह गुरु वरजानन्द जी के पास मथुरा पहुंचे और उनसे व्याकरण के अध्ययन के लए प्रार्थना की तो गुरुजी ने उन्हें अपने निवास, भोजन व पुस्तकों की व्यवस्था करने के लए कहा। इस पर भी स्वामीजी ने कसी से कुछ मांगा नहीं। इसका ज्ञान अनेक लोगों को हुआ। कसी प्रकार से यह बात मथुरा के धनीमानी पं डत श्री अमरनाथ जोशी जी के कानों में पहुंची और उन्होंने उनके भोजन आदि की व्यवस्था कर दी। अन्य व्यवस्थायें भी श्रद्धालु लोगों द्वारा कर दी गईं। उसके बाद हम देखते हैं क देश के अनेक बड़े-बड़े राजा भी उनका सम्मान करते थे और उनसे उपदेश ग्रहण करते थे। यह ईश्वर वश्वास व ईश्वर भक्ति का ही उदाहरण कहा जा सकता है।

हमने इस लेख में यह जानने का प्रयास कया है क इस संसार को बनाने व चलाने तथा सभी प्रा णयों को उत्पन्न करने वाली सत्ता ईश्वर है जो क सर्वव्यापक सत्ता है। इससे पृथक जीवात्मा एक चेतन तत्व, अल्पज्ञ, एकदेशी व ससीम सत्ता है। ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी होने के कारण सभी जीवात्माओं वा प्रा णयों की आत्माओं के भीतर भी वद्यमान है। इस रहस्य को जानकर व धपूर्वक ईश्वरोपासना करने से जीवात्मा का अज्ञान व आचरण शुद्ध होकर सभी दुःखों से निवृ त्त होती है। वेद ज्ञान इन सभी वषयों पर वस्तार से प्रकाश डालते हैं। वेदाध्ययन करने से मनुष्यों की सभी भ्रान्तियां दूर होती हैं। यदि आज के बड़े वैज्ञानिक व इतर धर्माचार्य निष्पक्ष व जिज्ञासाभाव से वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन करेंगे तो वह भी सत्य को अवश्य प्राप्त हो सकते हैं। हम सबको ईश्वर को सर्वव्यापक, दुःखों से सर्वथारहित, आनन्दमय, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान व सर्वान्तर्यामी जानकर तथा उसे अपनी आत्मा में वद्यमान मानकर उसका ध्यान व चन्तन करना चाहिये जिससे हमारा कल्याण होगा। इसी के साथ इस लेख को वराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**0941298512**

‘ईश्वर से क्या व कैसी प्रार्थना करें?’ -मनमोहन कुमार आर्य

FEBRUARY 7, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

प्रार्थना अपने से अ धक सामथ्र्य व क्षमतावान सत्ता से कसी आवश्यक व उपयोगी वस्तु को मांगने व याचना करने को कहते हैं। मनुष्य शशु के रूप में माता- पता से इस पृ थवी पर जन्म लेता है। उसे अपने शरीर का समु चत वकास और ज्ञान व बुद् ध सहित सत्कर्मों की प्रेरणा की अपेक्षा रहती है जिससे वह अपने उद्देश्य, लक्ष्य व उनकी प्राप्ति के उपायों को जान सके। इस कार्य में उसके माता- पता व आचार्य सहित ऋ ष मह र्षयों के पूर्ण वद्या व अज्ञान से रहित ग्रन्थ सहायक होते हैं। हमारे माता- पता, आचार्य व सभी ऋ ष-मुनि भी वेदों वा ईश्वर से ही ज्ञान प्राप्त करते थे। ईश्वर एक सत्य, चत्त, आनन्दस्वरुप, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सृष्टि की रचना, पालन व लय करने वाली सत्ता है जो हमारे इस जीवन व अनेकानेक पूर्व जीवनों से पूर्व से ही हमारे साथ है और हर पल व हर क्षण हमारे साथ रहती है व रहेगी। अतः हमें प्रातः व सायं उसकी संगति वा उपासना कर उसकी स्तुति व प्रार्थना करनी चाहिये जिससे हमें सभी श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति सुगमता से हो सके। मह र्ष दयानन्द सच्चे व सद्ध योगी थे और वेदों के मर्मज्ञ व अपूर्व वद्वान थे। उनके अनेक ग्रन्थों का मार्गदर्शन हमें प्राप्त है जिससे हम अपने जीवन को सुखी व सफल बना सकते हैं। ईश्वर से प्रार्थना करने से मनुष्य का अहंकार दूर होकर निर भमानता उत्पन्न होती है और प्रार्थना के अनुरुप ईश्वर से पदार्थों की प्राप्ति होती है। हमें केवल अपनी सभी इन्द्रियों को वश व नियन्त्रण में रखते हुए अपने अन्तःकरण को स्वच्छ व प वत्र रखना है। यही ईश्वर को प्रसन्न व उससे प्राप्त हो सकने वाले पदार्थों की प्राप्ति के लए आवश्यक पात्रता है। आज इस लेख में मह र्ष दयानन्द द्वारा ईश्वर की स्तुति व प्रार्थना वषयक वेद मन्त्रों के आधार पर की गई कुछ प्रार्थनायें प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें भी नित्य प्रति इसी प्रकार की व ऐसी ही प्रार्थनायें सर्वशक्तिमान व सर्वव्यापक परमात्मा से करनी चाहिये।

प्रार्थना आरम्भ करने से पूर्व उपासक को अपने शरीर की शुद् ध कर अपने मन को सांसारिक बातों से हटाकर सुखासन आदि कसी एक आसन में बैठकर एकाग्र चत्त होकर ईश्वर का ध्यान करते हुए मौन रहकर अपने मन से इन व इस प्रकार की प्रार्थनाओं को करना चाहिये। पहले यह मन्त्रपाठ करें, ‘ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा वद् वषावहै।। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।’ हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करें, हम सब लोग परमप्रीति से मलके सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्तिराज्य आदि सामग्री व आपके अनुग्रह से आनन्द को सदा भोगें। हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक-दूसरे के सामथ्र्य को अपने-अपने पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें, और हे प्रकाशमय सब वद्या के देने वाले परमेश्वर ! आपके सामथ्र्य से ही हम लोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी वद्या सदा वृद् ध को प्राप्त होती रहे। हे प्रीति के उत्पादक ! आप ऐसी कृपा कीजिये

 क जिससे हम लोग परस्पर वरोध कभी न करें, कन्तु एक-दसरे के मत्र होके सदा वर्तें। हे भगवन्! आपकी करुणा से हम लोगों के तीन ताप-एक 'आध्यात्मिक' जो क ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है, दूसरा 'आ धभौतिक' जो दूसरे प्रा णयों से कष्ट व पीड़ा होती है, और तीसरी 'आ धदै वक' जो क मन और इन्द्रियों के वकार, अशुद् ध और चंचलता से क्लेश होता है, इन तीनों तापों को आप शान्त अर्थात् निवारण कर दीजिये जिससे हम वेदों का ज्ञान प्राप्त कर तदनुकूल आचरण करते हुए अपना व अन्य सभी मनुष्यों का उपकार कर सकें। यही हम आपसे चाहते हैं सो कृपा करके हम लोगों की सब दिनों में सहायता कीजिये।

प्रार्थना के लए यजुर्वेद का 30/3 मन्त्र 'ओ३म् वश्वानिदेव स वतर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।।' भी एक श्रेष्ठ मन्त्र है। इससे इस प्रकार प्रार्थना करें क हे सत्यस्वरुप ! हे वज्ञानमय ! हे सदानन्दस्वरुप ! हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त ! हे परमकृपालो ! हे अनन्त वद्यामय ! हे वज्ञान वद्याप्रद ! हे परमेश्वर ! आप सूर्यादि सब जगत् का और वद्या का प्रकाश करने वाले हैं तथा सब आनन्दों के देने वाले हैं, हे सर्वजगदुत्पादक सर्वशक्तिमन् ! आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं, हमारे सब जो दुःख हैं उनको और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप दूर कर दीजिये, अर्थात् हमसे उनको और हमको उनसे सदा दूर र खये, और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है, जो क सब सुखों से युक्त भोग है, उसको हमारे लए सब दिनों में प्राप्त कीजिये। सो सुख दो प्रकार का है–एक जो सत्य वद्याओं की प्राप्ति में अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्ति राज्य, इष्ट मत्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त उत्तम सुख का होना, और दूसरा जो निःश्रेयस् सुख है क जिसको मोक्ष कहते हैं ओर जिसमें ये दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं। उस सुख को आप हमारे लये सब प्रकार से प्राप्त कीजिए। हे परमेश्वर ! आपकी कृपा व सहाय से सब वघ्न हमसे दूर रहें क जिससे क वेदाध्ययन व वेदाचरण का हमारा व्रत सुख से पूरा हो। इससे हमारे शरीर मे आरोग्य, बुद् ध, सज्जनों का सहाय, चतुरता और सत्य वद्या का प्रकाश सदा बढ़ता रहे। इस भद्रस्वरूप सुख को आप अपनी सामथ्र्य से ही हमको दीजिये, जिस आपकी कृपा के सामर्थ्य से हम लोग सत्य वद्या से युक्त जो आपके बनाये वेद हैं उनके यथार्थ अर्थ से युक्त भाष्य को सुख से वधान करें क जिसके प्रचार व मनुष्यों द्वारा आचरण से मनुष्यमात्र लाभान्वित हो।

मह र्ष दयानन्द ने अपने प्र सद्ध ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्यभू मका में उर्युक्त मन्त्रों सहित अन्य अनेक महत्वपूर्ण मन्त्रों को भी प्रस्तुत कर उनके संस्कृत व हिन्दी में भावार्थ दिये हैं। कुछ अन्य मन्त्रों के भावार्थ इस प्रकार हैं। जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत हो गया है, दूसरा जो वर्तमान है और तीसरा जो होने वाला भ वष्यत् कहलाता है, इन तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है उन सब व्यवहारों को वह ईश्वर यथावत् जानता है। जो सब जगत् को अपने वज्ञान से ही जानता, सब जगत् व पदार्थों की रचना, पालन, लय करता और संसार के सब पदार्थों का अ धष्ठाता अर्थात् स्वामी है, जिस का सुखरूप ही केवल स्वरूप है, जो क मोक्ष और व्यवहार व सुख का भी देने वाला है, सबसे बड़ा सब सामथ्र्य से युक्त ब्रह्म जो परमात्मा है उसको अत्यन्त प्रेम से हमारा नमस्कार हो। ईश्वर क जो सब कालों के ऊपर वराजमान है, जिसको लेशमात्र भी दुःख नहीं होता, उस आनन्दघन परमेश्वर को हमारा नमस्कार प्राप्त हो। जिस परमेश्वर ने अपनी सृष्टि में पृ थवी को पादस्थानी रचा है, अन्तरिक्ष

जो पृथवी और सूर्य के बीच में आकाश है सो जिसने उदरस्थानी कया है और जिसने अपनी सृष्टि से दिव अर्थात् प्रकाश करने वाले सूर्य आदि पदार्थो को सबके ऊपर मस्तकस्थानी कया है अर्थात् जो पृथवी से लेके सूर्यलोकपर्यन्त सब जगत् को रच के उसमें व्यापक होके, जगत् के सब अवयवों में पूर्ण होके सबको धारण कर रहा है, उस परब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार हो।

हे जगदीश्वर ! आपने नेत्रस्थानी सूर्य और चन्द्रमा को रचा है तथा कल्प-कल्प के आदि में आप ही सूर्य और चन्द्रमादि पदार्थों को वारम्वार नये-नये रचते हैं। आपने ही मुखस्थानी अग्नि को उत्पन्न कया है। आपको हम लोगों का नमस्कार हो। हे सृष्टिकर्ता परमेश्वर ! आपने ब्रह्माण्ड के वायु को प्राण और अपान के समान कया है तथा जो प्रकाश करने वाली करण है उसे चक्षु के समान रची हैं अर्थात् सूर्य के प्रकाश से ही रूप का ग्रहण होता है। दश दिशाओं को जिसने सब व्यवहारों को सद्ध करने वाली बनाई हैं, ऐसा जो अनन्त वद्यायुक्त परमात्मा सब मनुष्यों का इष्टदेव है, उस को निरन्तर हमारा नमस्कार हो।

उपर्युक्त लेख में हमने मह र्ष दयानन्द के द्वारा उनके ऋग्वेदादिभाष्यभू मका ग्रन्थ से ईश्वर से की जाने वाली श्रेष्ठ प्रार्थनाओं की एक झलक प्रस्तुत की है। वैदिक सन्ध्या वा पंचमहायज्ञ वध, आर्या भ वनय, संस्कार व ध, सत्यार्थप्रकाश, वेदभाष्य आदि उनके अन्य ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के उत्तमोत्तम वचार मलते हैं। वश्व के धा र्मक व सामाजिक साहित्य में इस प्रकार की प्रार्थनायें उपलब्ध नहीं होती। अतः जीवन का कल्याण चाहने वाले सभी मनुष्यों को मह र्ष दयानन्द व वेद की शरण में आकर वेदाध्ययन आदि के द्वारा सत्य वैदिक रीति से सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र आदि के द्वारा प्रार्थनायें करके सभी अ भल षत पदार्थों की प्राप्ति करनी चाहिये। ईश्वर व जीवात्मा की सत्तायें सत्य है जो वेद के प्रमाणों सहित तर्क व युक्ति से भी सद्ध है। ईश्वर सर्वऐश्वर्यसम्पन्न व इसका स्वामी है, वह सर्वशक्तिमान व सर्वव्यापक है तथा जीवों को कर्मानुसार सुख व दुःख तथा पदार्थों को प्राप्त कराता है, अतः ईश्वर पर पूर्ण वश्वास रखकर सम र्पत होकर ईश्वर का ध्यान, चन्तन व प्रार्थना कर अपने सभी उ चत मनोरथ सद्ध करने चाहिये। हम आशा करते हैं क पाठक ईश्वर से उपुर्यक्त प्रार्थनाओं को करके लाभान्वित होंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

‘धर्म के अनुशासन बिना वज्ञान मानव जीवन के लए अहितकारी’-मनमोहन कुमार आर्य

ओ३म्

आजकल वज्ञान की उन्नति ने सबको आश्चर्यान्वित कर रखा है। दिन प्रतिदिन नये नये बहुपयोगी उत्पाद हमारे ज्ञान व दृष्टि में आते रहते हैं। बहुत कम लोग जानते होंगे क उनकी अनेक समस्ययाओं का कारण भी वज्ञान व इसका दुरुपयोग ही है। इसका सबसे मुख्य उदाहरण तो वायु, जल और पर्यावरण प्रदुषण का है। यह प्रदुषण वज्ञान व उसके आ वष्कारों सहित औद्यो गक उत्पादों के बिना सोचे उपभोग के कारण व मनुष्य की दिनचर्या में आये बदलाव का परिणाम है। मनुष्य को वायु और जल शुद्ध न मले तो यह अनेकानेक रोगो का उत्पादक होने से मनुष्यों के स्वास्थ्य के लए घातक होता है। यही आजकल सर्वत्र हो रहा है। इतना ही नहीं हम जो भोजन करते हैं उसे भी वज्ञान ने हमारे लए अहितकार व अनेकानेक रोगों का उत्पादक बना दिया है जिससे मनुष्य दुःखी रहते हैं और कालकव लत होते रहते हैं। आज हमें जो खाद्य पदार्थ बाजार से मलते हैं उसमें रासायनिक खादों व कीटनाशकों के प्रयोग ने उन्हें स्वास्थ्य के अहितकर व हानिप्रद बना दिया है। अनेक अन्नीय पदार्थ व सब्जियां मल-मूत्र को खाद के रूप में प्रयोग कर पैदा की जाती है जो स्वास्थ्य व मनो वकारों को जन्म देती हैं। इस ओर देश व समाज का बहुत कम ध्यान है और वज्ञान भी चुप है जब क हमारे ऋ ष-मुनियों को इसका ज्ञान था और इसी कारण उन्होंने मल-मूत्र के संसर्ग से उत्पन्न अन्न आदि पदार्थों के सेवन को नि षद्ध कया था। वज्ञान के नाम पर आज आम मनुष्य की क्षमता से भी कहीं अ धक खर्चीली च कत्सा पद्धति देश में आई है जिसमें न केवल जीवन भर की पूंजी कुछ ही दिनों छोटे-मोटे रोगों के उपचार में स्वाहा हो जाती है अ पतु वह कर्जदार होकर शेष जीवन नरक के समान व्यतीत करता है। बहुत से लोग तो धनाभाव के कारण अपना उपचार करा ही नहीं पाते और मृत्यु का वरण कर लेते हैं। अनेक च कत्सक और पैथोलोजी लैब भी रो गयों को स्वेच्छा से लूटती हैं जिसके अनेक उदाहरण सामने आ चुके है और जो कम नहीं हो रहे हैं। स्वार्थ के कारण कुछ व अनेक च कत्सक रो गयों को महंगी व कई अनावश्यक दवायें भी लख देते हैं जिसका असर रोगी की आ र्थक स्थिति व स्वास्थ्य पर बुरा ही पड़ता है। इस ओर न तो सरकारों का ध्यान है और न ही देश के नागरिक ही सचेत हैं। इस क्षेत्र में सरकार व रोगी परिवारों के बीच कंकर्तव्य वमूढ की स्थिति है। इसका कोई हल सामने नहीं आ रहा है। जिस प्रकार से संसार के वकसत व अर्ध वक सत देश वज्ञान के उपयोग से नाना प्रकार के हानिकारक आयुद्ध आदि बना रहे हैं वह भी मानवता की सुख, समृद् ध व शान्ति के उपयों के वपरीत हैं। सौभाग्य से आज योग, प्राणायाम, आसन, व्यायाम व सन्तु लत भोजन के प्रति स्वामी रामदेव जी के प्रयासों से जागरुकता बढ़ी है। उन्होंने कम खर्चीली आयुर्वेदिक च कत्सा पद्धति को भी वश्व स्तर पर लोक प्रय बनाया है। इसे अपनाने वाले लोग इससे लाभान्वित हो रहे हैं परन्तु फर भी वज्ञान प्रदत्त अन्य साधनों से कुल मलाकर मनुष्यों को नाना वध हानियां हो रही है जिस पर वद्वानों व वैज्ञानिकों सहित सरकारों को भी ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। इसका प्रमुख कारण हमें धर्म के वास्त वक रूप को न समझना ही ज्ञात होता है। यदि मनुष्य धर्म के वास्त वक स्वरूप से परि चत होकर सत्य व सरलता का प्राकृतिक व वैदिक मान्यताओं के अनुसार जीवन व्यतीत करें जैसा क उन्होंने महाभारतकाल तक व उससे पहले व्यतीत कया है, तो समाज में आज की यह समस्यायें न होती। आज भी यदि इस दिशा में वचार व आचरण कया जाये तो सामाजिक भलाई का बहुत कार्य कया जा सकता है।

वैदिक धर्म की कुछ वशेषतायें हैं जिससे अनेक समस्याओं का निराकरण हो जाता है। वैदिक धर्म मनुष्यों को मानव जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य से परि चत कराता है और उन कार्यों व उपायों को करने के लए बल देता है जिससे मनुष्य का यह जीवन व परजन्म सुख व शक्ति का संचय कर दीर्घायु हो और उसे जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त होकर दुःखों की सर्वथा निवृ त वा चरकालीन मोक्ष रूपी स्वर्गीय सुखों व आनन्द की प्राप्ति हो। वैदिक धर्म वेदों का ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार आचरण करने को कहते हैं। वैदिक जीवन में मनुष्य को अनिवार्य रूप से ईश्वरोपासना, ईश्वर का ध्यान, चन्तन, मनन, अध्ययन वा स्वाध्याय, ऋ षयों व वद्वानों की संगति व उनकी सेवा सत्कार, प्रा णयों के प्रति अंहिसा व हित की कामना, स्वयं व दूसरों के जीवन का सुधार व उन्नति, समाज को संगठित करना व उसका उच्च आदर्शों के अनुरूप निर्माण सहित परोपकार व दूसरों की सेवा के संस्कार वा स्वभाव की प्राप्ति होती है। वेद ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है जो मनुष्यों को सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से अग्नि, वायु, आदित्य व अं गरा ऋ षयों को प्राप्त हुआ, तत्पश्चात उनसे ब्रह्मा जी को प्राप्त हुआ और उनके द्वारा आदि सृष्टि के स्त्री-पुरूषों सहित काल-क्रम के अनुसार संसार भर में प्रवृत्त हुआ था। वेद की सभी शक्षायें अज्ञान से सर्वथा रहित व मानव जीवन सहित सभी प्रा णयों की हितकारी है। यह मत-पन्थ-मजहब-सम्प्रदाय आदि से कहीं ऊपर व सर्वोच्च हैं। वेदों व वैदिक धर्म में सुख-सु वधा- वला सता के भौतिक साधनों का न्यूनतम प्रयोग करते हुए भोगों से दूर रहकर त्याग पूर्ण जीवन व्यतीत करने का वधान है। शारीरिक उन्नति व आत्मिक उन्नति पर वैदिक धर्म में सर्वा धक ध्यान दिया जाता है। वेदों के आधार पर उपनिषदों व दर्शनों में ऋ षयों ने जो ज्ञान दिया है वह संसार भर के साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। इन सबका सेवन, आचरण व अभ्यास करते हुए वायु, जल व पर्यावरण की शुद् ध के लये प्रयास करने की प्रेरणा की गई है, तभी मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगा अन्यथा नहीं। वैचारिक व सत्य-असत्य के ववेचन के आधार पर चन्तन करने पर भी यह वचारधारा प्रा णमात्र के हित को सम्पादित करने में सहायक व सत्य सद्ध होती है। इसी कारण से हमारे प्राचीन ऋ ष व पूर्वज वैदिक धर्म का न केवल स्वयं पालन करते थे अ पतु समाज के सभी लोग उनसे उपदेश प्राप्त कर उनकी आज्ञाओं के अनुसार ही अपना त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। वैदिक धर्म मनुष्य के जीवन को अनुशा सत कर उन्नति करते हुए जीवन के उद्देश्य धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष तक ले जाता है। दूसरी ओर उन्मुक्त वा अनुशासन रहित जीवन आ र्थक सुख-समृद् ध भले ही प्राप्त कराये, परन्तु यह मनुष्य को रोगी व अल्पायु बनाकर, उसे जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य से दूर कर जन्म-जन्मान्तरों में दुःख व कष्टों का कारण सद्ध होता है।

वज्ञान के लाभ व हानि को जानने का प्रयास सभी मनुष्यों को करना आवश्यक है। वज्ञान के साधनों का उसी सीमा तक उपयोग उ चत है जहां तक की उससे हमारा धर्म, अर्थात् वर्तमान व भावी सुख, कुप्रभा वत न हों। वायु-जल-अन्न के प्रदुषण के सभी कारको को दूर कर प्रदुषण निवारण के उपाय करने का प्रयास होना चाहिये। यदि वज्ञान इनका समाधान प्रस्तुत नहीं करता तो फर निश्चय ही प्रदुषणकारक साधनों व उत्पादों को छोड़ना व इनका उपयोग नियंत्रित करना आवश्यक है। यातायात के साधन, वाहन, उद्योग तथा सीमेंट-कंक्रीट के बड़े बड़े भवन आदि वायु-जल-अन्न व पर्यावरण प्रदुषण के प्रमुख कारक हैं। निश्चय ही

यह आज हमारे जीवन में ऐसे प्र वष्ट हो गये हैं क इनके बिना जीवन व्यतीत करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस पर भी जिस प्रकार वष- म श्रत स्वादिष्ट भोजन का त्याग करना ही श्रेयस्कर होता है वैसी ही यहां भी स्थिति है। सत्य वैदिक धर्म को यदि संसार अपना ले और उसके अनुसार सभी मनुष्य ईश्वरोपासना, यज्ञ–अग्निहोत्र, योग, ध्यान, स्वाध्याय, सेवा, परोपकार, त्याग, प्रा णहित, अंहिसात्मक व्यवहार, स्वार्थ व लोभ पर नियंत्रण, अपरिग्रह आदि का सेवन करें तभी पर्यावरण बच सकेगा। वैदिक धर्म में प्रतिदिन प्रातः व सायं यज्ञ करने का जो वधान है वह अनेक लाभों सहित वायु, जल व अन्न के प्रदुषण को दूर करने के लए होता है। इस ज्ञान व वज्ञान को वक सत कर प्रदुषण निवारण में इसका भी उपयोग कया जा सकता है। सरकार व वैज्ञानिकों इस ओर ध्यान देना है। वैदिक धर्म का ज्ञान व उसका सभी मनुष्यों द्वारा आचरण आज संसार में सर्वा धक महत्वपूर्ण व प्रासं गक होने के कारण आवश्यक व अनिवार्य प्रतीत हो रहा क्यों क इसके द्वारा ही हम वश्व को सभी प्रकार के प्रदुषणों, अन्याय, शोषणों व अशान्ति से बचा सकते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

मनुष्य की चहुंमुखी उन्नति का आधार अ वद्या का नाश और वद्या की वृद् ध’ -मनमोहन कुमार आर्य

FEBRUARY 7, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

मनुष्य के जीवन के दो यथार्थ हैं पहला क उसका जन्म हुआ है और दूसरा क उसकी मृत्यु अवश्य होगी। मनुष्य को जन्म कौन देता है**?** इसका सरल उत्तर यह है क माता- पता मनुष्य को जन्म देते हैं। यह उत्तर सत्य है परन्तु अपूर्ण भी है। माता- पता तभी जन्म देते हैं जब क ईश्वर माता- पता व जन्म लेने वाली जीवात्मा के शरीर के निर्माण वा रचना सहित सभी व्यवस्था और उपाय करता है। क्या मनुष्य का जन्म बिना पु लंग पु लंग ईश्वर के सहाय के सम्भव है, इसका उत्तर नहीं में है। अब प्रश्न है क ईश्वर व माता- पता ने सन्तान को जन्म क्यों दिया है? माता- पता तो यह कह सकते हैं क यह मनुष्य का स्वभाव सा है क युवावस्था में उसे ववाह की आवश्यकता अनुभव होती है और ववाह के बाद परिवार की वृद् ध की इच्छा से सन्तान का जन्म होता है। अन्य कुछ कारण भी हो सकते हैं। माता- पता द्वारा सन्तानों से वृद्धावस्था व आपातकाल में सेवा-सुश्रुषा आदि की अपेक्षा भी की जाती है। ईश्वर जन्म लेने वाली जीवात्मा को पता व माता के शरीर में प्रवेश कराने सहित उसका लंग ‘स्त्री लंग वा पु लंग’ निर्धारित करता है और माता के गर्भ में एक शशु का शरीर रचकर उसे गर्भ की अव ध पूरी होने पर जन्म देता है। इसका उद्देश्य तो सामान्य व्यक्ति ईश्वर से पूछ नहीं सकता। हां, योगी व ज्ञानी अपने अध्ययन, ववेक, योग साधना व कुछ

सद् धयों से इसका यथार्थ उत्तर दे सकते हैं। वह उत्तर है क जीवात्मा ज्ञान वा वद्या प्राप्त कर अपने अज्ञान को दूर करे। इसके साथ मनुष्य जन्म में अपने अकर्तव्य व अकर्तव्यों सहित उसे संसार, ईश्वर व जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान भी होना चाहिये। जीवात्मा, ईश्वर व अनेकानेक वषयों का ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर को प्राप्त करना मनुष्य जन्म में ही सुलभ है। अतः ईश्वर जीवात्माओं को मनुष्य आदि अनेक योनियों में उसके पूर्वजन्म के कर्मानुसार जन्म देता है और पुराने कर्मों का भोग करने तथा नये कर्मों के आधार पर मृत्यु के पश्चात जीवात्मा के नये जीवन अर्थात् पुनर्जन्म की योनि का निर्धारण करता है।

मनुष्य जीवन केवल शरीर को पोषण देने, स्वादिष्ट भोजन करने व धन स्म्प त अर्जित कर सुख-सु वधाओं की वस्तुओं का संग्रह करने मात्र के लए ही नहीं मला है। यह काम अवश्य करने हैं परन्तु सबसे महत्वपूर्ण इस संसार सहित ईश्वर व जीवात्मा के सत्य ज्ञान व रहस्यों को जानकर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना को भी करना होता है। इन सब कामों के लए ज्ञान की आवश्यकता होती है जो हमें माता- पता के बाद आचार्यों व शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त होता है। यदि जीवन में शास्त्रों का ज्ञान व सदाचरण नहीं है तो वह जीवन मनुष्य का होकर भी पशु के समान, एकांगी जीवन, ही कहा जाता है। पशु का काम खाना-पीना व अपने स्वामी की सेवा करना होता है। यदि मनुष्य भी धनसंग्रह करने व शारीरिक सु वधाओं के लए ही जी वत रहता है तो यह पशुओं के समान ही है। सत्य शास्त्रों के ज्ञान से जो ववेक प्राप्त होता है वही मनुष्य की वास्त वक पूंजी होता है। यह ज्ञान व इसकी प्रेरणा से कए गये सदकर्म न केवल इस जीवन अ पतु भावी अनेकानेक जन्मों में भी सहयोगी, लाभदायक व सुखप्रापक होते हैं। अतः सभी मनुष्यों का मुख्य कर्तव्य यह है क वह अपने अज्ञान व अ वद्या का नाश करने के लए योग्य आचार्यों से वेदाध्ययन वा ज्ञान की प्राप्ति करे।

यदि हम इतिहास पर दृष्टि डाले तो हमें इतिहास में बड़े-बड़े ज्ञानियों, धर्मपालकों, ऋ षयों, आचार्यों के नाम मलते हैं जिनका नाम श्रद्धा से लया जाता है। ऐसे लोग ही मानव समुदाय का आदर्श हुआ करते हैं। इतिहास में प्राचीन महापुरुषों में श्री रामचन्द्र जी व श्री कृष्ण जी का नाम प्र सद्ध होने के साथ उनको लोग आज भी श्रद्धा-भक्ति से स्मरण करते हैं। इसका कारण उनके कार्य व जीवन का आचरण है जो उन्होंने कया था। इन महापुरुषों के जीवन को प्रकाश में लाने का काम मह र्ष वाल्मीक और मह र्ष वेदव्यास जी ने रामायण व महाभारत ग्रन्थों की रचना कर कया। यह सभी लोग वद्या में सर्वोच्च थे। आज भी हम मह र्ष दयानन्द, स्वामी शंकराचार्य, आचार्य चाणक्य, महाराणा प्रताप, वीर शवाजी, गुरु गो वन्द संह, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, भगत संह, सरदार पटेल आदि को स्मरण करते हैं तो इसका कारण भी इन लोगों का ज्ञान व उसके अनुरुप कये गये कार्य हैं। इन उदाहरणों का अ भप्राय यही है क मनुष्यों को पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर श्रेष्ठ कार्यों को करना चाहिये जैसा क इन कुछ महापुरुषों ने कये हैं। ऐसा करके हम अपने अपने जीवन को सफल व सफलतम बना सकते हैं।

शास्त्रों ने बताया है क वद्या वह होती है जो मनुष्यों को दुःखों से मुक्त करती है। इससे यह आभाष मलता है क मनुष्यों के दुःखों का कारण अ वद्या व असत् ज्ञान होता है। हम संसार में भी देखते हैं क असत् ज्ञान व ज्ञानहीनता निर्धनता का मुख्य कारण होता है। अज्ञानी व्यक्ति अन्याय व शोषण से पी.डत भी होता है व स्वयं भी ऐसा ही आचरण दूसरों के प्रति करता है। ऐसा भी देखा जाता है क जिस व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है वह न केवल अपने जीवन का सुधार करता है अ पतु अपने साथ अपने सम्पर्क में आने वाले अनेकों का भी उससे सुधार होता है। आजकल संसार में नाना वषयों का ज्ञान उपलब्ध है। यह सांसारिक ज्ञान अपरा वद्या कहलाता है। इस वद्या से मनुष्य अनेकानेक काम करके धन व सम्प त्त व अनेक पदार्थों का सृजन कर सकता है परन्तु अपनी आत्मा को उत्तम नहीं बना सकता। आत्मा को उत्तम व श्रेष्ठ बनाने के लए वेदों व वैदिक साहित्य की शरण में जाना पड़ता है। वेदों का आत्मा व ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान परा वद्या कहलाती है। इसे आध्यात्मिक वद्या भी कह सकते हैं। इस वद्या से मनुष्यों को अपने यथार्थ कर्तव्यों का बोध होता है। इस ज्ञान व वज्ञान को प्राप्त होकर मनुष्य अपरिग्रह को अपनाता है और आत्मा व ईश्वर का चन्तन करते हुए ईश्वर का अ धकतम व पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिससे उसकी अ वद्या नष्ट होकर वह वैदिक मान्यता के अनुसार जन्म व मरण के दुःखों से 4.32x2x360x100 = 3,11,040 अरब वर्षों तक के लए मुक्त होकर ईश्वर के सान्निध्य में पूर्ण आनन्द का भोग करता है। यही मनुष्य जीवन का वास्त वक स्वर्ग है जिसका वस्तृत वर्णन सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में उपलब्ध होता है।

मह र्ष दयानन्द वेद सहित प्राचीन काल से उनके समय तक ऋ षयों व वद्वानों द्वारा र चत सभी शास्त्रों व ग्रन्थों के अपूर्व वद्वान थे। संसार का सुधार व उन्नति करने के लए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। वेद ज्ञान के आधार पर आपने आर्यसमाज के दस नियमों की रचना की जिसमें से आठवां नियम है क 'अ वद्या का नाश और वद्या की वृद् ध करनी चाहिये।' यह नियम सर्वमान्य नियम है। इसका महत्व सभी जानते हैं। इस पर कसी को ववाद नहीं है। परन्तु वद्या का क्षेत्र कहां तक है यह बहुतों को ज्ञात नहीं है। पूर्ण वद्या की प्राप्ति वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन कर ही सम्पन्न होती है। वेदों के ज्ञान से रहित मनुष्य पूर्ण ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। अतः जीवन की पूर्ण उन्नति के लए संसार के अनेकानेक वषयों का अध्ययन करने के साथ वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन भी अवश्य ही करना चाहिये। जो करेंगे उनको आत्मा के वकास सहित ईश्वर की प्राप्ति का लाभ होगा और परजंन्म की उन्नति होगी। जो नहीं करेंगे वह इन लाभों से वं चत रहेंगे। मह र्ष दयानंद के आर्यसमाज के तीसरे नियम में प्रस्तुत शब्दों का उल्लेख कर लेख को वराम देते हैं। उन्होंने लखा है क 'वेद सब सत्य वद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना व सुनना सुनाना सब आर्यों (श्रेष्ठ मनुष्यों) का परम धर्म है।'

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

यह भाव से अभाव तथा अभाव से भाव कैसे हो जाता है? आचार्य सोमदेव

JANUARY 30, 2016 1 COMMENT

जिज्ञासा :-

आचार्य जी, ''समाधान – 93'' में आपने जो दिया है, उसमें थोड़ी-सी शंका शेष रह गई है और वह यह है क ईश्वर ने इस साकार जगत् की रचना प्रकृति के परमाणुओं से की है। इसका मतलब प्रकृति के परमाणुओं में साकारत्व का गुण है, तभी तो साकार जगत् बन पाया। पंचभौतिक तत्त्व भी प्रकृति के परमाणुओं से ही बने हैं, तो इन परमाणुओं से निराकार पदार्थ कैसे बन जाते हैं और फर वे निराकार पदार्थ परस्पर मलते हैं, तो आकार कैसे ग्रहण कर लेते हैं, अर्थात् साकार कैसे बन जाते हैं? यह भाव से अभाव तथा अभाव से भाव कैसे हो जाता है?

निम्न बिन्दुओं पर भी स्थिति स्पष्ट करने का कष्ट करें-

(1) आपने आकाश निराकार बताया है। यह प्रकृति के परमाणुओं से बना है। इसी तरह वायु भी निराकार है, अग्नि जब प्रकट होती तब साकार होती है, अन्यथा निराकार। यह क्यों है?

(2) मेरे वचार से प्रलयकाल में जब प्रकृति अपने वशुद्ध रूप में होती है, तब निराकार ही होती है और ईश्वर तथा जीव निराकार होते ही हैं। फर निराकार प्रकृति से साकार जगत् कैसे बना?

(3) मह र्ष दयानन्द जी ने बताया है क साकार चीजें असीम नहीं होती, बल्कि जीवात्माएँ भी संया वाली हैं, चाहे वे मनुष्य की गनती से बाहर हों। ऐसी अवस्था में आकाश या अवकाश रूप आकाश असीम है या ससीम है?

(4) वायु ससीम है या असीम?

(5) क्या ईश्वर के अतिरिक्त अन्य भी कोई तत्त्व ऐसा है, जो असीम हो?

कृपया, समाधान करने का कष्ट करें।

– इन्द्र संह पूर्व एस.डी.एम. **29-** नई अनाज मण्डी, भवानी (हरियाणा) चलभाषः – **9416057813**

समाधानः– परमेश्वर ने यह संसार अपने सामर्थ्य से मूल प्रकृति को लेकर बनाया है। संसार के बनाने में परमेश्वर नि मत्त कारण और प्रकृति उपादान कारण है। स्थूल जगत् के बनने की प्र क्रया मह र्ष क पल ने अपने सांय दर्शन में दी है-

सत्त्वरजतमसां सायावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभय मद्रियं पञ्चतन्मात्रेयः स्थूलभूतानि......।। सां.- 1.61

सत्त्व, रज, तम- इन तीन वस्तुओं से मलकरजो एक संघात है, उसका नाम प्रकृति है। उस प्रकृति से महतत्त्व बुद् ध, उस महतत्त्व से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्रा अर्थात् सूक्ष्म भूत- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द , दस इन्द्रियाँ तथा ग्यारहवाँ मन, पाँच तन्मात्राओं से पाँच स्थूल भूत अर्थात् पृ थवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और इन पाँच महाभूतों से यह दृश्य जगत्।

प्रकृति से जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह आकार वाला होता है, क्यों क प्रकृति स्वयं आकार वाली है, जो गुण कारण में नहीं होते, वे कार्य में भी नहीं होते। यदि ऐसा होने लग जाये, तो अभाव से भाव की उत्प त्त माननी पड़ेगी, जो द्रव्यात्मक पदार्थों में कभी घट ही नहीं सकता। मह र्ष दयानन्द ने भी प्रकृति को आकार वाला माना है। मह र्ष लखते हैं-''.......वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं, कन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।'' – स. प्र. स. 8

आपने जो कहा क ''मेरे वचार से प्रलयकाल में जब प्रकृति अपने वशुद्ध रूप में होती है, तब निराकार ही होती है।'' यह वचार ऋ ष के वचार से नहीं मल रहा है। यदि ऐसा मान भी लें तो अभाव से भाव की उत्प त्त वाली बात हो जायेगी, जो क युक्त नहीं है। ऊपर जो लखा क प्रकृति से उत्पन्न पदार्थ आकार वाले होते हैं, इस कथन से आकाश निराकार कैसे सद्ध होगा- यह प्रश्न खड़ा हो जायेगा। इसके लए मेरा कथन है क जो आपने परोपकारी के जिज्ञासा समाधान-**93** की चर्चा की है, उसमें साकार निराकार की तीन परिभाषाएँ लखी हैं, उनको यहाँ पुनः उद्धृत करता हूँ-

1. साकार वह है, जो प्रकृति से बना हुआ, इसके अतिरिक्त निराकार।
2. साकार वह, जिसमें रूप, रस, गन्धादि पाँचों गुण प्रकट हों, इससे भन्न अर्थात् जिसमें पाँचों गुण प्रकट न हों, वह निराकार।
3. साकार वह, जिसमें केवल रूप गुण प्रकट रूप में हो, अर्थात् जो आँखों से दिखाई दे वह साकार, इससे भन्न निराकार।

इन परिभाषाओं के आधार से पहली परिभाषा के अनुसार देखें तो जो प्रकृति से बना आकाश है, वह भी साकार होगा। जहाँ आकाश को निराकार कहा है, वहाँ सापेक्ष रूप से कहा है। आकाश पाँच भूतों में सबसे सूक्ष्म है, उसको हम केवल शब्द के आधार से अनुमान लगाकर जान पाते हैं। इसी प्रकार वायु को स्पर्श से जान पाते हैं। रूप क ी दृष्टि से तो ये निराकार ही कहलाएँगे।

हाँ, जिस अवकाश रूप आकाश की बात ऋ ष करते हैं, जो क प्रकृति से नहीं बना, वह तो निराकार ही है और यह अवकाश रूप आकाश असीम है। इन आकाश, वायु आदि के असीम- ससीम के वषय में हम इतना ही कह सकते हैं क ये पदार्थ प्रकृति से बने होने केकारण ससीम हैं। शेष बाद में लखेंगे।

– ऋ ष उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

जीवात्मा वा मनुष्य की मृत्यु और परलोक’ - मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 30, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

महाभारत के एक अंग भगवद्-गीता के दूसरे अध्याय में जन्म व मृत्यु वषयक वैदिक सद्धान्त को बहुत सरल व स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कया गया है। गीता के इस अध्याय में कुछ प्र सद्ध श्लोकों में से 3 श्लोक प्रस्तुत हैं। यह तीन श्लोक गीता के दूसरे अध्याय में क्रमांक 22, 23 तथा 27 पर हैं जिन्हें प्रस्तुत कर रहे हैं। ‘वासां स जीर्णानि यथा वहाय नवानि गृहणाति नरोऽपरा ण। तथा शरीरा ण वहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।**22**।।’, ‘नैनं छिन्दन्ति शस्त्रा ण नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।**23**।।’ तथा ‘जातस्य हि धुरवो मृत्युध्र्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शो चतुमर्ह स।।**27**।।’ इनका अर्थ है क मनुष्य जैसे पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण कर लेता है वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर में चली जाती है। तेइसवें श्लोक में बताया गया है क शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसको सुखा नहीं सकती अर्थात् प्रत्येक स्थिति में यह आत्मा अपरिवर्तनीय रहती है। सत्ताइसवें श्लोक का अर्थ है क पैदा हुए मनुष्य की मृत्यु अवश्य होगी और मरे हुए मनुष्य का जन्म अवश्य ही होगा। इस जन्म व मरण रूपी परिवर्तन के प्रवाह का निवारण नहीं हो सकता। अतः जन्म व मृत्यु होने पर मनुष्य को हर्ष व शोक नहीं करना चाहिये। गीता के इन श्लोकों में जो ज्ञान दिया गया है वह जन्म व मृत्यु की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत कर रहा है। संसार में हम सर्वत्र इन कथनों का पालन होते हुए देख रहे हैं।

संसार में हम प्रतिदिन मनुष्यों व अन्य प्रा णयों के बच्चे व सन्तानों का जन्म होता हुआ देखते हैं। हम यह भी देखते हैं क मानव व अन्य प्रा णयों का शशु समय के अनुसार बालक, कशोर, युवा, प्रौढ़ व वृद्ध होता है। वृद्धावस्था भी स्थाई नहीं होती। कुछ वर्षों बाद रोग व दुर्घटना आदि कोई कारण बन जाता है और मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के समय हम मृतक के लये शोक वा दुःख व्यक्त करते हैं और उसकी आत्मा की शान्ति व सद्गति के लए प्रार्थना करते हैं। ऐसा प्रायः सभी मतों व धर्मों के लोग करते हैं। जो लोग ईश्वर व आत्मा के पृथक अस्तित्व को नहीं मानते, वह भी मृत्यु होने पर दुःखी होते हैं। इसका कारण यह है क मनुष्य व उसके परिजन नहीं चाहते क उनमें से कसी की मृत्यु हो। हां, रोग आदि होने व अ धक समय तक स्वस्थ होने के स्थान पर अस्वस्थता के वकराल हो जाने पर अवश्य ही लोग ववशता में यह कहते हैं क यदि इसकी मृत्यु हो जाये तो यह इन दुःखों से छूट सकता है। इन सब पर वचार करने से यह वदित होता है क जिन लोगों के परस्पर परिचय व सम्बन्ध होते हैं उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम व मोह उत्पन्न हो जाता है। मलने पर सुख का अनुभव होता है व अलग होने पर दुःख होता है चाहे यह वयोग दोनों के जी वत होने पर ही हो अर्थात् एक दूसरे से कुछ समय के लए दूर जाने से हो। स्थाई रूप से वयोग अर्थात् मृत्यु का दुःख अ धक होता है। मृत्यु के समय पर हमारे प्रय जन का भौतिक शरीर

तो हमारे ही पास रहता है परन्तु उस शरीर में स्थित एक चेतन तत्व जीवात्मा के न रहने पर उसका शरीर निश्चेष्ट हो जाता है। शरीर के प्रति यद्य प प्रयजनों को यह वश्वास होता है क जिस व्यक्ति व पदार्थ से उनका प्रेम सम्बन्ध था वह यह शरीर नहीं, वह इससे भन्न अन्य कोई था जो अब इसमें नहीं है और यह शरीर उसके न रहने से अब उनके कसी काम का नहीं है। शरीर से कुछ समय बाद दुर्गन्ध उत्पन्न होने लगती है जिसको अपने से दूर करना ही होता है। पर्यावरण प्रदुषण आरम्भ हो जाता है जिसके रोकने के लए सर्वोत्तम उपाय उसका गोघृत, केसर व कस्तूरी व वनौष ध आदि सुगन्धित पदार्थों से उसे काष्ठ की चता में जलाकर पंचतत्वों में वलीन कया जाता है। बहुत से लोग इस सर्वोत्तम प्र क्रया को तत्वतः व यथार्थतः नहीं जानतेख् अतः वह अन्य प्रकार से अन्त्येष्टि करते हैं जिसमें उनकी कुछ साम्प्रदायिक भावनाये व अज्ञान भी होता है। अब प्रश्न यह है क शरीर से चेतन जीवात्मा कैसे निकलती है व कहां जाती है?

इस प्रश्न का उत्तर जानने के लए वैदिक ज्ञान के प्राचीनतम व प्रमा णक होने के साथ ही यह हमारा सहायक होता है। वैदिक ज्ञान के अनुसार यह समस्त संसार सत्व, रज व तम गुणों वाली अति सूक्ष्म मूल जड़ प्रकृति का वकार है जिसे ईश्वर अस्तित्व में लाता है। सृष्टि की रचना का कारण जीवों के पूर्वजन्मों के कर्म होते हैं जिनका भोग करना जीवात्माओं के लए शेष रहता है। इन भोग करने वाले कर्मों के अनुसार ही ईश्वर जीवात्माओं को नाना प्रकार की योनियों में जन्म देता है। जिन-जिन योनियों में जिसको जन्म मलता है, उन-उन योनियों में रहकर जीवात्मा अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का भोग करते हैं। भोग करने के बाद मृत्यु आने पर जो कर्म भोग करने के लए शेष रह जाते हैं उनके अनुसार फर नया जन्म होता है। मनुष्य योनि एकमात्र ऐसी योनि है जिसमें मनुष्य पूर्वजन्मों के कर्मों को भोगता भी है और नये शुभ व अशुभ कर्मों को करके उनका संचय कर आत्मा की उन्नति व अवनति करता है। इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं क धर्मात्मा मनुष्य जन्म में आत्मा की उन्नति करते हैं और धर्महीन लोग अवनति कर दुःखों के भागी बन परजन्मों में दुःखों को भोगते हैं। जीवात्मा को मनुष्य जन्म में यह सु वधा भी दी गई है क वह ईश्वरीय ज्ञान वेदों का अध्ययन करे, वेद वहित कर्मों ब्रह्मचर्य पालन, ईश्वरोपासना अर्थात् ईश्वर के गुणों का ध्यान व चन्तन, यज्ञादि कर्म, माता- पता-आचार्य आदि की सेवा व सत्कार, सभी प्रा णयों के प्रति दया, हिंसा का पूर्ण त्याग, समाज व देश का उपकार आदि कार्य करे। यह सभी कर्म मनुष्य को बार-बार के जन्म व मृत्यु के चक्र से छुड़ाकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं। मोक्ष को प्राप्त जीवात्मा को अन्य जीवात्माओं की तरह बार-बार जन्म व बार-बार मरण की स्थिति से नहीं गुजरना पड़ता। मोक्ष की यह अव ध 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों की होती है। यह मोक्ष की अवस्था भी जीवात्मा का श्रेष्ठतम परलोक है। जिन जीवात्माओं के मनुष्य जन्म में वेद व वैदिक मान्यताओं के अनुसार श्रेष्ठ कर्म नहीं होते उनकी गीता के श्लोकों के अनुसार पुर्नजन्म होता है। मृत्यु के बाद जीवात्मा की आकाश व वायुमण्डल में स्थिति, उसके बाद पता व माता के शरीरों में प्रवेश, गर्भावस्था में शरीर के निर्माण के बाद जन्म व जन्म से आगे मृत्यु का समय कसी भी जीवात्मा का परजन्म व परलोक होता है। हम इस संसार में मनुष्यों की सुख-दुःख व सु वधा व असु वधाओं सहित शरीर के सौन्दर्य व शक्तियों के अनुसार भन्न- भन्न स्थितियों को देखते हैं। इनमें से कुछ संसार व समाज निर्णीत हैं और कुछ ईश्वर द्वारा निर्धारित हैं। ईश्वर व संसार द्वारा निर्धारित हमारी परिस्थितियां ही हमारे

पूर्वजन्म का परजन्म या परलोक है। जिस प्रकार हमारा यह जन्म व स्थिति हमारे पूर्वजन्म का परलोक है उसी प्रकार से हमारा अगला जन्म इस जन्म के कर्मानुसार श्रेष्ठ व निम्न मनुष्य योनि व गो आदि वा सर्प आदि योनियों में भी हो सकता है। यही हमारे इस जन्म का परलोक होगा।

मुक्ति भी जीवात्मा का परलोक ही होती है। मुक्ति वषयक मह र्ष दयानन्द के यथार्थ वचार प्रस्तुत कर रहे हैं। (प्रश्न) मुक्ति कस को कहते हैं? (उत्तर) जिस में छूट जाना हो उस का नाम मुक्ति है। (प्रश्न) कस से छूट जाना? (उत्तर) जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं। (प्रश्न) कससे छूटना चाहते हैं? (उत्तर) दुःख से। (प्रश्न) छूट कर कस को प्राप्त होते हैं और कहां रहते हैं? (उत्तर) सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं। (प्रश्न) मुक्ति और बन्धन कन कन बातों से होता है? (उत्तर) परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अ वद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने, और सत्यभाषण, परोपकार, वद्या, पक्षपातरहित न्याय, धर्म की वृद् ध करने, वैदिक पद्धति के अनुसार परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, वद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सब से उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से मुक्ति और इनसे वपरीत ईश्वर की आज्ञा भंग करने आदि काम से बन्ध अर्थात् जन्म-मरण रूपी बन्धन होता है। (प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा वद्यमान रहता है? (उत्तर) वद्यमान रहता है। (प्रश्न) कहां रहता है? (उत्तर) ब्रह्म में। (प्रश्न) ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचाचरी होकर सर्वत्र वचरता है? (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उस को कहीं रुकावट नहीं, वज्ञान, आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र वचरता है। (प्रश्न) मुक्त जीव का स्थूल शरीर रहता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं रहता। (प्रश्न) फर वह सुख और आनन्द का कैसे भोग करता है? (उत्तर) उसके सत्य संकल्पादि स्वाभा वक गुण, सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिक संग नहीं रहता, उनसे भोग करता है।

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते कन्तु अपने स्वाभा वक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गंध के लये घ्राण, संकल्प- वकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लये बुद् ध, स्मरण करने के लये चत्त और अहंकार के अर्थ अहंकाररूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और संकल्पमात्र शरीर होता है। जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है। (प्रश्न) उस की शक्ति कतने प्रकार की और कतनी है? (उत्तर) मुख्य एक प्रकार की शक्ति है, परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, ववेचन, क्रया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, वभाग, संयोजक, वभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गंध ग्रहण तथा ज्ञान इन 24 चैबीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव हैं। इन शक्तियों से मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति व भोग करता है। जो मुक्ति में जीवात्मा का लय होता तो मुक्ति का सुख कौन भोगता? और जो जीव के नाश ही

को मुक्ति समझते हैं वे तो महामूढ़ हैं क्योंक मुक्ति जीव की यह है क दुःखों से छूट कर आनन्द स्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना।

मृत्यु और परलोक का सं क्षप्त ववरण हमने प्रस्तुत कया है। वस्तार से जानने के लए सत्यार्थप्रकाश का नवम समुल्लास द्रष्टव्य है। मह र्ष दयानन्द वेदों व वैदिक साहित्य के महान ज्ञाता- वद्वान और योग की सद् ध ब्रह्म वा ईश्वर साक्षात्कार को प्राप्त योगी थे। हमारा ज्ञान व अनुभव उनसे बहुत निम्न व अनेकानेक भ्रान्तियों से युक्त है। जिस प्रकार हम ज्ञान व वज्ञान में प्रमा णत वद्वानों की पुस्तकों पर वश्वास करते हैं उसी प्रकार हमें मह र्ष दयानन्द के वचनों के अनुसंधान युक्त वा स्वानुभूत होने पर भी वश्वास करना चाहिये। उन्होंने केवल भाषण व ग्रन्थ ही नहीं लखे अ पतु अपनी समस्त शक्षाओं को अपने जीवन में चरितार्थ भी कर दिखाया था। अतः मानवता के आदर्श मह र्ष दयानन्द के मार्ग व शक्षाओं को यदि हम अपनायेंगे तो लाभ में रहेंगे अन्यथा वर्तमान व भावी जन्मों में दुःखों से बच नहीं सकते। इसी के साथ इस लेख को वराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

मनुष्य और अनेक प्राणी योनियों में जीवात्माओं के जन्म का कारण’-मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 30, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

यदि हम अतीत की बातें छोड़कर वर्तमान संसार में वद्यमान मनुष्यादि अनेक प्राणी योनियों में जीवात्माओं के जन्म पर वचार करें तो हम देखते हैं क सभी प्रा णयों में जन्म व मृत्यु का सद्धान्त काम कर रहा है। हमसे पहले व बाद में जन्में अनेक मनुष्य और अन्य प्रा णयों को हमने समय समय पर मरते हुए देखा है। सृष्टि की आदि से वर्तमान समय तक अनेक प्राणी योनियों में अनन्त संख्या में प्रा णयों के जन्म हुए हैं, सब अपना जीवन काल पूरा करते हैं और उसके बाद सभी प्रा णयों की मृत्यु हो जाती है। इससे यह सद्धान्त बना है क जन्म लेने वाले सभी प्रा णयों की कुछ समय व वर्षों के बाद मृत्यु अवश्यमेव होती है। वेद, शास्त्र और कर्म-फल वज्ञान के व शष्ट ज्ञाता हमारे ऋ षयों ने यह सद्धान्त दिया है क मनुष्य व अन्य प्रा णयों के अपने कसी जन्म में मृत्यु से पूर्व तक कये गये शुभाशुभ कर्मों, जिनका फल भोगा नहीं गया हो, उनको भोगने के लए नाना योनियों में जीवात्माओं के जन्म होते हैं। इस कारण से भन्न जन्म का अन्य कोई कारण नहीं हो सकता। जो लोग

इस सद्धान्त को नहीं मानते उन्हें वचार करना चाहिये क इस संसार में हमें सर्वत्र नियम देखने को मलते हैं। ऋतु परिवर्तन नियमों के अनुसार होता है, ब्रह्माण्ड के सभी पण्ड गतिशील हैं जो क वज्ञान के नियमों के अनुसार हो रहा है। इन नियमों का आधार व आदि कारण ईश्वर व परमात्मा है। अति सूक्ष्म एक परमाणु तक में भी वज्ञान के नियमों के अनुसार गति व क्रयायें होती हैं तो फर मनुष्य का जन्म व मरण का कारण भी अवश्य ही कसी सद्धान्त व नियम पर आधारित है, यह ज्ञात होता है। ऋ षयों ने अपनी साधना व गहन चन्तन से कर्म-फल सद्धान्तों पर वचार कया और वेद व अन्य ऋ षयों के बनाये शास्त्रों के आधार पर यह निश्चित कया है क कसी भी मनुष्य व प्राणी के पूर्वजन्मों के शुभ व अशुभ कर्म ही इस मनुष्यादि जन्म के कारण हैं। यह सद्धान्त पूर्ण युक्तिसंगत एवं ज्ञान-तर्क- वज्ञान से युक्त व पो षत है। इसमें अन्ध वश्वास व अज्ञान जैसी कोई बात नहीं है। जिनको यह सद्धान्त समझ में नहीं आता व जो इसे नहीं मानते उन्हें इस सद्धान्त का अ धक अध्ययन, वचार व चन्तन करने की आवश्यकता है।

मनुष्य व सभी प्रा णयों के जन्म में जीवात्मा, ईश्वर सहित प्रकृति की भी भू मका है। ईश्वर हमें जन्म देने वाली सत्ता का नाम है। जिस प्रकार माता- पता मनुष्य आदि के जन्म में अपनी भू मका निभाते हैं, उसी प्रकार ईश्वर भी मृत्यु के पश्चात जीवात्मा को उसके कर्मानुसार माता- पता का चयन कर उनसे जीवात्मा के जन्म की प्र क्रया पूरी कराता है। यदि परमात्मा यह कार्य न करे तो कोई भी जीवात्मा जन्म न ले सके। जीवात्मा तो जन्म की इस पूरी प्र क्रया में घटने वाली घटनाओं व क्रयाओं से पूरी तरह अपरि चत व अन भज्ञ रहता है। ईश्वर अपने वधान के अनुसार जीवात्मा को एक शरीर से निकाल कर उसके भावी माता- पता के शरीर में प्र वष्ट कराता व उनसे उसे जन्म दिलाता है। जन्म होने के बाद से जीवात्मा का शरीर वृद् ध को प्राप्त होता है और माता- पता-आचार्यों व वद्वानों से ज्ञान अर्जित कर वह जीवात्मा वा मनुष्य शुभाशुभ कर्मों में प्रवृत्त रहकर अपने पूर्वजन्म के अव शष्ट कर्म=प्रारब्ध को सुख व दुःख के रुप में भोगता है। लगभग ऐसी ही स्थिति मनुष्येतर सभी प्रा णयों के साथ होती है। इससे यह निश्चित है क मनुष्य योनि में जीवात्मा के कर्म ही उसके भावी जन्म की नींव का कार्य करते हैं और उनके भोग व नवीन कर्मों से भावी जन्म के लए आधार बनता है।

मनुष्य के जन्म व मृत्यु का कारण जान लेने पर ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप को भी जानना चाहिये। ईश्वर के बारे में सारे संसार में नाना प्रकार की अज्ञानजनित भ्रान्तियां हैं। इन भ्रान्तियों के कारण मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य के यथार्थ ज्ञान से भी दूर अर्थात् भटकाव की स्थिति में रहता है। ईश्वर, जीव व प्रकृति के सत्य स्वरुप का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य अपने कर्तव्य व अकर्तव्यों को जानकर अपने जीवन के उद्देश्य को भी समझ सकता है जिससे वह उद्देश्य के अनुरुप कर्मों को करते हुए सुखों का भोग करे और मृत्यु के पश्चात उसको उसका प्रमुख उद्देश्य वा लक्ष्य 'मोक्ष' प्राप्त हो जाये। प्रथम ईश्वर के स्वरुप पर वचार कर लेते हैं। ईश्वर मुख्यतः इस सृष्टि की रचना करने, इसका पालन करने और अव ध पूरी होने पर इस सृष्टि की प्रलय करने वाली एकमात्र सत्ता है। सभी जीवात्माओं को जन्म देना भी ईश्वर के ही अधीन है। इसके स्वरुप पर वचार करें तो यह सच्चिदानन्दस्वरूप सद्ध

होती है। यह सत्य अर्थात् सत्तात्मक है, यह तो इस सृष्टि की उत्प त्त व व्यवस्था से ही सद्ध है। चेतन होना इस लए अनिवार्य है क बिना चेतन तत्व व सत्ता के कोई बुद् धपूर्ण रचना अस्तित्व में नहीं आती है। संसार में हम अनेक बुद् धपूर्वक बनाये हुए पदार्थों को देखते हैं। कसी नि र्मत पदार्थ को देखकर हमें यह अनुमान नहीं होता क यह कसी बुद् धयुक्त सत्ता द्वारा बिना वचार कये बनाये जा सकते हैं। हां, यह बात भी है क कई बार बनाने वाला प्रत्यक्ष होता है और कई बार अप्रत्यक्ष वा दूर। अप्रत्यक्ष नि मत्त कारण अर्थात् पदार्थों का निर्माता दो प्रकार का हो सकता है। एक कारण निर्माता की हमसे दूरी हो सकती है जिससे वह हमें दिखाई न दे। र चत पदार्थ का दूसरा कारण ऐसी रचनायें हो सकती हैं जो मनुष्यों व मनुष्यों के समूह से बन ही न सकें। इस श्रेणी में सूर्य, चन्द्र, ब्रह्माण्ड, अग्नि, जल, वायु आदि नाना पदार्थ आते हैं। इन्हें मनुष्यों द्वारा नहीं बनाया जा सकता परन्तु इन्हें भी बनाता कोई अवश्य है क्यों क इनकी रचना में बुद् ध अर्थात् वचार शक्ति व ज्ञान- वज्ञान का प्रयोग दिखाई देता है। ऐसे सभी पदार्थ अपौरूषेय अर्थात् मनुष्यों से इतर अप्रत्यक्ष व अदृश्य ईश्वरीय सत्ता के द्वारा बनाये गये सद्ध होते हैं। इससे अपौरूषेय सत्ता का चेतन स्वरूपवाला होना सद्ध होता है। ईश्वर आनन्दस्वरूप है, वह इस कारण से है क सुख व आनन्द रहित सत्ता कोई छोटा सा भी पदार्थ नहीं बना सकती। इसके लए उसका दुःख रहित, सुखी व आनन्दित होना आवश्यक है। अतः ईश्वर की तीन वशेषतायें वदित हैं, उसका सत्य, चेतन व आनन्द से युक्त होना। उसके अन्य गुणों में उसका निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, नि र्वकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, प वत्र, सृष्टिकर्ता होना और जीवात्माओं को कर्मानुसार जन्म–मृत्यु प्राप्त कराकर सुख व दुःख उपलब्ध कराना है। यह सं क्षप्त स्वरुप ईश्वर का वेद, शास्त्र, ज्ञान, वचार व चन्तन से सद्ध व प्राप्त होता है।

जीवात्मा के स्वरुप पर भी संक्षेप में वचार करते हैं। जीवात्मा भी सत्य, चत्त, आनन्द व सुख से रहित, इस सुख वा आनन्द के लए अन्यान्य प्राकृतिक पदार्थों व ईश्वर के सान्निध्य का आश्रय लेने वाला, अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अ वनाशी, एकदेशी, ससीम, आकाररहित, कर्मानुसार जन्म व मृत्यु को प्राप्त होने व भन्न– भन्न प्राणी योनियों में जन्म लेने वाला और इसके साथ ही वेद, शास्त्रों व वद्वान आचार्यों की संगति से ज्ञान प्राप्त कर, योग–ध्यान आदि साधना से ईश्वर का साक्षात्कार कर दुःखों व जन्म–मरण से छूटकर आनन्द को प्राप्त होने वाली सत्ता, पदार्थ व तत्व है। इसका अनुभव हम अपने स्वरुप में स्थित होकर अर्थात् स्व-अस्तित्व का चन्तन कर प्रत्यक्ष जान सकते हैं।

हम अपनी आंखों से संसार व सृष्टि को देखते हैं। यह सृष्टि परमाणुओं से बनी है। यह परमाणु भी सत्व, रज व तम गुणों वाली मूल प्रकृति के वकार हैं। मूल प्रकृति अनादि व नित्य है तथा परिमाण में मनुष्यों की दृष्टि में अनन्त परिमाण वाली है। इन्हीं को परमाणुरूप देकर ईश्वर ने इस जगत को बनाया है। सृष्टि यज्ञ का कर्ता ईश्वर है। इसका सम्पूर्ण वज्ञान उसी को वदित है जिस प्रकार कसी वैज्ञानिक खोज का ज्ञान उसके अन्वेषक को ही होता है। अन्य सामान्यजन तो उसका भोग व उपयोग ही करते हैं परन्तु उसके निर्माण की व ध व प्रयुक्त पदार्थों के गुणों का ज्ञान व बनाने की क्रया को वह वैज्ञानिक व बुद् धमान पुरुष ही मुख्यतः जानता है। इस वषय से संबं धत मह र्ष दयानन्द के वचार प्रस्तुत हैं। वह लखते हैं क प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों 'अज' अर्थात् जिन का जन्म

कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं। उस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फसता है और उस में परमात्मा न फसता और न उस का भोग करता है। प्रकृति का लक्षण है, शुद्ध, मध्य, जाड्य अर्थात् जड़ता, तीन वस्तु मलकर जो एक संघात है, उस का नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद् ध, उससे अहंकार, उस से पांच तन्मात्रा, पांच सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन। पांच तन्मात्राओं से पृ थव्यादि पांच भूत, ये चैबीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अ वकारिणी, और महत्तत्व, अहंकार तथा पांच सूक्ष्म भूत, इन्द्रियां, मन तथा स्थूल भूत, प्रकृति का कार्य और प्रकृति इनका कारण है। पुरुष न कसी की प्रकृति, उपादान कारण और न कसी का कार्य है। इस वषय में रू च रखने व अ धक जानने के लए पाठकों को सत्यार्थप्रकाश, सांख्य व वैशे षक दर्शन तथा वेद व उपनिषदों का अध्ययन करना चाहिये।

इस लेख से यह निष्कर्ष वदित होता है क मनुष्य व सभी प्रा णयों के जन्म का कारण उनके पूर्वजन्म के कर्म हैं जिनका सुख-दुःख रुपी भोग करने के लए अनेकानेक योनियों में ईश्वर जीवात्माओं को जन्म देता है। मनुष्य का जन्म पूर्व कर्मों के भोग व नये वेद वहित कर्मों को कर मोक्ष की प्राप्ति है। इन्हीं शब्दों के साथ इस लेख को वराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

‘ईश्वर को जानना और उसकी स्तुति करना आवश्यक क्यों है?’ -मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 26, 2016 LEAVE A COMMENT

हम सभी मनुष्य जीवात्मायें हैं जिन्हें ईश्वर की कृपा से मानव शरीर मला है। जीवात्मा के दो प्रमुख गुण है। पहला गुण इसका ज्ञान की क्षमता से युक्त होना है और दूसरा अपने ज्ञान के अनुरूप सत्यासत्य कर्मों में प्रवृत्त रहना है। अतः जहां ज्ञान व कर्म दोनों गुणों की अ भव्यक्ति हो वहां आत्मा की सत्ता वद्यमान होती है। मनुष्य जन्म लेने से पूर्व हम एक जीवात्मा थे और उससे पूर्व हम कहीं मनुष्यादि अनेक योनियों में से कसी एक योनि में जीवन व्यतीत कर रहे थे। वहां मृत्यु होने तक हमने जो कर्म कये थे वा जिन कर्मों का फल भोगना शेष था, उन पाप-पुण्य रूपी कर्मों के आधार पर ईश्वर ने हमें हमारे वर्तमान जीवन में मनुष्य जन्म दिया है। इस मनुष्य जीवन में हमें पूर्व जन्म के कये हुए अव शष्ट कर्मों के फलों को भोगना भी है और अगले जन्म के लये नये कर्म भी सं चत करने हैं। सुख-दुःख भोगते व नये कर्मों को करते हुए हमें अपने ज्ञान में वृद् ध भी करनी है। ज्ञान दृश्य व

अदृश्य सभी पदार्थों का करना होता है। दृश्य पदार्थों में मुख्यतः सृष्टिगत समस्त भौतिक पदार्थ आते हैं व अदृश्य पदार्थों में अनेक सूक्ष्म भौतिक पदार्थों सहित मुख्य रूप से ईश्वर व जीवात्मा आते हैं। परमात्मा ने सृष्टि की आदि में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद इन चार वेदों का ज्ञान दिया है। यदि हम वेदों के व्याकरण अष्टाध्यायी महाभाष्य पद्धति का अध्ययन कर लें और वेदों के वद्वान आचार्यों की संगति करें तो हम वेदों में निहित अभौतिक व भौतिक अथवा परा व अपरा वद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर अपने मनुष्य जीवन को अ धक उपयोगी व लक्ष्य के अनुरुप कार्यक्षम बना सकते हैं। आर्ष ग्रन्थों के हिन्दी भाष्यों को पढ़कर भी लाभान्वित हुआ जा सकता है।

प्रश्न है क ईश्वर क्या है? इसका एक उत्तर यह है क जिससे यह संसार बना है, जो इसका पालन कर रहा है तथा जिसने हमें व हमारी ही तरह अन्य सभी जीवात्माओं को जन्म दिया है, उसे परमात्मा कहते हैं। यहां धर्म की दर्शन शास्त्र वहित परिभाषा भी देख लेते हैं जिसमें बताया गया है क जिन कर्मों वा आचरण को करने से मनुष्य का अभ्युदय अर्थात् शारीरिक व सामाजिक उन्नति हो तथा मृत्यु होने पर जन्म–मरण से छूटकर निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो उसे धर्म कहते हैं। मनुष्य की शारीरिक व सामाजिक उन्नति व निःश्रेयस की प्राप्ति कराने वाली सत्ता का नाम ईश्वर है। ईश्वर ने जीवात्माओं को अतिशय सुख देने वा दुःखों की सर्वथा निवृ त्त करने के लए ही इस संसार को बनाया है। ईश्वर को जानने के लए मह र्ष दयानन्द व र्णत ईश्वर का स्वरुप वशेष लाभकारी है। वह अपने लघुग्रन्थ 'स्वमंन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' व आर्यसमाज के दूसरे नियम में बताते हैं क ईश्वर, ब्रहम वा परमात्मा सच्चिदानन्द लक्षण युक्त है। उसके गुण, कर्म व स्वभाव प वत्र हैं। वह सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, प वत्र, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्मिान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता व सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है।

स्तुति क्या होती है यह भी सभी मनुष्यों को जानना अभीष्ट है। स्तुति कसी पदार्थ या सत्ता के गुण कीर्तन, गुणों के श्रवण और सत्ता के यथार्थ ज्ञान को कहते हैं। ईश्वर की स्तुति के सन्दर्भ में ईश्वर के गुणों का कीर्तन, ईश्वर के गुणों का श्रवण व ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान यह सभी ईश्वर स्तुति में सम्मि लत हैं। ईश्वर की स्तुति करने से उसके प्रति प्रेम वा प्रीति होती है, यह ईश्वर स्तुति का फल है। स्तुति हम केवल ईश्वर की ही नहीं अपने माता- पता, आचार्य, वद्वानों व परोपकारी पुरूष यथा सच्चे साधु व महात्माओं आदि की भी कया ही करते हैं। इससे उनके प्रति सम्मान, प्रेम व प्रीति उत्पन्न होती है जिससे हम नाना वध लाभान्वित होते हैं। ईश्वर की स्तुति करने से भी ईश्वर के प्रति प्रीति होने से हम मनुष्यों के सभी दुर्गुण, दुव्र्यस्न और दुःख दूर होते हैं। ऐसा इस कारण से होता है क ईश्वर में यह दुख, दुव्र्यस्न और दुःखों का लेश भी नहीं है। अतः स्तुति करने से ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध, आत्मा का परमात्मा से योग व सम्पर्क, होता है जिससे हमारे बुरे गुण-कर्म-स्वभाव दूर होकर कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव प्राप्त होते हैं। यदि हम ऋ ष व यो गयों के जीवन पर एक दृष्टि डाले तो हमें ज्ञात होता है क इन महात्माओं के जीवन में दुगुणों का सर्वथा अभाव तथा श्रेष्ठ गुणों का प्रचुर मात्रा में समावेश होता है। ऋ ष, योगी, सज्जन अथवा आर्य श्रेष्ठ गुणों को धारण कये हुए मनुष्यों को ही कहते हैं। अतः सभी मनुष्यों को स्तुति अपने से

श्रेष्ठ मनुष्यों व सबसे श्रेष्ठ व श्रेष्ठतम ईश्वर की करनी चाहिये जिससे मनुष्यों को सभी दुःख दूर होकर ज्ञान, वज्ञान की प्राप्ति सहित सुखों की वृद् ध हो। यह ईश्वर स्तुति सुखों की वृद् ध करने सहित एक ऐसा कर्म वा कार्य है जिससे मनुष्य कर्मों के बन्धनों से मुक्त होकर उन्नति करता हुआ मोक्ष की स्थिति को प्राप्त हो सकता है। मह र्ष दयानन्द जी ने चारों वेदों से चयन कर आठ मन्त्रों को स्तुति-प्रार्थना-उपासनार्थ प्रस्तुत कया है जो इस वषय के श्रेष्ठ मन्त्र है जिनका पाठ करने से कालान्तर में दुःखों की निवृ त्त होकर सुखों की प्राप्ति सम्भव है।

मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है तथा फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। यदि हम ईश्वर को नहीं जानेंगे और उसकी स्तुति-प्रार्थना वैदिक योग व ध से नहीं करेंगे तो हममें लोभ, मोह व राग, इच्छा, द्वेष, काम, क्रोध, अहंकार आदि हमारे ही अन्दर हमारे मुख्य शत्रु उत्पन्न होंगे जो हमारा जीवन नष्ट कर देंगे जिसका परिणाम इस जीवन में अवनति होने से जन्म जन्मान्तर में दुःखों की प्राप्ति ही होगा। अतः दुःख के निवारणार्थ सभी मनुष्यों को सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय का स्वभाव बनाना चाहिये जिससे सत्य व असत्य का ववेक करने में सु वधा होती है। निरन्तर स्वाध्याय से मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जाता है। मनुष्यों योग व उपासना के महत्व को जानकर इनका अभ्यास करता है और शुभ कर्मों को करके जीवन के लक्ष्य अभ्युदय व निःश्रेयस को प्राप्त करता है। हमने यह कुछ बातें आर्ष ग्रन्थो मुख्यतः सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय के आधार पर लखी हैं। जो पाठक ईश्वर के स्वरुप व उसकी स्तुति के महत्व से अन भज्ञ हैं, वह व अन्य सभी इस सं क्षप्त लेख से लाभान्वित हो सकते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

‘ईश्वर व जीवात्मा वषयक यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति का सरल उपाय’-मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 26, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

ईश्वर के सत्य स्वरूप का ज्ञान वद्वानों के उपदेशों को सुनकर अथवा वेद वा वैदिक साहित्य के अध्ययन से प्राप्त होता है। पूर्ण नहीं अ पतु कुछ मात्रा में यह ज्ञान वैदिक धर्मी माता- पताओं की सन्तानों को भी परम्परा व संगति से प्राप्त हो जाता है। आजकल के धा र्मक कथाकारों के उपदेशों व प्रवचनों पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है क वह ईश्वर व जीवात्मा के

सत्य व शुद्ध स्वरुप का यथार्थ वर्णन नहीं करते अ पतु अपने अपने मत व आस्थाओं के अनुसार प्रचार करते हैं। उन्हें यह भी ध्यान रहता है क उन्हें अपने अज्ञानी भक्तों को गुरू व महापुरुष के रूप में स्था पत करना है। उनके भक्तों से संगति करने पर मनोवैज्ञानिक आधार पर ज्ञात होता है क उन्हें कुछ ऐसी शक्षा दी गई है क उनके गुरु-महाराज ही सबसे अ धक ज्ञानी हैं। अन्य गुरुओं की बात सुनना व उनकी वशेषताओं को जानने का वह प्रयास ही नहीं करते हैं। इसे ज्ञान घोटाला या बौद् धक पतन ही कह सकते हैं। ज्ञानी तो कोई भी मनुष्य हो सकता है। ज्ञानी बनने के लए यह आवश्यक है क मनुष्य सत्य ज्ञान की प्राप्ति का संकल्प धारण कये हुए हो और वह केवल एक पुरूष व गुरु से ही अपने आपको न बांधे अ पतु उसे जहां से जो भी अच्छी बात पता चले, उसे प्राप्त कर उसके आगे और अनुसंधान व अध्ययन कर उसे परिपक्व व समृद्ध करे। हम यह भी अनुभव करते हैं क सभी धा र्मक कथाकारों को अपनी अपनी मान्यताओं का एक पुस्तक अवश्य लखना चाहिये जैसा क मह र्ष दयानन्द ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' एवं 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' नाम से दो लघु पुस्तकें लखी हैं। आज भी यह पुस्तकें मात्र एक या दो रूपये में मल जाती हैं। इन पुस्तकों में धर्म के सभी सद्धान्तों को बहुत ही सं क्षप्त रूप से परिभा षत कया गया है। इसको पढ़कर जब अन्य मतों के आचार्यों व उनके अनुयायियों को सद्धान्तों व आचरणों को देखते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है क वह सभी अज्ञान व भ्रान्तियों से भरे हुए हैं। एक ही वषय में दो सत्य व दो सद्धान्त जो परस्पर वरोधी हों, सम्भव नहीं हैं। हां, सद्धान्तों की व्याख्या करने पर शब्दों में अन्तर आ सकता है परन्तु भाव समान ही रहते हैं। वज्ञान का अध्ययन करने पर हम जान पाते हैं क संसार के सभी वैज्ञानिकों का एक ही वषय पर एक ही सद्धान्त है। सारी दुनियों में वैज्ञानिक सद्धान्त एक समान है। इसे देखकर क्या यह वदित नहीं होता क मनुष्यों के धा र्मक आचरण व उपासना के सद्धान्त भी एक ही होने चाहियें। हमें तो वेद व वैदिक साहित्य पढ़कर यही उपयुक्त प्रतीत होता है क संसार के सारे मनुष्य एक ही परमात्मा की सन्तानें हैं जो अपने अपने पूर्व जन्मों के प्रारब्ध के अनुसार सुख–दुःख रूपी भोग भोगने के लए ईश्वर द्वारा उत्पन्न कये गये हैं। इनकी उत्प त्त का कारण सत्य का ग्रहण करना व असत्य का त्याग करना है। यह कार्य इनको श क्षत कर ही कया जा सकता है। उपदेश व पुस्तकों का अध्ययन भी शक्षा का एक प्रकार है। यदि मनुष्य को सत्य उपदेशक और सत्य पुस्तकें प्राप्त हो जाये तो उसे अपना जीवनयापन व सत्य सद्धान्तों पर आधारित धर्म कर्म करने में सु वधा होती है, हमें भी हुई है, और इससे सामाजिक व वैश्विक सुख व शान्ति स्था पत कये जा सकते हैं।

उपदेश, प्रवचन, व्याख्यान आदि शक्षा व ज्ञान प्राप्ति का मुख्य सरलतम मार्ग है। इसके लए सत्य उपदेशक व ज्ञानी पुरुष की आवश्यकता होती है जो निष्पक्ष, स्वार्थ रहित, ईश्वर भक्त, वेदभक्त, देशभक्त, समाजसेवी, मुमुक्षु, परोपकारी, सेवाभावी, दानीस्वभाववाला, एक ईश्वरोपासक, दम्भ व अहंकार से रहित, धन व सम्प त्त से दूर रहने वाला, अपरिग्रही, सुख–सु वधाओं का न्यूनतम मात्रा में सेवन करने वाला, पुरुषार्थी, तपस्वी स्वभाव वाला होने के साथ वेद व वैदिक साहित्य से पूर्णतया परि चत व उसका यथार्थ ज्ञान रखने वाला हो। इसके लए यह भी आवश्यक है क वह संसार के सभी मनुष्यों के रंग व रूपादि के पक्षपात से रहित होकर सबको एक परमात्मा की सन्तान समझे। यदि ऐसा नहीं होगा तो न तो वह सच्चा ज्ञानी हो सकता है और न ही वह उसका प्रचार कर सकता है। आजकल के धा र्मक प्रचारक प्रायः व्यासायिक प्रवृ त्त के देखे जाते हैं जिनके पास

प्रभूत धन व सम्प त्त है और जो सुखी व ठाट-बाट का जीवन बिताया करते हैं, अतः उनमें सच्चा ज्ञानी धा र्मक गुरु होने की पात्रता नहीं है। उनका जीवन ऐसा है क महाभारत काल तक के हमारे सभी ऋ षयों व तपस्वियों ने ऐसा जीवन नहीं बिताया जो आजकल के धा र्मक प्रचारकों से कहीं अ धक ज्ञानी व वद्वान थे तथा योग व समा ध तक को जिन्होंने अपने ज्ञान व पुरुषार्थ से सद्ध कया हुआ था। अतः हमें लगता है क आजकल के सभी भक्तों को अपने धर्म प्रचारकों व गुरुओं की परीक्षा लेनी चाहिये क वह कहां तक सदगुरु की भू मका में हैं अथवा नहीं। इसका सरलतम उपाय यह है क सभी धा र्मक भक्त व श्रद्धालु मनुष्य मह र्ष दयानन्द का जीवन चरित पढ़े और उनके बाद हुए सच्चे धा र्मक वद्वानों व उपदेशकों जिनमें से कुछ के नाम हैं, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त वद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पं. शवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती, पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द, स्वामी सर्वानन्द सरस्वती, पं. भगवद्दत्त, पं. रामनाथ वेदालंकार, स्वामी वद्यानन्द सरस्वती, स्वामी अमर स्वामी सरस्वती, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती आदि के जीवन चरितों का अध्ययन कर व इनसे आजकल के धा र्मक गुरुओं की जीवनचर्याओं व उनकी शक्षाओं से तुलना कर सत्य को ग्रहण करें। हमें लगता है क शायद कोई भी आधुनिक गुरु इन महापुरुषों के जीवन चरित के अनुरुप नहीं मलेगा। यदि इन पूर्व हुए महापुरूषों के जीवन चरित व इनके ग्रन्थों वा उपदेशों का अध्ययन कर लया जाये तो फर कसी को धा र्मक गुरु बनाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। वह पाठक व अध्येता स्वयं ही गुरु बन जायेगा और उसे ईश्वर व जीवात्मा का सत्यस्वरुप ही नहीं अ पतु इनकी प्राप्ति का सत्य व सरलतम मार्ग भी ज्ञात हो जायेगा और इससे उनका जीवन सफल हो सकेगा। हां, इसके साथ-साथ योग की शक्षा के लए कसी योगाभ्यासी गुरु की शरण लेकर उससे ध्यान की व ध सीखी जा सकती है जिससे की वह ईश्वर का ध्यान कर समा ध अवस्था को प्राप्त होकर अपने जीवन को अ धकतम सुख व परमानन्द की अवस्था में पहुंचा सके।

उपदेशक के बाद ईश्वर व जीवात्मा वषयक सत्य ज्ञान की प्राप्ति का उपाय सत्य ज्ञान पर आधारित पुस्तकें हैं। इस श्रेणी में बहुत सी पुस्तकें हो सकती है। मह र्ष दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश इन सभी पुस्तकों में प्रमुख एक पुस्तक है। इसके बारे में देश व वश्व में भ्रान्तियां वद्यमान हैं जिन्हें वेदेतर ध र्मयों ने अपने अज्ञान व स्वार्थ के कारण फैलाया है। निष्पक्ष भाव से वचार करने पर लगता है क संसार के जितने मत-मतान्तर हैं वहां ईश्वर व जीवात्मा का सत्य व शुद्ध स्वरूप उपलब्ध न होने तथा इसी कारण से उपयुक्त उपासना पद्धति न होने के अभाव में उनके अनुयायी अ धकांश व सभी मनुष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के लाभ से वं चत रहते हैं और उनका यह मनुष्य जन्म व्यर्थ व भावी जन्मों में अवनति एवं दुःख के रूप में ही परिणत होता है। इसके लए केवल एक ही उपाय है क सभी मतों के वद्वान अपने धा र्मक आग्रहों का त्याग कर सच्ची जिज्ञासा से ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप व सत्य व्यवहार व आचरण को जाने और ईश्वर की इच्छा व अपेक्षा के अनुरूप ही अपना जीवन बनायें। यही मनुष्य का कर्तव्य व धर्म हैं। वैदिक धर्म इसी धर्म का मूर्त रूप है जिसका प्रचार मह र्ष दयानन्द जी ने कया। उनके समकालीन व परवर्ती लोगों ने अपने-अपने अज्ञान पर आधारित परम्परागत व रूढ़िगत वचारों के कारण उनका बहिष्कार ही कया। परम्परा व रूढ़ियों के कारण मनुष्य पर जो प्रभाव देखा जाता है वह यही होता है क मनुष्य

अपनी मथ्या मान्यताओं के वरुद्ध सत्य मान्यताओं पर वचार भी करना नहीं चाहता व उनकी उपेक्षा ही करता है। इस पर यदि उसके सबसे निकट परिवारजन व तथाक थत धर्मगुरू आदि उसे सत्परामर्श न दें तो फर उससे सत्य को ग्रहण कराना और असत्य को छुड़वाना असम्भव कार्य हो जाता है। यही हमें वर्तमान समय में हो रहा अनुभव होता है।

लेख को वराम देने से पूर्व हमें यह बताना है क धर्म का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा की उन्नति से है। आत्मा की उन्नति मनुष्य की धन-सम्प त्त व शारीरिक स्वास्थ्य की उन्नति से सर्वथा पृथक है। आत्मा की उन्नति का तात्पर्य मनुष्यों के श्रेष्ठ आचरणों व ईश्वर की सरलतम व कारगर व ध से उपासना करने से है जिससे उपासना से होने वालो लाभों का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव व आचरण में परिल क्षत हो। इसका तात्पर्य है क मनुष्य सत्यवादी व सत्याचारी बने। मथ्याचार का सर्वथा त्याग कर दे जिसमें रिश्वत, भ्रष्टाचार, दूसरे के अ धकारों का हनन, अन्याय व शोषण आदि कार्य व आचरण सम्मि लत हैं। इसके वपरीत धा र्मक मनुष्य वह होता है जो श्रेष्ठाचार करते हुए स्वात्मोन्नति सहित देश, समाज सहित प्राणी मात्र की उन्नति व वकास में सहयोगी होता है। इसके लए सच्चे महापुरूष मह र्ष दयानन्द जी आदि के जीवन से प्रेरणा लेते हुए वेद, उपनिषद, दर्शन, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका व योग आदि का अध्ययन व उसका जीवन में आचरण करना ही सर्वांगीण मनुष्योन्नति का कारण है। आजकल यह सभी ग्रन्थ हिन्दी में भाष्य व अनुवाद सहित उपलब्ध हैं जिनसे लाभ उठाया जा सकता है। हम आशा करते हैं क पाठक लेख में प्रस्तुत वचारों से सहमत होंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

‘ईश्वर मनुष्यों सहित सभी प्रा णयों का सदा सर्वदा का साथी और रक्षक है’ -मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 26, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

तर्क और युक्ति के आधार से यह सद्ध कया जा सकता है क इस संसार का रचयिता और पालक ईश्वर है। जो लोग इस वचार से सहमत न हों, उनका यह दायित्व बनता है क वह इसका प्रतिवाद वा वैकल्पिक उत्तर युक्ति व तर्क पूर्वक दें। हमारा अनुमान है क इसका अन्य कोई उत्तर नहीं हो सकता। कहने के लए तो तथाक थत बुद् धजीवी व कुछ वैज्ञानिक कह दिया करते हैं क यह संसार अपने आप बना है और स्वतः ही चल रहा है। ईश्वर नाम

की कोई चेतन व सर्वव्यापक पृथक सत्ता इसको नहीं चली रही है। उनको जब इस मथ्या सद्धान्त को सद्ध करने के लए कहा जाता है तो वह इसे सद्ध नहीं कर पाते और मौन धारण कर लेते हैं। मौन रहने का अर्थ ही है क यह उनका कपोल कल्पित वचार है जो कसी ठोस कारण व प्रमाण पर आधारित नहीं है। हम जानते हैं क संसार में मुख्यतः दो प्रकार के पदार्थ, तत्व या सत्तायें हैं। पहली चेतन सत्ता है व दूसरी जड़। प्रकृति जड़ है और ईश्वर व जीव चेतन हैं। जड़ प्रकृति से कसी सार्थक व सप्रयोजन रचना के लए कसी बुद् धयुक्त चेतन सत्ता की आवश्यकता होती है। यदि रचना करनेवाली चेतन सत्ता नहीं है तो रचना व कार्य नहीं हो सकता। हम अपने रसोई घर का उदाहरण ले सकते हैं। घर में रोटी बनाने का सभी सामान है। परन्तु रोटी तभी बनेगी जब एक चेतन सत्ता अर्थात् रोटी बनाने का जानकार उन सब वस्तुओं का सदुपयोग कर व ध के अनुसार रोटी का निर्माण करें। इसी प्रकार सत्व, रज व तम गुणों वाली सूक्ष्म प्रकृति एक जड़ तत्व है जो रोटी के समान ही इस कार्य सृष्टि का उपादान कारण है। यदि चेतन नि मत्त कारण नहीं होगा तो सृष्टि की रचना नहीं हो सकती। यह ब्रह्माण्ड कसी एकदेशी, अल्प ज्ञानी व अल्प सत्ता के द्वारा नहीं रचा जा सकता। इसकी रचना के लए एक सर्वदेशी वा सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सृष्टि रचना का ज्ञान रखने वाली सत्ता की आवश्यकता है। इन सभी गुणों से पूर्ण सत्ता को ईश्वर कहते हैं। इस सत्ता का प्रमाण समा ध में इसका प्रत्यक्ष वा साक्षात्कार होने पर मलता है। मह र्ष दयानन्द सहित उनके पूर्ववर्ती अनेक ऋ ष व योगी ध्यान व समा ध द्वारा ईश्वर का प्रत्यक्ष वा साक्षात्कार कर चुके हैं। आज भी अनेक योगी ध्यान की साधना करते हैं और उनमें से कुछ ईश्वर का साक्षात्कार करने में सफल भी होते हैं। यदि कसी वैज्ञानिक, नास्त वक व हठी स्वभाव के व्यक्ति को यह बात अस्वीकार्य लगे तो उसे योगदर्शन के अनुसार ध्यान व समा ध का अभ्यास करना चाहिये और यौ गक जीवन के अनुसार सभी यम व नियमों का पूर्ण पालन करना चाहिये तो उनकी शंका दूर हो जायेगी। सृष्टि की रचना वषयक वैदिक वचार व सद्धान्तों को जानने के लए सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभू मका सबसे सरल व सुलभ ग्रन्थ हैं। इनकी सहायता से भी सृष्टि की रचना में ईश्वर की भू मका व उसके नि मत्त कारण होने को भलीभांति जाना जा सकता है।

इस लेख में हम चर्चा कर रहे हैं क ईश्वर सभी प्रा णयों का रक्षक है। जब हम अपने अस्तित्व पर वचार करते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है क हमारा जन्म यद्य प माता- पता से हुआ अवश्य है परन्तु सन्तान के शरीर की रचना व उसमें जीवात्मा का प्रवेश माता- पता नहीं कराते। यह कार्य कौन करता है, उसी को ईश्वर कहते हैं। हम स्वयं भी पता है और हम यह अच्छी तरह से जानते हैं क पता अपनी सन्तान के भौतिक शरीर का निर्माता व उसमें आत्मा का प्रवेश कराने वाली सत्ता नहीं है। यदि ईश्वर ने यह कार्य कया है, यह सत्य सद्ध है, तो वह अवश्य ही हमारी रक्षा भी करेगा। इसका प्रमाण यह है क प्रत्येक रचनाकार अपनी सभी रचनाओं की स्वयं ही रचना करता है। अतः इस सृष्टि व इसके प्रा णयों की रचना ईश्वर से होने के कारण इनकी रचना का दायित्व ईश्वर पर ही है जो क सर्वशक्तिमान होने से यह कार्य सुगमता से करने में पूर्ण समर्थ है। हम देखते हैं क माता- पता अपनी सन्तान को जन्म देते हैं और उसकी यथासम्भव रक्षा भी करते हैं। आचार्य अपने शष्य को ज्ञान देता है और शष्य पर कसी भी प्रकार की आप त्त आने पर आचार्य उसकी सभी प्रकार से रक्षा करता है। ईश्वर ने हमें उत्पन्न कया वा हमें इस संसार में भेजा है, तो रक्षा का दायित्व भी उसी के ऊपर है।

ईश्वर ने ही हमारे प्राणों के लए स्वास्थ्यप्रद वायु को बनाया और उसे पूरी पृ थवी पर उपलब्ध कराया है। इसी प्रकार उसने हमारी आंखों को देखने में सहायता के लए सूर्य का निर्माण कया जो न केवल हमारे आंखों को सार्थक करता है वहीं अनेकानेक हितकारी प्रयोजनों को भी सद्ध करता है। इसी प्रकार जल शरीर की आवश्यकता है। ईश्वर ने ही जल की रचना कर उसे उपलब्ध कराया है और उसके शरीर में प्रवेश के लए मुखान्द्रिय की रचना की है। यह सब कार्य ईश्वर ने हमारे शरीर व हमारी रक्षा के लए ही कये हैं। यदि वचार को जारी रखा जाये तो यह सद्ध होता है क ईश्वर अनेकानेक प्रकार से हमारी रक्षा करता है। यदा-कदा अपथ्य के कारण हम रोगी हो जाते हैं, तब ऐसे समय में हमारे शरीर की आन्तरिक शक्तियां रोग को ठीक करने में लग जाती हैं। यदि हम रोगकाल में अन्न का भोजन त्याग दें और गोदुग्ध व कुछ फलों या तरकारियों की तरी वा प्रव पदार्थ का ही प्रयोग करें तो हम ठीक हो जाते हैं। बड़े रोगों से बचाव के लए ईश्वर ने ओष धयां भी बना कर उपलब्ध कराई हुई है जिनका ज्ञान हमें वेदों से होता है। इसके साथ हि वेदों के साक्षात्दर्शा चरक, सुश्रुत व धन्तन्तरी आदि ऋ षयों ने वेदों के आधार व अपने ववेक से आयुर्वेद के ग्रन्थों को हमें उपलब्ध कराया है जो हमें निरोग रखने में सहायक हैं जिससे हमारी रक्षा होती है।

'जाको राखे साइयां मार सके न कोए, बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय।' यह पंक्तियां हमने जीवन में अनेक बार सुनी हैं। इन पंक्तियों के शब्द पूरी तरह सत्य प्रतीत होते हैं। हमारे अपने अनुभव भी इससे पूरी तरह से मलते जुलते हैं। अनेक अवसरों पर हमारे प्राणों की रक्षा कसी दैवीय सत्ता द्वारा हुई है। यह सर्वव्यापक ईश्वर द्वारा ही की जाती है। ऐसी घटनायें घटती रहती हैं जहां मनुष्य मौत के मुंह से भी बाहर सुर क्षत निकल आता है। मह र्ष दयानन्द जी के जीवन की रक्षा भी अनेक बार हुई जब वह वप त्तयों में थे। वप त्तयों में मनुष्यों की रक्षा को ईश्वर की कृपा और उनके अपने-अपने प्रारब्ध को ही माना जा सकता है। कर्म-फल सद्धान्त के अनुसार यह वषय जटिल है जिसे इसे मनुष्य पूरी तरह जान व समझ नहीं पाता। ईश्वर न्यायकारी है और उसके ही नियमों के अनुसार जीवन में अनेक वपरीत अवसरों पर मनुष्यों की रक्षा होती प्रत्यक्ष देखी जाती है। हम भी एक बार अपने दो पहिये के वाहन सहित एक खड़ी बस के पीछे से बस के दोनों पहियों के बीच से होते हुए अगले पहियों के पास जाकर रूके थे। कुछ ही क्षण बाद जब हमें अपने जी वत होने का अहसास हुआ तो वह बस स्टार्ट होकर चल पड़ी क्यों क बस के चालक व उसके यात्रियों को दुर्घटना का ज्ञान नहीं हो सका था। हमने स्वयं को और अपनी दोपहिया गाड़ी को बचाने का प्रयास कया और बस हमारे ऊपर से निकल गई। हजारों की भीड़ ने यह दृश्य देखा तो उन्हें यह चमत्कार ही लगा। उस घटना में बिना कसी प्रकार की हानि के सुर क्षत बचना हमें ईश्वर की रक्षा व कृपा के अतिरिक्त अन्य कुछ लगता नहीं है।

वेदों में तो ईश्वर को जीवात्मा का सनातन साथी, मत्र, बन्धु, सखा, रक्षक, माता, पता, आचार्य आदि कहा गया है। उसकी रक्षा से ही हम हर क्षण जी वत व सुखी होते हैं। वेद मन्त्र कहता है क 'यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय ह वषा वधेम' अर्थात् उस ईश्वर का आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है और उसको न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःखों का

हेतु है। अतः हमें उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति करनी चाहिये। ईश्वर के वषय में वेद के यह शब्द पूर्ण सत्य हैं। इस पर वश्वास करने व इस भावना के अनुससार जीवन व्यतीत करने से लाभ ही होगा, हानि कं चत नहीं होगी। यदि इसको न मानकर जीवन व्यतीत करेंगे तो हमें भारी हानि उठानी पड़ सकती है। कसी को भय मुक्त करना भी रक्षा की ही एक वधा है। यजुर्वेद के 36/22 मन्त्र में 'यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।।' कहकर सर्वव्यापक ईश्वर स्वयं ही अपने स्तोता वा उपासक को न केवल मनुष्यों व पशुओं से ही अ पतु उसे सभी स्थानों पर भयमुक्त करने का वधान कर रहे हैं। इस प्रसंग में एक महत्वपूर्ण बात यह जानने योग्य है क ईश्वर सदा सर्वदा जीवात्मा के साथ रहता है। वह अनादि काल से जीवात्मा का हर पल और हर क्षण का साथी है और अनन्त काल तक रहेगा। वह सर्वशक्तिमान है, अतः उससे अ धक अच्छी हमारी पूर्ण रक्षा और कोई नहीं कर सकता। ईश्वर जीवात्मा का साथ कभी नहीं छोड़ता, वह सदा से हमारा साथी व मत्र है व सदा रहेगा। यह जानकर हमें अभय व निश्चिन्त होकर उसकी स्तुति व उपासना करनी चाहिये और जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहिये। इन्हीं शब्दों के साथ हम इस लेख को वराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

मनुष्य जन्म की पृष्ठभू म, कारण एवं परम उद्देश्य' -मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 20, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

संसार के सभी प्रा णयों में मनुष्य श्रेष्ठतम प्राणी है। इसका कारण मनुष्यों में सत्य व असत्य का ववेक कराने वाली बुद् ध होती है जब क अन्य प्रा णयों के पास ववेक कराने वाली बुद् ध नहीं होती। मनुष्य अन्य प्रा णयों से कुछ भन्न एक जाति है जिसमें स्त्री व पुरुष सम्मि लत हैं। आजकल जो जातिसूचक शब्दों का प्रयोग आर्य वा हिन्दू करते हैं, उसे जाति कहना वैदिक परम्पराओं एवं जाति शब्द के अर्थ के वरुद्ध है। जाति का सम्बन्ध प्रसव की समानता से जुड़ा है जिससे सभी मनुष्यों की एक ही जाति सद्ध होती है क्यों क संसार के सभी स्त्री व पुरुषों का परस्पर सम्बन्ध होने से मनुष्य सन्तान, पुत्र व पुत्री, का जन्म होता है। इसी प्रकार से पशु जाति है जिसमें गाय, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, लंगूर, बन्दर आदि अनेक प्रकार की उपजातियां है। इसमें अन्तर्जातीय सन्तानोत्प त नहीं होती अर्थात् गाय व

बैल से, कुतिया व कुत्ते, घोडे व घोड़ी आदि से ही होती है अन्यथा नहीं। अतः गाय, भैंस, घोड़ा आदि अलग-अलग पशु जाति की उपजातियां हैं। संसार के सभी मनुष्यों में समान रूप से प्रसव सम्भव होने के कारण सम्पूर्ण मनुष्य जाति एक ही जाति है। हां, गुण, कर्म व स्वभाव से इसके ज्ञानी-अज्ञानी, बली-निर्बल, अध्यापक, वैद्य व च कत्सक, सैनिक, राजा, सेवक आदि भेद हो सकते हैं। यह जातियां नहीं अ पतु गुण-कर्मानुसार वर्ण होते हैं। हम इस लेख में मनुष्य जाति की पृष्ठभू म पर वचार कर रहे हैं। मनुष्य जाति की पृष्ठभू म में मुख्य कारण एक चेतन तत्व जीवात्मा व ईश्वर की सत्ता का होना है। यह जीवात्मा अ वनाशी, अनुत्पन्न, सनातन, नित्य, अनादि सत्ता है जिनकी सृष्टि में संख्या मनुष्य के ज्ञान के अनुसार अनन्त वा असंख्य हैं। इनके अपने-अपने गुण कर्म व स्वभाव हैं। जीवात्मा एकदेशी, अनुत्पन्न, अनादि, अनुत्पन्न, अ वनाशी, अमर, नित्य, कर्म-फल के चक्र में फंसा हुआ, कर्म-फल व प्रारब्ध के अनुसार सुख-दुःख रूपी फलों के भोग के लए ही भन्न- भन्न मनुष्य, पशु, पक्षी व अन्य योनियों में जन्म लेने वाला है। यदि ईश्वर जीवात्मा को जन्म न दे तो फर इसका अस्तित्व होने के बाद भी यह अनुपयोगी होकर रह जाये। इसका स्वभाव (ईश्वरीय प्राकृतिक नियम) ही यह है क ईश्वर के द्वारा अपने पाप-पुण्य रूपी कर्मों का फल भोगने के लए इसका जन्म होता है। जन्म लेने में यह ईश्वर के पराधीन है। मनुष्य योनि में जन्म होने पर यह पाप व पुण्य रूपी कर्म करने में सफल होता है। अन्य इतर योनियां केवल भोग योनियां हैं। ईश्वर सर्वव्यापक, निराकार और सर्वान्तर्यामी रूप से जीवात्मा के प्रत्येक कर्म का साक्षी होता है। इन कर्मों का सम्मि लत परिणाम ही इसका भन्न- भन्न योनियों में जन्म होना होता है। एक योनि में जन्म लेने के लए प्रारब्ध कारण बनता है जिसके आधार पर कसी योनि वशेष में इसकी जाति अर्थात् मनुष्य, पशु व पक्षी आदि सहित आयु व सुख-दुःख रूपी भोग निर्धारित होते हैं जो ईश्वर की व्यवस्था से इसे मलते रहते हैं। जीवात्मा का सनातन अस्तित्व, एक देशी व सूक्ष्म तत्व होना, ज्ञान व कर्म इसके स्वभा वक गुण होना और ईश्वर की सभी जीवों के लए सृष्टि की रचना करने, पालन करने व जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्मानुसार भन्न– भन्न योनियों में जन्म देने की सामर्थ्य ही जीवात्मा के मनुष्य व अन्य योनियों में जन्म की पृष्ठभू म और कारण है। इसके वस्तार से अध्ययन के लए सत्यार्थप्रकाश सहित वेद, उपनिषद और दर्शन आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये।

जीवात्मा कर्मानुसार जन्म लेता है यह बात तो सृष्टि में प्रा णयों के आचार व व्यवहार को देख कर भी सत्य सद्ध होती है। अब जानने योग्य प्रश्न यह है क मनुष्य जन्म का उद्देश्य क्या है? मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य दुःखों की निवृति है। हम सभी प्रा णयों को कर्म करते हुए देखते हैं। यह सभी प्राणी सुख की प्राप्ति के लए ही सभी कर्म करते हुए प्रतीत होते हैं। प्रातः काल उठकर भ्रमण, आसन, व्यायाम व प्राणायाम करना स्वास्थ्य के लए आवश्यक होता है। यह स्वास्थ्य ही सुख का आधार है। यदि स्वास्थ्य अच्छा नहीं होगा तो मनुष्य को दुःख होता है। शरीर आदि व्या धयों से ग्रस्त हो जाता है और शीघ्र मृत्यु का ग्रास बन जाता है। अतः हमारे सभी कर्म मुख्यतः स्वास्थ्य व सुखों की प्राप्ति व भोग सहित दुःखों की निवृति के लए ही कये जाते हैं फर भी संसार का कोई मनुष्य यह दावा नहीं करता क वह पूर्णतया सुखी है। सुख का परिणाम ही दुःख होता है। अ धक भोजन कर लया तो उदर वकार होने से दुःख शीघ्र या कुछ वलम्ब से सामने आ जाता है। सुख के लए धनोपार्जन करने में भी जो पुरुषार्थ कया जाता है वह भी कष्टसाध्य ही होता है। अर्जित धन की रक्षा

करना भी सबके लए सम्भव नहीं होता। अनेक प्रकार के दुःख जो धनिक लोगों में धन व सम्प त्त के कारण होते हैं, समाज में देखने में आते हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी दुःख भी सभी मनुष्यों को समय समय पर आते जाते रहते हैं, जिनसे बचना दुष्कर है। अतः संसार में मनुष्य जन्म लेकर भी कोई व्यक्ति ऐसा देखने में नहीं आता जिसे कोई दुःख न हो। सबसे बड़ा और अन्तिम दुःख मृत्यु का होता है। मृत्यु के बाद पुनः जन्म की प्र क्रया में पता-माता के शरीर में जाना और वहां दस माह तक शरीर निर्माण की प्र क्रया में रहने व माता के गर्भ में उलटा लटका रहने सहित मल-मूत्र आदि पदार्थों के सान्निध्य में रहना भी सुख की नहीं दुःख की ही स्थिति है। अतः दुख की निवृ त्त के सभी सांसारिक साधन उपयोगी नहीं हैं। मृत्यु आदि दुःख से बचने के लए ही मह र्ष दयानन्द व भगवान बुद्ध ने अपने सुखी पारिवारिक जीवन का त्याग कर दुःख के स्वरूप को जानने एव उसको दूर करने के उपायों को जानकर उनके पालन हेतु कठोर तप कया। मह र्ष दयानन्द इस कार्य में सफल हुए। उन्होंने जो ज्ञान व साधन जाने व प्राप्त कये और जिनका उन्होंने अपने निजी जीवन में उपयोग व प्रयोग अर्थात् आचरण कया, उससे सारे संसार को लाभान्वित कया। वह चाहते तो अपना कल्याण करते और समा ध का असीम आनन्द भोगते परन्तु परोपकार के लए उन्होंने अपनी सभी उपलब्धियों को सार्वजनिक ही नहीं कया अ पतु इसका प्रचार व प्रसार करने में अपने जीवन का एक एक क्षण बिना कसी निजी प्रयोजन व लाभ के व्यतीत कया और अन्त में प्राण भी दे दिए।

मह र्ष दयानन्द जी ने जो ज्ञान व ववेक प्राप्त कया वह उनके सभी ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। उसका निष्कर्ष है क जीवात्मा के दुःखों की पूर्ण की निवृ त्त सद्धर्म के पालन और मोक्ष की प्राप्ति में होती है। सद्धर्म मनुष्यों के सत्य कर्तव्यों को कहते हैं। यह सभी सत्कर्तव्य वेदों व वैदिक साहित्य में उपलब्घ होते हैं जिनका सरलीकरण मह र्ष दयानन्द ने अपने वेदभाष्य सहित सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, संस्कार व ध व आर्या भ वनय आदि अनेक ग्रन्थों में कया है। इसको संक्षेप में इस प्रकार जाना जा सकता है क पाप वा असत्य कर्मों का फल दुःख होता है और पुण्य वा सत्य कर्मों का फल सुख होता है। यदि हम सकाम सत्य व पुण्य कर्म भी करेंगे तो भी हमारा एक के बाद दूसरा जन्म होता रहेगा। इसके लए मनुष्य को वेद वहित सत्य कर्मों को करना है और साथ ही ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना सहित अग्निहोत्रादि कर्म, माता- पता-आचार्य-गुरू- वद्वान आदि की सेवा व सत्कार एवं सभी प्रा णयों के प्रति अहिंसा का भाव रखते हुए उनके पोषण में सहायक होना है। योग ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना को ही कहते हैं। इसके सद्ध होने का अर्थ है समा ध में ईश्वर का साक्षात्कार होना। यह ईश्वर साक्षात्कार तभी सम्भव होता है जब जीवात्मा पर अं कत सभी पाप व असत्य कर्मों के संस्कार रूपी मल- वक्षेप-अहंकार नष्ट व दग्ध-बीज हो जाते हैं। यह स्थिति ईश्वर का ध्यान करने, ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभावानुसार अपना आचरण सुधारने वा ईश्वर के गुणों के अनुरूप करने व अपना सारा समय परोपकार व दु खयों की सेवा में लगाने पर ही प्राप्त होती है। समा ध अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है और ईश्वर के निरन्तर आनन्द रूपी सान्निध्य को प्राप्त कर उसमें ही आनन्द को भोगता है। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य, लक्ष्य वा परम उद्देश्य है। मह र्ष दयानन्द इसी मार्ग पर चले और कृतकार्य हुए। हमारे सभी ऋ ष-मह र्ष-योगी-सन्त भी इसी मार्ग का अवलम्बन अपने-अपने जीवन में करते रहे। यह साधना व कार्य कुछ लोगों के ही करने के लए नहीं अ पतु सभी मनुष्य, स्त्री वा पुरुष इसके अ धकारी व पात्र हैं। कभी न कभी तो हमें इसे

अपनाना ही है क्यों क इसके बिना जीवात्मा की मोक्ष की यात्रा पूरी नहीं होती। वह कर्मफल बन्धन में पड़ा रहता है। यह मोक्ष प्राप्ती ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। यहां यह भी बता दें क हम सभी मनुष्यों को इससे पूर्व संसार की सभी योनियों में अनेक-अनेक बार जन्म हो चुके हैं। अनेक बार हम मोक्ष में भी गये है और अव ध पूरी होने पर लौटे हैं। वहां से आकर हम फर कर्म के बन्धनों में फंस कर वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुए हैं। यह तथ्य सत्य है जिसे जानकर सद्कर्मों सहित ईश्वर की सच्ची वैदिक व ध से उपासना में जुट जाना चाहिये जिससे कालान्तर में मोक्ष प्राप्त हो सके। अन्य मार्ग मंजिल पर पहुंचाने के स्थान पर लक्ष्य से दूर करते हैं। अतः केवल वैदिक साधनों का ही अवलम्बन करना उ चत है।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

जिसका जन्म उसकी मृत्यु और जिसकी मृत्यु उसका जन्म होना अटल है’ -मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 20, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है क जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु ध्रुव अर्थात् अटल है और जिसकी मृत्यु होती है उसका पुनर्जन्म वा जन्म होना भी ध्रुव सत्य है। हम अपने जीवन में यदाकदा अपने परि चतों व अपरि चतों की मृत्यु का समाचार सुनते रहते हैं। जिस व्यक्ति से हमारा सम्पर्क व सम्बन्ध होता है उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर हमें दुःख होता है। वगत दो दिन में आर्यसमाज से सम्बन्धित हमारे तीन परि चत बन्धुओं की मृत्यु हुई है। इसके अतिरिक्त हमने जिस वभाग में कार्य कया वहां के तीन सेवानिवृत व्यक्तियों की भी वगत लगभग 11 दिनों में मृत्यु हुई है। शास्त्रों में मृत्यु को अ भनिवेश क्लेश कहा गया है। यह मृत्यु व इसका समाचार सभी के लए दुःखदायी होता है। इस दुःख में कुछ रहस्य छिपा हुआ हो सकता है। पहला सन्देश तो यह लगता है क अन्यों की मृत्यु हमें अपने बारे में सोचने का संकेत करती है। यह बताती है क एक दिन हमें भी मरना है। यह हमें सावधान करती है क हम सोच वचार कर भ वष्य में होने वाली अपनी मृत्यु का निवारण करें। यही मुख्य सन्देश हमें मृत्यु का प्रतीत होता है।

क्या मृत्यु का निवारण हो सकता है? इसका उत्तर यह है क सदा के लए तो नहीं अ पतु कुछ समय के लए मृत्यु को कुछ पीछे धकेला जा सकता है। यदि हम अपनी दिनचर्या जिसमें हमारा भोजन, व्यायाम, आसन, प्राणायाम, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना उपासना सम्मि लत

है, उन पर ध्यान दें तो निश्चय ही हम मृत्यु के समय को कुछ आगे बढ़ा सकते हैं। ऐसा करके व साथ हि मृत्यु के बारे में अ धक से अ धक वैदिक वचारों का ज्ञान व रहस्यों को जानकर तथा ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना से हम सामान्य लोगों को होने वाले मृत्यु के भय से अभय ना सही, भय को कुछ कम तो कर ही सकते हैं। अतः मृत्यु की उपेक्षा न करके इसके वषय में यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने के लए प्रयत्नशील होना चाहिये। हमारा वचार है क यह कठिन कार्य नहीं है। मह षर् दयानन्द ने इस कार्य को सरल कर दिया है। उन्होंने अपने लए मृत्यु की जिस ओष ध को खोजा था व जिससे वह अभय बने थे, उसे उन्होंने समाज व देश के सभी लोगों के कल्याण के लए वतरित व प्रचारित कया था।

वह ओष ध जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है क हम शरीर नहीं अ पतु एक चेतन सत्ता 'जीवात्मा' हैं। चेतन पदार्थ में ज्ञान व कर्म, यह दो गुण स्वभा वकः होते हैं। ईश्वर भी चेतन सत्ता है, अतः उसमें भी ज्ञान व क्रया अनादि काल से वद्यमान है। सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी व सूक्ष्मतम होने सहित वह सर्वज्ञ भी है। जीवात्मा एकदेशी व सूक्ष्म सत्ता है परन्तु ईश्वर जीवात्मा से भी सूक्ष्म वा सूक्ष्मतम है। हमारी आत्मा वा जीवात्मा एकदेशी होने से अल्पज्ञ है और ईश्वर सर्वव्यापक होने सर्वज्ञ है। हमें अपनी आत्मा वषयक ज्ञान या तो सीधा ईश्वर से समा ध अवस्था में वा वेदों के अध्ययन से प्राप्त होता है। वेदों का अध्ययन कर हम ईश्वर व आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर अपनी बौद् धक व आत्मिक उन्नति कर सकते हैं। ईश्वर की बनाई सृष्टि को देखकर व समझकर तथा पदार्थों के गुणों को तर्क की कसौटी पर कस कर भी कुछ कुछ ज्ञान प्राप्त कया जा सकता है। हमने वज्ञान का बहुत अ धक तो नहीं परन्तु कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कया है। अध्यात्म के ग्रन्थों को भी पढ़ा है। इससे हमें जीवात्मा व ईश्वर के वषय को जानने व समझने में सहायता मली है। जीवात्मा अनादि, अजन्मा, अनुत्पन्न, अल्पज्ञ, चेतन, सूक्ष्म अणु के समान वा बिन्दूवत, ईश्वर की कृपा से मनुष्य आदि जन्मों को प्राप्त कर कर्म करने में स्वतन्त्र व उसके सुख-दुःख रूपी फलों को भोगने में परतन्त्र है। अशुभ व बुरे कर्म को छोड़कर केवल निष्काम शुभकर्मों को करके जिसमें ईश्वरोपासना सहित अग्निहोत्र, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, माता- पता-आचार्य- वद्वानों-संन्यासी आदि अति थयों की सेवा-सत्कार सहित परोपकार वा दान आदि कार्य सम्मि लत हैं, मनुष्य कर्म-फल के बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। मोक्ष दुःखों की पूर्णतया वा सर्वथा निवृ त्त, जन्म व मरण से मुक्ति व ईश्वर के सान्निध्य में आनन्द को भोगने की स्थिति को कहते हैं। मोक्ष में मुक्त जीवात्मा सर्वव्यापक व सर्वत्र आनन्द से परिपूर्ण ईश्वर में वचरती है और ईश्वर के आनन्द का भोग करती हैं। यह ऐसा ही है क कसी योग्यतम व्यक्ति को उसकी इच्छा की सभी वस्तुयें सुलभ कराना। इन बातों को जान लेने पर मनुष्य का मृत्यु का भय कम वा समाप्त प्रायः हो जाता है। मृत्यु के भय की ओष ध सद्ज्ञान ही है जो मह षर् दयानन्द ने प्राप्त कया था और उससे उन्होंने मृत्यु के भय पर वजय प्राप्त की थी। यह समस्त ज्ञान उन्होंने सत्यार्थप्रकाश सहित अपने सभी ग्रन्थों में प्रस्तुत कया है जो सभी के जानने योग्य है।

ईश्वरोपासना के सन्दर्भ में मह षर् दयानन्द ने लखा है क ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना से जीवात्मा के अ वद्या-प्रधान काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मल छंटते वा नष्ट प्रायः

होते हैं और जीवात्मा के गुण ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव के अनुरूप होते जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि की संगति होने पर शीत का निवारण होता है और जैसे ताप से आतुर पुरूष का ताप जल में स्नान कर दूर होता है उसी प्रकार से ईश्वरोपासना से मनुष्य के बुरे गुण-कर्म-स्वभाव छूट कर ईश्वर के गुणों के अनुरूप होते जाते हैं। इतना ही नहीं अ पतु जीवात्मा का बल इतना बढ़ता है क पहाड़ के समान मृत्यु आदि भयंकर दुःखों को प्राप्त होने पर भी मनुष्य घबराता नहीं है। क्या यह छोटी बात है? अतः मृत्यु के भय से मुक्त होने वा उस पर वजय प्राप्त करने के लए मनुष्यों को वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय सहित वैदिक व ध से ही ईश्वरोपासना व यज्ञ आदि कार्य करने चाहिये जिनसे इच्छित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

जब हम संसार की आदि से अब तक जन्म लेने व मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्यों पर वचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है क सृष्टि की आदि से अब तक खरबों लोग उत्पन्न हुए व मरे, यहां तक की श्री राम व श्री कृष्ण, हनुमान जी व अर्जुन के समान महावीर व योद्धा तथा कोटिशः ऋ ष व मुनि हुए परन्तु कोई भी अपने आप को मृत्यु के पाशों से मुक्त नहीं रख सका, तो यह वदित व सद्ध हो जाता है क हम सभी को कुछ समय बाद संसार से निश्चय ही जाना है। मृत्यु होनी है, यह तो जन्म के समय ही निश्चित हो जाता है, बस वर्ष, महीने व दिन की जानकारी हमारे पास नहीं होती। यह आज, अगले क्षण व कालान्तर में कभी भी हो सकती है। काल का निश्चय न होने के कारण ही शास्त्रकारों ने कहा है क हमें मनुष्य जीवन में जो काम करने हैं उसे शीघ्रतम कर लेना चाहिये। हमारे इन प्राणों का कोई भरोसा नहीं की कब यह साथ छोड़ दें। अनेक कामों में मुख्य काम ईश्वर, आत्मा व संसार को जानना, अपनी आत्मा के मलों को दूर करना व शुभ संस्कारों से आत्मा को उन्नत करना है। जितनी जल्दी यह काम पूरा होगा उतना ही शीघ्र इससे हमारे वर्तमान व भ वष्य के जीवन में दुःखों की निवृति व सुख लाभ होगा। अतः लक्ष्य की प्राप्ति में लग जाना ही उ चत है।

लेख को अ धक वस्तार न देते हुए गीता के दूसरे अध्याय के 22, 23 तथा 27 वें श्लोकों को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें आत्मा व मृत्यु के सम्बन्ध में अनमोल वचार उपलब्ध हैं। 'वासां स जीर्णानि यथा वहाय नवानि गृहणाति नरोऽपरा ण। तथा शरीरा ण वहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।**22**।।', 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्रा ण नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।**23**।।', तथा 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शो चतुमर्ह स।।**27**।।' इनका अर्थ है क मनुष्य जैसे पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण कर लेता है वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर में चली जाती है। शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसको सुखा नहीं सकती अर्थात् प्रत्येक स्थिति में यह आत्मा अपरिवर्तनीय रहती है। पैदा हुए मनुष्य की मृत्यु अवश्य होगी और मरे हुए मनुष्य का जन्म अवश्य ही होगा। इस जन्म व मरण रूपी परिवर्तन के प्रवाह का निवारण नहीं हो सकता। अतः जन्म व मृत्यु होने पर मनुष्य को हर्ष व शोक नहीं करना चाहिये। गीता के इन श्लोकों में जो दर्शन दिया गया है वह जन्म व मृत्यु की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत कर रहा है।

जीवात्मा व इसके जन्म व मृत्यु वषयक रहस्यों को जानकर मनुष्यों को मृत्यु के दुःख से यथासम्भव निवृत होना चाहिये। मृत्यु, जो क सत्य है, होनी ही है, जिसे कोई टाल व बदल नहीं सकता, उसको यथार्थ रूप में जानकर शोक व दुःख से मुक्त होना ही कसी ववेकी पुरुष की सफलता है। हम आशा करते हैं क पाठक लेख में प्रस्तुत आत्मा व मृत्यु वषयक वचारों को पढ़कर लाभान्वित होंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

'ईश्वर का प्रमा णक ववरण कहां से प्राप्त हो सकता है?' -मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 20, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

संसार के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो सबसे पुराना इतिहास भारत का ही उपलब्ध होता है। भारत का इतिहास 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार 115 वर्ष पुराना है। लगभग 5,200 वर्ष पहले कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध हुआ था। इससे देश का महा वनाश हुआ। इसमें सैनिक व राजा तो मरे ही, इसके साथ अव्यवस्था के कारण हमारा प्रभूत वैदिक ज्ञान व वज्ञान भी ध्वस्त वा वलुप्त हो गया। यह महाभारत युद्ध की सबसे बड़ी क्षति थी। सौभाग्य से कुछ ऋ ष बच गये। उनकी कुछ वर्षों तक, मह र्ष जै मनी तक, परम्परा चली। इसके बाद भी मह र्ष दयानन्द की तरह कुछ ऋ ष हुए जिन्होंने ग्रन्थों के प्रणयन द्वारा वैदिक धर्म व संस्कृति की रक्षा के प्रयास कये। द क्षणात्य स्वामी शंकराचार्य जी से पूर्व कसी ऐसे ऋ ष की जानकारी उपलब्ध नहीं है जिसने मह र्ष दयानन्द की भांति, लेखन, उपदेश, शास्त्रार्थ, शंका समाधान आदि द्वारा, वेदों का प्रचार कया हो। शंकाराचार्य जी ने भी वेदान्त, उपनिषद व गीता का अपनी अद्वैतवादी वेदान्त की वचारधारा के अनुसार प्रचार कया। महाभारत के बाद जो ऋ ष हुए उन्होंने अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त जैसे कई ग्रन्थों का निर्माण कया। आयुर्वेद के ग्रन्थ चरक व सुश्रुत भी भारत की प्राचीन सम्पदा हैं। यह उस समय के ग्रन्थ हैं जब यूरोप के देश अस्तित्व में भी नहीं आये थे। इसी प्रकार से भारत में उपनिषद, दर्शन आदि अनेकानेक ग्रन्थों की रचना हुई। मनुस्मृति, वाल्मी क रामायण, महाभारत ग्रन्थ भी कसी प्रकार से बच गये। मुगलों ने यद्य प तक्ष शला व नालन्दा आदि के वशाल पुस्तकालयों को अग्नि को सम र्पत कर दुर्भावना से नष्ट कया, शायद ही उन्होंने हमारे धर्म ग्रन्थों को नष्ट करने का कहीं कोई अवसर छोड़ा हो, तथा प दैव कृपा से बहुत सा साहित्य सुर क्षत रहा, जिसके लए हमारे इन ग्रन्थों के रक्षक पण्डित व अन्य सभी बन्धु समस्त आर्य-

हिन्दू जनता की कृतज्ञता व धन्यवाद के अ धकारी हैं। यह भी प्रसंग से बाहर जाकर लख दे क जिन अपने लोगों ने भारत पर राज्य कया व कर रहे हैं, वह वैदिक साहित्य व इसके यथार्थ महत्व से सर्वथा अन भज्ञ ही रहे हैं। इनकी रक्षा व प्रचार का जो कार्य राज्य स्तर पर कया जाना चाहिये था, वह नहीं कया गया।

वेदों को कण्ठस्थ करने की परम्परा के कारण मानव की सबसे गौरवपूर्ण एवं महनीय बौद् धक सम्पदा 'वेद' सृष्टि के आरम्भ से अब तक सुर क्षत व अपने मूल रूप में वद्यमान है। इसी प्रकार से खगोल ज्योतिष के भी ग्रन्थ भारत में वद्यमान हैं। हमारे देश व देश से बाहर के पुस्तकालयों में प्राचीन ग्रन्थों की बड़ी संख्या में पाण्डु ल पयां भी वद्यमान हैं जिनकी ओर हमारे सस्कृत के जानकार वद्वानों का ध्यान नहीं है। अभी तक कसी सरकार का इस ओर ध्यान नहीं गया। इन प्राचीन पाण्डु ल पयों के अध्ययन व अनुवाद आदि से जो लाभ मल सकता था वह नहीं हो पा रहा है। वोटरों को लुभाने की ओर ही सरकारों का मुख्य ध्यान रहता है। यदि यह पाण्डु ल पयां वश्व के कसी अन्य देशों में होती जिनको उनके पूर्वजों ने लखा होता तो उन्होंने इन सबका अपनी-अपनी भाषाओं में अनुवाद व मूल्यांकन अवश्य कया होता। भारत अपनी प्राचीन बौ़द् धक धरोहरों व सम्पदा का मूल्यांकन करने व उसका महत्व जानने में शायद कम ही रू च लेता है। ऐसा लगता है क हमारे देश के प्रायः सभी बुद् धजीवी पश्चिम के भौतिकवाद के प्रभाव से ग्र सत हैं, इसी कारण प्राचीन ज्ञान के अध्ययन की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। सौभाग्य से हमारे आर्य वद्वानों पं. भगवद्दत्त, पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं. यु धष्ठिर मीमांसक आदि ने इस दिशा में यथासम्भव कार्य कया।

ईश्वर के प्रमा णत ज्ञान के सम्बन्ध में हमारा प्राचीन साहित्य ही सर्वा धक महत्वपूर्ण व सहायक है। संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है। वेद में ईश्वर सहित जीवात्मा व प्रकृति के यथार्थ ज्ञान पर भी प्रकाश डाला गया है जिसका वस्तार उपनिषदों व दर्शन आदि ग्रन्थों में मलता है। यह ज्ञान महाभारतकाल के बाद की परिस्थितियों से प्रभा वत होकर लुप्त सा हो गया था। उन्नीसवीं शताब्दी में मह र्ष दयानन्द (1825-1883) का आ वर्भाव हुआ। उन्होंने अपने अपूर्व ब्रह्मचर्य और पुरुषार्थ से वेदों का पूर्ण ज्ञान, जो क कोई मनुष्य जान सकता है, ग्रहण कया और ईश्वर की प्रेरणा व अपने ववेक से इस कार्य को मानवता का सर्वा धक कल्याणी जानकर इसका अनेक प्रकार से प्रचार व प्रसार कया। वेद ही एकमात्र ऐसे सर्वप्राचीन प्रमा णक ग्रन्थ हैं जिसमें ईश्वर का पूर्णतया सत्य व यथार्थ स्वरुप व र्णत व उपलब्ध है। अन्य मनुष्यकृत ग्रन्थों में से अ धकांश में ईश्वर का जो स्वरुप व र्णत है वह वष सम्पृक्त अन्न के समान त्याज्य हैं।

इससे पूर्व क हम वेदों के ऋ ष मह र्ष दयानन्द के वेदों पर आधारित ईश्वर वषयक वचार प्रस्तुत करें, हम यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के आठवें मन्त्र 'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्ना वरं शुद्धमपाप वद्धम्। क वर्मनीषी परिभूः सव्यम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।' इसका अर्थ दयानन्द जी के अनुसार यह है क 'हे मनुष्यों ! जो ब्रह्म शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान्, स्थूल–सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित,

छिद्ररहित और न ही छेद करने योग्य, नाड़ी आदि के साथ सम्बन्धरूप बन्धन से रहित, अ वद्यादि दोषों से रहित होने से सदा प वत्र और जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करनेवाला कभी नही होता, सब ओर से व्याप्त है, जो सर्वत्र सब जीवों के मनों की वृ त्तयों को जाननेवाला, दुष्ट पा पयों का तिरस्कार करने वाला और अनादिस्वरूप जिसकी संयोग से उत्प त्त तथा वयोग से वनाश और जिसका माता– पता द्वारा गर्भवास, जन्म वृद् ध और मरण नहीं होते, वह परमात्मा सनातन अनादिस्वरूप अपने–अपने स्वरूप से उत्प त्त और वनाशरहित प्रजाओं के लये यथार्थ भाव से सब पदार्थों को वशेष कर बना कर वेद द्वारा प्रकाश करता है। यही परमेश्वर तुम लोगों का उपासना करने के योग्य है।'

ईश्वर का पूर्ण वस्तृत सत्यस्वरुप जानने के लए पाठकों को मह ष दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, आर्या भ वनय, वेदभाष्य, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। इसके साथ सभी उपनिषदें व योगदर्शन भी ईश्वर का सत्यस्वरुप प्रस्तुत करने के साथ उनकी प्राप्ति के उपयों पर भी प्रकाश डालते हैं। ईश्वर का वेदव र्णत सत्यस्वरुप यदि संक्षेप में सरलता से जानना हो तो वह आर्यसमाज के दूसरे नियम, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि ग्रन्थों से जाना जा सकता है। हम इन तीनों ग्रन्थों के एतद वषयक उद्धरण यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के स्वरुप का प्रकाश करते हुए मह ष दयानन्द ने लखा है क 'ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरुप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, नि र्वकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, प वत्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।' आर्यामन्तव्यामन्तव्यप्रकाश लघु ग्रन्थ में मह ष दयानन्द लखते हैं क 'जिसके ब्रहम, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव प वत्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर (कहते हैं) मानता हूं।' आर्योद्देश्यरत्नमाला में ग्रन्थकार ने लखा है क '(ईश्वर) जिसके गुण–कर्म–स्वभाव और स्वरुप सत्य ही हैं, जो केवल चेतनमात्र वस्तु तथा जो एक, अद् वतीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त, सत्य गुणवाला है, और जिसका स्वभाव अ वनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्प त्त, पालन और वनाश करना तथा सब जीवों को पाप–पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाना है, उसको 'ईश्वर' कहते हैं।'

संसार के अनेक मत-मतान्तरों में इस वैदिक मत का वरोधी व वपरीत ईश्वर का जो स्वरुप व र्णत कया गया है वह असत्य, अप्रमा णक व अ वद्याजन्य है। मह ष दयानन्द द्वारा व र्णत उपर्युक्त ईश्वर का स्वरुप वह स्वरुप है जो क एक सद्ध योगी को समा ध अवस्था में साक्षात्कार होने पर प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। इसी स्वरुप का वेदों व आर्ष वैदिक साहित्य में वर्णन है। तर्क व युक्ति से भी इसकी पुष्टि होती है। ईश्वर के इसी स्वरुप का ध्यान करने से आत्मा के मलों की निवृ त्त होने पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है। वैदिक मत के वपरीत पद्धतियों से ईश्वर वषयक पूजा व उपासना से उपासना के मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य ईश्वर के साक्षात्कार की उपलब्धि नहीं होती। इसका निभ्रान्त ज्ञान भी वैदिक साहित्य को पढ़कर व अनुमान से

जाना जाता है। हमने उपर्युक्त पंक्तियों में ईश्वर का जो वेद पो षत स्वरुप प्रस्तुत कया है वही प्रमा णक व सत्य स्वरुप है। संसार के सभी मनुष्यों को इसी स्वरुप को जानकर, वेदाध्ययन करने व ध्यान आदि साधना करने से ईश्वर की प्राप्ति जीवनकाल में ही हो जाती है। यह समा ध व ईश्वर के साक्षात्कार की अवस्था ही स्वर्ग व मोक्ष के समान सर्वा धक सुख व आनन्द की स्थिति होती है। इसको प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य व लक्ष्य है। यदि मानव जीवन में यह स्थिति प्राप्त नहीं की, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी कर लया जाये, इसकी तुलना में वह सब हेय व निम्न है। उत्कृष्ट मनुष्य जीवन वही है जिसमें आध्यात्म व भौतिकवाद का समन्वय हो। केवल भौतिकवादी जीवन अपंग ही कहा जायेगा। आशा है क लेख के वचारों से पाठक लाभान्वित होंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

‘ब्रह्मचर्य का स्वरुप व उसके पालन से लाभ’ - मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 13, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

सभी मनुष्य सुख की ही कामना करते हैं, दुःख की कामना कोई मनुष्य नहीं करता। सुख प्राप्त हों और जीवन में दुःख न आयें, इसके लए प्रयत्न करना होता है। सुख व दुःख का आधार शरीर है। यदि हमारा शरीर दुर्बल व रोगी है तो यह दुःख का धाम बन जाता है और यदि यह बलवान व निरोग है तो यह सुख का आधार होता है। दुर्बलता और रोगों से रक्षा के लए ब्रह्मचर्य एक ऐसा उपाय वा साधन है जिसे धारण करने से मनुष्य दुःखों से बच सकता है और सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है। ब्रह्मचर्य क्या है? यह शरीरस्थ सभी इन्द्रियों यथा दर्शन, श्रवण, गन्ध, रस व स्पर्श पर पूर्ण नियन्त्रण को कहते हैं। यदि हमारी कर्म इन्द्रियों के यह पांचों अवयव पूर्णतयः प वत्र हों, इनमें कं चत म लनता व वकार न हों, तो यही ब्रह्मचर्य वा इसका पालन है। जो मनुष्य अदर्शनीयों वस्तुओं का दर्शन, अश्रवणीय कथाओं का श्रवण, वपरीत व हानिकारक गन्ध, रस व स्पर्श का सेवन करता है तो उसका ब्रह्मचर्य खण्डित हो जाता है या यह बातें ब्रह्मचर्य को कुप्रभा वत व खण्डित करती हैं। हम भोजन के रूप में जो कुछ ग्रहण करते हैं उससे शरीर में भन्न- भन्न पदार्थ व धातुएं बनती हैं जिनसे शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसी ही धातुओं में से पुरुष शरीर में एक धातु वीर्य होती है। इसका शरीर में अ धक मात्रा व उत्कृष्ट अवस्था में होना शरीर व प्राणों के बल, आरोग्यता व बौद् धक व आत्मिक उन्नति का कारण व साधन होता है और इसका नाश व अपव्यय ही ब्रह्मचर्य का नाश व खण्डन होता है जो क पंचकर्मेन्द्रियों की प वत्रता व नियंत्रण न होने के कारण उत्पन्न होता है। हमारी सभी इन्द्रियां मन की प्रेरणा से इच्छित वषयों में आक षत

होती हैं। यदि मनुष्य को सत्य-असत्य वा उचित-अनुचित का ज्ञान है और मन में असत्य व अनुचित कार्यों को न करने का दृण संकल्प है तो मन इन्द्रियों के अपवित्र व हानिकारक कार्यों से बच जाता है और सुख का लाभ करता है। इस ब्रह्मचर्य की रक्षा व पालन के लिए मनुष्य को वायुसेवन, प्रभातवेला में भ्रमण सहित आसन, प्राणायाम व ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करना भी आवश्यक होता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में आयु के अनुसार ब्रह्मचर्य के तीन प्रकार लिखे हैं जिनके नाम हैं कनिष्ठ ब्रह्मचर्य, मध्यम ब्रह्मचर्य और उत्तम ब्रह्मचर्य। आज इस लेख में हम इन तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य का पाठकों के लाभार्थ इस हेतु से वर्णन कर रहे हैं कि वह इसे जान व समझ कर स्वयं लाभान्वित हों व इसका प्रचार कर धर्मलाभ प्राप्त करें।

ब्रह्मचर्य का मुख्य प्रयोजन न केवल शरीर व प्राणों को बलवान बनाना है अपितु इसका मुख्य प्रयोजन वेदादि शास्त्रों के ज्ञान व विज्ञान सहित समस्त विद्याओं का अर्जन भी है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में शास्त्रों के आधार पर लिखा है कि पांचवे वा आठवें वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला तथा लड़कियां लड़कियों की पाठशालाओं में जावें और नियम-पूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें। आठवें वर्ष से आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् एक-एक वेद के सांगोपांग पढ़ने में बारह-बारह वर्ष मिल के छत्तीस और आठ मिल के चवालीस अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ पूर्व के मिल के छब्बीस वा नौ वर्ष तथा जब तक विद्या पूरी ग्रहण न कर लेवे तब तक ब्रह्मचर्य रक्खे। छान्दोग्य उपनिषद के आधार पर ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है। प्रथम कनिष्ठ जो पुरुष अन्न-रस-मय देह और देह में शयन करने वाला जीवात्मा, यज्ञ द्वारा अतीव शुभगुणों से संगत और सत्कर्तव्य है, इसको यह कर्तव्य अवश्य है कि **24** वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रह कर वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे और विवाह करके भी लम्पटता न करें तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वास कराने वाले होते हैं। इस प्रथम वय में जो अपना सारा समय विद्याभ्यास में तपस्या करता हुआ लगाये और वह आचार्य ब्रह्मचारी को वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा निश्चय रखे कि जो मैं प्रथम अवस्था में ठीक–ठीक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहूंगा तो मेरा शरीर और आत्मा आरोग्य बलवान् होके मेरे प्राण शुभगुणों को बसाने वाले होंगे। महर्षि दयानन्द गृहस्थियों को कहते है कि तुम इस प्रकार से अपने निजी भौतिक सुखों का विस्तार करो कि जिससे ब्रह्मचारी व विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का लोप न करें अर्थात् वह भौतिक सुख-सुविधाओं की ओर आकर्षित व कुप्रभावित न हों और वह 24 वर्ष तक तो ब्रह्मचर्य का पालन कर सके। आचार्य ब्रह्मचारी को उपदेश करते हुए विश्वास दिलाता है कि यदि तू **24** वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करेगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहेगा और तेरी आयु भी **70** वा **80** वर्ष होगी।

दूसरा ब्रह्मचर्य मध्यम ब्रह्मचर्य कहलाता है। जो मनुष्य **44** वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रह कर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण**,** इन्द्रियां**,** अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होकर सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करने वाले होते हैं। यदि कोई ब्रह्मचारी प्रथम वय में जैसा स्वामीजी ने कहा है, कुछ तपश्चर्या करे तो उसका यह रुद्ररूप प्राणयुक्त मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा। स्वामीजी कहते हैं कि हे ब्रह्मचारी लोगो ! तुम इस ब्रह्मचर्य को बढ़ाओं। जैसे इस ब्रह्मचर्य का लोप न

करके ब्रह्मचारी यज्ञस्वरूप होता है, वह उसी आचार्यकुल से आता और रोगरहित होता है और जैसा यह ब्रह्चारी अच्छा काम करता है वैसा अन्य सभी को करना चाहिये।

उत्तम ब्रह्मचर्य 48 वर्ष पर्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है। जैसे 48 अक्षर का जगती छन्द होता है, वैसे ही जो **48** वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता है उसके प्राण अनुकूल होकर सकल वद्याओं का ग्रहण करते हैं। आचार्य और माता- पता अपने सन्तानों को प्रथम वय में वद्या और गुणग्रहण के लये तपस्वी कर और उन्हें तपस्वी होने का उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अखं डत ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावे वैसे अन्य भी बढ़ायें क्यों क जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर इसका लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म**,** अर्थ**,** काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

स्वामी दयानन्द जी ने ब्रह्मचर्य की उपर्युक्त तीन अवस्थाओं का वर्णन करने के बाद शरीर की अवस्थाओं का वर्णन करते हुए सुश्रुत के आधार पर बताया है क इस शरीर की चार अवस्थायें हैं। एक (वृद् ध) जो 16 वें वर्ष से लेके 25 वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की वृद् ध होती है। दूसरा (यौवन) जो 25 वें वर्ष के अन्त और 26 वें वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है। तीसरी (सम्पूर्णता) जो पच्चीसवें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। चैथी (क चंत्परिहा ण) तब सब सांगोपांग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं। तदनन्तर जो धातु बढ़ता है वह शरीर में नहीं रहता कन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है। यही 40 वां वर्ष ववाह का उत्तम समय है। अड़तालीसवें वर्ष में ववाह करना उत्तमोत्तम होता है।

मह र्ष दयानन्द ने ब्रह्मचर्ययुक्त जीवन, उसकी महत्ता व लाभों पर यह वचार सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में व्यक्त कये हैं। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त कराने वाला ब्रह्मचर्ययुक्त जीवन वैदिक आश्रम व्यवस्था के अनुसार जीवन की श्रेष्ठतम् व्यवस्था है। इससे वद्या की प्राप्ति, शारीरिक व प्राण शक्ति को बल की प्राप्ति सहित सुखी व रोगरहित दीर्घायु की प्राप्ति होती है। इतिहास में रामभक्त वीर हनुमान और भीष्म पतामह का नाम ब्रह्मचर्य के व्रत पालन के कारण अमर है। इसके बाद अखण्ड ब्रह्मचारी मह र्ष दयानन्द ही हुए हैं जिन्होंने ब्रह्मचर्य के सेवन से प्रशंसनीय शारीरिक व आत्मिक उन्नति प्राप्त की और देश व संसार का अपूर्व उपकार कया। उन्होंने जिस वैदिक वचारधारा को अपने उपदेशों, लेखों व ग्रन्थों के माध्यम से प्रस्तुत कया है, वही वचारधारा समाज, देश व वश्व में सुख व शान्ति का आधार है। उनके बताये मार्ग पर चल कर ही मनुष्य अभ्युदय व निःश्रेयस की प्राप्ति कर सकते हैं। इन्हें प्राप्त करने का अन्य कोई मार्ग नहीं है। उनका बताया वैदिक मार्ग सनातन व शाश्वत होने के साथ देश व काल से अबा धत व अप्रभा वत है। सभी मनुष्यों को उनके वचारों व वैदिक व्यवस्थाओं को जीवन में धारण कर अपना जीवन सफल करना चाहिये।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196 चुक्खूवाला-2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

‘ईश्वराधीन कर्म-फल व तद् आ श्रत सुख-दुःख व्यवस्था पर वचार’ -मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 11, 2016 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

संसार में मनुष्य ही नहीं अ पतु समस्त जड़-चेतन जगत क्रयाशील हैं। सृष्टि पंचभौतिक पदार्थों से बनी है जिसकी ईकाई सूक्ष्म परमाणु है। यह परमाणु सत्व, रज व तम गुणों का संघात है। इन्हीं परमाणुओं से अणु और अणुओं से मलकर त्रिगुणात्मक प्रकृति व सृष्टि का अस्तित्व वद्यमान है। परमाणु में इलेक्ट्रान कण भी निरन्तर गति करते रहते हैं। सृष्टि की उत्प त्त से भी पूर्व नि र्मत इन परमाणुओं में इलेक्ट्रान ईश्वरीय नियमों के अनुसार गति करते आ रहे हैं एवं प्रलय अवस्था तक यह क्रम निरन्तर चलता रहेगा। मनुष्य व सभी प्रा णयों में प्राणों का बाहर आना व अन्दर जाना निरन्तर होता रहता है। पलकें भी निरन्तर झपकती रहती हैं। जागृत अवस्था में मनुष्य का मन भी निरन्तर क्रयाशील रहता है। मन आत्मा से प्रेरणा लेता है और ज्ञान व कर्मेन्द्रियों को कर्मों में प्रवृत्त करता है। उठना-बैठना, चलना- फरना, सोना-जागना, शौच जाना, भोजन करना, मल-मूत्र का त्याग आदि भी क्रयायें एवं कर्म हैं जो जी वत रहने के लए आवश्यक हैं। इनसे भन्न कसी वषय का चन्तन वा वचार, तदनुसार शरीर को उसके अनुसार प्रवृत्त कर इच्छित परिणाम प्राप्त करना आदि भी सभी मनुष्य करते हैं। हमारे यह सभी कर्म हमारी शारीरिक, बौद् धक, सामाजिक व आत्मिक उन्नति का आधार होते हैं। हमारे अनेक कार्यों वा क्रयाओं का प्रभाव पर्यावरण-परिवेश-वातावरण व दूसरे मनुष्यों पर भी पड़ता है। इसी प्रकार से दूसरे मनुष्यों व प्रा णयों के कर्मों वा क्रयाओं का प्रभाव भी हम पर पड़ता है। उन कर्मों का यदि वभाजन व वर्गीकरण कया जाये तो मुख्यतः यह शुभ व अशुभ कर्म कहे जा सकते हैं। हमारे जिन कर्मों से हमें लाभ होता है परन्तु दूसरे निर्दोष प्रा णयों वा मनुष्यों को कसी प्रकार से हानि नहीं पहुंचती, उन्हें शुभ कर्म कहा जा सकता है और इसके वपरीत कर्मों को अशुभ कहा जा सकता है। कर्म-फल व्यवस्था से सम्बन्धित एक शास्त्रीय वचन है ‘अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं।’ अर्थात् मनुष्य को अपने कये हुए शुभ व अशुभ कर्मों के फल भोगने ही होते हैं।

कर्मफल व्यवस्था के सन्दर्भ में सृष्टि की उत्प त्त के प्रयोजन को जानना भी महत्वपूर्ण है। सृष्टि की उत्प त्त क्यों हुई? इसका उत्तर चारों वेदों एवं समस्त वैदिक व अवैदिक साहित्य के मर्मज्ञ मह र्ष दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में दिया है। सत्यार्थप्रकाश के अष्टम् समुल्लास में वह ऋग्वेद के एक मन्त्र ‘इयं वसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।’ प्रस्तुत कर इसका अर्थ करते हुए लखते हैं क जिस से यह

व वध सृष्टि प्रका शत हुई है, जो धारण और प्रलयकर्ता है, जो इस जगत् का स्वामी है, जिस सर्वत्र व्यापक सत्ता में यह सब जगत् उत्प त्त, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है। उस को, हे मनुष्य ! तू जान और दूसरे कसी को सृष्टिकर्ता मत मान। इस मन्त्र में ईश्वर की सत्ता तथा उसके सृष्टि उत्पन्न करने के कार्य को बताया गया है। ईश्वर व सृष्टि के अस्तित्व को जान लेने के बाद प्रश्न होता है क ईश्वर ने यह सृष्टि क्यों व कस प्रयोजन के लए बनाई है? सृष्टि को देखकर ईश्वर का अपना कोई निजी प्रयोजन वदित नहीं होता। हम संसार में उद्योगों को देखते हैं जहां वव ध वस्तुओं का निर्माण होता है जिसे उद्योगपति दूसरे लोगों के उपयोग व धन कमाने के लए करता है। उद्योगपति मनुष्य है अतः उसका प्रयोजन धन कमाना है व इससे अन्यों का हित भी जुड़ा, परन्तु ईश्वर मनुष्य नहीं है, वह धन व ऐसे कसी कार्य के लए सृष्टि की रचना व पालन आदि कार्य नहीं करता। उसे कसी से कसी पदार्थ की अपेक्षा भी नहीं है। हां, जीवों को सुख व दुःख का मलना इसका प्रयोजन प्रतीत होता है। ऋग्वेद के मन्त्र 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अ भ चाकशीति।।' के शब्दों तयोरन्यः व स्वाद्व त्त में कहा गया है क (तयोरन्यः) इस संसार में जीव व ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्व त्त) अच्छे प्रकार भोक्ता है। यहां कहा गया है क जीवात्मा अपने शुभ व अशुभ जो पुण्य व पाप कर्म कहे जाते हैं उनके फलों अर्थात् सुख व दुःखी रूपी भोगों को भोक्ता अर्थात् उनका परिणाम व फल को पाता व ग्रहण करता है। वेद अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर ज्ञात होता है क ईश्वर ने इस सृष्टि को जीवों के पाप व पुण्यरूपी कर्मों के फलों को प्रदान करने के लए ही अपनी सामथ्र्य से मूल-कारण प्रकृति के द्वारा इस सृष्टि की रचना की है। श्वेताश्वरोपनिषद् के श्लोक 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।' में कहा गया है क इस अनादि प्रकृति से नि र्मत सृष्टि का भोग करता हुआ अनादि जीवात्मा उसमें फंसता है। फंसने का तात्पर्य है क जीवात्मा सृष्टि में फलों व सुख की कामना से कर्म करता हुआ इसमें फंसता है अर्थात् ईश्वर की कर्म-फल व्यवस्था में बंधता है। यदि इसे उलट दिया जाये तो इसका अर्थ होता क यदि जीव संसार में सुख आदि भोगों की इच्छा से रहित होकर ईश्वरोपासना व परोपकारादि कर्मों को करता है तो वह बन्धनों में फंसता नहीं अ पतु मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' मन्त्र में ईश्वर, जीव व प्रकृति के अस्तित्व को अनादि बताया गया है। यह तीनों पदार्थ वा सत्तायें अनादि काल से वद्यमान हैं। ईश्वर को उपादान कारण प्रकृति से सृष्टि की रचना करने व इसे चलाने का ज्ञान स्वभा वक रूप से अनादि काल से है। जीवों को मनुष्य या प्रा णयों के शरीर चाहियें तभी वह अपनी ज्ञान व कर्म स्वभाव वाली सत्ता का उपयोग अर्थात् पूर्व कर्मों का भोग व नये कर्मों को कर सकते हैं। यदि सृष्टि न हो तो उनका अस्तित्व निरर्थक सद्ध होता है। यदि ईश्वर सृष्टि बनाने की सामथ्र्य रखता है, वह सृष्टि की रचना न करे तो उसका अस्तित्व होना उपयोगी नहीं और उसका ईश्वरत्व वा स्वामीत्व भी कसी काम का नहीं। इसी प्रकार से प्रकृति से यदि सृष्टि न रची जाये तो इसका अस्तित्व भी निरर्थक ही सद्ध होता है। अतः जीवों को अपने अपने प्रारब्ध का भोग और नये कर्मों को करने के लए ईश्वर द्वारा उपादान कारण प्रकृति का उपयोग कर सृष्टि की रचना करना आवश्यक है। ईश्वर कुछ जीवों को मनुष्य और कन्हीं को भन्न– भन्न

प्राणी योनियों में उत्पन्न करता है, इसका आधार जीवों के सृष्टि के पूर्व कल्पों वा पूर्वजन्मों के कर्म वा उन कर्मों का संचय रूपी प्रारब्ध होता है। यह उत्तर वैदिक दार्शनिकों ने सृष्टि वषयक तथ्यों का सूक्ष्म ववेचन करने पर पाया है। इस प्रकार से ईश्वर पक्षपात रहित न्यायकारी सत्ता सद्ध होती है। ईश्वर के सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी होने से वह सृष्टि के सभी जीवों का सभी कालों में साक्षी होता है। उसे हर जीव के हर कर्म का यथावत् अर्थात् मन व आत्मा के आन्तरिक भावों से लेकर कर्म का निर्णय करने से कर्म को करने तक का ठीक-ठीक ज्ञान रहता है, अतः उसे जीवों के कर्मों का फल देने में कसी प्रकार की समस्या व कठिनाई नहीं होती।

संसार में एक नियम काम कर रहा है क हम जो भी कर्म करते हैं उनमें से कुछ क्रयमाण कर्मों का फल हमें साथ-साथ व कुछ का कालान्तर में मलता है। जीवन के अन्त अर्थात् मृत्यु से पूर्व कर्म जिन्हें क्रयमाण कर्म कहा जाता है, उनका फल साथ-साथ मल जाता है और अव शष्ट सं चत कर्मों का फल मृत्यु तक नहीं मलता। इससे यह ज्ञात होता है क कर्मों का फल वर्तमान व भ वष्य दोनों कालों में सुख व दुःख के रूप में मलता है। इससे यह भी सद्ध है क हमारा वर्तमान का सुख व दुख हमारे कुछ वर्तमान और कुछ पूर्व समय अर्थात् भूतकाल में कये हुए कर्मों पर आधारित है। मृत्यु के समय जिन शुभ व अशुभ कर्मों का फल भोगने से रह जाता है, प्रारब्घ नामी कर्म कहलते हैं, यह प्रारब्ध ही भावी जन्म अर्थात् पुनर्जन्म का आधार है। मनुष्य के जैसे कर्म व प्रारब्ध होगा, उसी के अनुसार नये जन्म में जाति, आयु और भोग प्राप्त होंगे। योगदर्शन की यह बात तर्क एवं युक्ति संगत है। वेदों व स्मृतियों आदि के आधार पर मनुष्यों को सन्ध्या व दैनिक अग्निहोत्र यज्ञ सहित पतृयज्ञ, अति थयज्ञ तथा ब लवैश्वदेवयज्ञ करने का वधान है। इन्हें करने से हमारा वर्तमान जीवन और भावी जीवन सुधरता व संवरता है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत काल तक और उसके बाद भी वद्वानों द्वारा वेद मार्ग पर ही चलने का निर्देश दिया गया है। हमारे पूर्वज ज्ञान वज्ञान से पूर्ण सत्य का आचरण करने वाले थे, अतः उनकी युक्ति व तर्क संगत बातों को सभी मनुष्यों को मानना चाहिये। शंकालु बन्धुओं को वेद, दर्शन, उपनिषद, मनुस्मृति व सत्यार्थप्राकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर अपनी भ्रान्तियां दूर करनी चाहिये। संसार के अन्य ग्रन्थों का अध्ययन कर इस वषय का ज्ञान व समाधान नहीं होता। सभी कर्मों का फल ईश्वर देता है। कस कर्म का क्या फल होता है, यह ईश्वर को ज्ञात है जो क उसकी व्यवस्था से हमें व सभी जीवों व प्रा णयों को अवश्य मलेगा। हमें ईश्वर के पक्षपात रहित व न्यायकारी होने में पूरा वश्वास रखते हुए बुरे कर्म नहीं करने चाहिये और अपने सभी अच्छे कर्मों को ईश्वर को सम र्पत कर निश्चिन्त होना चाहिये। इसका परिणाम शुभ होगा।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के दूसरे मन्त्र में मनुष्यों को वेद वहित कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की कामना करने की शक्षा दी गई है। वेद वहित कर्मों को करने से मनुष्य अशुभ व पाप कर्मों करने से बच जाता है जिसका परिणाम दुःखों से मुक्ति व सुखों में वृद् ध होता है। वेद वहित कर्म न केवल सुखों की वृद् ध वा दुःखों की निवृति का आधार हैं वहीं इनसे मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। अतः सद्कर्मों को करने के साथ सभी मनुष्यों को इनका प्रचार करने का प्रयत्न भी करना चाहिये।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

‘एक ईश्वर, एक संसार और एक ही मनुष्य जाति वषय पर कुछ वचार’ -मनमोहन कुमार आर्य,

JANUARY 11, 2016 LEAVE A COMMENT

यह संसार पृ थवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश का जीवों के सुख-दुःख के उपयोग की दृष्टि से समुपयुक्त म श्रत रूप है। वैदिक मान्यताओं के अनुसार संसार को बने हुए 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार 115 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस अव ध में हमने संसार को बांट-बांट कर इस पर दो सौ से अ धक देश बना दिये हैं। इन सभी देशों में भन्न- भन्न भाषायें, संस्कृतियां, सभ्यतायें, रीति-रिवाज, धर्म, मत, पंथ, सम्प्रदाय आदि हैं। हमें लगता है क संसार के बांटने के प्रयास तो बहुत हुए परन्तु बटे हुए भूभागों को जोड़ने वा मलाने के प्रयास न के बराबर हुए हैं। यदि कसी ने इस प्रश्न को उठाया तो उस पर लोगों का ध्यान या तो गया ही नहीं या समकालीन लोगों ने उसकी उपेक्षा की। हमें लगता है क आज का संसार मनुष्य जीवन के उद्देश्य व लक्ष्यों के प्रति अ धकांशतः अन भज्ञ है और उसने सत्य लक्ष्य व उद्देश्यों की उपेक्षा कर केवल सुख के भौतिक साधनों को ही अपना लक्ष्य व उद्देश्य बना लया है जो क सत्य से कोसों दूर है। इस सन्दर्भ में वचार करने पर हमें यह तथ्य स्पष्ट होता है क मनुष्यों ने वगत लगभग 2 अरब वर्षों में पृ थवी को तो बांटा परन्तु वह अन्य चार प्रमुख तत्वों अग्नि, जल, वायु और आकाश को बांटने में सफल नहीं हुए। भारत, पा कस्तान और चीन को यदि हम लें तो भारत की उष्णता व शीतलता का प्रभाव अन्य दो देशों में और वहां का प्रभाव भारत पर अग्नि संचरण के सद्धान्त के आधार पर पड़ता है। इसी प्रकार से भारत की वायु अन्य देशों में व वहां की वायु भारत में वायु के प्रवाह की दिशा व भन्न- भन्न स्थानों के तापक्रम के अनुसार बहती व संचरण करती है। जल का मुख्य स्रोत समुद्र और नदियां आदि हैं। आज भी अनेक नदियां इन तीनों देशों में बहती है और कुछ ऐसी भी नदियां हैं जिनका उद्गम एक देश में है और उसका जल दूसरे दूशों में भी बह कर जाता है जिससे दोनों ही देश समान रूप से लाभान्वित हो रहे हैं। समुद्र में सूर्य की उष्णता से जो वाष्प बनती है वह सभी देशों में जाकर समान रूप से बिना पक्षपात वर्षा करती है। आकाश भी बंटा हुए कहते अवश्य हैं परन्तु वह बटा हुआ इस कारण से नहीं है क पृ थवी सूर्य के चारों ओर घूमती है और अपनी धूरी पर भी घूमती है। आकाश गति नहीं करता, इस कारण सभी देशों का आकाश पृ थवी के भ्रमण के कारण चैबीस घंटे में हर पल व हर क्षण बदलता रहता है। इससे क्या शक्षा मलती है? यह वचारणीय है। इससे यही शक्षा

 मलती प्रतीत होती है क यह पृ थवी ईश्वर द्वारा उत्पन्न सभी मनुष्य व प्रा णयों के भोग के लए बनाई गई है। ईश्वर ने पृ थवी पर एक देश बनाया था परन्तु उसकी योग्य व अयोग्य सन्तानों ने इसके टुकड़े कर दिये हैं। ईश्वर ने इसे कसी एक मनुष्य, मत, सम्प्रदाय, धर्म आदि के पृ थवी व सृष्टि को नहीं बनाया। इसका मा लक ईश्वर व केवल ईश्वर है, न क कसी मत के लोग व आचार्य आदि हैं। इस तथ्य को सभी मतों के आचार्यों व अनुयायियों को समझना चाहिये और वेदों व सत्शास्त्रों का अध्ययन कर ईश्वर की इच्छा को जानने का प्रयास करना चाहिये। उसके अनुसार आचरण करना चाहिये जिससे यह सृष्टि आजकल नरक का धाम न होकर सुख व स्वर्गधाम बन जाये।

इस लेख को लखने का हमारा अ भप्राय यह है क संसार के सभी बुद् धजीवी व पठित व्यक्ति इस सृष्टि के कर्त्ता ईश्वर व सृष्टि रचना के उसके उद्देश्य को सच्ची भावना व स्वार्थों से ऊपर उठकर जानने का प्रयास करें। इस कार्य में उन्हें वचार व चन्तन करने के साथ प्राचीन वैदिक साहित्य की सहायता लेकर इन प्रश्नों को हल करना चाहिये। मनुष्य जीवन का उद्देश्य बताते हुए वेदों के मर्मज्ञ वद्वान स्वामी दयानन्द ने कहा है क मनुष्य जीवन का उद्देश्य सत्य व असत्य का निर्णय करने व कराने के लए है, परस्पर लड़ाई-बखेड़ा करने के लए नहीं है। यह बात सभी बु िद्धजी वयों की दृष्टि में सत्य है परन्तु इस पर आचरण शायद ही कोई करता हो अन्यथा संसार की स्थिति ऐसी न होती जैसी की वर्तमान में है।

हम पाठकों का ध्यान स्वामी दयानन्द जी द्वारा की गई मनुष्य की परिभाषा पर भी दिलाना चाहते हैं। वह लखते हैं क 'मनुष्य उसी को कहना क जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख–दुःख और हानि–लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं कन्तु अपने सर्व सामथर््य से धर्मात्माओं, क चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रयाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथा प उसका नाश, अवनति और अ प्रयाचरण सदा कया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा कया करे। इस काम में चाहे उसको (यथार्थ मनुष्य को) कतना ही दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप–धर्म से पृथक कभी न होवे।' स्वामी दयानन्द जी ने इन पंक्तियों में मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार व कर्तव्यों को चत्रित कया है। संसार के साहित्य में इस परिभाषा व शब्दों को हम अद् वतीय व मनुष्य की परिभाषा को सर्वा धक उपयुक्त परिभाषा कह सकते हैं। यह सब उनके वेदों के उच्च. कोटि के ज्ञान के कारण सम्भव हुआ है। इससे वेदों के ज्ञान व शक्षा की दशा व दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है।

हमने इस लेख में कुछ वषयों वा बिन्दुओं पर वचार कया है। आशा है क पाठक इसे उपयोगी पायेंगे। मह र्ष दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के चैदहवें समुल्लास के अन्तिम कुछ वाक्यों को प्रस्तुत कर हम इस लेख को वराम देते हैं। वह लखते हैं क 'हम तो यही मानते हैं क सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभ गुण सब मतों में अच्छे हंै और बाकी वाद, ववाद, ईर्ष्या,

द्वेष, मथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो।'

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

जिज्ञासा समाधान: आचार्य सोमदेव

JANUARY 2, 2016 LEAVE A COMMENT

जिज्ञासा **2-** मैं मह ष दयानन्द जी का एक बहुत छोटा सपाही हूँ, दैनिक यज्ञ एवं दोनों समय सन्ध्या करता हूँ, कन्तु सन्ध्या करते वक्त जब मैं मनसा परिक्रमा मन्त्र का अर्थ भाव के साथ उच्चारण करता हूँ तो निन ल खत शंका घेर लेती है-

(क**)** मनसा परिक्रमा मन्त्रों में हम दिशाओं, अग्नि, सूर्य, लता आदि जड़ पदार्थों को नमन करते हैं। कृपया, भाव स्पष्ट करें।

(ख**)** हर जीव अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर आयु, देश, स्थिति आदि प्राप्त करता है, ले कन बहुत से लोग बेईमानी, छल-कपट के द्वारा भाग्य से अ धक धन अर्जित कर लेते हैं, जो क उसके प्रारध से ज्यादा होता है। कृपया, थोड़ा प्रकाश डाल कर अज्ञान दूर करें।

– सुरेन्द्र कुमार**,** डल्यू**-2-349-**बी**,** नांगल राया**,** नई दिल्ली**-110046**

समाधान– **2 (**क**)** मह ष ने सन्ध्या करने का वधान मनुष्यों के लए कया है। सन्ध्या में जिन मन्त्रों का वनियोग जिस क्रम से कया है, वह अपने आप में सन्ध्योपासना करने की वैज्ञानिक शैली है। सन्ध्या के प्रारभ से अन्त तक जिस क्रम को मह ष ने रखा है, उस क्रम से साधक स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता चला जाता है।

आर्य जगत् मूर्धन्य दार्शनिक योग्य वद्वान् पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने इस वषय पर चन्तन कर सन्ध्या वषय को लेकर 'सन्ध्या क्या, क्यों, कैसे' पुस्तक लखी है। उसके आधार पर यहाँ हम कुछ लखते हैं।

सन्ध्या को चार भागों में वभक्त करके देखें- **1**. आचमन मन्त्र से लेकर प्राणायाम मन्त्र पर्यन्त, **2**. अघमर्षण मन्त्र, 3. मनसा परिक्रमा मन्त्र और **4**. उपस्थान मन्त्र। प्रथम भाग में अपने शरीर= पण्ड में ईश्वर के गुणों का वचार करना। इन्द्रिय स्पर्श, मार्जन एवं प्राणायाम मन्त्र में इसी पर बल दिया गया है, अर्थात् शरीर, प्राण व इन्द्रियों की बलवत्ता पर बल दिया गया है। दूसरा– पण्ड से आगे ब्रह्माण्ड को देखते हुए, ईश्वर का वचार करना, जो अघमर्षण मन्त्रों में हैं। पण्ड केवल मेरा अपना है, कन्तु ब्रह्माण्ड मेरा अपना भी है और सभी प्रा णयों का भी। ब्रह्माण्ड सबके साझे का पण्ड है। तीसरा– स्थूल से सूक्ष्मता की ओर लेकर जाने का है। पण्ड

और ब्रह्माण्ड ये स्थूल हैं, इन स्थूल से सूक्ष्म मन है, उस मन को सर्वत्र दौड़ाकर सर्वत्र परमेश्वर का चन्तन करना, अर्थात् सब दिशाओं-उपदिशाओं में परमेश्वर का भान करना। चौथा– मन से भी परे आत्मा को परमात्मा के निकट ले जाना, जो क हम उपस्थान मन्त्रों के द्वारा परमेश्वर के निकट होते हैं। यह स्थिति सन्ध्या में सर्वोत्कृष्ट है। हमें इस स्थिति तक पहुँचना है, अर्थात् परमेश्वर के निकट अपनी आत्मा को ले जाना है।

अब आपकी जिज्ञासा पर वचार करते हैं। मनसा परिक्रमा मन्त्रों में जो कहा गया है क सब दिशाओं में परमात्मा अपनी व भन्न शक्ति स्वरूप से स्वामी है। सबके लए नमस्कार व अपने अन्दर व अन्य के अन्दर स्थित द्वेष को दूर करने की प्रार्थना। आपका कथन है क ''इन दिशाओं, अग्नि, सूर्य, लता आदि को नमन करने का क्या भाव है?'' इन मन्त्रों में जड़ और चेतन दोनों का ही कथन है और दोनों के लए नमस्कार करने को कहा है। इन छः मन्त्रों में अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, वष्णु और बृहस्पति, ये नाम सब दिशाओं में स्थित परमात्मा के हैं और इसी प्रकार अ सतः स्वजः और श्वित्र, ये नाम भी परमेश्वर के हैं। इन सभी स्वरूप वाले परमेश्वर को नमस्कार करना, अर्थात् उस परमेश्वर का समान करना, उससे यथायोग्य व्यवहार करना, अर्थात् उसकी आज्ञा का पालन करना। मन्त्रों में एक चेतन परमात्मा का वर्णन है, दूसरे चेतन पतर लोग, कीट-पतंग, वषधर प्राणी, वृक्ष-लता-बेल आदि हैं, इनको भी नमस्कार कया गया है। नमस्कार का अर्थ है- झुकना, नमन करना, यथायोग्य व्यवहार करना। इस यथायोग्य व्यवहार को लेकर जब नमस्कार को देखेंगे तो पतर, जो चेतन हैं, उनके लए क्या व्यवहार होगा, वह हमारे सामने आ जायेगा। कीट, पतंग, वषधर प्राणी, लता, बेल, वृक्ष आदि ये हमारे लए कतने उपयोगी हैं, इस प्रकृति के लए कतने उपयोगी हैं, ऐसा वचार करना और इनके उपयोग को देखकर वैसा ही इसका उपयोग करना, व्यवहार में लाना, इनके लए नमस्कार होगा और जो जड़ पदार्थ- आदित्य, अन्न, अशनि, वर्षा है, इनको भी नमस्कार अर्थात् इनका यथायोग्य उपयोग लेना, इनसे उपकार लेना, यह इनके लए नमस्कार होगा।

कीट, पतंग, वषधर प्राणी, वृक्ष, लता, वेल, आदित्य, अन्न, अशनि, वर्षा, इषु आदि को नमस्कार करने का अर्थ यह कदा प नहीं है क इनकी जैसे पौरा णक वर्ग पूजा करता है, वैसे नमस्कारादि करना। यह व्यवहार चेतन मनुष्यों व परमेश्वर के लए हो सकता है, अन्य के लए नहीं।

(ख) जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह पाप-पुण्य रूप कर्म दोनों ही कर सकता है। इन्हीं पाप-पुण्य रूप कर्म के आधार पर परमेश्वर जीवों को फल देता है। वर्तमान जीवन में पछले कर्मों के आधार पर व इस जीवन में कये पुरुषार्थ से जीव भोग भोगता है। पछले कर्म श्रेष्ठ थे, उसके आधार पर बहुत अच्छा शरीर, परिवार, समाज आदि मला। ये मलने के बाद भी जीवात्मा इस जीवन में वपरीत कर्म करता हुआ दुःखी हो सकता है। भले ही पछले कर्म अच्छे थे, कन्तु इस जीवन में उसने जघन्य पाप कये, तो वह इस जीवन व अगले जीवन में दुःख भोगेगा।

एक बात और यहाँ कह दें क जो कुछ हम जीवन में सुख-दुःख भोगते हैं, वह सब हमारे कर्मों का फल नहीं होता। हाँ, यह अवश्य है क सुख-दुःख फल हमारे कर्मों का होता है, कन्तु

सभी सुख-दुःख हमारे कर्मों का नहीं होता। कसी अन्य व्यक्ति के कारण या प्राकृतिक आपदा के कारण भी सुख-दुःख हो सकता है।

अब आपकी बात- जिस व्यक्ति का कर्माशय सामान्य था और इस आधार पर उसको फल भी सामान्य मलना था, कन्तु वह व्यक्ति छल, कपट, अधर्म कर-करके बहुत धनादि अर्जित कर लेता है। उस अधर्म अर्जित धन वाले व्यक्ति को दूसरे लोग देखकर यह सोचने लग जाते हैं क धर्म करने वाला दुःखी और यह अधर्म करने वाला सुखी है। ऐसा सोचना नासमझी है, क्यों क धर्म का फल सदा ही श्रेष्ठ और अधर्म का फल सदा वपरीत ही होता है।

जिस व्यक्ति ने अधर्म से साधन अर्जित कये हैं, निश्चित रूप से उसको आगे जो फल मलने वाला है, वह घोर दुःख ही होगा। मह ष दयानन्द ने इस वषय में मनु का श्लोक देते हुए लखा है-

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्रा ण पश्यति।

ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु वनश्यति।।

''जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसे तालाब के बाँध तोड़, जल चारों ओर फैल जाता है वैसे) मथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड, अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खण्डन और वश्वासधातादि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान-पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है, पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे जड़ से काटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है, वैसे अधर्मी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।'' सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 5, इस लए अधर्मी को बढ़ते देख यह कभी न सोचें क इसका जीवन अच्छा है, अ पतु यह वचारें क यह नादान परमेश्वर के न्याय को नहीं देख रहा, यह परमेश्वर के न्याय से कभी नहीं बच सकता। जो इसने छल-कपट से अर्जन कया है, उससे वह वशेष सुख तो नहीं ले पायेगा, अ पतु परमात्मा के न्याय से उसने जो छल-कपट के कर्म कये हैं, उनका वशेष दुःख अवश्य भोगेगा। अस्तु।

– ऋ ष उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

जिज्ञासा समाधान: आचार्य सोमदेव

JANUARY 2, 2016 LEAVE A COMMENT

जिज्ञासा **1-** योग के आठ अंगों में जिनका 'साधन पाद' में उल्लेख है, छठा अंग 'धारणा' है। उसमें मन को शरीर के कसी एक अंग- जैसे ना सका, मस्तक आदि पर स्थिर करने की बात कही है। इसी स्थान पर आगे ध्यान, समा ध लगती है, परन्तु 'समा ध पाद' में सप्रज्ञात समा ध के अन्तर्गत जब वतर्क रूपी स्थिति, जिसमें पृ थवी आदि स्थूल भूतों का साक्षात्कार होता है, उसमें मन को ना सका, जिह्वा आदि अलग-अलग स्थानों पर लगाने का उल्लेख है। मेरी शंका यही है क धारणा के समय जब एक स्थान चुन लया है तो फर वतर्क समा ध में अलग-अलग स्थान क्यों?

आशा है, मैं अपनी जिज्ञासा को ठीक प्रकार प्रकट कर पाया हूँ। आपसे निवेदन है क इसका समाधान देने की कृपा करें।

– ज्ञानप्रकाश कुकरेजा, **786/8,** अर्बन स्टेट, करनाल, हरियाणा-**132001**

समाधान– योग के आठ अंगों में धारणा छठा अंग है। धारणा की परिभाषा करते हुए मह र्ष पतञ्ज ल ने लखा- ''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।'' इस सूत्र की व्याया करते हुए मह र्ष दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभू मका के उपासना प्रकरण में लखा- ''जब उपासना योग के पूर्वोक्त पाँचों अंग सद्ध हो जाते हैं, तब उसका छठा अंग धारणा भी यथावत् प्राप्त होती है। धारणा उसको कहते हैं क मन को चञ्चलता से छुड़ाके ना भ, हृदय, मस्तक, ना सका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है, उसका वचार करना।'' धारणा के लए मुय बात अपने मन को एक स्थान पर टिका लेना, स्थिर कर लेना है। टिके हुए स्थान पर ही ध्यान करना और वहीं पर समा ध का लगना होता है। इसके लए मह र्ष पतञ्ज ल ने लखा- ''त्रयमेकत्र संयमः'' अर्थात् धारणा, ध्यान, समा ध तीनों का एक वषय हो जाना संयम कहलाता है। इस सूत्र पर मह र्ष दयानन्द ने लखा- ''जिस देश में धारणा की जाये, उसी में ध्यान और उसी में समा ध, अर्थात् ध्यान करने योग्य परमेश्वर में मग्न हो जाने को संयम कहते हैं, जो एक ही काल में तीनों का मेल होना, अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समा ध होती है। उसमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है, परन्तु जब समा ध होती है, तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है।'' ऋग्वेदादिभाष्यभू मका

धारणा+ध्यान+समा ध= संयम।

अब आपकी बात पर आते हैं, आपने जो कहा क ''……सप्रज्ञात समा ध के अन्तर्गत जब वतर्क रूपी स्थिति जिसमें पृ थवी आदि स्थूल भूतों का साक्षात्कार होता है, उसमें मन को ना सका, जिह्वा आदि अलग-अलग स्थानों पर लगाने का उल्लेख है।'' आपकी यह बात '' वतर्क वचारानन्दास्मिता…..।'' योगदर्शन 1.17 इस सूत्र में नहीं कही गई, हाँ '' वषयवती वा प्रवृ त्तरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।'' योगदर्शन 1.35 इसमें कही है। इसमें वतर्क समा ध की बात नहीं, यहाँ तो मन की स्थिरता का कारण बताया है। यहाँ कहा है- ना सकाग्र आदि स्थानों पर चत्त को स्थिर करने से उत्पन्न दिव्यगन्धादि वषयों वाली प्रवृ त्त मन की स्थिति का कारण होती है।

इस सूत्र से पहले प्राणायाम का वर्णन कया हुआ है। ऋ ष ने प्राणायाम को चत्त की स्थिरता का प्रमुख उपाय कहा है, अर्थात् प्राणायाम मन स्थिर करने का प्रमुख उपाय है। अब इसके आगे मन को स्थिर करने के अन्य गौण उपाय कहे हैं, उनमें यह उपाय भी है। जब योगायासी जिह्वाग्र, ना सकाग्र आदि स्थानों पर मन को स्थिर करता है, तब दिव्यरसादि की अनुभूति होती है। यह अनुभूति रूप व्यापार सामान्य न होकर उत्कृष्ट होता है। यह प्रवृ त्त मन को एकाग्र करने में सहायक होती है और साधक का अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने में वश्वास पैदा होता है और श्रद्धा पैदा होती है। तात्पर्य यह हुआ क स्थान वशेष पर धारणा कर मन को स्थिर (एकाग्र) करना है।

वतर्क आदि समा ध सालब हैं। वहाँ स्थूल का आलबन करते हैं, अर्थात् ना सकाग्रादि का आलबन करना वतर्क कहलाता है। वतर्क समा ध एक-एक स्थान का आलबन करने से होती है। आपने जो पूछा- 'धारणा के समय जब एक स्थान चुन लया है तो फर वतर्क समा ध में अलग-अलग स्थान क्यों?' आप इस वतर्क समा ध के स्वरूप को समझेंगे तो आपको यह शंका नहीं होगी। वतर्क समा ध सालब समा ध है और वे आलबन स्थूल हैं, अलग-अलग हैं। अलग-अलग होने पर अलग-अलग स्थान धारणा के लए चुने हैं।

धारणा के लए भी ऋ ष ने केवल एक ही स्थान निश्चित नहीं कया, वहाँ भी अनेक स्थान कहें हैं। अनेक में से कोई एक तो है, पर केवल एक नहीं है। जब दिव्य गन्ध की अनुभूति करनी है तो धारणा स्थल एक ना सकाग्र ही होता है, वहाँ स्थान बदले नहीं जाते। ऐसे ही अन्य वषयों में भी है। इस लए जो अलग-अलग स्थान आप देख रहे हैं, वे अनेक वषयों को लेकर देख रहे हैं, जब एक ही वषय को लेकर देखेंगे तो अलग-अलग धारणा स्थल न देखकर एक ही स्थान देख पायेंगे।

'ईश्वर के प्रति मनुष्य का मुख्य कर्तव्य' -मनमोहन कुमार आर्य

JANUARY 1, 2016 3 COMMENTS

ओ३म्

– देहरादून।

हमें हमारे माता- पता इस संसार में लाये। जब हम जन्में तब हमें अपना, परिवार, समाज व संसार का कं चत ज्ञान नहीं था। माता की निकटता और प्रेरणाओं से हम शनैः शनैः ज्ञान से युक्त होने लगे। माता- पता के हमारे प्रति कए गये प्रयासों से हमें उनको व परिवार के सदस्यों को कुछ-कुछ जानने का ज्ञान व अभ्यास हुआ। आयु वृद् ध के साथ हमारा ज्ञान बढ़ता गया और हम भोजन, वस्त्र, निवास, पारिवारिक व सामाजिक लोगों के ज्ञान तक सी मत हो गये। हमने घर में कए जाने वाले पूजा आदि धा र्मक क्रयाओं को भी देख कर उनको करना आरम्भ कर दिया। हमने अपनी आंखों से पृ थवी, सूर्य, चन्द्र एवं पृ थवीस्थ अग्नि, जल, वायु, आकाश, नदी, पहाड़, वन, खेत आदि को देखा परन्तु इन सबसे हमें ईश्वर के वास्त वक स्वरुप का बोध नहीं हुआ। सभी प्रा णयों की उत्प त्त सहित संसार की रचना की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया। ईश्वर की कृपा से हमें एक मत्र के द्वारा आर्यसमाज का परिचय मला, उन्होंने समाज के नियम, मान्यताओं और सद्धान्तों के बारे में बताया और हम खाली समय में उनके साथ समाज मन्दिर जाने लगे। पता ही नहीं कब हमें ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि वषयक अनेक सत्ताओं का तर्क व युक्ति से पूर्ण सन्तोषप्रद व निर्भरान्त ज्ञान हो गया। यह ज्ञान हमें वद्वानों के उपदेश व सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से प्राप्त हुआ। आज भी हम सत्यार्थप्रकाश पढ़ते हैं तो हमें हर बार कुछ नया ज्ञान प्राप्त होता है व अनुभव से हमें मह र्ष दयानन्द के ज्ञान की उत्कृष्टता, पराकाष्ठा व उनकी सदाशयता का पता चलता है।

संसार में सभी लोगों को यह तो ज्ञान है क हमें अच्छा भोजन करना है, स्वस्थ रहना है, धन–सम्प त्त एकत्र कर सुख भोगने हैं परन्तु ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि वषयक यथार्थ ज्ञान व इनके प्रति हमारे कर्तव्यों का ज्ञान अ धकांश को नहीं है। ईश्वर आदि के प्रति यथार्थ ज्ञान न होने के कारण प्रायः सभी मतों की रूढ़िवादी सोच है। वह जितना जानते हैं व जो कुछ उनके मत की पुस्तक में लखा है, उससे अ धक न सोचते हैं न जानना चाहते हैं जब क वास्त वकता यह है क उनका ज्ञान अति अल्प है जिसमें मथ्याज्ञान भी सम्मि लत है। मह र्ष दयानन्द (1825-1883) इतिहास में एक अनूठे मनुष्य हुए जिन्होंने हर प्रश्न का उत्तर खोजा और अत्यन्त तप व पुरुषार्थ से प्राप्त उस दुर्लभ ज्ञान को संसार के सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेशों, लेखों वा पुस्तकों द्वारा प्रस्तुत कया। आज संसार के वरोधी मत वाले भी उनके द्वारा प्रचारित व प्रसारित मान्यताओं व सद्धान्तों को न मानने पर भी उनमें कोई न्यूनता व त्रुटि दिखाने की स्थिति में नहीं है। वैदिक व आर्य सद्धान्तों को न मानना उनका मथ्याचार है। एक प्रकार से सभी मतों ने मह र्ष दयानन्द अर्थात् वेदों की सभी मान्यताओं को स्वीकार कर लया है परन्तु अज्ञान, स्वार्थ, हठ आदि के कारण वह अपने रूढ़िगत वचारों से ही जुड़े हुए हैं।

ईश्वर है या नहीं, यदि है तो कहां है, कैसा है, आंखों से दिखता क्यों नहीं, उसको जानने व मानने से हमें क्या लाभ होगा या हो सकता है, आदि अनेक प्रश्न हैं जो पूछे जा सकते हैं। ईश्वर है या नहीं का उत्तर है क ईश्वर अवश्य है। यह जड़-चेतन संसार व इसके नियम ईश्वर के होने का प्रमाण हैं। यदि ईश्वर न होता तो यह संसार भी न होता और हमारी आत्मा का अस्तित्व होने पर भी हमारा मनुष्यादि योनि में जन्म न हुआ होता। जीवात्माओं को प्राणी योनियों में जन्म देना ईश्वर का ही काम है, और इससे ईश्वर सद्ध होता है। इसे कारण-कार्य सद्धान्त कह सकते हैं। संसार का कारण ईश्वर व प्रकृति है। ईश्वर नि मत्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है। ईश्वर के होने में अन्य अनेक प्रमाण भी है जिसे सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय कर जाना जा सकता है। ईश्वर कहां है? इसका उत्तर है क सर्वत्र, सब जगह है अर्थात् वह आकाशवत् सर्वव्यापक है। यदि ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वत्र न होता तो भी संसार की रचना, जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार भन्न- भन्न प्रा णयोनियों में जन्म व उनका पालन सम्भव नहीं था। अतः ईश्वर का निराकार, सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी होना तर्क व युक्ति संगत है। ईश्वर कैसा है, प्रश्न भी उत्तर का समाधान चाहता है। इसका उत्तर है क ईश्वर आकार रहित है, उसका मनुष्य की तरह न शरीर है, न आकृति है, न रंग व रूप है। वह स्वयंभू है और उसकी सत्ता स्वयं सद्ध है तथा वह सच्चिदानन्द (सत्य+ चत्त+आनन्द) स्वरूप है। अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मतम् होने के कारण वह आंखों से भी दिखाई नहीं देता। इसको इस प्रकार भी समझ सकते हैं क आंखे जितने सूक्ष्म आकार को देख सकती हैं, ईश्वर उससे भी कहीं अ धक सूक्ष्म है, इस लये वह दिखाई नहीं देता। हमारी आत्मा ईश्वर की तुलना में कम सूक्ष्म है अर्थात् ईश्वर जीवात्मा से भी अ धक सूक्ष्म है। जब हम अपनी व दूसरे प्रा णयों की जीवात्माओं को ही नहीं देख सकते, तो ईश्वर का सर्वातिसूक्ष्म होने के कारण हमारी भौतिक आंखों से दिखाई देना सम्भव नहीं है। हां, उसे बुद् ध व ज्ञान से देखा, समझा व अनुभव कया जा सकता है। मह र्ष दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश पढ़ने से भी सभी प्रश्नों व शंकाओं का समाधान हो जाता है। ईश्वर को जानने से हमें उसके स्वरुप, गुण, कर्म व स्वभाव का ज्ञान होता है। जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने

पृ थवीस्थ पदार्थों के गुण-कर्म-स्वभाव को जानकर आज कम्प्यूटर, मोबाइल, जहाज, रेल आदि सभी वस्तुयें तथा च कत्सा पद्धति सहित शल्य क्रया आदि का ज्ञान उन्नत कया है, इसी प्रकार से ईश्वर को जानकर सभी दुःखों से निवृ त्त, सुखों व आनन्द की प्राप्ति और जन्म-मरण से अवकाश अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। अतः वैदिक धर्म व स्वामी दयानन्द प्रदत्त वैदिक साहित्य में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति वषयक मनुष्यों के लए जानने योग्य सभी प्रश्नों का समाधान हो जाता है।

अब हमें मनुष्यों के ईश्वर के प्रति कर्तव्य को जानना है। ईश्वर ने जीवात्माओं को उनके पूर्व कर्मानुसार सुख व दुःख रूपी भोग प्रदान करने के लए इस सृष्टि की उत्प त्त की है व वगत 1.96 अरब वर्षों से वह इसका सफलतापूर्वक संचालन करने के साथ सृष्टि में जन्म लेने वाले सभी प्रा णयों का पालन करता चला आ रहा है। हमें जन्म भी ईश्वर ने हमारे पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर ही दिया है। हमारा पहला कर्तव्य तो ईश्वर सहित जीवात्मा और प्रकृति के सत्यस्वरुप को जानने के लए प्रयत्न करना है। इन्हें जानकर ईश्वर के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है यह जानना है। इसके लए हमारे वेद और वैदिक साहित्य से सहायता ली जा सकती है। मह र्ष दयानन्द ने यह कर्तव्य बताया है और कहा क मनुष्य को ईश्वर की प्रतिदिन प्रातः व सायं सन्ध्या अर्थात् योग पद्धति से सम्यक् ध्यान व उपासना करनी चाहिये। सन्ध्या में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना की जाती है। देवयज्ञ व अग्निहोत्र में भी इसे कया जाता है। सभी शुभ-अशुभ अवसरों पर भी स्तुति-प्रार्थना-उपासना सहित यज्ञ करने का वधान कया गया है। इससे दुःखों की निवृति व सुखों की उपलब्धि होती है। सन्ध्या वा स्तुति–प्रार्थना–उपासना इस लये की जाती है क हम ईश्वर के जन्म–जन्मान्तरों के असंख्य व अग णत उपकारों के लए कृतज्ञता व्यक्त कर उसका धन्यवाद कर सकें। इसके साथ स्तुति करने से ईश्वर से प्रीति, प्रार्थना से निर भमानता तथा उपासना से दुर्गुण, दुव्र्यस्नों व दुखों की निवृति सहित कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव व पदार्थों की उपलब्धि वा प्राप्ति होती है। प्राचीन काल से हमारे सभी पूर्वज, ऋ ष, मुनि, वद्वान, ज्ञानी, वज्ञ, वप्र ईश्वर की उपासना करते आये हैं और उनमें से मह र्ष दयानन्द सहित अनेकों ने समा ध को सद्धकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति की थी। हम भी यदि सन्ध्या-उपासना व यज्ञ आदि कर्मों को करेंगे तो हमें भी यह फल प्राप्त होंगे और यदि नहीं करेंगे तो हम इनसे वं चत रहेंगे। सन्ध्या व यज्ञ की व ध के लए मह र्ष दयानन्द जी की पुस्तक मंचमहायज्ञ व ध तथा संस्कार व ध का अध्ययन कया जाना चाहिये।

आज नये आंग्ल वर्ष 2016 का प्रथम दिवस है। यदि हम इसे मनाते हैं तो आज हमें स्वयं को व ईश्वर को जानने तथा इनके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने का संकल्प वा व्रत लेना चाहिये। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो हमें बाद में पछताना होगा। आईये, वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय तथा ईश्वर के प्रति मनुष्य के मुख्य कर्तव्य सन्ध्या व यज्ञ सहित ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना की प्रतिज्ञा करें, संकल्प व व्रत लें।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-248001

फोनः09412985121

उपासना क्या, क्यों व कसकी करें तथा इसकी व ध?’ -मनमोहन कुमार आर्य

DECEMBER 30, 2015 4 COMMENTS

ओ३म्

उपासना का उल्लेख आने पर पहले उपासना को जानना आवश्यक है। उपासना का शब्दार्थ है समीप बैठना। हिन्दी में हम अपने परिवार, मत्रों व वद्वानों आदि के पास बैठते हैं परन्तु इसे कोई उपासना करना नहीं कहता, यद्य प यह उपासना ही है। उपासना शब्द सम्प्रति रूढ़ हो गया है और इसका अर्थ जन साधारण द्वारा ईश्वर की पूजा वा उपासना के अर्थ में लया जाता है। ईश्वर की पूजा व उपासना भी वस्तुतः उपसना है परन्तु अपने परिवार, मत्रों व वद्वानों आदि के समीप उपस्थित होना व उनसे संगति करना भी उपासना ही है। अब यदि सब प्रकार की उपासनाओं पर वचार कर यह जानें क सर्वश्रेष्ठ उपासना कौन सी होती है तो इसका उत्तर इस सृष्टि को बनाने व चलाने वाले सर्वगुण, ऐश्वर्य व शक्ति सम्पन्न ईश्वर की उपासना करना ही ज्ञात होता है। यदि मनुष्य ईश्वर की यथार्थ उपासना करना सीख जाये व करने लगे तो मनुष्य का अज्ञान, दुर्बलता व दरिद्रता दूर होकर वह भी ईश्वर की ही तरह गुणवान, बलवान व ऐश्वर्य से सम्पन्न हो सकता है। यह भी जान लें क उपासना एक साधना है जिसके लए तप वा पुरुषार्थ करना होता है जिसका वस्तृत निर्देश योगदर्शन व मह ष दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों में मलता है।

पहला प्रश्न है क उपासना क्या है, दूसरा श्रेष्ठ उपासना कसकी की जानी चाहिये और तीसरा प्रश्न होता है क उस श्रेष्ठ उपासना की व ध क्या है? पहले प्रश्न का उत्तर जानने के लए, यह जानकर क उपासना समीप बैठने व उपस्थित होने को कहते हैं, हमें यह जानना है क पास बैठने का तात्पर्य क्या है? हम कसी के पास जाते हैं तो हमारा इसका अवश्य कोई प्रयोजन होता है। उस प्रयोजन की पूर्ति ही उपासना के द्वारा अ भप्रेत होती है। हम अपने परिवार के सदस्यों के पास बैठते हैं तो वहां भी प्रयोजन है और वह है संगतिकरण का। संगतिकरण में हम एक दूसरे के बारे में वा उनके सुख-दुःख वा उनकी शै क्षक, सामाजिक स्थिति आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं और वह भी हमारी जानकारी प्राप्त करने के साथ अपने बड़ों से उपदेश व अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करते हैं। पुत्र ने पुस्तक खरीदनी है, वह अपनी माता व पता के पास जाता है और उनसे पुस्तक खरीदने की बात बताकर धन प्राप्त करता है। यह एक सी मत उद्देश्य से की गई उपासना, प्रार्थना व उसकी सफलता का उदाहरण है। इसी प्रकार वद्यार्थी अपने वद्यालय में अपनी कक्षा में अपने गुरुओं व अन्य वद्या र्थयों की उपासना व संगति कर इच्छित वषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। वेद, ऋ षयों व वद्वानों के ग्रन्थों के अध्ययन से हमने जाना क ईश्वर ज्ञानस्वरुप, प्रकाशस्वरुप, आनन्दस्वरुप, सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न, सर्वशक्तिमान तथा आदि-व्या धयों से रहित

है। हमें भी अपना सम्पूर्ण अज्ञान, दरिद्रता, निर्बलता, रोग, आदि-व्या धयों, भीरुता व दुःखों का निवारण करना है और इसको करके हमें ज्ञान, ऐश्वर्य, आरोग्य वा स्वास्थ्य तथा वीरता, दया, करुणा, प्रेम, सत्य, अंहिसा, स्वा भमान, निर्बलों की रक्षा आदि गुणों को धारण करना है। इन सब अवगुणों को हटाकर गुणों को धारण करानेवाला सर्वा धक सरलतम व मुख्य आधार सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, निराकार, सर्वऐश्वर्यसम्पन्न व स्वयंभू गुणों से युक्त परमेश्वर है। अतः इस प्रयोजन की पूर्ति के लए हमें ईश्वर के पास जाकर अर्थात् उसकी उपासना को प्राप्त होकर इन गुणों वा शक्तियों के लए उसकी स्तुति व प्रार्थना करनी है। इस प्र क्रया को सम्पन्न करने का नाम ही ईश्वर की उपासना है और यही संसार व वश्व में सर्वश्रेष्ठ उपासना है। ईश्वर की उपासना से पूर्व एक महत्वपूर्ण कार्य यह करना आवश्यक है क हमें ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के यथार्थ स्वरुप का ज्ञान प्राप्त करना है। यह ज्ञान वेदाध्ययन, ऋ ष-मुनियों के ग्रन्थों 4 ब्राह्मण-ग्रन्थ, 6 दर्शन, 11 उपनिषद्, मनुस्मृति, चरक व सुश्रुत आदि आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थ, वाल्मी क रामायण व व्यासकृत महाभारत सहित मह र्ष दयानन्द के ग्रन्थों सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, आर्या भ वनय, संस्कार व ध, व्यवहारभानु आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने से प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों के अध्ययन के बाद ईश्वर की उपासना करना सरल हो जाता है और इच्छित परिणाम प्राप्त कये जा सकते हैं। माता- पता, अन्य वद्वानों व महिमाशाली व्यक्तियों की उपासना करना सरल है जिसे हम अपने माता- पता व बड़ों से जान सकते हैं व सभी जानते ही हैं।

मनुष्य को सभी उपासनाओं में श्रेष्ठ ईश्वर की उपासना करनी है जिससे वह मनुष्य जीवन के लक्ष्य को जानकर व उसके अनुरुप साधन व उपाय कर ईश्वर को प्राप्त होकर ज्ञान, बल व ऐश्वर्य आदि धनों को प्राप्त कर अपने जीवन के उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त कर सके। ईश्वर की उपासना के लए ईश्वर के सत्य व यथार्थ स्वरुप का ज्ञान होना अनिवार्य है अन्यथा हम मत-मतान्तरों व कृत्रिम अज्ञानी गुरुओं के चक्र में फंस कर अपने इस दुर्लभ मानव जीवन को नष्ट कर सकते हैं व अ धकांश कर रहे हैं। अतः हमें मत-मतान्तरों में न फंस कर उनसे दूरी बनाकर ईश्वर प्रदत्त वेद और उस पर आधारित सत्य वैदिक साहित्य को पढ़कर ही जानने योग्य सभी प्रश्नों के उत्तर जानने चाहिये और उनको स्वयं ही तर्क व वतर्क की कसौटी पर कस कर जो अकाट्य मान्यता, युक्ति व सद्धान्त हों, उसी को स्वीकार कर उसका आचरण, उपदेश व लेखन आदि के द्वारा प्रचार करना चाहिये।

हमें यह तो ज्ञात हो गया क हमें मनुष्य जीवन के श्रेष्ठ धन वा रत्न ज्ञान व कर्मों की प्राप्ति के लए ईश्वर की उपासना करनी है, परन्तु ईश्वर उपासना की सत्य व प्रभावकारी तथा लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली व ध क्या है, इस पर भी वचार करना है। यद्य प यह व ध हमारे पास उपलब्ध है फर भी हम उस तक पहुंचने के लए भू मका रुप में कुछ वचार करना चाहते हैं। ईश्वर की उपासना करने के लए हमें ईश्वर के पास बैठना है। ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी होने से सदा-सर्वदा सबको प्राप्त है और इस कारण से हर क्षण ईश्वर व सभी जीवात्माओं की ईश्वर के साथ उपासना सम्पन्न हो रही है। यह उपासना तो है परन्तु यह ज्ञान व ववेक रहित उपासना है अतः इसका परिणाम कुछ नहीं निकलता। हमारे शरीर ने ईश्वर ने हमें बुद् ध व मन दिया है। मन एक समय में एक ही वषय का चन्तन

कर सकता है, दो व अ धक का नहीं। हम प्रायः दिन के 24 घंटे ससार वा सांसारिक कार्यों से जुड़े रहते है, अतः संसार, समाज व परिवार की उपासना ही कर रहे होते हैं। ईश्वर की उपासना के लए हमें इन उपासनाओं से स्वयं को पृथक कर अपने मन को सभी वषयों से हटा कर केवल और केवल ईश्वर पर ही केन्द्रित करना होता है। मन चंचल है अतः मन को साधने अर्थात् उसे ईश्वर के गुणों व कर्मों में लगाने अर्थात् उनका ध्यान करने के लए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। नियत समय पर प्रातः सायं अभ्यास करने से मन धीरे-धीरे ईश्वर के गुणों व स्वरुप में स्थिर होने लगता है। इसके लए शरीर का स्वस्थ होना और मनुष्य का अंहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, वेद व सत्य वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्र णधान से युक्त जीवन व्यतीत करना भी आवश्यक है। इसकी अनुपस्थिति में हमारा मन ईश्वर में निरन्तर स्थिर नहीं होता व रहता। अतः योगदर्शन का अध्ययन कर इस वषय में वस्तृत ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुरुप जीवन व्यतीत करना चाहिये। ऐसा करने पर जब हम ईश्वर की उपासना के लए आसन में स्थित होकर ईश्वर के गुणों व कर्मों के ध्यान द्वारा उपसना करेंगे और ऐसा करते हुए उससे जीवन को श्रेष्ठ मार्ग में चलाने और गलत मार्ग से हटाने की प्रार्थना सहित सभी दुर्गुण, दुव्यस्न और दुःखों को दूर करने और जो कुछ भी हमारे लए श्रेष्ठ और श्रेयस्कर गुण-कर्म और स्वभाव हैं, उनको प्रदान करने की प्रार्थना करेंगे तो हमारी प्रार्थना व उपासना निश्चय ही सफल होगी। ईश्वर की इसी स्तुति-प्रार्थना-उपासना को यथार्थ रुप में सम्पादित करने के लए मह र्ष दयानन्द ने ‘‘सन्ध्योपासना व ध” लघु ग्रन्थ की रचना की है जो आकार में लघु होने पर भी मनुष्य के जीवन के लक्ष्य को पूरा करने में कृतकार्य है। इसका अध्ययन कर व इसके अनुसार ही सन्ध्योपासना अर्थात् ईश्वर का भली-भांति ध्यान व उपासना सभी मनुष्यों को करनी चाहिये और अपने जीवन को सफल करना चाहिये। यह सन्ध्या व ध वेद व ऋ ष-मुनियों के प्राचीन ग्रन्थों पर आधारित है। मह र्ष दयानन्द जी के बाद इस संध्योपासना व ध में वद्वानों द्वारा कहीं कोई न्यूनता व त्रुटि नहीं पाई गई और न भ वष्य में इसकी सम्भावना ही है। अनेक पौरा णक वद्वानों ने भी इस व ध को अपनाया है। अतः स्तुति, प्रार्थना व उपासना के ज्ञान व वज्ञान को जानकर सभी मनुष्यों को एक समान व ध, वैदिक व ध से ही ईश्वर की उपासना करने में प्रवृत्त होना चाहिये जिससे लक्ष्य व आशानुरुप परिणाम प्राप्त हो सके। अ श क्षत, अज्ञानी व साधारण बुद् ध के लोग, जो उपासना को ज्ञान, चन्तन–मनन–ध्यान पूर्वक सश्रम नहीं कर सकते, वह गायत्री मन्त्र के अर्थ की धारणा सहित एक मनट में **15** बार मन में बोल कर उपासना कर कं चत लाभान्वित हो सकते हैं। यह कार्य दिन में अनेक अवसरों पर सम्पन्न कया जा सकता है। यह भी सरलतम व अल्पका लक उत्तम उपासना ही है जो भ वष्य में दीर्घाव ध की उपासना की नींव का काम कर सकती है। मनुष्य जीवन में ईश्वर को प्राप्त करने का उपासना ही एक वैदिक व सत्य मार्ग हैं जिससे सभी को लाभ उठाना चाहिये। ओ३म् शम्।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

आत्म- चन्तन और मनन – रमेश मुनि

DECEMBER 30, 2015 LEAVE A COMMENT

ध्यायतो वषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽ भजायते।।

क्रोधाद् भवति समोहः समोहात्स्मृति वभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद् धनाशो बुद् धनाशात्प्रणश्यति।।

– (गीता 2-62,63)

शराबी आदमी शराब पी कर गरता है। वह खड़ा होना, ठीक ढंग से चलना चाहता है, कन्तु नहीं हो पाता, ठीक ढंग से नहीं चल पाता। इस अवस्था में वह आदमी नहीं रह जाता- यह उसकी करुणाजनक स्थिति होती है। वह शरीर से उत्तम है, सुन्दर कपड़े पहने हुए है, कन्तु मदिरा के मस्तिष्क में पहुँच जाने के कारण बुद् ध बिगड़ जाती है, बुद् ध में अन्तर आ जाता है। इसी से सन्तुलन बिगड़ जाता है, जिसके कारण वह चलने के लए उठता है, कन्तु गर पड़ता है, फर उठता है फर गर पड़ता है, इसी प्रकार की स्थिति बनी रहती है। संसार में हम सब की भी ऐसी स्थिति प्रायः बनी रहती है। सांसारिक वषयों की इच्छाओं के प्रभाव के कारण सभी का सन्तुलन बिगड़ा रहता है, उठना- गरना, उठना- गरना सभी में होता रहता है, सभी में ऐसी स्थिति चलती रहती है। ऐसी स्थिति के कारण ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि दोष प्रबल हो जाते हैं, जिस कारण व्यक्ति छल, कपट, ऊँच, नीच करता रहता है। सदा एक बुद् ध को बनाए नहीं रख सकता, जिससे शराबी की तरह पगलाया रहता है। ईश्वर और आत्माएँ नित्य हैं, जब क संसार अनित्य है, सदा रहने वाला नहीं है। इस तत्त्व को वह या तो जानता ही नहीं, यदि जानता भी है तो इसे मानता नहीं है और वषयों के प्रभाव के कारण सांसारिक पदार्थों को नित्य मान कर अपना व्यवहार करता है।

ईश्वर ने मानव के लए अत्युत्तम पदार्थ बुद् ध बनाई है, कन्तु अपने कर्मों या व्यवहार के कारण इससे वञ्चित हो जाता है। मानवपन तब सार्थक होता है, जब वास्त वकता को समझ कर आचरण ठीक कर समा धनिष्ठ होगा, जिससे बुद् ध सात्विक होगी और शराबी के तरह का भाव समाप्त हो जाएगा। शराबी यदि अपने व्यवहार को ठीक नहीं करता तो उसका जीवन दुःखमय रहता है, इसी प्रकार सामान्य मानव भी वषयों के नशे में रहेगा तो जीवन दुःखमय बना रहेगा। जिस प्रकार शराबी की उस अवस्था को देख हम उसे दया का पात्र मानते हैं, इसी प्रकार अपने को भी दया का पात्र मानना चाहिए। मानव जीवन का लक्ष्य यह है क वशेष उपल ध से अपने को वञ्चित देखकर हमें ग्लानि अनुभव करनी चाहिए और दोष को दूर करना चाहिए। शराबी के मन में खड़े होने, ठीक प्रकार से चलने का प्रयास करके अपने आपको अच्छा दिखाने की भावना होती है। वह प्र्रयास से अपने समान को सुर क्षत

करना चाहता है, कन्तु बुद् ध बिगड़ने से नहीं कर पाता। यही स्थिति हमारी भी है। हम दिखाना चाहते हैं क मैं जो कर रहे हैं, ठीक कर रहे हैं, ले कन वह काम गलत होता है।

योगी ववेकी जानता है क आम आदमी को ऐसी हालत में देख कर ईश्वर हमें उस शराबी की तरह का समझता है। इस अवस्था को उत्पन्न करने का मूल कारण हमारी इच्छाएँ हैं (योगदर्शन के अनुसार वृ त्तयाँ)। इन्हें हटाने का प्रयास करें। यदि हम अपनी इच्छा को रोक लेते हैं तो वृ त्तयाँ स्वयं रुक जाएँगी, इच्छा बढ़ने से चञ्चलता के कारण वृ त्तयाँ, प्रवृ त्तयाँ बढ़ जाएँगी, जीवन दुःखमय हो जाएगा।

न्याय दर्शन सूत्र (4-2-2)- ''दोष नि मत्तं रूपादयो वषयाः संकल्पकृताः'' अर्थात् मथ्या इच्छाओं से उत्पन्न रूप, रस आदि पाँच वषय राग, द्वेष आदि दोषों को उत्पन्न करते हैं। मथ्या इच्छाओं को समाप्त करके रूपादि वषयों के प्रति आसक्ति को दूर करके शराबी के व्यवहार से बच सकते हैं।

आनन्दमयोऽयासात् (वेदान्त 1-1-12)

परमात्मा आनन्द स्वरूप है। अर्न्तदृष्टि से परमात्मा का अयास करने से, यम-नियमों का अनुष्ठान, पालन करने से ईश्वर की अनुभूति होती है।

जब इच्छा के साथ भन्न-भन्न वषय जुड़ते जाते हैं तो कामनाएँ जोर मारने लगती हैं। जब इच्छा शरीर को प्राप्त करने की हो तो यह काम कहलाती है। इसमें यदि दूसरा व्यक्ति प्रतियोगी है और समान स्तर का है तो उससे ईर्ष्या। यदि वह बाधा करता है तो द्वेष और यदि प्रतियोगी निर्बल हो तो उसे मारने या नष्ट करने की प्रवृ त्त बन जाया करती है।

इच्छा यदि अनुकूल वषय से जुड़ गई तो राग बन जाती है, वही अनुभूति बढ़ने से प्रीति या प्रेम कहलाती है। इच्छाएँ लगातार बढ़ती जाएँगी। यदि मल गया तो फर मले। यदि इच्छा की पूर्ति में समय अ धक लगेगा तो व्याकुलता होगी या निराशा, यदि उपल ध समीप आ रही हैं तो आशा। इस प्रकार अलग-अलग अवस्थाएँ भावों को बदलती रहती हैं- कभी आशा, कभी निराशा, कभी क्र ोध, की क्षमा आदि।

इसका निदान है इच्छा को पकड़ लें, रोक दें, चाहे बलपूर्वक या बुद् धपूर्वक। यदि मन में धारणा बना ली क मुझे कुछ नहीं चाहिए तो संकल्प करते ही मन में स्थिरता आएगी, शान्ति मलेगी। यदि इच्छा बढ़ाते हैं तो क्लेश होगा। जब इच्छा हमारे ऊपर है तो क्लेश और जब हम क्लेश के ऊपर हैं तो शान्ति मलेगी, आत्मा शक्तिशाली अनुभव करेगा। इस प्रकार कोई भी इच्छा करते समय बुद् धपूर्वक वचार करेंगे, चन्तन करेंगे तो क्लेश-दुःख से बच कर सुख शान्ति पाएँगे।

गीता ठीक कहती है- वषयों का निरन्तर सेवन करते रहने से व्यक्ति का क्रमशः पतन होता चला जाता है और निरन्तर साधना से व्यक्ति ऊर्ध्वमुखी होता चला जाता है। यही अध्यात्म है। – ऋ ष उद्यान, अजमेर।

‘ईश्वर के कृतज्ञ सभी मनुष्यों को वैदिक व ध से ईश्वर-स्तुति करनी चाहिये’ -मनमोहन कुमार आर्य

DECEMBER 22, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

मनुष्य वज्ञान की नई-नई खोजों के वर्तमान युग में ईश्वर व अपनी जीवात्मा के मूल स्वरुप को भूल बैठा है। आज ईश्वर को मानना व नाना प्रकार के मत-मतान्तरों प्रच लत व ध से उसकी स्तुति व प्रार्थना करना एक प्रकार का फैशन सा लगता है। कोई भी काम करने से पहले उसका यथेष्ट ज्ञान व व ध जानना आवश्यक होता है। एक कलर्क की नौकरी पाने के लए कक्षा 10 या बारह उत्तीर्ण होना आवश्यक होता है। इसके साथ टंकण का ज्ञान भी उसके लये अनिवार्य माना जाता है। हम ईश्वर, जो इस सृष्टि का रचयिता व पालनकर्त्ता है, उसकी स्तुति व प्रार्थना करते हैं तो क्या हमें इसके लए निर्धारित कसी योग्यता को तय करना आवश्यक नहीं है? सभी मत-मतान्तर वाले कहेंगे की उनके मत में जो रीति व नीति है, वही इस कार्य के लए उपयुक्त है। वैदिक साहित्य के अध्ययन व ज्ञान से हमें लगता है क ईश्वर व जीवात्मा के स्वरुप को जानकर तथा वेद की शक्षाओं को समक्ष रखकर ही ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना की सत्य व यथार्थ रीति व नीति तय की जा सकती है। हम यह मानते हैं क भन्न- भन्न मतों में ईश्वर व जीवात्मा वषयक जो ज्ञान है, वह अल्प व सी मत होने से अपूर्ण व अपर्याप्त है। इसके साथ ही मत-मतान्तरों में ईश्वर के सत्य स्वरुप से भन्न असत्य बातें भी जुडी हुई हैं। अतः यदि उन्हीं के आधार पर स्तुति-प्रार्थना-उपासना की जाती है, तो हम ईश्वर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के अपने यथार्थ उद्देश्य व लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। मनुष्य जीवन के उद्देश्य को जानने व इसके लक्ष्य को प्राप्त करने के लए हमें ईश्वर, जीवात्मा और सृष्टि के यथार्थ स्वरुप का ज्ञान होना आवश्यक व अनिवार्य है।

मनुष्य जीवन पर वचार करने पर ज्ञात होता है क मनुष्य माता- पता के द्वारा सृष्टि नियमों के अनुसार उत्पन्न होता है। जन्म के समय इसका शरीर अत्यन्त लघु व सामथ्र्य वहीन होता है। माता के दुग्ध, पालन व स्वास्थ्यप्रद भोजन से शरीर की उन्नति होती है। कशोरावस्था व युवावस्थ्यायें आती हैं और अन्त में प्रौढ़ व वृद्धावस्था आने के बाद 100 वर्ष की आयु प्राप्त कर व उससे पहले कभी भी कसी रोग, दुर्घटना व अन्य कारणों से मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के होने पर मनुष्य का शरीर निष्क्रिय हो जाता है जिससे अनुमान लगता है क शरीर में निवास करने वाली एक चेतन सूक्ष्म अदृश्य सत्ता शरीर से निकल गई है। मानव शरीर तो पंचभौतिक तत्वों अर्थात् पृ थवी के तत्वों से मलकर बना होता है। अतः इसे अग्नि में रखकर पंचतत्वों में ही वलीन कर देने का प्राचीन काल से वधान चला आ रहा है। यह प्र क्रया उपयुक्त, सरल, अल्पव्ययसाध्य व शीघ्र उद्देश्य की पोषक है। बहुत से लोग अन्त्येष्टि संस्कार की महत्ता को अभी तक जान व समझ नहीं पाये हैं, अतः वह शव को जलाने के स्थान पर भू म में गाढ़ देना ही उ चत समझते हैं। अन्त्येष्टि का संबंध ज्ञान व वज्ञान तथा

सृष्टि के नियमों से है। यदि मतों के आग्रह से इसे बाहर निकाल कर निर्णय कया जाये, तो यह इस सृष्टि के लए उ चत होगा।

मनुष्य वा प्रा णयों का जीवात्मा एक चेतन तत्व होता है। यह अल्प परिणाम, सूक्ष्म, ज्ञान व कर्म अथवा गति के स्वभाव से युक्त, ससीम, अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अनिवाशी, अजर व अमर गुणों वाला है। अस्त्र व शस्त्रों से इसका छेदन नहीं होता, अग्नि से यह जलता नहीं है, वायु इसे सुखा नहीं सकती और वायु इसे गला नहीं सकती है। इस जीवात्मा को ईश्वर के द्वारा इसके पूर्व कर्मानुसार जिसे प्रारब्घ कहते हैं, नाना योनियों में से कसी एक योनि में जन्म मलता है। जन्म दिये जाने का कारण पूर्व कर्मों के सुख व दुःख रुपी फलों को भोग व मनुष्य योनि में मोक्ष को केन्द्रित कर वेद निर्दिष्ट व निर्धारित शुभ कर्मों को करके धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति करना है। जिस प्रकार से मनुष्य को जन्म व मृत्यु ईश्वर से प्राप्त होती है, कर्मों के सुख व दुःख रुपी फल ईश्वर से प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार से मोक्ष की प्राप्ति भी ईश्वर के द्वारा ही होती है। मोक्ष सभी प्रकार के दुःखों की पूर्णतया निवृति तथा जन्म व मरण से छुट्टी का नाम है। जिस प्रकार वद्यालय में परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उन्नति होकर उससे आगे की कक्षा में प्रवेश मलता है और पूर्व कक्षा के पाठ्यक्रम व अध्ययन आदि कार्यों से अवकाश मल जाता है, इसी प्रकार से मोक्ष में भी जन्म-मरण से अवकाश होकर इससे ऊपर व ऊंची मोक्ष की अवस्था प्राप्त होती है। अनुमानतः मह षे दयानन्द व उनके समान कुछ आत्माओं को मोक्ष की प्राप्ति होने का अनुमान कया जाता है।

मनुष्य को जन्म व जीवन ईश्वर के द्वारा प्राप्त होता है जिसमें माता- पता, समाज एवं पर्यावरण की एक सहायक के रूप में भू मका होती है। ईश्वर कैसा है, इसका उत्तर हम मह षे दयानन्द के शब्दों में देना उ चत समझते हैं। यही ज्ञान व वज्ञान से युक्त उत्तर है। वेदों के यथार्थ अर्थों के वद्वान मह षे दयानन्द के अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, नि वेकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, प वत्र और सृष्टिकर्त्ता है। उन्होंने यह भी बताया क संसार में केवल एक ईश्वर ही उपासनीय अर्थात् हमारी स्तुति व प्रार्थनाओं के योग्य है अर्थात् इनका पात्र है। स्वामीजी के अनुसार ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव और स्वरुप सत्य ही हैं, वह केवल चेतनमात्र वस्तु है जो एक अद् वतीय, सर्वत्र व्यापक अर्थात संसार के भीतर व बाहर वद्यमान व उपस्थित है, सत्य गुणवाला है, जिसका स्वभाव अ वनाशी है, वह ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध और अजन्मा आदि है। ईश्वर का कर्म जगत् की उत्प त्त, पालन और वनाश करना तथा सब जीवों को उनके पाप–पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाना है। ओ३म्, ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम ईश्वर के ही हैं और इस सृष्टि को बनाकर इसका पालन व संहार करने का कार्य भी ईश्वर ही करता है। ऐसे गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरुप वाली सत्ता ही ईश्वर संज्ञक व नाम वाली है। ईश्वर का यह सत्य वा यथार्थ स्वरुप है। जीवात्मा व मनुष्यों को इस स्वरुपवान ईश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना व उपासना करनी चाहिये। स्तुति व प्रार्थना करने से लाभ यह होता है क हम ईश्वर के जिस गुण की स्तुति करते हैं वह गुण हमारी आत्मा व जीवन में प्र वष्ट हो जाता है। स्तुति के प्रभाव ये आत्मा के मल रूपी सभी दुर्गुण, दुःख व दुव्र्यस्न दूर होने आरम्भ हो जाते हैं और इनका स्थान स्तुति व

प्रार्थना कये गये गुण, कर्म व स्वभाव लेने लगते हैं। धीरे-धीरे स्तोता व प्रार्थना करने वाले की आत्मिक, बौद् धक, सामाजिक व शारीरिक उन्नति होती है। अ वद्या का नाश व वद्या की वृद् ध भी होती है। स्तुति, प्रार्थना व उपासना का सबसे बड़ा लाभ यह है क मनुष्य ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रद र्शत करता है। इस कृतज्ञता प्रद र्शत करने का नाम ही स्तुति–प्रार्थना–उपासना है। कृतज्ञता इस लए क ईश्वर ने हमें मनुष्य के रूप में जन्म दिया, माता– पता–भाई–बहिन–संबंधी व इष्ट– मत्र प्रदान कये। वेदों का सत्य ज्ञान प्रदान कया, हमारे लए ही उसने इस सृष्टि को रचा व इसमें नाना प्रकार के सुख प्रदान करने वाले अन्न, जल, वायु व रत्नादि भोग प्रदान कये। वह सर्वान्तर्यामी रूप से हमारी आत्मा में वद्यमान हमें सत्कर्मों करने की प्रेरणा करता रहता है। जब हम कोई अच्छा, परोपकार, सेवा, ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना, यज्ञ आदि का कार्य करते हैं तो हमें सुख, आनन्द व उत्साह की अनुभूति कराता है और बुरा काम करने पर भय, शंका व लज्जा की अनुभूति कराकर उस कर्म को करने से रोकता है। इस सुख, आनन्द, उत्साह तथा भय, शंका, लज्जा रूपी प्रेरणा करने से ही ईश्वर की जीवात्मा में वद्यमानता व सर्वव्यापकता सहित निराकारता सद्ध होती है। पुष्प, सृष्टि तथा नाना प्रकार के प्रा णयों की रचना व इनमें अनेक वशेष्टिताओं को देखकर भी ईश्वर की सत्ता का होना व अस्तित्व सद्ध होता है। ईश्वर के सभी मनुष्यों व प्रा णयों पर इतने उपकार हैं क उन्हें गना नहीं जा सकता। वह हमारे पूर्व के व भन्न योनियों में अनन्त जन्मों में भी मत्र रूप से हमारा साथी रहा है और आगे भी रहेगा। अतः उसके प्रति स्तुति–प्रार्थना–उपासना, देव यज्ञ अग्निहोत्र आदि वेदानुकूल कर्मों को करके हमें अपनी कृतज्ञता प्रद र्शत करनी चाहिये। इससे जीवन के सभी दुःखों की निवृ त्त होकर सुखों की प्राप्ति सहित हमारे भावी जन्म अति उन्नत होंगे और आगामी कसी न कसी जन्म में मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है।

संसार भर में रहने वाले सभी मनुष्यों को ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के सत्य स्वरुप को जानकर उसकी वेद व ऋ षयों के द्वारा नि र्मत व ध से स्तुति-प्रार्थना-उपासना आदि कर्तव्य करने चाहिये। ईश्वर प्रदत्त देव ज्ञान संसार के सभी मनुष्यों के लए है। भारत के ऋ ष-मुनि संसार के वर्तमान सभी मनुष्यों के पूर्वज हैं। उनका सम्मान करना सबका सामूहिक धर्म है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो ऐसे मनुष्यों का न तो यह जन्म और न भावी जन्म ही उन्नत होंगे और न कभी उन्हें मोक्ष की प्राप्ति की सम्भावना हो सकती है। इसका कारण मोक्ष वेद वहित कर्म-सापेक्ष उपलब्धि है। अन्यथा इसे प्राप्त नहीं कया जा सकता। अतः संसार के सभी लोगों को एक ही ईश्वर के सत्य स्वरुप को जानकर वैदिक व ध से ईश्वर की स्तुति–प्रार्थना–उपासना द्वारा उसे प्राप्त कर कृतघ्नता के दोष से बचना चाहिये और अपना वर्तमान व भ वष्य सुधारना चाहिये। सभी मनुष्यों को सत्य को जानकर एक मतस्थ होना व सबको एक मतस्थ करना भी कर्तव्य व धर्म है। आईये, वेदानुसार कृतज्ञता स्वरूप ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना तथा यज्ञादि कर्मों को करके हम ईश्वर, देश व समाज के प्रति कृतघ्नता के दोष से बचें और अपनी सर्वांगीण उन्नति करें।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

ईश्वर सबको हर क्षण देखता है और सभी कर्मों का यथो चत फल देता है’ -मनमोहन कुमार आर्य

DECEMBER 20, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

बहुत से अज्ञानियों के लए यह संसार एक पहेली है। संसार की जनसंख्या लगभग 7 अरब बताई जाती है परन्तु इनमें से अ धकांश लोगों को न तो अपने स्वरुप का और न हि अपने जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य का ज्ञान है। उन्हें इस संसार को बनाने वाले व हमें व अन्य सभी प्रा णयों को जन्म देने वाले ईश्वर के स्वरुप व कर्मों का भी ज्ञान नहीं है। जब अपना, ईश्वर तथा सृष्टि के सत्य स्वरुप का ज्ञान ही नहीं है, तो वह अपने जीवन को सही मार्ग पर चला भी कैसे सकते हैं? अर्थात् नहीं चला सकते। मह ष दयानन्द अपने बाल जीवन में इनसे मलते-जुलते अनेक प्रश्नों से परि चत हुए थे परन्तु तब उन्हें अपने पता व आचार्यों से इन प्रश्नों का समाधान नहीं मला था। इस कारण उन्हें स्वयं ही इन प्रश्नों के उत्तर व समाधानों की खोज करनी पड़ी जिसकी परिणति उनके समा ध सद्ध योगी बनने व वेद ज्ञान अर्जित करने पर समाप्त हुई। यह अवस्था उन्हें सन् 1863 में तब प्राप्त हुई जब मथुरा के दण्डी गुरु स्वामी वरजानन्द जी के यहां उनका अध्ययन समाप्त हुआ था। इसके बाद स्वामी दयानन्द जी के सामने एक ही कार्य था क वह एक गुरुकुल रूपी वद्यालय खोलकर वहां वद्या र्थयों को योग व संस्कृत व्याकरण सहित वैदिक साहित्य और वेद की शक्षा देते। स्वामीजी ने अभी अपने भावी जीवन में कये जाने वाले कार्य की योजना तय नहीं की थी। गुरु-द क्षणा के अवसर पर उनके गुरुजी ने उन्हें संसार में फैले अ वद्यान्धकार का परिचय कराकर उसे दूर करने का अनुरोध कया। उनका कहना था क संसार में जितने भी मत-मतान्तर प्रच लत हैं, वह सभी अज्ञान व मथ्या- वश्वासों से पूर्ण है। इन मत-मतान्तरों के कारण ही मनुष्य ईश्वर, जीवात्मा तथा सृष्टि-प्रकृति के सत्यस्वरुप से परि चत नहीं हो पा रहे थे और अपना अमृतमय पावन दुर्लभ जीवन बर्बाद कर रहे थे। उन्होंने ऋ ष को आज्ञापूर्ण निवेदन कया क वह संसार से मत-मतान्तरों का अज्ञान, मथ्या- वश्वासों, अवैदिक कुरीतियों व नाना सामाजिक वषमताओं व वसंगतियों को मटाकर इसके साथ हि सत्य ईश्वरीय ज्ञान वेदों का प्रकाश कर लोगों को ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के सच्चे स्वरुप, जो क चेतन व जड़ के रूप में हैं, उसको वश्व में फैलायें, उसका प्रकाश व प्रचार करें।

मह ष दयानन्द जी ने गुरुजी की बात के एक-एक शब्द को स्वीकार कया और उन्हें वचन दिया क वह अपने भावी जीवन में ऐसा ही करेंगे। गुरुजी दयानन्द जी के व्यक्तित्व व व्रतपालन के व्यवहार से परि चत थे। उन्हें वश्वास हो गया क जो कार्य वह करना चाहते थे परन्तु प्रज्ञाचक्षु वा नेत्रान्ध होने के कारण नहीं कर पाये थे, वह उनका शष्य अवश्य करेगा। इस वश्वास से उनको अत्यन्त हर्ष हुआ था। मह ष दयानन्द जी ने अज्ञान, अन्ध वश्वास व कुरीतियों को मटाने व समाज का सुधार करने के लए अपूर्व रीति से वेदों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। जो महत्वपूर्ण घटनायें उनके प्रचार कार्यों से जुड़ी हैं उनमें 16 नवम्बर,

1869 को हुआ काशी के लगभग 30 शीर्षस्थ पौरा णक पण्डितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ, उसके बाद 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई नगरी में आर्यसमाज की स्थापना, सन् 1874 में सत्यार्थ-प्रकाश का लेखन और प्रकाशन, उसके बाद ऋग्वेदादिभाष्य भू मका सहित वेदभाष्य एवं संस्कार- व ध, आर्या भ वनय, गोकरुणानि ध, व्यवहारभानु, आर्योद्देश्यरत्नमाला, संस्कृत की वर्णोच्चरण शक्षा से लेकर 14 व्याकरण ग्रन्थों की रचना आदि कुछ प्रमुख कार्य भी थे। उन्होंने जीवन में अनेक शास्त्रार्थ कये, सभी मतों के वद्वानों की शंकाओं का उत्तर व समाधान कया, लाहौर, बिहार के आरा आदि अनेक स्थानों पर आर्यसमाजों की स्थापना की तथा परोपकारिणी सभा की स्थापना आदि प्रमुख कार्य कये।

मह र्ष दयानन्द ने वेदों के आधार पर ईश्वर के जिस सत्य–स्वरुप का प्रचार कया उसके अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, नि र्वकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, प वत्र और सृष्टिकत्र्ता है। यह भी सद्ध कया क संसार में केवल ईश्वर ही उपासनीय व हमारी स्तुति व प्रार्थनाओं के योग्य अर्थात इनका पात्र है। स्वामीजी के अनुसार ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव और स्वरुप सत्य ही हैं, वह केवल चेतनमात्र वस्तु है जो एक अद् वतीय, सर्वत्र व्यापक अर्थात संसार के भीतर व बाहर वद्यमान व उपस्थित है, सत्य गुणवाला है, जिसका स्वभाव अ वनाशी है, वह ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध और अजन्मा आदि है। ईश्वर का कर्म जगत् की उत्प त्त, पालन और वनाश करना तथा सब जीवों को उनके पाप–पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुंचाना है। ओ३म्, ब्रहम, परमात्मा आदि नाम ईश्वर के ही हैं और इस सृष्टि को बनाकर इसका पालन व संहार करने का कार्य भी ईश्वर ही करता है। ऐसे गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरुप वाली सत्ता ही ईश्वर संज्ञक व नाम वाली है। जिसका जन्म हुआ व होता है तथा जिसकी मृत्यु हुई व होती है, वह ईश्वर कदा प नहीं हो सकता। उनके अनुसार ईश्वर का कभी अवतार भी नहीं होता क्यों क ईश्वर निराकार-स्वरुप से ही अपने समस्त कार्यों को करने में सक्षम व समर्थ है। मह र्ष दयानन्द ने जीवात्मा का स्वरुप बताते हुए कहा है क जीवात्मा सूक्ष्म, चेतन, एकदेशी, अल्प शक्ति व सामर्थ्य वाली, अल्पज्ञ, अनादि, अनुत्पन्न, अ वनाशी, अमर, जन्म-मरण को प्राप्त होने वाली, योग द्वारा उपासना कर समा ध में ईश्वर का साक्षात्कर कर तथा वेदों के ज्ञान व उसके प्रचार-प्रसार से मोक्ष को प्राप्त होने वाली सत्ता है। जीवात्मा के स्वरुप तथा व भन्न व्यवहारों पर उन्होंने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में व्यापक रुप से प्रकाश डाला हे। इसी प्रकार से प्रकृति के जड़ स्वरुप व सृष्टि के रुप में इसकी रचना पर भी उन्होंने यथावश्यक प्रकाश डाला है।

ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान व जीवों के पाप-पुण्य रुपी फलों को देने वाला है। इसका अर्थ है क ईश्वर हमारे प्रत्येक कर्म का साक्षी है और वह अपने कर्म-फल वज्ञान के अनुसार हमारे सभी कर्मों के सुख-दुःख भोग रूपी फल हमें प्रदान करता है। कर्म-फलों को प्रदान करने के लए ईश्वर का सर्वव्यापक, साक्षी, व सर्वशक्तिमान होना आवश्यक है। ईश्वर हमारे सभी कर्मों का निराकार, सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी रूपी से हर क्षण का साक्षी है। इसका प्रमाण हमारा और अन्य प्रा णयों का मनुष्य व अन्य प्राणी योनियों में जन्म है तथा हम सभी प्रा णयों को नित्य प्रति सुख-दुख का भोग करते हुए देख रहे हैं। मृत्यु का समय आने पर जीवात्मा को शरीर से पृथक करने का कार्य भी ईश्वर द्वारा ही सम्पन्न

होता है। न चाहकर भी जीव को संसार व शरीर को छोड़कर जाना पड़ता है। पूर्व जन्मों में जिन्होंने वेदानुसार अच्छे शुभ कर्म कये थे, ईश्वर द्वारा इस जन्म में वह मनुष्य बनाये गये और मनुष्यों में भी सुख वशेष की सम्प त्त उन्हें प्रदान हुई है। कर्मों के न्यूना धक होने से ही हमारे परस्पर के सुख व दुःखों में अन्तर होता है। जैसे-जैसे मनुष्य वद्यादि का ग्रहण व तदनुरुप आचरण करता है उसके दुःखों में कमी व सुखों में वृद् ध होती जाती है। कुछ कर्मों के फल इस जन्म के होते हैं व कुछ भोग पूर्व जन्मों व भूतकाल के कर्मों के होते हैं। कुछ कर्मों के फलों का ज्ञान मनुष्य अपनी बुद् ध व ववेक से जान पाता है और कुछ का नहीं जान पाता क्यों क मनुष्य अल्पज्ञ व अल्पशक्तिवाला है।

कर्मफल व्यवस्था पर एक प्रच लत श्लोक है-'अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुंभाशुभं।' *अर्थात् मनुष्य को अपने कये शुभ व अशुभ कर्मों के फल अवश्य ही भोगने पड़ते हैं।* यह इस कारण है क ईश्वर हमारे कर्मों पर अपनी दृष्टि जमाये हुए है और उनका साक्षी है। अतः हमें स्वस्थ रहने हेतु जहां व्यायाम व योगासनों को करना है, स्वास्थ्यवर्धक सुपाच्य भोजन करना है, वहीं वेदों का स्वाध्याय व प्रचार करने के साथ हमें सन्ध्या-योग-समा ध का भी अभ्यास भी करना चाहिये और वेद-निर्दिष्ट यज्ञ आदि कर्मों को करके हम पापों से बचकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का लाभ प्राप्त करें। यही ईश्वर-वेदों, ऋ षयों व मह र्ष दयानन्द का सन्देश है और यही ववेक से भी सद्ध होता है। यह भी वशेष रुप से हमें सदैव ध्यान रखना है क ईश्वर हमारे सभी कर्मों का साक्षी है, हम कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह हमें शुभ व अशुभ कर्म करने से रोकता नहीं परन्तु साक्षी होने से असत्य व बुरे कर्मों में भय, शंका व लज्जा उत्पन्न करके उसे न करने की प्रेरणा देता है और जब हम शुभ कर्म करते हैं तो वह हमें अपना समर्थन उत्साह, सुख एवं आनन्द की उत्प त्त करके करता है। यह भी जानने योग्य है मनुष्यों की ही तरह ईश्वर के पास भी देखने, सुनने, चखने, सूंघने व वाणी आदि जैसी सभी शक्तियां व सामथ्र्य चरम रूप में है। भौतिक आंख न होने पर भी वह हमसे अ धक स्पष्ट देखता है, कान न होने पर भी सुनता है, मुख न होने पर भी उसके पास वेद-वाणी आदि है और अन्य सभी शक्तियों से युक्त वह सर्वशक्तिमान है। ईश्वर सब जीवों के सभी अच्छे व बुरे कर्मों को हर क्षण देखता है वा उनका साक्षी है, यह जानकर उसके कर्म फल वधान को समझकर आईये वेदाध्ययन, वेदाचरण, वेदप्रचार, सन्ध्या व यज्ञ आदि करने का व्रत लें। हमें लगता है क राजनीति से जुड़े लोगों को ईश्वर के सर्वदर्शी व न्यायकारी दण्ड देने वाले स्वरुप को जानने की अ धक आवश्यकता है। उन्हें वेदाध्ययन कर ईश्वर के कर्म-फल वधान को जानना चाहिये।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

-प्राचीन भारत का स्व र्णम आदर्श इतिहास- ‘कैकेय नरेश महाराज अश्वपति की सार्वजनिक घोषणा’ - मनमोहन कुमार आर्य

DECEMBER 11, 2015 4 COMMENTS

ओ३म्

भारत वगत लगभग पौने दो अरब वर्षों से अ धक तक वैदिक धर्म व वैदिक संस्कृति का अनुयायी रहा है। भारत वा आर्यावर्त्त का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना क यह ब्रह्माण्ड। सृष्टि की आदि, लगभग 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख, 53 हजार वर्ष, से वेदों को मानने व उसके अनुसार शासन करने वाले लाखों राजा हुए हैं जिन्होंने वेदों की मान्यताओं एवं सद्धान्तों के अनुसार राज्य व शासन कया है। भारत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन होने व इसके ल खत रूप में सुर क्षत न होने के कारण उसके वस्तृत ववरण उपलब्ध नहीं है। इसका दूसरा कारण यह भी है क अनेक वध र्मयों ने वैदिक साहित्य का नाश कया जिसके कारण अनेक प्रमुख इतिहास आदि के ग्रन्थ नष्ट हो गये। इतिहास में यहां तक ववरण हैं क वध र्मयों ने जब तक्ष शला व नालन्दा के पुस्तकालयों को अग्नि को सम र्पत कया तो वहां महीनों तक अग्नि जलती रही व उन ग्रन्थों का धुआं आकाश में उठता रहा। इससे अनुमान लगाया जा सकता है क हमारा कतना साहित्य नष्ट कया गया। इसका कारण हमारे कुछ व अनेक पूर्वजों की अकर्मण्यता को ही माना जा सकता है।

हमारा सौभाग्य है क हमारे पास वर्तमान में भी अनेक प्राचीन ग्रन्थ बचे हुए हैं। इनमें से एक शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ है। यह यद्य प अति प्राचीन ग्रन्थ है परन्तु काल प्रवाह में इसमें भी अनेक प्रक्षेप भी हुए हैं। प्रक्षेप करने वालों ने अपने-अपने मतानुसार उस-उस शास्त्र के सद्धान्तों के वपरीत वचारों को उसमें मलाया अवश्य परन्तु यह अच्छी बात हुई क उसमें से कुछ निकाला नहीं। इन प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने से यह परिणाम निकलता है। यदि प्रक्षेपकर्त्ता प्राचीन ग्रन्थों में से अच्छी बातों को निकालते तो फर मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में श्रेष्ठ व उत्तम वचार व बातें न होती? शतपथ ब्राह्मण वा छान्दोग्य उपनिषद में एक प्र सद्ध प्रकरण आता है जिसमें कैकेय राज्य के राजा अश्वपति अपने राज्य की आदर्श स्थिति का वर्णन वा घोषणा करते हैं। वैदिक साहित्य के प्रवर वद्वान पं. वश्वनाथ वद्यालंकार जी ने इसका उल्लेख अपने ग्रन्थ ‘शतपथब्राह्मणस्थ अग्निचयन–समीक्षा’ के बारहवें परि शष्ट में कया है। वहीं से यह प्रकरण उद्धृत कर रहे हैं।

“शतपथ ब्राह्मण काण्ड 10 अध्याय 6 ब्राह्मण 1 कण्डिका 1-11 में अश्वपति तथा अरुण-आपवे श आदि 6 वद्वानों में वैश्वानर के स्वरूप वषयक जो संवाद हुआ, उसी संवाद का वर्णन, कतिपय परिवर्तनों सहित, छान्दोग्य उपनिषद, अध्याय 5, खण्ड 11 से 18 तक में भी हुआ है। प्राचीनशाल औपमन्यव, सत्ययज्ञ पौलु ष, इन्द्र-द्युम्न भाल्लवेय, जन शाकराक्ष्य, बु डल

आश्वतराश्वि तथा उद्दालक आरु ण, ये 6 वद्वान, ''आत्मा और ब्रह्म का क्या स्वरुप है'' इसे जानने के लये केकय के राजा अश्वपति के पास आए। प्रातःकाल जाग कर अश्वपति ने उनके प्रति कहा कः-

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो।

नानाहिताग्निर्ना वद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।। **(खण्ड 11 कण्डिका 5)**

तथा साथ यह भी कहा क हे भाग्यशा लयों ! मैं यज्ञ करूंगा, जितना–जितना धन मैं प्रत्येक ऋत्विज् को दूंगा उतना–उतना आप सबको भी दूंगा, तब तक आप प्रतीक्षा कीजिये और यहां निवास कीजिये।

उपर्युक्त श्लोक का अर्थ निम्न ल खत हैः-

न मेरे जनपद अर्थात् राज्य में कोई चोर है, न कंजूस स्वामी और वैश्य है, न कोई शराब पीने वाला है न कोई यज्ञकर्मो से रहित है, न कोई अ वद्वान् है। न कोई मर्यादा का उल्लंघन करके स्वेच्छाचारी है, स्वेच्छाचारिणी तो हो ही कैसे सकती है।

इस श्लोक में कही गई बातों का अ भप्राय यह है क आत्मज्ञ और ब्रह्मज्ञ शासक ही, प्रजाजनों को उत्तम शक्षा देकर, उन्हें सामाजिक तथा धा र्मक भावनाओं से सम्पन्न कर सदाचारी बना सकते हैं।'' हमारा अनुमान है क आज पूरे वश्व में एक भी आत्मज्ञ एवं ब्रह्मज्ञ शासक नहीं है। यह उन्नति नहीं अ पतु अवनति का प्रतीक है।

राजा अश्वपति ने जो घोषणा की, उसके अनुसार उनके देश केकय में तब तक कोई नागरिक चोर नहीं था अर्थात् उनके राज्य में चोरी नहीं होती थी। दूसरी वशेषता थी क कोई नागरिक कंजूस नहीं था। तीसरी वशेषता थी क कोई नागरिक शराब नहीं पीता था। चैथी वशेषता उन्होंने यह बतायी क कोई नागरिक यज्ञ कर्म न करने वाला नहीं है अर्थात् प्रत्येक नागरिक प्रतिदिन प्रातः सायं वेदाज्ञानुसार यज्ञ करता है। कोई प्रजाजन अ वद्वान नहीं है अर्थात् सभी वेदों के ज्ञान से सम्पन्न हैं। ऐसा भी कोई नागरिक नहीं था जो मर्यादा का उल्लंघन करे अर्थात् स्वेच्छाचारी हो। जब स्वेच्छाचारी व चारित्रिक पतन वाला एक भी पुरुष ही नहीं था तो स्वेच्छाचारिणी स्त्रियां तो होने का प्रश्न ही नहीं था। हम जब इस श्लोक को पढ़ते हैं और संसार की वर्तमान स्थिति को देखते हैं तो ज्ञात होता है क संसार का पतन कस सीमा तक हुआ है। यह भारत के मूल निवासी आर्य राजा की घोषणा है जब इस देश में सभी निवासी आर्य थे, कोई आदिवासी या आर्येत्तर वनवासी जैसा भेद नहीं था। आर्य बाहर से आये, यह

महाझूठ अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लए प्रचारित कया था जिसे आज के अज्ञानी व वदे शयों के उच्छिष्ठ भोजी भी अपने स्वार्थ के लए यदा कदा प्रयोग करते रहते हैं। हमें ऐसे लोगों के बुद् धमान व मनुष्य होने भी सन्देह होता है। आज हम भारत को आदर्श, स्वावलम्बी व समृद्ध राष्ट्र बनाने की बातें तो करते हैं परन्तु महाराजा अश्वपति के राज्यकाल के एक भी गुण को वर्तमान के नागरिकों में शत प्रतिशत स्था पत करने का हमारा कं चत संकल्प नहीं है। यह बात अलग है क वैदिक धर्मी आर्यसमाजी अनेक मनुष्य ऐसे मलेंगे जो आज भी शत-प्रतिशत इन नियमों व आदर्शों का पालन करते हैं। हमें लगता है क यह श्लोक आदर्श राज्य का नमूना प्रद र्शत करता है जो प्राचीन काल में न केवल कैकय में अ पतु सर्वत्र भारत में लाखों व करोड़ो वर्ष तक रहा है। आज का भारत कैसा है, इसे आज के समाचार पत्रों व टीवी समाचारों सहित हमारी लोकसभा में होने वाली घटनाओं को देखकर जाना जा सकता है।

मह र्ष दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना न केवल इस श्लोक में व र्णत प्राचीन भारत के आदर्श के अनुरुप देश को बनाने की थी अ पतु वह पूरे वश्व को ही इसके अनुरुप बनाना चाहते थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भू मका, संस्कार व ध, आर्या भ वनय एवं वेदभाष्य आदि ग्रन्थों की रचना भी इसी अ भप्राय से की थी। ऐसा भारत व वश्व ही आदर्श रामराज्य कहा जा सकता है। मह र्ष दयानन्द का स्वप्न भ वष्य में कभी साकार होगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता परन्तु हम मह र्ष दयानन्द और आर्यसमाज के अनुयायियों का आदर्श ऐसा ही राज्य हो सकता है। हम शतपथब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषदकारों को इस श्लोक को प्रस्तुत करने के लए उनका अ भनन्दन करते हैं। यदि एक वाक्य में कहा जाये तो इस श्लोक के बारे में यह कहा जा सकता है क कैकय राज्य के समान भारत को बनाने के लए सभी मनुष्यों को सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा, प्रत्येक पल-क्षण, उद्यत रहना चाहिये। वेदमन्त्र 'ओ३म् वश्वानि देव स वतर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्नासुव।।' अर्थात् ईश्वर हमारी समस्त बुराईयों, दुःखों व दुव्यर्स्नों को हमसे दूर करे और हमारे लए जो भद्र वा कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव व पदार्थ हैं वह सब हमें प्राप्त कराये।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196 चुक्खूवाला-2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

ईश्वर है या नहीं एक वश्लेषण – ब्र. कश्यप कुमार

DECEMBER 11, 2015 2 COMMENTS

संसार में ईश्वर की सत्ता में वश्वास करने वालों की संख्या बहुत अ धक है, यद्य प ईश्वर के स्वरूप एवं गुण-कर्म-स्वभाव के सबन्ध में उनमें मतैक्य नहीं है। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनका मत यह है क ईश्वर नाम की कोई सत्ता या शक्ति नहीं है और न उसकी कोई आवश्यकता है। सब नास्तिक मत इसी वचार के मानने वाले हैं। इस सोच का आधार है क ईश्वर कसी को दिखाई नहीं पड़ता है। कसी की पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ आज तक ईश्वर को न देख पाई है, न छू सकी है, न श्रवण, घ्राण आदि के द्वारा अनुभव कर सकी हैं। ईश्वर को न मानने वालों को पूर्व पक्ष और उस परमशक्ति के होने में वश्वास करने वालों को उत्तर-पक्ष मानते हुए चर्चा को इस प्रकार आगे बढ़ा सकते हैं-

पू.- वह इन पाँचों इन्द्रियों से भी नहीं दिखाई देता। अतः वह ईश्वर जो आप कहते हैं। वह नहीं हो सकता।

उ.- इसका स्पष्ट तात्पर्य इतना है क आप पाँचों इन्द्रियों तक समट गये हो, इसके आगे भी वचार करें। अभी तो मन तथा बुद् ध भी अव शष्ट है।

पू.- अरे भाई! आज तक आपने कभी सुना है क यह व्यक्ति देखो मन से अथवा बुद् ध से दोता है।

उ.- आप जिसे ''देखना मात्र'' मानते हो, वही ''मात्र देखना'' नहीं होता, देखना अर्थात् जानना भी होता है। ज्ञान प्राप्त करने के अर्थ में भी ''देखना'' शद का प्रयोग होता है। अब इसे भी उदाहरण से देखते हैं। यदा-कदा हम कुछ बातों को भूल जाते हैं, तब आँखें बन्द कर वचार करते हैं और झट से याद आने पर कहते हैं- मैंने वचार कर देखा। वास्तव में वही सही है।

इस वाक्य में भी ''देखा'' शद का प्रयोग हुआ, पर वह जानने अर्थ में, न क ''नेत्र से देखने अर्थ में या अन्य इन्द्रियों से देखने अर्थ में। एक प्रयोग और दे खये- अरे भाई! आप एक बार अनुमान करके तो देखो, आपको पता लगेगा। यहाँ भी ''देखो'' शद का प्रयोग ''जानो'' अर्थ में ही हुआ है। इससे पता चलता है क बहुत वस्तुएँ ''मन एवं बुद् ध'' से भी जानी जाती है। वह देखना, यह देखना, वह देखा, यह देखा, वह दिखेगा, वहाँ दिखेगा इत्यादि प्रयोग जानने अर्थ में होते हैं न क मात्र चाक्षुष प्रत्यक्ष में।

पू.- तो मन से या बुद् ध से तो जाना जाना चाहिये परन्तु ऐसा भी तो नहीं।

उ.- अ वद्यारूपी घोर अन्धकार को दूर करो और ईश्वर का आनन्द उठाओ अर्थात् अ वद्यारूपी आवरण की परत बहुत मोटी है। जो हमें प्रत्यक्ष होने में बाधा पहुँचाती है, उसे दूर करना चाहिये। इसमें शास्त्रों के अनेक प्रमाण है।

न्यायदर्शन. प्रमाणप्रमेय......तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसा धगमः।

वैशे षक. धर्म वशेषप्रसूताद्.........तत्त्वज्ञानान्नि श्रेयसम्।

योग दर्शन. तद्वैराग्याद प दोषबीजक्षये कैवल्यम्।

स्वयं वेद भी प्रमाण है।

परीत्यभूतानि परित्य लोकान्.......

आत्म नात्मानम प सं ववेश।

-यजु. 32/11

तो जब अ वद्या का अवसरण हो जावेगा तब मन के माध्यम से आत्मा तक और आत्मा से ईश्वर तक पहुँच सकेंगे।

और बुद् ध से तो अनुमान कर ही सकते हैं। बिना अनुमान कये ज्ञान नहीं हो सकता। जैसे भोजन सामने रखा है, पर उसे ग्रहण करने का प्रयत्न यदि न कया जावे, तो भूख नहीं हट सकती। उसी प्रकार ईश्वर को जानने के लए प्रयत्न की आवश्यकता है।

पू.- वह प्रयास कस प्रकार से करें?

उ.- जैसे आप धुएँ को देखकर अग्नि का अनुमान अथवा पुत्र को देखकर जन्मदाता का अनुमान या आधेय को देखकर आधार का अनुमान करते हैं। तब आप मन-ही-मन एक व्याप्ति बनाते हैं और जान लेते हैं क यह ज्ञान सही होता है।

व्याप्ति का स्वरूप– जहाँ-जहाँ धुआँ होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि होती है या जहाँ-जहाँ आधेय होता है, वहाँ-वहाँ आधार होना आवश्यक है।

इसी प्रकार- जो-जो कार्य होता है, उसका कारण अवश्य होता है। आपने कसी घर को बना देखा, तो आपने अनुमान कया क इसका बनाने वाला कोई अवश्य ही है, घर एक कार्य रूप में देख कर, आपने उसके बनाने वाले का अनुमान कया और निश्चय कया कारण गुणपूर्वक ही कार्य होता। अब यह भी वचार कया क मैं इसको कार्य, क्यूँ कह रहा हूँ? क्यों क वह क्षीण होता है। तो एक व्याप्ति आपने और तैयार की क जो-जो कार्य होता है, वह क्षीण होता है। तो क्षीण होने वाला कार्य होता है और कार्य का कारण भी अवश्य होता है अर्थात् कार्य को कार्य रूप देने वाला कर्त्ता भी जरुरी है। अब इस सृष्टि को ही ले लेते हैं। सृष्टि एक कार्य है यह पता चलता है क्षीण होना प्रत्यक्ष देखें जाने से और उस कार्य का कर्त्ता भी आवश्यक है, अब वही कौन है, यह भी अनुमान से सद्ध होता है क इस संसार को निर्माण करने वाला एक देशी अथवा अल्पज्ञ नहीं हो सकता, अतः ईश्वर का अनुमान होता है।

पू.- यह संसार तो अपने आप ही बना है।

उ.- अब आप उक्त सद्धान्त के वरुद्ध जा रहे हैं। प्रथम आपने स्वीकार कया था क जो बना होता है, उसे बनाने वाला होता है। अब सद्धान्त से सर्वथा भन्न कह रहे, वह ठीक नहीं।

पू.- क्यों क यदि ईश्वर ने भी यदि इस संसार को बनाया है, यह कहे तो प्रश्न होगा क ईश्वर को कसने बनाया?

उ.- हमारा सद्धान्त जो स्था पत कया था उस तरफ ध्यान दें। जो कार्य होता है, वह क्षीण होता रहता है और जो क्षीण होता हुआ, कोई भी कार्य दिखाई पड़ता है, उसको बनाने वाला कोई अवश्य ही होता है और ईश्वर क्षीण नहीं होता। अतः उसे बनाने वाला कोई भी नहीं हुआ, न है और न होगा। अ पतु उसने ही इस संसार को बनाया।

पू.- तो वह ईश्वर कहाँ है?

उ.- वह सर्वत्र कण-कण में है, वह सर्वव्यापक है। तभी तो उसने इतनी बड़ी रचना की है अन्यथा एकदेशी होकर, इसे करना सभव नहीं, यह पीछे बता ही आये। और वह सर्वव्यापक है, अतः सर्वज्ञ भी है।

पू.- तब तो प्राकृतिक आपदाएँ नहीं आनी चाहिये। क्यों क सर्वव्यापक है, अतः उसे ध्यान देना चाहिये क ये आपदाएँ जीवात्माओं को कष्ट पहुँचायेगी तथा मेरा कार्य करना भी व्यर्थ होगा, क्यों क मैंने तो आत्माओं को सुख देने के लए संसार बनाया है और यह बाधाएँ इनको कष्ट दे रही है। इतना ही नहीं अ पतु सर्वज्ञ होने से, उसे उस प्रकार का निर्माण करना चाहिये क कोई भी आपदाएँ आने ही न पावें।

उ.- यह सब ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार होता है वा नियमानुसार कहो। क्यों क ईश्वर को कर्मफल भी तो देने हैं। अतः इसमें हमारे कर्म ही कारण होते हैं। इससे अतिरिक्त, यह प्रदूषण करने का प्रभाव या परिणाम भी हो सकता है। जैसे कोई मनुष्य एक यन्त्र बनाता है और उसमें वद्युत् को सहन करने की क्षमता एक क्षमता तक ही होती है। यदि उसमें कोई अ धक वद्युत् दे देवें, तो वह जलकर नष्ट ही होगा। इसी प्रकार यह पृथ्वी भी एक सीमा तक ही सहन कर सकती है या सह सकती है। उसके पश्श्चात् जो होता है, वह हम देखते ही हैं। यदि व्यवस्था को कोई अव्यवस्था रूप देना चाहे, तो उसमें ईश्वर को क्या दोष?

पू.- यदि ईश्वर है और आप उसे मानते हैं, तो बताइये क आज पूरे वश्व में इतने दुष्टकर्म हो रहे हैं परन्तु ईश्वर तो कुछ भी नहीं करता?

उ.- ईश्वर को क्या करना चाहिये, आप ही बताइये?

पू.- उसे शरीर धारण करना चाहिये और दुष्टों की समाप्ति कर देनी चाहिये।

उ.- यदि वह शरीर धारण करे तो स्थान-स्थानान्तर, देश-देशान्त, वश्व- वश्वान्तर या लोक-लोकान्तर में तथा मोक्ष में प्रत्येक जीवात्मा का ध्यान कौन देगा? उनके कर्मों का ज्ञान कैसे होगा और ज्ञान नहीं होगा तो उनका फल भी नहीं दे सकेगा।

पू.- तो सर्वव्यापक होते हुए, कुछ भी तो नहीं करता?

उ.- आपको कैसे पता क वो कुछ भी नहीं करता?

पू.- क्या करता है, बताईये?

उ.- वही तो सभी के कर्मों का यथावत् फल देता है। ये भन्न- भन्न योनियाँ जो दिखाई पड़ती है, वह सब इसी के व्यवस्था के अन्तर्गत है और आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है और ईश्वर उसे हाथ पकड़कर रोक दे, तो वह तो परतन्त्र होवेगा। अतः ईश्वर को उसी रूप में जानना चाहिये, जिस रूप में वह है।

पू.- वह कैसे मलेगा?

उ.- यह जो हम लोग पाप कर्म करते हैं, उसके कारण को (मथ्या ज्ञान) को हटा दें तो वह आनन्दस्वरूप परमात्मा प्राप्त होता है, यह शास्त्र कहता है, वेद भी कहता है।

''अ वद्यया मृत्युं तीर्त्वा वद्ययाऽमृतमश्नुते''

अर्थात् तत्वज्ञानपूर्वक ही आप ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। उसके लए आप शास्त्रों का अध्ययन कर श्ीाघ्रता से प्राप्त कर सकते हैं।

वशेष सार– यदि हम परमात्मा पर वश्वास नहीं करते तो दोष-पर-दोष ही करते चले चलते हैं।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चदहावेदीन्महती वनिष्टः।

भूतेषू-भूतेषू व चत्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।

– उप.।।

भावार्थः– इस जन्म में उसे जान लया तो अच्छा होगा, नहीं तो महा वनाश होगा। धीर लोग प्रत्येक जड़-चेतन का भेद जानकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

– ऋ ष उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

प्राणोपासना – तपेन्द्र कुमार

DECEMBER 9, 2015 LEAVE A COMMENT

इस संसार में तीन नित्य पदार्थ हैं- ईश्वर, जीव व प्रकृति। प्रकृति सत्तात्मक है, जीव सत्तात्मक तथा चेतन हैं। ईश्वर सत्तात्मक, चेतन तथा आनन्दस्वरूप है। परम पता परमात्मा ने सृष्टि की रचना आत्मा के भोग तथा अपवर्ग के लए की है। पूर्व जन्मों के प्रबल संस्कारवान् व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे ही साधना की ओर अग्रसर हो जाते हैं तथा जिनके उतने सुदृढ़ संस्कार नहीं होते, वे गृहस्थ आश्रम आदि में संसार के भोगों में दुःख म श्रत सुख का अनुभव करके साधना का मार्ग अपनाते हैं। जीव स्वभावतः आनन्द चाहता है तथा आनन्द केवल परम पता परमात्मा में है, अतः परमात्मा की उपासना करके ही आनन्द को प्राप्त कया जा सकता है। परम पता परमात्मा को प्राप्त करने के कई साधन तथा प्र क्रयाएँ संसार में प्रच लत है, उनसे मन की कुछ एकाग्रता भी सभव है, परन्तु सीधा व सही मार्ग तो वेदसमत मार्ग ही है।

मह षे स्वामी दयानन्द जी महाराज ने ऋग्वेदादिभाष्य-भू मका के उपासना वषय में मुण्डकोपनिषद् का सन्दर्भ देते हुए लखा है-

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता वद्वांसो भैक्ष्यचर्य्यां चरन्तः।

सूर्यद्वारेण ते वरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्यात्मा।

– मुण्डक. ख. 2 मं.।।

''(तपः श्रद्धे.) जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर एवं उसकी आज्ञा में अत्यन्त प्रेम करके अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं, वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं। जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य वद्याओं में वद्वान् हैं, जो भक्षाचर्य्य आदि कर्म करके संन्यास वा कसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य प्राणद्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके (वरजाः) अर्थात् सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं, जहाँ क पूर्ण पुरुष सबमें भरपूर, सबसे सूक्ष्म (अमृतः) अर्थात् अ वनाशी और जिसमें हानि-लाभ कभी नहीं होता, ऐसे परमेश्वर को प्राप्त होके, सदा आनन्द में रहते हैं।'' पुञ्जन्ति ब्रह्ममरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दि व।।(ऋग्वेद 1, 1, 11, 9) का अर्थ करते हुए मह षे लखते हैं- ''सब पदार्थों की सद् ध का मुय हेतु जो प्राण है, उसको प्राणायाम की रीति से अत्यन्त प्रीति के साथ परमात्मा में युक्त करते हैं। इसी कारण वे लोग मोक्ष को प्राप्त होके सदा आनन्द में रहते हैं।'' सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वतन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुनया।। (यजु. 12.67) की संस्कृत व्याया में मह षे स्पष्ट करते हैं- ''(सीराः) योगायासोपासनार्थं नाडीर्युञ्जन्ति, अर्थात् तासु परमात्मानं ज्ञातुमयस्यन्ति.....(सुनया) सुखेनैव स्थित्वा परमानन्दं (युञ्जन्ति) प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।'' पुनक्त सीरा व युगा तनुध्वं.... यजु. 12.68 के भाषार्थ में मह षे लाते हैं क.... हे उपासक लोगो! तुम योगायास तथा परमात्मा के योग से ना ड़यों में ध्यान करके परमानन्द को (वतनुध्वं) वस्तार करो।

इस प्रकार मह षे ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कया है क प्राणद्वार से परमेश्वर को प्राप्त कया जा सकता है, प्राणना ड़यों में ध्यान करके परमानन्द की प्राप्ति की जा सकती है, प्राण को परमात्मा में युक्त करके मोक्ष प्राप्त कया जा सकता है। प्राण ना ड़यों में ही परमात्मा को जानने प्राप्त करने का अयास करणीय है।

परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश करने की रीति भी मह षे दयानन्द जी महाराज ने उपासना वषय में ही स्पष्टतः प्रतिपादित की है- ''(अथ यदिद.) कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार का वेश्म अर्थात् अवकाश रूप एक स्थान है और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रका शत स्थान के बीच में खोज करने से मल जाता है। दूसरा उसके मलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।'' इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख है क हृदय देश में परमेश्वर की प्राप्ति/दर्शन होते हैं, उस परम पता परमात्मा के मलने का कोई दूसरा उत्तम स्थान व मार्ग नहीं है।

उपासना वषय के ऊपर उद्धृत उद्धरणों में तीन शद वशेषतः आये हैं- प्राण, प्राणना ड़ियाँ तथा हृदय। अतः इन तीनों पर मनन कया जाना समीचीन होगा।

प्राण अचेतन एवं भौतिक तत्त्व है। प्राण जीवात्मा के साथ संयुक्त होकर सब चेष्टा आदि व्यवहारों को सद्ध करता है तथा समस्त शरीर को धारण करता है। प्राण हवा या गैस नहीं है। प्राण व शष्ठ प्रकार की शुद्ध ऊर्जा है।1 आत्मनः एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायेतस्मिन् नेतदाततं मनोकृतेनाऽऽयात्यस्मिं शरीरे। प्रश्न. 3.3। प्राण की उत्प त्त आत्मा से होती है जैसे पुरुष के साथ छाया लगी है, इसी प्रकार आत्मा के साथ प्राण लगा है।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः।

आपः समुद्रियाधारास्तास्ते शल्यम सस्रसन्।।

-अथर्ववेद 7.10.7.1

सूर्य की सात करणें आकाश से अन्तरिक्ष में रहने वाले धारा रूप प्राणों को उतारती हैं। प्रश्नोपनिषद् 1-6 के अनुसार-

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्र वशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते….. यत् सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते।

जिस समय सूर्य उदय होकर पूर्व दिशा में प्रवेश करता है तो उसके द्वारा पूर्व दिशा में प्राणों को अपनी करणों के अन्दर सयक् रूप से निरन्तर धारण करता है….. उन सभी दिशाओं में प्राणों को अपनी करणों के अन्दर सयक् रूप से निरन्तर धारण करता हुआ प्रका शत होता है।

आदित्यो ह वै बाह्य,

प्राण उदयत्येष ह्नेन चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णनः।

– प्रश्नो. 3.8

निश्चय ही आदित्य ही बाह्य प्राण है, यह चाक्षुष प्राण पर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है। इस प्रकार सूर्य की प्रकाश करणों के अन्दर रखे हुए तथा करणों के माध्यम से ऊर्जाकण निरन्तर प्राप्त हो रहे हैं, वे बाह्य प्राण हैं। छान्दोग्य. 6.5.2 के अनुसार-

आपः पीतास्त्रेधा वधीयन्ते तासां यः स्थ वष्ठो धातुस्तन्मूत्रं

भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽ णष्ठः स प्राणः।।

आहार के द्वारा जीवों के शरीरों में पाचन क्रया द्वारा जल का अणुतम भाग प्राण रूपी ऊर्जा में परिणत हो जाता है।

प्राण जीवों को दो तरह से प्राप्त होता है, एक बाह्य प्राण कहलाता है, जो सूर्य रश्मियों से प्राप्त होता है तथा सर्वत्र व्याप्त है। यह जीवों के नेत्रों द्वारा प्राप्त होता है। दूसरा जठराग्नि द्वारा जल से उत्पन्न प्राण ऊपर उठकर हृदय में बाह्य प्राण से मल जाता है। हृदय शरीरों में प्राण का केन्द्र है।

प्राणना ड़यों के सबन्ध में उपनिषदों में स्पष्ट प्रमाण है। प्रश्नोपनिषद् प्रश्न 3/6-

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्रा ण भवन्त्यासु व्यानश्चरति।

– कठोपनिषद् षष्ठ वल्ली 16

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तानासां मूर्धनम भनिःसृतैका।

तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति वश्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।

……यदेतदन्तहृदये जालक मवाथैनयोरेषा सृतिः संचरणी यैषा हृदयादूर्ध्वा नाड्युच्चरति यथा केशः सहस्रधा भन्न एवमस्यैता हिता नाम नाड्योऽन्तर्हृदये प्रतिष्ठिता भवन्त्येता भर्वा एतदास्रवदास्रवति…..।

– बृहदारण्यक 4.2.3

उपनिषदों के ऊपर ल खत कुछेक प्रमाणों से स्पष्ट है, हृदय में एक सौ एक ना ड़याँ हैं, इनमें से एक नाड़ी मूर्धा को वेधकर कपाल शीर्ष तक गई है, बृहदारण्यक उपनिषद् में इस नाड़ी को संचरणी कहा गया है। शेष सौ ना ड़यों का नाम हिता है। इन सौ हिता प्राण-ना ड़यों से प्रत्येक से एक सौ और भी सूक्ष्म उपना ड़याँ निकलती हैं। प्रत्येक उपनाड़ी से भी और भी सूक्ष्म बहत्तर-बहत्तर हजार उप-उपप्राण-ना ड़याँ निकलती हैं। हृदय से निकली हुई ये प्राणना ड़याँ सपूर्ण शरीर में व्याप्त हो रही हैं। इन ना ड़यों को पुरीवत प्राणना ड़याँ कहा जाता है। हिता ना ड़यों की मोटाई बाल के हजारवें हिस्से जितनी है, अर्थात् ये प्राणना ड़याँ बहुत सूक्ष्म हैं।

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेवं निरुक्तं हृदया मति। -छान्दो. 8.3.3 के अनुसार देह में जीवात्मा का मुयालय हृदय है जो एक गुह्य रहस्यमय स्थान है। यह शरीर का स्थूल इन्द्रिय नहीं है। यह रक्तप्रेषण करने वाला हृदय भी नहीं है। यह हृदय गुहा, ब्रह्मपुर, दहर, परमव्योम आदि नामों से भी कहा गया है। मनुष्य के शरीर में छाती के बीच में अंगुष्ठमात्र परिणाम वाला गड्ढा-सा है, जिसमें व्योम=आकाश है। यह हृदय हिता नामक प्राणना डयों से बना हुआ है। बृहदारण्यक 4.2.4 के अनुसार हृदय में सब ओर प्राण ही प्राण हैं। छान्दोग्य उपनिषद् 3.14.3 एष म आत्मा अन्तर्हृदयेऽणीयान् व्रीहेर्वा….. से स्पष्ट है क आत्मा का स्थान हृदय है।

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः। स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः। ओ मत्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।।

– मुण्डक. 2.2.6

जैसे भन्न-भन्न अरे रथ की ना भ में जुड़े होते हैं, वैसे भन्न-भन्न ना ड़याँ हृदय में संहत हो जाती है। अनेक रूपों में प्रकट होने वाला वराट् पुरुष हृदय के भीतर ही वचरता है।

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योनि आत्मा प्रतिष्ठितः।

मुण्डक 2.2.7 के अनुसार यह दिव्य आत्मा ब्रह्मपुर-ब्रह्म की नगरी-हृदयाकाश रूपी ब्रह्मपुर में स्थित है। शंकराचार्य उक्त की व्याया करते हुए लखते हैं-

............पुरं हृदयपुण्डरीकं तस्मिन्यद्व्योम तस्मिन् व्योन्याकाशे हृत्पुण्डरीकं मध्यस्थे, प्रतिष्ठित इवोपलयते।

.....हृदय कमल ब्रह्मपुर है, उसमें जो आकाश है, उस हृदयपुण्डरीकान्तर्गत आकाश में प्रतिष्ठित (स्थित) हुआ-सा उपलध होता है।

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

-कठो. 2.20

जो व्यक्ति प्राणी के हृदय गुहा में स्थित सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा महान् से महान् परमेश्वर को देख पाता है.....।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभाव्यस्य न ततो वजुगुप्सते। एतद्वैतत्।। -कठो. 4.12। हुए और होने वाले जगत् का अध्यक्ष पूर्ण परमात्मा अँगूठे के बराबर हृदयाकाश में रहने वाले जीवात्मा के मध्य में रहता है, उसके ज्ञान से कोई ग्लानि को नहीं पाता, यही वह ब्रह्म है।**2**

प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्

यस्मिन्विशुद्धे वभवत्येष आत्मा।

-मुण्डक. 3.1.9

सभी जीवों के चत्त प्राणों से ओतप्रोत हैं, उन्हीं प्राणों में यह आत्मा वशुद्ध रूप से प्रका शत होता है।

स वा एष महानज आत्मा योऽयं वज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते।

– बृहद. 4.4.22

यह महान् तथा अजन्मा आत्मा वज्ञानमय है, प्राणों में रहता है और हृदय के भीतर जो आकाश है, उसमें वश्राम करता है।**3**

स यथा शकुनिः प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोय तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलध्वा प्राणमेवोपाश्रयते प्राणबन्धनं हि सौय मन इति।

– छान्दोग्य. 6.8.2

जिस प्रकार डोरी से बँधा हुआ पक्षी दिशा- वदिशाओं में उड़कर अन्यत्र स्थान न मलने पर बन्धन स्थान का ही आश्रय लेता है, इसी प्रकार यह मन दिशा- वदिशाओं में उड़कर अन्यत्र स्थान न मलने से प्राण का ही आश्रय लेता है, क्यों क मन प्राणरूप बन्धनवाला ही है।

इस प्रकार प्राण अचेतन ऊर्जा है, बाह्यप्राण सूर्य से व अन्तःप्राण भुक्त जल से प्राप्त होता है। हृदय प्राण का केन्द्र है, प्राणों में आत्मा प्रतिष्ठित है तथा परमात्मा हृदयाकाश में रहने वाले जीवात्मा के मध्य रहता है। अतः प्राणों में उपासना करके आत्मा तथा परमात्मा का साक्षात्कार या दर्शन कया जा सकता है, जो मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है।

सन्दर्भ

1. ब्रह्मोपासना और उसका वज्ञान- स्वामी सत्यबोध सरस्वती
2. महात्मा नारायण स्वामी जी भाष्य

– 53/203, मानसरोवर**,** जयपुर**,** राज.

‘यज्ञ का महत्व एवं या ज्ञकों को इससे होने वाले लाभ’ -मनमोहन कुमार आर्य

DECEMBER 8, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

चार वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद, ईश्वरीय ज्ञान है जिसे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋ षयों अग्नि, वायु, आदित्य और अं गरा को दिया था। ईश्वर प्रदत्त यह ज्ञान सब सत्य वद्याओं का पुस्तक है। वेद सभी मनुष्यों के लए यज्ञ करने का वधान करते हैं। ऋग्वेद के मन्त्र **1/13/12** में ‘स्वाहा यज्ञं कृणोतन’ कहकर ईश्वर ने स्वाहापूर्वक यज्ञ करने की आज्ञा दी है। ऋग्वेद के मन्त्र **2/2/1** में ‘यज्ञेन वर्धत जातवेदसम्’ कहकर यज्ञ से अग्नि को बढ़ाने की आज्ञा है। इसी प्रकार यजुर्वेद के मन्त्र **3/1** में ‘स मधाग्निं दुवस्यत धृतैर्बोधयतातिं थम्’ कहकर स मधा से अग्नि को पूजित करने व घृत से उस अग्निदेव अति थ को जगाने की आज्ञा है। ‘सुस मद्धाय शो चषे घृतं तीव्रं जुहोतन’ (यजुर्वेद **3/2**) के द्वारा आज्ञा है क सुप्रदीप्त अग्निज्वाला में तप्त घृत की आहुति दो। यह संसार ईश्वर का बनाया हुआ है और सभी मनुष्यों व प्रा णयों को उसी ने जन्म दिया है। अतः ईश्वर सभी मनुष्यादि प्रा णयों का माता, पता व आचार्य है। उसकी आज्ञा का पालन करना ही मनुष्य का धर्म है और न करना ही अधर्म है। इस आधार पर यज्ञ करना मनुष्य धर्म और जो नहीं करता वह अधर्म करता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञों की चर्चा की है। अग्निहोत्र एक नैत्यिक कर्तव्य है जो शास्त्र-मर्यादा के अनुसार सभी को करना होता है। अन्य यज्ञों को करने के सभी अ धकारी हों, ऐसा नहीं है। लाभों का ज्ञान न होने पर भी वैदिक वधान होने से ही अग्निहोत्र सबको करणीय है। लाभ जानकर कया जाए तो उसमें अ धक श्रद्धा होती है। उन लाभों को प्राप्त करने की प्रेरणा भी मलती है और उसके लए मनुष्य प्रयत्न भी करता है। अतः वेदादि शास्त्रों ने भी तथा स्वामी दयानन्द जी ने भी यज्ञ एवं अग्निहोत्र के अनेकानेक लाभ बताए हैं। इन लाभों में अनागत रोगों से बचाव, प्राप्त रोगों का दूर होना, वायु-जल की शुद् ध, ओष ध-पत्र-पुष्प-फल-कन्दमूल आदि की पुष्टि, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य, बल, इन्द्रिय-सामथ्र्य, पाप-मोचन, शत्रु-पराजय, तेज, यश, सद वचार, सत्कर्मों में प्रेरणा, गृह-रक्षा, भद्र-भाव, कल्याण, सच्चारित्र्य, सर्व वध सुख आदि दर्शाए गए हैं। वन्ध्यात्व-निवारण, पुत्र-प्राप्ति, वृष्टि, बुद् धवृद् ध, मोक्ष आदि फलों का भी प्रतिपादन कया गया है। यहां शंका यह हो सकती है क क्यों क प्रत्येक अग्निहोत्री को ये फल प्राप्त नहीं होते, अतः यह फल श्रुति मथ्या है। इस लए इसका ववचेन कया जाना आवश्यक है।

यज्ञ, अग्निहोत्र या होम के लाभों को दो भागों में वभक्त कया जा सकता है। प्रथम प्रकार के वे लाभ हैं, जो होम से स्वतः प्राप्त हो सकते हैं, यथा वायुशुद् ध, जलशुद् ध, स्वास्थ्य-प्राप्ति, इन्द्रिय-सामथ्र्य, दीर्घायुष्य आदि। यदि अग्नि में यथो चत मात्रा में सुगन्धित, मष्ट, पुष्टिप्रद एवं रोगहर द्रव्यों का होम कया गया है, तो यजमान चाहे या न चाहे, इन लाभों के प्राप्त होने का अवसर रहता ही हैं। शीत ऋतु में गुड़, मेथी, सोंठ, अजवाइन, गूगल जैसी साधारण वस्तुओं के होम से ही गृह-सदस्यों को सर्दी के अनेक रोगों से बचाव और छुटकारा मलता देखा गया है। दूसरे प्रकार के लाभ वे हैं, जो अग्निहोत्री यजमान के इच्छा, प्रेरणाग्रहण एवं प्रयत्न पर निर्भर हैं। यदि यजमान मन्त्रों के अर्थ का अनुसरण करता हुआ परमेश्वर के एवं परमेश्वरर चत यज्ञाग्नि के परमेश्वरकृत गुण-कर्म-स्वभाव का चन्तन करता हुआ उन्हें अपने अन्दर धारण करने का व्रत लेता है और तदर्थ प्रयत्न करता है, तो वह सन्मार्ग पर चलने की सद्बुद् ध प्राप्त करेगा, पापकर्मों से बचेगा, सदाचारी बनेगा, तेजस्वी एवं यशस्वी होगा और मोक्षप्राप्ति के अनुरूप कर्म करने की प्रेरणा लेगा, तो मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। यदि कोई यजमान इन लाभों को पाने का प्रयत्न ही नहीं करता, सूखे मन से आहुतिमात्र देता है, फलतः उसे यह लाभ प्राप्त नहीं होते, तो उसमें यज्ञ का दोष नही है।

जहां तक बड़े-बड़े रोगों को दूर करने, महामारियां रोकने आदि का प्रश्न है, प्राचीन काल में इस प्रकार के यज्ञ होते रहे हैं। पुत्र-प्राप्ति के लए पुत्रेष्टियां भी की जाती रही हैं। इनकी सफलता कुछ तो मनोबल, श्रद्धा एवं आशावादिता पर निर्भर है, दूसरे अ धक योगदान इस बात का है क कौन-सी ओष धयों से होम कया जाता है। जैसे अन्य च कत्सा-पद्धतियों आयुर्वेद, प्राकृतिक च कत्सा, जल- च कत्सा, ऐलोपैथी, होम्योपैथी आदि हैं, वैसे ही अग्निहोत्र– च कत्सा भी एक वैज्ञानिक पद्धति है। अग्निहोत्र- च कत्सा द्वारा वेदोक्त रोगकृ म- वनाश, ज्वर- च कत्सा, उन्माद- च कत्सा, गण्डमाला- च कत्सा एवं गर्भदोष- च कत्सा की जाती है जो सफल परिणामदायक होती है। इस वषय में मार्गदर्शन हेतु यज्ञ वषयक ग्रन्थों का अनुशीलन कया जाना चाहिये। इस वषय से सम्बन्धित आर्यजगत के वद्वान डा. रामनाथ वेदालंकार जी की

“यज्ञ मीमांसा” पुस्तक वशेष रूप से लाभदायक है। इस पुस्तक में वद्वान लेखक ने यज्ञ के व भन्न पक्षों पर सात अध्यायों में बहुमूल्य जानकारी दी है। पहला अध्याय यज्ञ और अग्निहोत्र वषय में सामान्य वचार से सम्बन्धित है। दूसरा अध्याय वैदिक यज्ञ- च कत्सा पर है। तीसरा अग्निहोत्र के प्रेरक तथा लाभ-प्रतिपादक वेदमन्त्रों पर, चौथा अग्निहोत्र की व धयों तथा मन्त्रों की व्याख्या, पांचवा अध्याय बृहद् यज्ञ के व शष्ट मन्त्रों पर तथा षष्ठ अध्याय आत्मिक अग्निहोत्र एवं अग्निहोत्र के भावनात्मक लाभों पर है। अन्तिम सातवां अध्याय यज्ञ एवं अग्निहोत्र- वषयक सूक्तियों पर है। इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से यज्ञ वषयक सभी पक्षों का ज्ञान होता है। यह ग्रन्थ सभी यज्ञ प्रेमी पाठकों के लए पढ़ने योग्य है। यज्ञ के प्रति पाठकों में जागृति उत्पन्न हो और वह स्वस्थ रहते हुए यशस्वी जीवन व्यतीत करें और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर हों, इस लए यह कुछ सं क्षप्त उल्लेख कया है। इस लेख की समस्त सामग्री डा. रामनाथ वेदालंकार जी की पुस्तक यज्ञमीमांसा पर आधारित है। उनका पुण्यस्मरण कर उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

दैनिक अग्निहोत्र नैत्यिक कर्तव्य है। कुछ लोग घरों में नियम से दोनों समय या एक समय दैनिक अग्निहोत्र करते हैं। कुछ लोग आर्यसमाजों में होनेवाले सामूहिक दैनिक या साप्ताहिक अग्निहोत्र में सम्मि लत होते हैं, घर पर अग्निहोत्र नहीं करते। स्वामी दयानन्द ने अपनी ‘संस्कार व ध’ पुस्तक में घृत की प्रत्येक आहुति न्यूनतम छः माशे की लखी है। वह धृत भी कस्तूरी, केसर, चन्दन, कपूर, जा वत्री, इलायची आदि से सुगन्धित कया होना चाहिए। इसके अतिरिक्त सुगन्धि, मष्ट, पुष्ट एवं रोगनाशक द्रव्यों की हवन-सामग्री होनी चाहिये। स मधाएं भी चन्दन, पलाश, आम आदि की होनी चाहिएं। उन्होंने अग्निहोत्र के जो लाभ अपने ग्रन्थों में लखे हैं, वे घर-घर होने वाले इसी प्रकार के अग्निहोत्र की दृष्टि में रखकर हैं। इस प्रकार का अग्निहोत्र हो, तो उसमें दोनों समय का मलाकर काफी दैनिक व्यय होने का अनुमान है। इतना व्यय करने का सामथ्र्य और उत्साह वरलों का ही हो सकता है। ऐसी स्थिति में श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार जैसा भी बन पड़े होम करना उ चत है। हव्य चारों प्रकार के होने चाहिएं, जिसमें वायु मण्डल सुगन्धित तथा रोगहर ओष धयों के अणुओं से युक्त हो तथा उसमें श्वास लेने से लाभ पहुंचे। जो एक काल के ही व्रत का निर्वाह करना चाहें, वे वैसा कर सकते हैं। अग्नि प्रज्जव लत रहे ओर धुआं न उठे, ऐसा प्रयास होना चाहिए। यह वचार पूज्य आचार्यप्रवर पं. रामनाथ वेदालंकार जी के हैं। आशा है क पाठक यज्ञ वषयक इस लेख में प्रस्तुत वचारों से लाभान्वित होंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

हाँ, वेद में गो हत्यारे को मारने का आदेश है: डॉ. धर्मवीर

DECEMBER 5, 2015 1 COMMENT

आजकल गो मांस खाने, न खाने को लेकर तथाक थत साहित्यकार, मानव अ धकारवादी, प्रगतिशील और कांग्रेस समर्थक राजनैतिक लोग प्रतिदिन ही शोर करते हैं। वास्त वकता तो यह है क इनको गाय, घोड़े से कुछ भी लेना देना नहीं है, इनका उद्देश्य हिन्दू वरोध है। इस देश में गत साठ वर्षों तक जो लोग सत्ता के साथ रहे और वहाँ से लाभ उठाते रहे, आज उनका सत्ता सुख छिन गया तो चल्ला रहे हैं। यदि इन लोगों के अन्दर थोड़ी भी संवेदनशीलता या मनुष्यता होती तो जो कुछ आज मुस्लिम देशों में हो रहा है, उसका वरोध करने का साहस अवश्य करते। मूल रूप से ये लोग पाखण्डी हैं, इनको हिन्दू वरोध करने का आ र्थक लाभ मलता था, मोदी सरकार के आने से वह बन्द हो गया, इस कारण इनका यह पीड़ा-प्रदर्शन उ चत ही है। हिन्दू वरोध के नाम पर राष्ट्रद्रोह करना इनका स्वभाव बन चुका है।

जो लोग ऐसा कहते हैं क हिन्दू लोग गौ की तुलना में मनुष्य का मूल्य नहीं समझते, कसी ने कसी जानवर को मार दिया तो क्या हो गया, जानवर का मनुष्य के सामने क्या मूल्य है? संसार के सभी प्राणी मनुष्य के लए ही बने हैं। उन्हें मारने-खाने में कोई अपराध नहीं होता। संसार की सभी वस्तुयें मनुष्य के उपयोग के लये बनी हैं, इसका यह अ भप्राय तो नहीं हो सकता क आप उन्हें नष्ट कर दें। संसार के प्राणी भी मनुष्य के लये हैं तो इनको मारकर खा जाना ही तो एक उपयोग नहीं है। पहली बात, जो भी संसार की वस्तुयें और प्राणी हैं, वे सभी मनुष्यों की साझी सप त हैं, सबके लये उनका उपयोग होना चाहिए। सबका हित सद्ध होता हो, ऐसा उपयोग सबको करना उ चत है। संसार की वस्तुओं का श्रेष्ठ उपयोग मनुष्य की बुद् धमत्ता की कसौटी है। कोई मनुष्य घर को आग लगाकर कहे क लक ड़याँ तो मेरे जलाने के लये ही हैं। लक ड़याँ जलाने के काम आती है, परन्तु घर बनाने के भी काम आती हैं, उनका यथो चत उपयोग करना मनुष्य का धर्म है।

कोई भी मनुष्य कसी का अहित करके अपना हित साधना चाहता है तो उसको ऐसा करने का अ धकार नहीं दिया जा सकता। समाज में व्यक्तिगत आचरण की पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु सामाजिक परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति को समाज के नियमों के अधीन चलना होता है। जो लोग गाय का मांस खाने को अ धकार मानते हैं, वे मनुष्य का मांस खाने को भी अ धकार मान सकते हैं। समाज में कोई ऐसा करता है तो उसे अपराधी माना जाता है, उसे दण्डित कया जाता है, जैसा निठारी काण्ड में हुआ है। वैसे ही गाय भारत में हिन्दू समाज में न मारने योग्य कही गई है। आप कानून व नियम का वरोध करके गो मांस खाने को अपना अ धकार बता रहे हैं। एक वर्ग-बहुसंयक वर्ग जब गौ हत्या की अनुमति नहीं देता, तब यदि आप ऐसा करते हैं तो देश और समाज से द्रोह करना चाह रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में जब एक वर्ग नियम को मानने से इन्कार करता है तो दूसरा वर्ग भी नियम तोड़ने लगता है, जैसा कश्मीर में हुआ, यदि गोहत्या करना, गोमांस खाना इंजीनियर रशीद का अ धकार है तो गाय की रक्षा करने का और गोहत्यारे को दण्डित करना भी हिन्दू का अ धकार है। ये दोनों स्थिति समाज में अराजकता उत्पन्न करने वाली हैं, समाज के हित में नहीं है। हमें समाज के हित

को सर्वोपरि रखना होगा। यदि गोहत्या करके एक अपने को श्रेष्ठ सद्ध करना चाहता है तो दूसरा सूअर को लेकर आपकी भावनाओं को आहत करता है। यह संघर्ष निन्दनीय है।

जो लोग गोहत्या के पक्षधर हैं, वे अपने भोजन की चन्ता में पूरे समाज के भोजन पर संकट उत्पन्न कर रहे हैं। गाय का मांस तो कुछ लोगों की आवश्यकता है, परन्तु गाय का दूध पूरे समाज की आवश्यकता है। यह मांस खाने वालों की भी आवश्यकता है। इन लोगों के मांस खाने से समाज में आज दूध का भयंकर संकट उत्पन्न हो गया है। आपको अपने परिवार में दूध चाहिए या नहीं, छोटे बच्चों को दूध चाहिए, बड़ों को, रो गयों को दूध चाहिए। घर में दूध, दही, मक्खन, घी, मठाई, मावा, खीर, पनीर आदि में प्रतिदिन जितने दूध की आवश्यकता है, दूध का उत्पादन उसकी अपेक्षा बहुत थोड़ा हो रहा है, इसी लये दूध, दही, मावा, पनीर, मठाई में सब कुछ नकली आ रहा है। दूध से बनी हर वस्तु में आज मलावट है, क्यों क गौहत्या के निरन्तर बढ़ने से गाय, भैंस आदि पशु घट गये हैं। यदि यही क्रम जारी रहा तो आपके लये सोयाबीन का आटा घोलकर पीने के अतिरिक्त कोई उपाय ही नहीं बचेगा।

गोमांस खाने और गोमांस के व्यापार के कारण देश गहरे संकट की ओर जा रहा है। भोजन में गोदुग्ध के पदार्थों को निकाल दिया जाय तो भोजन में कुछ बचता नहीं है। हम समझते हैं क कारखानों, उद्योगों से समृद् ध आती है, समृद् ध का वास्त वक आधार पशुधन है। मनुष्य की जितनी आवश्यकताओं की पूर्ति पशुओं से प्राप्त होने वाली वस्तुओं से होती है, उतनी अन्य पदार्थों से नहीं होती। जी वत पशु हमें अ धक लाभ पहुँचाते हैं, मरकर तो पहुँचाते ही हैं। स्वयं मरे पशु का उपयोग कम नहीं अतः पशुवध की आवश्यकता नहीं है। गोदुग्ध और उससे बने पदार्थ जहाँ मनुष्य के लये बल, बुद् ध के बढ़ाने वाले होते हैं, वहाँ मांस तमोगुणी भोजन है, इस लये मह र्ष दयानन्द ने पहले ही घोषणा कर दी थी क गौ आदि पशुओं के नाश से राजा और प्रजा का भी नाश होता है। इस भारत के नाश के लये अंग्रेजों ने हमारी समृद् ध के दो सूत्र समझे थे और उनका पूर्णतः नाश कया था। प्रथम हमारी शक्षा, हमारे वचार और चन्तन के उत्कर्ष का आधार थी, उसे नष्ट कया तथा दूसरा पशुधन वशेष रूप से गाय जो हमारी समृद् ध का मूल थी, उसका नाश कर इस देश को दरिद्र बना गये। उन्हीं के दलालों के रूप में जो लोग इस देश में उन्हीं से पोषण पाते हैं, उन्हीं के इशारे पर काम करते हैं, उन्हीं का षड़यन्त्र है। वे गोमांस खाने जैसी बातें उठाकर ववाद उत्पन्न करते हैं, वदेशों में देश की छ व खराब करते हैं।

गाय हमारे बीच हिन्दू-मुसलमान की पहचान नहीं है, गाय तो सब की है। गाय उपयो गता की दृष्टि से दूध न देने पर भी उपयोगी है। उसके गोबर से खाद और गोमूत्र से औषध का निर्माण होता है। पछले दिनों गाय पर कये जा रहे अनुसन्धानों ने सद्ध कर दिया है क गाय न केवल हमारी भोजन की समृद् ध को अपने दूध से बढ़ाती है, अ पतु खेती की उर्वरा-शक्ति का संरक्षण भी गोबर की खाद से करती है। गोमूत्र से अमेरिका जैसे देश कैंसर की दवा का निर्माण करते हैं। मह र्ष दयानन्द ने अपने जीवन में गाय की रक्षा के लये बहुत प्रयत्न कया था। स्वामी जी ने गोहत्या के वरोध में करोड़ों लोगों के हस्ताक्षर कराकर महारानी वक्टोरिया को भेजने और गोहत्या बन्द करने का आन्दोलन चलाया था। स्वामी जी ने गोकरुणानि ध में एक गाय के जीवन भर के दूध से कतने लोगों का पालन-पोषण होता है तथा एक गाय के मांस से एक बार में कतने लोगों का पेट भरता है, इसकी तुलना करके गौ का अर्थशास्त्र समझाया था। गाय को हिन्दुओं ने प वत्र माना, यह केवल एक धा र्मक भावना

का प्रश्न नहीं है। आज गाय के दूध के गुणों के कारण भारतीय गायों की नस्ल का संरक्षण ब्राजील और डेन्मार्क जैसे देशों में कया जा रहा है। वहाँ गौ संवर्धन का कार्य बड़े व्यापक स्तर पर कया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में हमारे देश में यह ववाद निन्दनीय और चन्ताजनक है। भारतीय गायों की तुलना में वदेशी नस्ल की गायों के दूध में कतना वष है, इसका बहुत बड़ा अनुसन्धान हो चुका है। भारतीय गाय आज समाप्त होने के कगार पर है। ऐसी परिस्थिति में यह ववाद स्वयं प्रेरित नहीं कहा जा सकता। जो सामाजिक ताने-बाने को तोड़कर राष्ट्र की प्रगति को रोकना चाहते हैं, यह ऐसे लोगों का काम है।

भोजन की स्वतन्त्रता के नाम पर जो कानून को तोड़ना चाहते हैं, उन्हें यह भी अवश्य ही ज्ञात होगा क स्वतन्त्रता की बात तो तब आती है, जब आपके पास कोई वस्तु सुलभ हो। यदि कोई यह समझता है क उसे गोमांस खाने की स्वतन्त्रता और अ धकार है तो क्या गोमांस खाने वालों के अ धकार से गोदुग्ध पीने वालों का अ धकार समाप्त हो जाता है। गोमांस और गोदुग्ध के अ धकार में गोमांस खाने की बात करना, दिमागी दिवा लयेपन की पहचान है। नई वैज्ञानिक खोजों ने सद्ध कया है क प्रा णयों की हिंसा और निरन्तर बढ़ रही क्रूरता से पृथ्वी का पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ता जा रहा है। प्रा णयों की हत्या करने का कार्य नई तकनीक और वज्ञान के प्रयोग से बहुत बड़े स्तर पर चलाया जा रहा है, उसमें क्रूरता भी उतनी ही बढ़ गई है। मनुष्य चमड़े के लोभ में पशुओं के गर्भस्थ शशुओं की हत्या करता है और भोजन के नाम पर पशुओं को यातनायें देता है। इन यातनाओं से मनुष्य का स्वभाव क्रूर होता है। आजकल हमारे समाज में बच्चों से लेकर बड़ों तक, ग्राम से नगर तक सबके स्वभाव में असहिष्णुता और क्रूरता का समावेश हुआ है, उसका मुय कारण हमारे व्यवहार में आई हुई हिंसा है। जिन धर्मों में दया और संयम का स्थान नहीं है, उनको धर्म कहना ही उ चत नहीं है, अहिंसा और संयम के बिना समाज में कभी भी मर्यादाओं की रक्षा नहीं की जा सकती। गौ आदि प्रा णयों के रक्षण और पालन से समृद् ध के साथ सद्गुणों का भी समावेश होता है।

कुछ लोग गाय को माता कहने का मजाक बनाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे लोग नहीं जानते क इन शदों का भावनात्मक मूल्य क्या है? भारतीय जब भी संसार के पदार्थों के गुणों को समझते हैं और उनसे लाभ उठाते हैं, उनके साथ आत्मीय भाव वक सत करते हैं। जिनके साथ मनुष्य का आत्मीय भाव होता है, मनुष्य उनकी रक्षा करता है, उन वस्तुओं से प्रेम करता है। हिन्दू भू म को माता कहता है, गाय को माता कहता है, अपना पालन-पोषण करने वाली धरती आदि को माता कहता है। सबन्धों में बड़े गुरु, राजा आदि की पत्नी को माता कहता है। यह शद समान और उसके प्रति कर्त्तव्य का बोध कराने वाला है।

जो लोग गाय का मांस खाने को अपना अ धकार बताते हैं और तर्क देते हैं क ईश्वर ने पशुओं को मनुष्य के खाने के लये बनाया है, उनसे पूछा जाना चाहिए क क्या सूअर को ईश्वर ने न बनाकर क्या मनुष्य ने बनाया है और सूअर भी यदि ईश्वर ने बनाया है तो क्या ईश्वर अप वत्र वस्तु व प्राणी बनाता है? वस्तु व प्रा णयों की प वत्रता-अप वत्रता मनुष्य की अपेक्षा से होती है। परमेश्वर के लये सारी रचना प वत्र ही है। जहाँ तक मनुष्य अपने को प वत्र समझें तो उन्हें योग दर्शन की पंक्ति का स्मरण करना चाहिए- मनुष्य का शरीर जन्म से मृत्यु तक अप वत्रता का पर्याय है। फर कोई प्राणी रचना से कैसे प वत्र-अप वत्र है,

परमेश्वर की सी रचना प वत्र है। मनुष्य अपने ज्ञान, रु च एवं आवश्यकता के अनुसार वर्गीकरण कर लेता है।

आज गौ को बचाने के लए गोमांस के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता है। वदेशों में, वशेषकर खाड़ी के देशों को मांस का निर्यात होता है, मांस के व्यापारी धन के लोभ में अ धक-अ धक गोमांस का निर्यात कर रहे हैं। इस पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है। राज्य व्यवस्था में गोहत्या राज्य का वषय होने से प्रशासन में एक मत नहीं हो पा रहा है। भाजपा शा सत राज्यों में गोहत्या पर प्रतिबन्ध और इस अपराध के लये दण्ड वधान है, दूसरे राज्यों में नहीं। इस कार्य को करने की आवश्यकता है।

अब एक बात सोचने की है, गोहत्यारे को मृत्युदण्ड बयान ववादित कैसे है? वेद में तो हत्यारे को मारने का वधान स्पष्ट है, ववादित बयान उनका हो सकता है जो लोग वेद में गो हत्या करने का वधान बताते हैं। वेद में हत्या का वधान होने से गो हत्यारे की हत्या तो हो नहीं जायेगी, क्यों क भारत का शासन वेद के नियम से तो चलता नहीं है। यह तो भारत के सं वधान से चलता है। कुरान में लखा है क का फर को मारने वाले को खुदा जन्नत देता है, तो क्या लखा होने से भारत में इसे लागू कर देंगे? वेद और कुरान में जो लखा है, लखा रहने दें, इससे परेशान होने की क्या आवश्यकता है, वेद तो कहता है- यदि कोई तुहारे गाय, घोड़े, पुरुष की हत्या करता है तो सीसे की गोली से मार दो। मन्त्र इस प्रकार है-

यदि नो गां हं स यद्यश्वं यदि पूरुषम्।

तं त्वा सीसेन वध्यामो यथा नासो अवीरहा।

– अथर्ववेद 1/16/4

– धर्मवीर

मैं ब्रह्म नहीं, अल्प, चेतन व बद्ध जीवात्मा हूं' - मनमोहन कुमार आर्य

DECEMBER 4, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

हम इस जड़-चेतन संसार में रहते हैं। यह सारा जगत हमारा परिवार है। सभी जड़ पदार्थ हमें अपने गुणों से लाभ पहुंचाते हैं। हमें पदार्थों के गुणों को जानना है और जानकर उनका सदुपयोग करना है। हमारे वैज्ञानिकों ने यह कार्य सरल कर दिया है। उन्होंने जड़ पदार्थों को अन्यों की तुलना में कहीं अ धक जाना है और सभी पदार्थों के गुणों को जानकर उन्हें मानव जीवन को सहयोगी बनाने के लए अनेक सुख-सु वधाओं की वस्तुएं बनाई हैं। उनके इस कार्य से हमारे पर्यावरण को भी हानि पहुंची है जिससे सारा संसार त्रस्त वा चन्तित है। इससे बचने के उपाय खोजे जा रहे हैं। इसके साथ ही वैज्ञानिकों ने मानवता के वनाश की भी पर्याप्त सामग्री का निर्माण कया है जिसे युद्ध में प्रयोग होने वाली सामग्री कहा जा सकता

है। हानिकारक रायायनिक खाद भी इनमें सम्मि लत है। यह सब होने पर भी हमारे वैज्ञानिक एवं हमारे मत-मतान्तरों के आचार्य मनुष्य व इसमें निवास करने वाली जीवात्मा को इसके के यथार्थ स्वरुप में अभी तक जान नहीं सके हैं। वज्ञान का क्षेत्र केवल भौतिक पदार्थों तक सी मत है। वर्तमान संसार में वज्ञान का वकास व उन्नति प्रायः पश्चिम के देशों में ही अ धक हुई है। वहां जो मत-मतान्तर प्रच लत हैं, वह एकांगी होने व ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरुप को पूर्णतया न जानने के कारण वैज्ञानिकों को सन्तुष्ट व सहमत नहीं कर सके जिससे वैज्ञानिकों ने ईश्वर व जीवात्मा के पृथक, अनादि, अमर, अ वनाशी स्वरुप को मानना ही छोड़ दिया। इसके वपरीत आर्यावर्त्त भारत में आदि काल से ही ईश्वरीय ज्ञान वेदों की सुलभता के कारण यहां के ऋ ष-मुनि व श क्षत लोग ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरुप को जानते आये हैं और आत्मा की उन्नति के लए वेद एवं वैदिक साहित्य के अनुसार जीवनयापन करते रहे हैं। महाभारत के बाद परा व अपरा अर्थात् आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान व वद्याओं का प्रचार प्रसार न होने के कारण अज्ञान व अन्ध वश्वास उत्पन्न हो गये जिसके परिणामस्वरुप भारत और दूरस्थ देशों में अज्ञान व अन्ध वश्वास पर आधारित नाना मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये। इस कारण ईश्वर व जीवात्मा का सत्यस्वरुप लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध (1863-1883) में मह र्ष दयानन्द ने व उसके बाद उनके अनुयायियों ने अपने पुरुषार्थ से वेदों के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कया और उसे देश व वश्व में फैलाया जिससे लोगों को ईश्वर व जीवात्मा सहित प्रकृति के यथार्थ स्वरुप का ज्ञान प्राप्त हुआ। इससे लाभ यह हुआ क मनुष्य योनी में जीवात्मा अपने कर्तव्य-कर्मों का निर्धारण कर जीवन के लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सद् ध के लए प्रयत्न करते हुए इन्हें प्राप्त कर सकता है।

लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में स्वामी शंकराचार्य जी हुए हैं जिन्होंने अद्वैत मत का प्रचार कया। उनके समय में बौद्ध व जैन मत ने अपनी जड़े जमा ली थी और बहुत से वैदिक धर्मी लोग इन मतों से आक र्षत होकर इनकी शरण में जा चुके थे। यह मत वैदिक मतावलम्बियों के समान ईश्वर के अस्तित्व में वश्वास नहीं रखते थे। इन मतों में ईश्वर के अस्तित्व के प्रति घोर अन्धकार होने के कारण इन्होंने ईश्वर को मानता व उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करना छोड़ दिया था। स्वामी शंकाराचार्य जी ने इनसे ईश्वर के स्वरुप को स्वीकार कराने के लए शास्त्रार्थ कये और संसार में केवल एक ईश्वर ही है, अन्य कोई पदार्थ यथा जीवात्मा व भौतिक पदार्थ जैसे यह दीखते हैं, नहीं है, का प्रचार कया। वह शास्त्रार्थ में इन मतों से वजयी हो गये जिससे उनके मत को सभी बौद्ध व जैन मतानुयायियों को स्वीकार करना पड़ा था। स्वामी शंकराचार्य जी जीवात्मा को ईश्वर का अंश मानते थे जो अज्ञानता के कारण ईश्वर से पृथक व्यवहार करता है तथा ज्ञान हो जाने वा अ वद्या के नष्ट होने पर ईश्वर में ही मल जाता या उसका उसमें वलय और समावेश हो जाता है। फर उस जीवात्मा वा ईश्वरांश का पृथक अस्तित्व नहीं रहता। प्रकृति व भौतिक पदार्थों के पृथक अस्तित्व को न स्वीकार कर वह इसे ईश्वर की माया मानते थे जो क वस्तुतः अस्तित्वहीन पदार्थ है। मह र्ष दयानन्द सत्य ज्ञान व वद्याओं के जिज्ञासु थे। उन्हें गुरु वरजानन्द जी से जो ज्ञान व शक्षा मली थी वह यह थी क ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति इन तीन पृथक-पृथक पदार्थों का अस्तित्व है। इन तीन शाश्वत व सनातन पदार्थो को त्रैतवाद के नाम से जाना व पुकारा जाता है। सत्यार्थ प्रकाश में मह र्ष दयानन्द ने इस अद्वैतवाद से जुड़े प्रश्नों को

प्रस्तुत कर उनका समाधान कया है। इस लेख में भी हम वैदिक ज्ञान के आलोक में कुछ प्रश्नों के समाधान की चर्चा कर रहे हैं।

अद्वैतवादियों का जीव के वषय में पक्ष है क जीव व ब्रह्म, पृथक नहीं अ पतु एक हैं जिनकी संज्ञा ब्रह्म या ईश्वर है। इस लए वह जीव व जीवात्मा का निरोध व निषेध करते हैं। वह कहते हैं क जीव के अस्तित्व न होने से उसके आवरण में आने, जन्म लेने व बन्धन में फंसने का प्रश्न ही नहीं है। उनके अनुसार जीवात्मा ईश्वर के गुणों व उसके स्वरुप का साधक न होकर उसे ईश्वर वा ब्रह्म की साधना की कं चत अपेक्षा नहीं है। जीव न बन्धन से छूटने की इच्छा करता है और न जीव की कभी मुक्ति होती है क्यों क जब जीव है ही नहीं तो उसका बन्धन मानना ही गलत है और जब जीव का बन्धन हुआ ही नहीं तो मुक्ति को मानने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अद्वैतवादी मत के इन वचारों व मान्तयाओं को रेखां कत कर मह र्ष दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में उनका उत्तर वा समाधान प्रस्तुत कया है। वह कहते हैं क नवीन वेदान्तियों का यह कहना सत्य नहीं है क्यों क जीव का स्वरुप अल्प होता है, इस लए वह आवरण में आता है। यह अल्प परिमाण व आवरण ऐसा है क इसके कारण जीव को ईश्वर व संसार का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। इस अल्प स्वरुप व परिमाण वाला होने से जीव का मुनष्य आदि अनेक योनियों में जन्म होता है और वह जीव पाप रूप कर्मों को करके फल भोगरूप बन्धनों में फंसता है। इन बन्धनों से छूटने हेतु जीव अनेक साधनों को करता है। दुःख कसी भी जीवात्मा की पसन्द नहीं है, इस कारण सभी जीव दुःखों से छूटने के लए प्रयत्न करते हैं। दुःखों से छूटने के लए जीव जिन-जिन वेद व शास्त्र वहित साधनों का आश्रय लेता है, उनसे वह दुःखों से निवृत्त होते हुए मुक्ति को प्राप्त होकर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होता है व सुख व आनन्द का भोग करता है।

अद्वैतवादी प्रश्न करते हैं क सुख व दुःखों को भोगना देह और अन्तःकरण के धर्म हैं, जीव के नहीं। उनका कहना है क जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षी मात्र है। शीत व उष्णता का अनुभव उनके अनुसार शरीरादि के धर्म्म हैं, आत्मा तो निर्लेप है। इन आरोपों व शंकाओं का वैदिक समाधान है क देह और अन्तःकरण जड़ पदार्थ हैं और यह चेतन तत्व जीवात्मा से पृथक हैं। इन देह और अन्तःकरण को शीत व उष्णता का भोग व अनुभव नहीं होता ऐसे ही क जैसे पत्थर को शीतलता और उष्णता का अनुभव व भोग नहीं होता है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी शीत व उष्ण पदार्थों को स्पर्श करता है, उसी को इनका अनुभव वा भोग प्राप्त होता है। पत्थर के समान ही मनुष्य के प्राण भी जड़ हैं। न प्राणों को भूख लगती है न पपासा, कन्तु प्राण वाले जीवात्मा को क्षुधा व तृषा (भूख व प्यास) लगती है। प्राणों के समान ही मनुष्य का मन भी जड़ है। न मन को हर्ष, न शोक हो सकता है कन्तु मन से हर्ष, शोक, दुःख, सुख का भोग मन अपने लए नहीं अ पतु जीव को कराता है वा जीव करता है। जैसे बाह्य क्षोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि वषयों का ग्रहण करके जीव सुखी-दुःखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद् ध, चत्त व अहंकार से संकल्प, वकल्प, निश्चय, स्मरण और अ भमान का करने वाला 'जीवात्मा' दण्ड और मान्य का भागी होता है। उदाहरण के रुप में जैसे तलवार से मारने वाला 'मनुष्य वा जीवात्मा' दण्डनीय होता है, तलवार नहीं होती वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कत्र्ता जीव सुख-

दुःख का भोक्ता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, कन्तु कत्र्ता व भोक्ता है। जीवात्मा ही अन्तःकरण व इन्द्रियों को भोग में प्रवृत्त करता है इस लये कर्मों के पाप व पुण्य के अनुसार इनका भोक्ता भी जीवात्मा ही होता है। जीवात्मा वा मनुष्य के कर्मों का साक्षी तो एक अद् वतीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लप्त होता है। जीवात्मा न तो ईश्वर है और न जीवों अर्थात् अपने ही कए कर्मों का साक्षी मात्र हैं। ईश्वर ही साक्षी है और जीवात्मा कर्त्ता, भोक्ता व साक्षी है।

इस ववेचन से जीवात्मा का ईश्वर से पृथक अस्तित्व सद्ध होता है। जीवात्मा साक्षी नहीं अ पतु पाप-पुण्य रूपी कर्मों का कर्ता है और ईश्वर उसके कर्मों का साक्षी व फल प्रदाता है। मैं, मुनष्य, जीवात्मा हूं। मेरा शरीर मुझ जीवात्मा का शरीर है जो कर्मो को करने व फल भोगने के लए ईश्वर से मला है। जीवात्मा से शरीर व इसकी इन्द्रियों को प्रेरित कर कर्मो को करके मैं इनके फल भोग में फंसता हूं। सभी मनुष्यों को निरासक्त भाव से ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना तथा दैनिक अग्निहोत्र आदि वेद वहित पुण्य कर्मों को करके अपनी जीवात्मा को बन्धन व दुःखों से मुक्त करना चाहिए और साथ हि परमानन्द स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति के लए साधन व प्रयत्न करने चाहिये, तथा 'मैं ब्रह्म हूं', इस मथ्या उक्ति से बचना चाहिये।।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

'मह र्ष दयानन्द प्रोक्त वेद सम्मत ब्राह्मण वर्ण के गुण-कर्म-स्वभाव' -मनमोहन कुमार आर्य,

NOVEMBER 26, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

<u>वैदिक वर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ में</u>

यह जड़-चेतन संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। ईश्वर, जीवात्मायें और प्रकृति, तीन नित्य सत्तायें हैं जिनमें ईश्वर व जीवात्मा चेतन एवं प्रकृति जड़ पदार्थ हैं। ईश्वर व जीवात्मा संवेदनाओं से युक्त व प्रकृति संवेदनारहित है। जीवात्माओं के पूर्व जन्म में अर्जित प्रारब्ध वा कर्मों के फलों एवं सुख-दुःख रुपी भोग प्रदान करने के लए ही ईश्वर ने इस संसार को रच कर जीवात्मा को व भन्न योनियों में उत्पन्न कया है। हमें मनुष्य योनि वा इसमें माता-

पता, भाई व बहिन सहित जो परिवेश मला है वह सब हमारे प्रारब्ध पर आधारित है। मनुष्यों की उत्प त्त एक प्रकार से होने के कारण संसार के सभी मनुष्यों की जाति एक है। जन्मना जाति का सद्धान्त अनावश्यक है जिससे सामाजिक वषमता उत्पन्न हाती है, अतः इसे समाप्त कया जाना चाहिये। मनुष्यों के गुण-कर्म-स्वभाव भन्न- भन्न होते हैं जिसमें बहुत बड़ा कारण हमारे पूर्व जन्म का प्रारब्ध और इस जन्म के वद्यादि गुणों पर आधारित कर्म व संस्कार होते हैं। मनुष्यों के इन गुण-कर्म व स्वभाव में भन्नता व समाज की आवश्यकता के अनुरुप उनका वर्गीकरण कर वेदानुसार चार वर्णों यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का वधान हमारे प्राचीन ऋ षयों ने कया जो ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आधारित है। इससे सम्बन्धित यजुर्वेद का मन्. 31/11 हैः

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रौ अजायत।।

इस मन्त्र का अर्थ है क जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो, वह (ब्राह्मण) ब्राह्मण, (बाहू) 'बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्' (शतपथ ब्राह्मण) बल वीर्य का नाम बाहु है, वह जिसमें अ धक हो, सो (राजन्यः) क्षत्रिय, (ऊरू) कटि के अधो और जानु के ऊपर के भाग का नाम है। जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे, आवे, प्रवेश करे, वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो, वह शूद्र है। यह वेद मन्त्र का सत्यार्थ है। इसमें कहीं नहीं कहा क ब्राह्मण माता- पता से ब्राह्मण, क्षत्रियों से क्षत्रिय आदि उत्पन्न होते हैं। मुख के सदृश से तात्पर्य यह है क जैसा मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है, वैसे पूर्ण वद्या और उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अंग ही नहीं है तो मुख से उत्पन्न होना असंभव है। अतः ब्राह्मण श्रेष्ठ गुणों, कर्मों व स्वभाव को धारण कर आचरण करने से होता है, यह वेद का वधान है।

ब्राह्मण के लए धारण व आचरण करने योग्य कौन-कौन से गुण कर्म व स्वभाव का वेद एवं वैदिक साहित्य में वधान है, इसका वर्णन मह र्ष दयानन्द ने स्वर चत ग्रन्थ संस्कार व ध में कया है और अपने अन्य ग्रन्थों में भी इस पर प्रसंगानुसार प्रकाश डाला है। संस्कार व ध में वह वेदानुकूल मनुस्मृति व गीता के श्लोकों को उद्धृत करते हैं। यह श्लोक निम्न हैः

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।1।। मनुस्मृति।।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं वज्ञानमस्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।2।। गीता।।

अर्थ–एक-निष्कपट होके प्रीति से पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को पढ़ावे। दो-पूर्ण वद्या पढ़ें। तीन-अग्निहोत्रादि यज्ञ करें। चैथा-यज्ञ करावें। पांच- वद्या अथवा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देवें। छठा-न्याय से धनोपार्जन करनेवाले गृहस्थों से दान लेवें भी। इनमें से तीन कर्म-पढ़ना, यंज्ञ करना, दान देना धर्म हैं और तीन कर्म-पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना, जी वका हैं। परन्तु–प्रतिग्रहः प्रत्यवरः।। (मनुस्मृति) जो दान लेना है वह नीच (बुरा) कर्म है, कन्तु पढ़ा कर और यज्ञ करा कर जी वका करनी उत्तम है।।1।।

(शमः) मन को अधर्म में न जाने दें, कन्तु अधर्म करने की इच्छा भी न उठने देंवे। (दमः) श्रोत्रादि इन्द्रियों को अधर्माचरण से सदा दूर रक्खे, दूर रखके धर्म ही के बीच में प्रवृत्त रक्खे। (तपः) ब्रह्मचर्य, वद्या, योगाभ्यास की सद् ध के लए शीत उष्ण, निन्दा-स्तुति, श्रुधा-तृषा, मानापमान आदि द्वन्द्वों को सहना। (शौचम्) राग-द्वेष-मोहादि से मन और आत्मा को तथा जलादि से शरीर को सदा प वत्र रखना। (क्षान्तिः) क्षमा, अर्थात् कोई निन्दा-स्तुति आदि से सतावें तो भी उन पर कृपालु रहकर क्रोधादि का न करना। (आर्जवम्) निर भमान रहना, दम्भ, स्वात्मश्लाघा, अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करके नम्र सरल, शुद्ध, प वत्रभाव रखना। (ज्ञानम्) सब शास्त्रों को पढ़के, वचारकर उनके शब्दार्थ-सम्बन्धों को यथावत् जानकर पढ़ाने का पूर्ण सामर्थ्य करना। (वज्ञानम्) पृ थवी से लेके परमेश्वर-पर्यन्त पदार्थों को जान और क्रयाकुशलता तथा योगाभ्यास से साक्षात् करके यथावत् उपकार ग्रहण करना-कराना। (आस्तिक्यम्) परमेश्वर, वेद, धर्म, परलोक, परजन्म, पूर्वजन्म, कर्मफल और मुक्ति से वमुख कभी न होना। ये नव कर्म और गुण, धर्म में समझना। सबसे उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव को धारण करना। यह गुण-कर्म जिन व्यक्तियों में हों वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी होवें। ववाह भी इन्हीं वर्ण के गुण-कर्म-स्वभावों को मलाकर ही करें। मनुष्यमात्र में से इन्हीं (गुण, कर्म व स्वभावों से युक्त मनुष्यों को ही, अन्य इन गुणों से रहित मनुष्यों को नहीं) को ब्राह्मण वर्ण का अ धकार होवे।।2।। यह ध्यान देने योग्य बात है क मह र्ष दयानन्द स्वयं जन्मना उच्च कुलीन ब्राह्मण थे तथा प वेदाध्ययन कर व वेदों का सत्य तात्पर्य जानकर उन्होंने पक्षपात से मुक्त होकर ब्राह्मण वर्ण का होने व कहलाने के सत्य, यथार्थ व वास्त वक तात्पर्य को प्रस्तुत कया है। प्रत्येक बुद् धमान यह बात स्वीकार करेगा क जब हमारे देश व समाज में ऐसे बुद् धमान ब्राह्मण होंगे तभी देश व समाज की उन्नति होगी अन्यथा सामाजिक समरसता व देश व समाजोन्नति की बात करना अन्धेरे में तीर चलाने जैसा निरर्थक कार्य है। इन वैदिक वचारों से जन्मना जातिवाद का भी खण्डन हो रहा है क्यों क ब्राह्मण परिवार में सभी सन्तानें इन गुणों वाली नहीं होती हैं। जो नहीं हों, उनका वर्ण गुण-कर्म-स्वभावानुसार इतर तीन वर्णों में से कसी एक में निर्धारित कया जाना चाहिये। मह र्ष दयानन्द ने इससे आगे क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रों के लक्षण वा गुण-कर्म-स्वभावों का भी वर्णन कया है जो श्रेष्ठ समाज का आधार है। पाठकों से निवेदन है क वह संस्कार व ध का अध्ययन कर उन्हें वहीं देखने का कष्ट करें।

हम आशा करते हैं क वैदिक व सनातन धर्म के बुद् धमान एवं ववेकी लोग मह र्ष दयानन्द के वचारों पर सद्भावना पूर्वक वचार करेंगे और इसे समाज में प्रतिष्ठा देने के अपनी ओर

से हर सम्भव उपाय करेंगे जिससे भ वष्य का समाज श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव सम्पन्न समाज बन सके।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

पृ थव्यादि भूतों के संयोग से शरीर में चेतनता उत्पन्न होती है: सत्येन्द्र संह आर्य

NOVEMBER 25, 2015 LEAVE A COMMENT

(वेदगोष्ठी **2013** के अवसर पर प्रस्तुत निबन्ध**)**

उपर्युक्त वषय चारवाक दर्शन का सद्धान्त है। बौद्ध और जैन मतों की भांति चारवाक भी नास्तिक मत है। ये सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। मह र्ष दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने वैदिक धर्म के सद्धान्तों की चर्चा अपने अमरग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में प्रथम दश समुल्लासों में की है। तथा वाममा र्गयों सहित आर्यावर्त्तीय (वेद वरुद्ध) मत पंथों की समालोचना एकादश समुल्लास में और बौद्ध, जैन व नास्तिक मतों की समालोचना द्वादश समुल्लास में है। मह र्ष की यह मान्यता थी क पाँच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भन्न दूसरा कोई भी मत न था क्यों क वेदोक्त सब बातें वद्या से अ वरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृ त्त होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ । इनकी अप्रवृ त्त से अ वद्या अन्धकार के भूगोल में वस्तृत होने से मनुष्यों की बुद् ध भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया, वैसा मत चलाया। उन सब मतों में चार मत अर्थात् जो वेद वरुद्ध पुराणी, जैनी, करानी और कुरानी सभी मतों के मूल हैं, वे क्रम से एक के पीछे दूसरा-तीसरा-चौथा चला है। अब इन चारों की शाखा एक सहस्र (यह संया तो मह र्ष जी के समय की है, अब तो लपट बापुओं, बाबाओं, व्यापारी गुरुओं और गुरुमाँओं की आई बाढ़ के कारण यह संया कई सहस्र हो गयी होगी) से कम नहीं है। उन्हीं में से एक यह चारवाक मत है।

चारवाक मत की चर्चा आरा करते हुए ऋ षवर लखते हैं- ''कोई एक बृहस्पति नामा'' पुरुष हुआ था जो वेद, ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मों को भी नहीं मानता था। उनका मत –

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

(सर्वदर्शनसंग्रह चारवाकदर्शन)

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्यु के अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है इस लए जब तक शरीर में जीव रहै, तब तक सुख से रहै। जो कोई कहे क ''धर्माचरण से कष्ट होता है, जो धर्म को छोड़ें तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावें।'' उसको चारवाक उत्तर देता है क अरे भोले भाई! जो मरे के पश्चात् शरीर भस्म हो जाता है क जिसने खाया पया है, वह पुनः संसार में न आवेगा। इस लए जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो, लोक में नीति से चलो, ऐश्वर्य को बढ़ाओ और उससे इच्छित भोग करो। यही लोक समझो, परलोक कुछ नहीं । देखो! पृ थवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है, इसमें इनके योग से चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मादक द्रव्य खाने-पीने से नशा उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप भी नष्ट हो जाता है, फर कसको पाप-पुण्य का फल होगा।

तच्चैतन्य व शष्टदेह एव आत्मा

देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्।।

– चारवाक दर्शन

इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हीं के वयोग के साथ ही नष्ट हो जाता है, क्यों क मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता। हम एक प्रत्यक्ष ही को मानते हैं, क्यों क प्रत्यक्ष के बिना अनुमानदि होते ही नहीं। इस लए मुय प्रत्यक्ष के सामने अनुमानादि गौण होने से उनका ग्रहण नहीं करते। सुन्दर स्त्री के आ लङ्गन से आनन्द का करना पुरुषार्थ का फल है।

उपरि ल खत चर्चा से स्पष्ट है क चारवाक मत नास्तिकता का पर्यायवाची है। नास्तिक तो बौद्ध और जैन भी हैं, क्यों क चारवाकों के समान वे भी ईश्वर और वेद की निन्दा करते और जगद्रचना के लए कसी चेतन सत्ता के अस्तित्व को नहीं मानते हैं। परन्तु वे जीवन, चेतन, पुनर्जन्म, परलोक और मुक्ति के साथ प्रत्यक्षादि प्रमाणों को भी मानते हैं।

वैदिक धर्म जहाँ त्रैतवाद (तीन अनादि नित्य सत्ताओं की अवधारणा) को मानता है, वहीं चारवाक ईश्वर की सत्ता को नकारता है, जीव को शरीर के साथ उत्पन्न होने वाला और शरीर के साथ ही नष्ट होने वाला मानता है। पुनर्जन्म और पाप-पुण्य , परलोक आदि के लए वहाँ कोई स्थान नहीं है, प्रमाणों में केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही चारवाक को स्वीकार्य है। पंच महाभूतों में भी उसने आकाश को गायब कर दिया, वषयभोग को पुरुषार्थ का फल घो षत कर दिया। उसकी वचारधारा की नींव 'खाओ, पयो और मौज करो' श्वड्डह्ल, ष्ठह्म्द्बठ्ठद्म ्नठ्ठस्र क्चद्ग रूद्गह्म्ह्म्ब् की नीति पर टिकी है। यह सब बातें वेद की उस मान्यता के वपरीत बैठती हैं जहाँ कहा है-

कुर्वन्नेवेह कर्मा ण जिजी वषेच्छतं समाः।

– यजुः 40/2

अर्थात् मनुष्य इस संसार में सौ वर्ष तक वेदोक्त, धर्मानुसार, निष्काम कर्म करते हुए जीने की इच्छा करे।

जिस यज्ञ को चारवाक नहीं मानता, वैदिक मान्यता के अनुसार जो धर्म के तीन स्कन्ध- वद्याध्ययन, यज्ञ और दान माने गए हैं, उनमें यज्ञ है। यहाँ तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादि ईश्वराज्ञा जो वेदों से अ वरुद्ध है, उसी को धर्म की संज्ञा दी गयी है। यज्ञ उसका अङ्ग है।

चारवाक की बातों का ऋ षवर ने युक्तियुक्त उत्तर दिया है। वे लखते हैं- ''ये पृ थव्यादि भूत जड़ हैं, उनसे चेतन की उत्प त्त कभी नहीं हो सकती। जैसे अब माता- पता के संयोग से देह की उत्प त्त होती है, वैसे ही आदि सृष्टि में मनुष्यादि शरीरों की आकृति परमेश्वर कर्त्ता के बिना कभी नहीं हो सकती। मद के समान चेतन की उत्प त्त और वनाश नहीं होता, क्यों क मद चेतन को होता है, जड़ को नहीं। पदार्थ ''नष्ट'' अर्थात् अदृष्ट होते हैं, परन्तु अभाव कसी का नहीं होता, इसी प्रकार अदृश्य होने से जीव काा अभाव न मानना चाहिए। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है। जब शरीर को छोड़ देता है, तब वह शरीर जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है, वह जैसा चेतनयुक्त पूर्व था वैसा नहीं हो सकता। इस बात की पुष्टि में मह र्ष दयानन्द जी बृहदारण्यक का वह वचन उद्धृत करते हैं जिसमें याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयि से कहते हैं क ''आत्मा अ वनाशी है जिसके योग से शरीर चेष्टा करता है।'' जब जीव शरीर से पृथक् हो जाता है तब शरीर में ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। आत्मा देह से पृथक् है, इसी कारण शरीर में उसके संयोग से चेतनता और वयोग से जड़ता होती है।

मह र्ष जी ने आगे स्पष्ट कया क जो सुन्दर स्त्री के साथ समागम ही को पुरुषार्थ का फल मानो तो क्ष णक सुख और उससे दुःख भी होता है, वह भी पुरुषार्थ ही का फल होगा। जब ऐसा है तो स्वर्ग की हानि होने से दुःख भोगना पड़ेगा। इससे मुक्ति सुख की हानि हो जाती है, इस लए यह पुरुषार्थ का फल नहीं।

चारवाक– जो दुःख-संयुक्त सुख का त्याग करते हैं, वे मूर्ख हैं। जैसे धान्यार्थी धान्य का ग्रहण और भुस का त्याग करता है, वैसे इस संसार में बुद् धमान् सुख का ग्रहण और दुःख का त्याग करें। क्यों क इस लोक के उपस्थित सुख को छोड़ के अनुपस्थित स्वर्ग के सुख की इच्छा कर, धूर्तक थत वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्ड का अनुष्ठान परलोक के लए करते हैं, वे अज्ञानी है। जो परलोक है ही नहीं, तो उसकी आशा करना मूर्खता का काम है। क्यों क-

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।

बुद् धपौरुषहीनानां जी वकेति बृहस्पतिः।।

(चारवाक दर्शन)

चारवाक मत प्रचारक 'बृहस्पति' कहता है क- ''अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्म का लगाना बुद् ध और पुरुषार्थ रहित पुरुषों ने जी वका बना ली है।'' कन्तु काँटे लगने आदि से

उत्पन्न हुए दुःख का नाम 'नरक', लोकप्र सद्ध राजा 'परमेश्वर' देह का नाश होना 'मोक्ष' है, अन्य कुछ भी नहीं है।

चारवाक की घोषणाका उत्तर देते हुए मह षे जी ने कहा क- '' वषयरूपी सुखमात्र को पुरुषार्थ का फल मानकर वषयदुःख निवारणमात्र में कृतकृत्यता और स्वर्ग मानना मूर्खता है। अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद् ध द्वारा आरोग्यता का होना, उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सद् ध होती है, उसको न जानकर, वेद और वेदोक्त धर्म की निन्दा करना धूर्तों का काम है। जो त्रिदण्ड और भस्मधारण का खण्डन है, सो ठीक है।''

''यदि कण्टकादि से उत्पन्न ही दुः का नाम नरक हो तो उससे अ धक महारोगादि नरक क्यों नहीं? यद्य प राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ मानें तो ठीक है परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो, जो उसको भी परमेश्वरवत्् मानते हो, तो तुहारे जैसा कोई भी मूर्ख नहीं। शरीर का वच्छेद होना मात्र मोक्ष है तो गदहे, कुत्ते आदि और तुममें क्या भेद रहा, कन्तु आकृति ही मात्र भन्न रही।''

द्वादश समुल्लास में निर्दिष्ट चारवाक और बौद्धमत का ववरण सायणाचार्य वर चत 'सर्वदर्शन संग्रह' पर ही प्रधान रूप से आ श्रत है क्यों क उस समय इन दोनों मतों के अन्य पुस्तक उपलध न थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने चारवाक दर्शन की मुय-मुय बातों को दर्शाने के लए उनके निम्न ल खत श्लोक उद्धृत कये हैं-

अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः।

केनेदं चत्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः।। 1।।

न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौ ककः।

नैव वर्णाश्रमादीनां क्र याश्च फलदायिकाः ।। 2।।

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे ग मष्यति।

स्व पता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।। 3।।

मृतानाम प जन्तूनां श्राद्धं चेतृप्तिकारणम्।

गच्छता मह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।। 4।।

स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।

प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते।। 5।।

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।। 6।।

यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष वनिर्गतः।

कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः।। 7।।

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणै र्विहितस्त्विह।

मृतानां प्रेतकार्या ण न त्वन्यद् वद्यते क्व चत्।। **8**।।

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।

जर्फ रीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्।। **9**।।

(चारवाक दर्शन, श्लोक 1 से 9)

चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैन भी जगत् की उत्प त्त स्वभाव से मानते हैं। जो-जो स्वाभा वक गुण हैं, उस-उससे द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं, कोई जगत् का कर्त्ता नहीं ।। 1।।

परन्तु इनमें से चारवाक ऐसा मानता है। कन्तु परलोक और जीवात्मा बौद्ध-जैन मानते हैं, चारवाक नहीं। शेष इन तीनों का मत कोई-कोई बात छोड़ के एक सा है।

न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलोक में जाने वाला आत्मा है। और न वर्णाश्रम की क्रया फलदायक है।। 2।।

जो यज्ञ में पशु को मार होम करने से वह स्वर्ग को जाता हो, तो यजमान अपने पता आदि को मार यज्ञ में होम करके स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता।। 3।।

जो मरे हुए जीवों को श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है तो परदेश में जाने वाले मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न, वस्त्र, धन को क्यों ले जाते? क्यों क जैसे मृतक के नाम से अर्पण कया हुआ स्वर्ग में पहुँचता है, तो परदेश में जाने वालों के लए उनके सबन्धी घर में अर्पण कर देशान्तर में पहुँचा देवें । जो यह नहीं पहुँचता, तो स्वर्ग में क्यों कर पहुँच सकता है? ।। 4।।

जो मर्त्यलोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं, तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता? ।। 5।।

इस लए जब तक जीवे, तब तक सुख से जीेवे। जो घर में पदार्थ न हो तो ऋण करके आनन्द करे,ऋण देना नहीं पड़ेगा। क्यों क जिस शरीर में जीव ने खाया पया है, उन दोनों का पुनरागमन न होगा, फर कससे कौन माँगे और देवेगा?।। 6।।

जो लोग कहते हैं क मृत्यु समय जीव शरीर से निकलके परलोक को जाता है, यह बात मथ्या है, क्यों क जो ऐसा होता, तो कुटुब के मोह से बद्ध होकर पुनः घर में क्यों नहीं आ जाता?।।7।।

इस लए यह सब ब्राह्मणों ने अपनी जी वका का उपाय कया है। जो दशगात्रादि मृतक क्रया करते हैं, यह सब उनकी जी वका की लीला है।।8।।

वेद के करने हारे भांड, धूर्त और राक्षस ये तीन हैं। 'जर्फरी' 'तुर्फरी' इत्यादि पण्डितों के धूर्ततायुक्त वचन हैं।। 9।।

इन सब बातों का बुद् ध संगत उत्तर ऋ षवर ने बिन्दुवार दिया है। इनमें जो कुछ बातें ठीक थीं, उनको अखण्डनीय कहा है, यह स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का ऋ षत्व है।

वना चेतन परमेश्वर के निर्माण कये जड़ पदार्थ आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। इस वास्ते सृष्टि का कर्ता अवश्य होना चाहिए। जो स्वभाव से हों तो द् वतीय पृ थवी, सूर्य,चन्द्र आप से आप क्यों नहीं होते।। 1।।

'स्वर्ग' सुखभोग और 'नरक' दुःखभोग का नाम है। जो जीवात्मा न होता तो सुख-दुःख का भोक्ता कौन हो सके? जैसे इस समय सुख-दुःख का भोक्ता जीव है, वैसे परजन्म में भी होता है। क्या सत्य भाषणादि दया आदि क्रया भी वर्णाश्र मयों की निष्फल होंगी? कभी नहीं।। 2।।

पशु मार के होम करना वेद में कहीं नहीं है, इस लए यहाण्डन अखण्डनीय है और मृतकों का श्राद्ध भी कपोलकल्पित होने से वेद वरुद्ध पुराण मत-वालों का मत है।। 3,4,5।।

जो वस्तु है उसका अभाव कभी नहीं होता। तो वद्यमान जीव का अभाव कभी नहीं हो सकता। देह भस्म हो जाता है, जीव नहीं। जीव तो दूसरे शरीर में जाता है, इस लए जो ऋणादि से सुख भोग करेगा, वह दूसरे जन्म में अवश्य भोगेगा।। 6।।

देह से निकल के जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त होता है। उसको पूर्वजन्म का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता, इस लए पुनश्च कुटुब में नहीं आता।। 7।।

हाँ ब्राह्मणों ने प्रेत का कर्म जी वका के लए कया है, वेदोक्त नहीं।। 8।।

जो चारवाक आदि ने असल वेद देखे होते, तो वेद की निन्दा कभी न करते। भाँड, धूर्त और निशाचरवत् पुरुष टीकाकार हुए हैं, उन्हीं की धूर्तता है, वेद की नहीं। परन्तु शोक है चारवाक, आभाणक ,बौद्ध और जैनियों पर क इन्होंने मूल वेद भी न सुने, न देखे और न कसी वद्वान् से पढ़े, इस लए भ्रष्ट टीका और वाममा र्गयों की लीला देख के वेदों से वरोध करके, नष्ट -भ्रष्ट बुद् ध होकर वेदों की निन्दा करने लगे हैं। यही वाममा र्गयों की दुष्ट चेष्टा चारवाक, बौद्ध और जैनों के होने का कारण है, क्यों क चारवाक आदि भी वेदों का सत्य अर्थ नहीं जान सके।। 9।।

ऋ षवर ने चारवाक शब्द का अर्थ कया है- जो बोलने में प्रगल्भ और वशेषातार्थ वैतण्डिक होता है। उनकी पहचान है नास्तिकता, वेद और ईश्वर की निन्दा पर मत द्वेष, यज्ञ का वरोध और जगत् का कर्त्ता कोई नहीं मानना आदि। चारवाक ने वर्णाश्रम व्यवस्था की भी निन्दा की है। जब क सत्य यह है क वर्णाश्रम व्यवस्था के बिना कोई समाज नहीं चल सकता। भले ही ब्राह्मण को बुद् ध जीवी, अध्यापक, वधायक, उपदेशक, पुरोहित ।
(ढ़ढठ्ठहलद्गद्यद्यद्गष्ह्लहवड्डद्यहय, ञ्जद्गड्डष्द्धद्गहम्ह्य, ष्टद्यद्गहम्द्दब्,

छ्वह्वस्रद्दद्ग, ष्ठशष्ह्लशह्म्) आदि नामों से पुकारा जाये, क्षत्रिय को पु लस, सेना, सुरक्षाबल आदि नाम दे दिये जाएं, वैश्य को व्यापारी (क्चह्वह्यद्बठ्ठद्गह्यह्यद्वड्डठ्ठ, ञ्जह्म्ड्डस्रद्गह्म्, ढ्ढठ्ठस्रह्वह्यह्लह्म्द्बड्डद्यद्बह्यह्ल) आदि नामों से अ भहित कया जाए और शूद्र को श्र मक, मजदूर या लेबरर (रुड्डड्ढशह्वह्म्द्गह्म्) कहा जाय। इसी प्रकार ब्रह्मचारी को वद्यार्थी, गृहस्थ को (॥शह्वह्यद्ग-॥शद्यस्रद्गह्म्) और वानप्रस्थ संन्यासी को अवकाश प्राप्त (क्रद्गह्लद्बह्म्द्गस्र शह्म् क्कद्गठ्ठह्यद्बशठ्ठद्गह्म्) जैसे नाम दिये जायें। प्राचीन ऋ षयों ने इस प्रकार के वभाजन को ही वर्णाश्रम के रूप में व्यवस्थित कर दिया था। इनके पालन से होने वाले लाभों से कौन इनकार कर सकता है?

वेदों के कर्त्ता धूर्त–यजुर्वेद के 23 वें अध्याय के 19से 31 तक के मन्त्रों का महीधर ने इतना अश्लील अर्थ कया है क उसे देखकर कोई भी यही कहेगा क ''त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्त निशाचराः।'' वैसा करने पर महीधर स्वयं ग्लानि अनुभव कर 32 वें मन्त्र का अर्थ करते हुए कहते हैं- ''अश्लील भाषणेन दुर्गन्धं प्राप्तानि अस्माकं मुखानि सुरभी ण करोत्वित्यर्थः।'' अर्थात् इस अश्लील भाषण से जो हमारे मुख अश्लील हो गये हैं, उन्हें यज्ञ सुगन्धित कर दे। मन्त्रों में न अश्लील शब्द हैं और न मन्त्रार्थ में कोई अश्लीलता है। स्वयं ही पहले जानबूझकर अश्लीलता आरो पत कर दी और स्वयं ही उस अपराध के लए प्रायश्चित की बात कह दी। महीधर का अर्थ मात्र इस लए त्याज्य नहीं क वह अश्लील और बेहूदा है अ पतु इस लए क मन्त्रों का वह अर्थ है ही नहीं।

जर्फरी तुर्फरी- इन शदों से निर्दिष्ट मन्त्र इस प्रकार है-

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।

उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु।।

– ऋ ग्वेद 10/106/6

यह मन्त्र (13/5 निरुक्त में) इस प्रकार व्यायात है-

(सृण्या इव जर्भरी तुर्फरीतू) हे द्यावा पृ थवी के स्वामी जगदीश्वर। तू दात्री की तरह भर्त्ता और हन्ता है। (नैतोशा इव तुर्फरी पर्फ रीका) तू शत्रुहन्ता राजकुमार की तरह दुष्टों को शीघ्र नष्ट करने वाला और उन्हें फाड़ने वाला है, (उदन्यजा इव जेमना मदेरु) और तू चान्द्रमस अथवा सामुद्ररत्न की तरह मन को जीतने वाला अर्थात् अपनी ओर खींचने वाला तथा प्रसन्नताप्रद है, (ता मे मरायु जरायु) हे अश्वी! वह तू मेरे मरणधर्मा शरीर को (अजरम्) बुढ़ापे से रहित कर।

इससे स्पष्ट है क वेदमन्त्रों के वास्त वक अर्थों को न जानने वाले ही वेदों के रचयिता को धूर्तादि नामों से पुकार सकते हैं। यदि चारवाक मत के संस्थापक ने वेदों का प्रामा णक अर्थ शतपथब्राह्मणादि के आधार पर कया गया देखा होता तो वेदों के सबन्ध में उनकी वचारधारा इतनी दू षत न होती। वे बिना वचारे वेदों की निन्दा करने पर तत्पर हुए। उनमें इतनी वद्या ही नहीं थी जो सत्यासत्य का वचार कर सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन करते। वास्तव में वाममा र्गयों ने मथ्या कपोल कल्पना करके वेदों के नाम से अपना

प्रयोजन सद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान मांस खाने और परस्त्री गमन करने आदि दुष्ट कामों की प्रवृ त होने के अर्थ वेदों को कलङ् कत कया। इन्हीं बातों को देखकर चारवाक वेदों की निन्दा करने लगे और पृथक् एक वेद वरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला दिया।

– जागृति वहार, मेरठ

''ईश्वर की सद् ध में प्रत्याक्षादि प्रमाण सद्ध नहीं है'' – की समीक्षा – डॉ. कृष्णपाल संह

NOVEMBER 24, 2015 LEAVE A COMMENT

[वर्ष 2013 में ऋ ष – मेले के अवसर पर आयोजित वेद-गोष्ठी में प्रस्तुत एवं पुरस्कृत यह शोध लेख पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत है।] -सपादक

त्रद् ध जैन सद्धान्त एक ही है पृथक् नहींः– मह ष दयानन्द ने सर्वदर्शनसंग्रह, राजा शव प्रसाद कृत 'इतिहास ति मरनाशक' ग्रन्थ के आधार पर बौद्ध और जैन मतावलबियों को एक ही माना है। चाहे बौद्ध कहो, चाहे जैन कहो एक ही बात है। एतद् वषयक कुछ सन्दर्भ प्रस्तुत हैं। राजा शवप्रसाद जो जैन मत के अनुयायी और मह ष के घोर वरोधी थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'इतिहासति मरनाशक' में लखा है, क इनके दो नाम हैं, एक जैन और दूसरा बौद्ध। ये पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु बौद्धों में वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं उनके साथ जैनियों का वरोध है परन्तु जो महावीर और गौतमगण धर हैं उनका नाम बौद्धों ने बुद्ध रखा है और जो जैनियों ने गणधर और 'जिनवर' इसमें इनकी परपरा जैन मत है।**1** इसी ग्रन्थ के तृतीय भाग में राजा शवप्रसाद ने लखा है क स्वामी शंकाराचार्य से पहले जिनको हुए कुल एक हजार वर्ष के लगभग गुजरे हैं सारे भारतवर्ष में बौद्धों अथवा जैन मत (धर्म) फैला हुआ था, इस पर नोटः- बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय से शंकर स्वामी के समय तक वेद वरुद्ध सारे भारत वर्ष में फैल रहा था और जिसको अशोक सप्रति महाराज ने माना उससे जैन बाहर कसी तरह नहीं निकल सकते। 'जिन' जिससे जैन निकला और बुद्ध जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, कोश में दोनों का अर्थ एक ही लखा है और गौतम को दोनों ही मानते हैं, वर्ना दीपवंश इत्यादि पुराने बौद्ध ग्रन्थों में शाक्य मुनि गौतम बुद्ध को अक्सर महावीर ही के नाम से लखा है। उनके समय में एक उनका मत रहा होगा। हमने जो जैन न लखकर गौतम के मत वालों को बुद्ध लखा उसका प्रयोजन केवल इतना ही है क उनको दूसरे देशवालों ने बौद्ध ही के नाम से लखा है।**2** अमरकोश कार अमर संह ने भी अपने ग्रन्थ में ऐसा ही लखा है।

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।

समन्तभद्रो भगवान।।**3**

स्वामी वेदानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के 12वें समुल्लास के ऊपर एक टिप्पणी में लखा है क 'वैदिक धर्म के वरोध में उठे ये सप्रदाय मनुष्यों को ईश्वर मानने के कारण एक हैं।

बौद्धों ने परमेश्वर की सत्ता को अस्वीकार तो कया कन्तु उसके स्थान में बुद्ध को लोकनाथ (परमेश्वर) तथा सर्वज्ञ मानकर उसकी उपासना आराधना करने लगे। जैन भी ईश्वर को न मान ऋषभदेव आदि 24 तीर्थकंरों को सर्वज्ञ मान कर उनकी पूजा अर्चना करते हैं। यतः बुद्ध तथा जिन वर्तमान में जब इनको उपास्य मानने की भावना का उदय हुआ प्रत्यक्ष नहीं है, अतः उनकी मूर्ति बनाकर पूजा प्रच लत हुई।'

ईश्वर को मानने वाले जो-जो गुण ईश्वर में मानते हैं, उन-उन सबका आरोप जैन, बौद्धों ने अपने सादि आराध्यों में कया। दोनों ने अपने -अपने आराध्यों को समन्तभद्र, अर्थात् सब प्रकार से निर्दोष कहा है कन्तु बुद्ध तथा महावीर रोगाक्रान्त हुए। रोगाक्रान्त दोष का भूल का फल है। अतः जहाँ उनके 'समन्तभद्र' पने का निरास होता है, वहाँ उनके सर्वज्ञ होने का भी खण्डन हो जाता है।**4** ....स्वामी वेदानन्द जी ने ब्र. शीतलप्रसाद जैन जो दिगबर जैन सप्रदाय के लध प्रतिष्ठित वद्वान् हैं उनकी 'जैन बौद्धतत्वज्ञान' नामक पुस्तक के अनेक उदाहरण देते हुए लखा है क जहाँ तक मैंने बौद्धों व निर्वाण और निर्वाण के मार्ग का अनुभव करके वचार कया तो उसका बिल्कुल मेलान जैनियों के निर्वाण और निर्वाण के मार्ग से हो जाता है.....हमें तो ऐसा अनुमान होता है क जैसे जैनों में एक सद्धान्त मानते हुए भी दिगबर व श्वेताबर दो भेद पड़ गये उसी तरह श्री महावीर स्वामी के समय में ही वस्त्र सहित साधु चर्या स्था पत करने से बौद्ध संघ जैन संघ से पृथक् होगया।.........हमारी राय में जैन व बौद्ध में कुछ भी अन्तर नहीं है।**5** चाहे बौद्ध धर्म प्राचीन कहें या जैन धर्म प्राचीन कहें एकही बात है।......गौतम बुद्ध ने साधु मात्र की चर्या सुगम की, सद्धान्त वही रखा।.......इस तरह जैन तत्व ज्ञान में समानता है।**6**

उपर्युक्त दीर्घ चर्चा करने का हमारा उद्देश्य इतना ही है क ये दोनों सप्रदाय एक ही हैं, भन्न नहीं। अतः चाहे बौद्ध कहो या चाहे जैन कहो कोई भेद नहीं है। इन्होंने प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थाप त तथा अनुपल ध रूप छः (6) प्रमाणों के आधार पर ईश्वर की अ सद् ध करने का यत्न कया। परन्तु आचार्य उदयन ने स्वर चत न्यायकुसुमाञ्ज ल के तृतीय स्तवक में इनके वचारों का प्रबल प्रत्ययान कया है। आचार्य वश्वेश्वर ने उक्त ग्रन्थ की टीका स्पष्ट एवं अति सरल सं क्षप्त रूप में की है। इस लो में उनके वचारों का पुष्कल मात्रा में उपयोग कया गया है। मह र्ष दयानन्द ने भी 12 वें समुल्लास में इनके वचारों तथा इनके सद्धान्त, ग्रन्थों का उद्धरहण देते हुए सटीक समीक्षा की है। उन्होंने लखा है क 'जिस लये हम इस समय परमेश्वर को नहीं देखते इस लये कोई सर्वज्ञ अनादि परमेश्वर प्रत्यक्ष नहीं है, जब ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो अनुमान भी नहीं घट सकता, क्यों क एकदेश प्रत्यक्ष के बिना अनुमान नहीं हो सकता।जब प्रत्यक्ष, अनुमान नहीं तो आगम अर्थात् नित्य अनादि सर्वज्ञ परमात्मा का बोधक शब्द प्रमाण भी नहीं हो सकता। जब तीनों प्रमाण नहीं तो अर्थवाद अर्थात् स्तुति -निन्दा-परकृति अर्थात् पराये चरित्र का वर्णन और पुराकल्प अर्थात् इतिहास का तात्पर्य भी नहीं घट सकता। और अन्यार्थ प्रधान अर्थात् बहुब्रीहि समास के तुल्य परोक्ष परमात्मा की सद् ध का वधान नहीं हो सकता। पुनः ईश्वर के उपदेष्टाओं से सुने बिना अनुवाद भी कैसे हो सकता है।'7

सत्यार्थ प्रकाश के उपर्युक्त सन्दर्ा में छः (6) प्रमाणों द्वारा ईश्वर की सत्ता का निषेध कया गया है। मह र्ष ने उसका समाधान उसी दार्शनिक परिपेक्ष में कया है। परन्तु हम यहाँ पर न्यायकुसुमाञ्ज ल के तृतीय स्तवक के आधार पर समीक्षा करने का प्रयास करेंगे।

ईश्वर की अभाव सद् ध में अनुपल ध की समीक्षाः–

इहभूतले घटाभाव वदीश्वर स्याप्यनुपलधेः अभावस्य ग्रहात्।**8**

अर्थात् इस भूतल में घटाभाव के समान ईश्वर की अनुपल ध से उसका भी अभाव ग्रहण होने से ईश्वर नहीं है। तात्पर्य यह है क भूतल में घटाभाव जैसे अनुपल ध से सद्ध होता है वैसे ही ईश्वर के प्रत्यक्ष न होने से उसका भी अनुपल ध से आाव ग्रहण नहीं होता तो प्रत्यक्ष के अयोग्य 'शशशृण्ङ्ग का भी अभाव सद्ध नहीं होगा।**3** इस पूर्वपक्ष के समाधान में आचार्य उदयन का कहना है क 'प्रत्यक्ष के अयोग्य परमात्मा में योग्यनुपल ध कहाँ घटता है? जिससे ईश्वर का अभाव सद्ध हो। और जो अनुपल ध पाई जाती है वह केवल अनुल ध रूप से अभाव सा धका नहीं है अन्यथा बौद्धा भमत आकाश, धर्माधर्म आदि अप्रत्यक्ष पदार्थों का भी लोप हो जायेगा। अतः अनुपल ध मात्र से ईश्वर का अभाव सद्ध नहीं होता है। और आपने जो यह कहा है क योग्यानुपल ध को अभाव सा धका का मानने पर प्रत्यक्ष के अयोग्य होने से शशशृङ्ग का अभाव अनुपल ध से सद्ध नहीं होगा । आपका यह प्रतिबन्ध भी कहाँ बनता है? क्यों क प्रत्यक्ष के अयोग्य (शश) श्रृङ्ग का बाघ हम कहाँ करते हैं, हम तो शृङ्ग में शशीयत्व, शशसबन्ध का निषेध करते हैं, शशशृङ्ग नामक पदार्थ का निषेध नहीं करते हैं। श्रृङ्ग प्रत्यक्ष के योग्य ही है।**9**'

अ भप्राय यह है क अनुपल ध अभाव सा धका नहीं है अ पतु प्रत्यक्ष योग्यानुपल ध अर्थात् प्रत्यक्ष योग्य पदार्थ की अनुपल ध उसकी अभाव सा धका है। यहाँ यह भी जानना चाहिये क केवल अनुपल ध को यदि अभाव सा धका मान लया जायेगा तब तो बौद्धा भमत आकाश धर्माधर्म आदि पदार्थ भी दिखाई न देने के कारण अनुपल ध मात्र से अभाव सद्ध हो जायेगा। परन्तु बौद्ध इन पदार्थों की सत्ता मानते हैं। इस कारण अनुपल धमात्र को अभाव सा धका नहीं माना जा सकता अ पतु योग्यानुपल ध ही अभाव सा धका है।

'प्रत्यक्षयोग्य परमात्मा में योग्यानुपल ध कहाँ है, वही बा धका है और जो केवल अनुपल ध मात्र पाई जाती है, वह अभाव सा धका मान लया जाय तो बौद्धा भमत आकाश, धर्माधर्म आदि का वलोप हो जायेगा।'

आकाशादि अप्रत्यक्ष अर्थों का भी अभाव मानना होगा, जो बौद्ध को अ भमत नहीं है। योग्यानुपल ध को अभाव साधक मानने में शशशृङ्ग का भी अभाव सद्ध नहीं होगा यह जो प्रतिबन्ध दिया है उसका भाव अगर यह है क हम प्रत्यक्ष के अयोग्य शशशृङ्गनामक कसी पदार्थ का निषेध नहीं करते हैं अ पतु शशरूप आधार में प्रत्यक्ष योग्य शृङ्ग के संयोग सबन्ध का निषेध करते हैं। शृङ्ग तो प्रत्यक्ष के योग्य ही है इस लये प्रतिबन्ध नहीं बन सकता। अयोग्य शृङ्ग का निषेध नहीं करते हैं। तब उसकी सत्ता सद्ध हो जायेगी यह शंका नहीं करनी चाहिए क्यों क उसके वषय में साधक प्रभावों का अभाव ही है। इस लये अनुपल ध ईश्वर के अभाव को सद्ध नहीं करता। इस पर बौद्ध ने ईश्वर के अभाव सद् ध के लये एक अन्य अनुमान प्राप्त कया क 'ईश्वरः न क्षत्यादिकर्त्ता शरीर सबन्ध भावात प्रयोजना भावात च'**10**अर्थात् ईश्वर क्षत्यादिका न कर्त्ता हैं क्यों क शरीर सबन्ध का अभाव होने से प्रयोजन के न होने के कारण। इस अनुमान वाक्य का अ भप्राय यह है क परमात्मा के प्रत्यक्ष योग्य होने से उसके क्षति कर्तृत्वादि कर्म भी प्रत्यक्ष के अयोग्य हैं। यहाँ जो अनुमान

प्रयुक्त कया गया है उसका आधार शरीर सबन्ध और प्रयोजन ये दो कर्तव्य के व्यापक धर्म हैं।

'यत्र यत्र कर्तृत्व तत्र तत्र शरीर सबन्धःप्रयोजन च'**11** अर्थात् जहाँ जहाँ कर्त्ता होता है वहाँ वहाँ शरीर युक्त अवश्य होता है। और उस कार्य के करने में उसका कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। परन्तु ईश्वर न शरीरी है और न ही सृष्टि के निर्माण में उसका अपना कोई स्वार्थ अथवा कारुण्यरूप प्रयोजन ही है। यदि उसका कोई स्वार्थ है तो वह पूर्ण काम नहीं रहेगा। अन्य आत्माओं के उद्धार की कारुण्य भावना इस लये नहीं बनती है क दुःखी प्राणी को देखने के बाद ही करुणा हो सकती है, उसके पूर्व नहीं। दुःख संसार काल में ही हो सकता है अतएवं करुणा भी संसार काल में ही हो सकती है, सृष्टि की उत्प त के पूर्व नहीं।**12**इस लए सृष्टि निर्माण में उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है और शरीर सबन्ध भी नहीं है। अतः ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं हो सकता यह बौद्धों का पक्ष है।

इस पर नैयायिक आचार्य उदयन का कहना है क बौद्धों ने जो अनुमान दिया है जिसे हम पहले भी दिखा चुके हैं वषय स्पष्टीकरणार्थ पुनः प्रस्तुत करने में कोई आप त नहीं है-

ईश्वरः न क्षत्यादिकर्त्ता शरीरसबन्धावात् प्रयोजनाभावात् च।**13**

इस अनुमान वाक्य में ईश्वर पक्ष या आश्रय है, जब वही सद्ध नहीं है तो यह हेतु 'आश्रया सद्ध हेत्वामास' होने से साध्य को सद्ध नहीं कर सकता है।**14**

आश्रया सद्ध हेत्वाभासः– इस हैत्वाभास को समझाने के लये हेत्वाभास पद का अर्थ जानना भी आवश्यक है। 'हेतुवद् आभासते इति हेत्वाभासः' जो हेतु के समान भा सत होता है वस्तुतः दोषयुक्त होने के कारण हेतु नहीं होता उसे हेत्वाभास कहते हैं। प्रकृत हेत्वाभास अ सद्ध हेत्वाभास का एक वर्ग है। यह तीन प्रकार का होता है। (1) आश्रय सद्ध (2) स्वरूपा सद्ध (3) व्याप्यत्वा सद्ध। प्रकृत स्थल पर आश्रय सद्ध हेत्वाभास की ही चर्चा करेगें क्यों क पूर्व पक्ष ने जो अनुमान दिया है वह आश्रया सद्ध हेत्वाभास के अन्तर्गत आता है। इस का लक्षण है 'आश्रया सद्धो यथा, गगतार वन्दं सुर भः अर वन्दत्वात् सरोजार वन्दवत्। अत्र गगनार वन्दं आश्रय सच नास्त्येव।**15**'

जैसे आकाश कमल सुगन्धित होता है। यह प्रतिज्ञा क्यों क वह कमल अथवा उसमें कमलत्व है (यह हेतु) सरोज में उत्पन्न कमल के समान (उदाहरण) यहाँ आकाश कमल आश्रय है वह होता ही नहीं है। बौद्धों ने जो अनुमान वाक्य दिया उसमें ईश्वर पक्ष या आश्रय हैं, जब वही सद्ध नहीं है, इस लये यह हेतु आश्रया सद्ध हेतवाभास होने से साध्य को सद्ध नही कर सकता है और यदि आश्रय सद् ध से बचने के लए ईश्वर की सत्ता मान लें तो जिस प्रमाण से उसकी सत्ता मानेंगे उसी धा र्मक ग्राहक प्रमाण से उसका क्षत्यादि कर्तव्य भी सद्ध हो जायेगा। उस स्थिति में यह हेतु बा धत वषयत्व हेत्वाभास हो जायेगा। अतः एव दोनों प्रकार के हेत्वाभास होने से शरीर सबन्ध भावात् हेतु ईश्वर के अभाव का साधक नहीं हो सकता है।**16**

मथ्याज्ञानवश ईश्वर की मान्यताः– अब बौद्ध यह कहते हैं क कुछ लोग मथ्या ज्ञानवश ईश्वर को मानते हैं, उसका यह मथ्याज्ञान, या भ्रम या असत्याति कहलाता है। इस असत्याति

से ईश्वरवाद जिस परमात्मा को मानते हैं, उनको पक्ष बनाकर 'ईश्वरः न क्षत्यादिकर्त्ता शरीर सबन्धाभावात् प्रयोजनाभावात् च' यह अनुमान प्रस्तुत करते हैं अथवा 'ईश्वरो नास्ति शरीरसबन्धाभावात् प्रयोजनाभावात्च'17यह अनुमान कया जा सकता है।

इसके समाधान में आचार्य उदयन का कहना है क पहले अनुमान वाक्य में ईश्वर के कर्तव्य का अभाव सद्ध कया जा रहा है। (क्षत्यादिकर्तृत्वाभाववानीश्वरः) उसमें ईश्वर वशेष्य और क्षत्यादि कर्तृत्वाभाव उसका वशेषण है। जब क दूसरे अनुमान में 'ईश्वर नास्ति' में ईश्वर का अभाव प्रद र्शत कया जा रहा है। 'यस्याभाव स तस्य प्रतियोगी इति नियमात्' इस नियम के अनुसार जिसका अभाव होता है वह उस अभाव का प्रतियोगी कहलाता है। अतः ईश्वर अभाव का प्रतियोगी है, ' वशेषता' और 'प्रतियो गता' दोनों ऐसे धर्म है जो कसी यथार्थ वस्तु में ही रह सकते हैं, मथ्या या असत्याति से सद्ध वस्तु में नहीं रह सकते क्यों क वश्ेाष्यता का अर्थ वयोषणाश्रयता है, यह आश्रयता अभाव पदार्थ में नहीं रह सकती है और प्रतियो गता अभाव वरोधी भावरूप ही होती है। अतः एवं प्रतियो गता भी वस्तु में ही रह सकती है। इस लये असत्याति से उपनीत ईश्वर न तो वशेष्य हो सकत है और न ही प्रतियोगी । अतः ईश्वर के अभाव साधक दोनों अनुमान नहीं बन सकते।**18**

योग्यानुपल ध ही अभावसा धका है अनुपल धमात्र नहींः– जैसा क हम यह बात पहले भी कह चुके हैं क योग्यानुपल ध को अभाव सा धकमान से शशशृङ्ग का भी अभाव सद्ध नहीं होगा क्यों क वह प्रत्यक्ष के योग्य नहीं है, यह प्रतिबन्धक कहा गया है। यह पूर्वपक्ष का वचार है। अब सद्धान्त पक्ष का इस वषय में यह कहना है क हम अयोग्य शशशृङ्ग का अभाव सद्ध नहीं करते हैं अ पतु प्रत्यक्षयोग्य शृङ्ग का शश के साथ सबन्ध का निरास करते हैं, और शशशृङ्ग का निषेध न करने से उसका भाव सद्ध नही हो सकता है क्यों क उसका साधक कोई प्रमाण है ही नहीं। यदि आप शशशृङ्ग भी प्रत्यक्ष के योग्य है, और उसकी अनुपर्ल्गव्ध योग्यानुपल ध ही है। अब यह प्रश्न उठता है क यदि शशशृङ्ग प्रत्यक्ष के योग्य है तो उसका प्रत्यक्ष भी होना चाहिए, पर प्रत्यक्ष होता नहीं है। इस आशंका का समाधान करते हुए आचार्य उदयन का कहना है क हाँ- जब उसके प्रत्यक्ष की सामग्री होगी तब उसका प्रत्यक्ष अवश्य होगा और यदि प्रत्यक्ष नहीं होता है तो यह मानना होगा क उसके प्रत्यक्ष की सामग्री ही नहीं है। शशशृङ्ग के प्रत्यक्ष की सामग्री दोषयुक्त इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष आदि हैं। जैसे पी लया रोग के रोगी को (पीतः शङ्ख) की प्रतीति होती है। यहाँ इस प्रतीति में पत्तादि दोषयुक्त नेत्र कारण होते हैं। एवमेव शशश्रृङ्ग के प्रत्यक्ष में भी दुष्ट अर्थात् दोष धरित प्रत्यक्ष, सामग्री होगी और उस सामग्री के होने पर शशशृङ्ग काी प्रत्यक्ष हो सकता है। इस लये शशशृङ्ग भी प्रत्यक्ष के योग्य हैं उसका अभाव योग्यानुपल ध से सद्ध हो सकता है।**19**इस समीक्षा का निष्कर्ष यह है क योग्यानुपल ध ही अभाव सा धका है, अनुपल धमात्र नहीं।

आत्मा को पक्ष बनाकर बौद्धानुमान ईहाः– इसके बाद अब बौद्ध आत्मा को पक्ष बनाकर अनुमान प्रस्तुत करने की ईहा (चेष्टा) करता है क 'आत्मा न सर्वज्ञः आत्मत्वात्' अथवा 'आत्मा न क्षत्यादि कर्त्ता आत्मवात् अस्मदादिवत्'**21** यह अनुमान प्रतिपादित कया है। इस अनुमान वषय पर आचार्य उदयन का कहना है क पूर्व पक्षी बौद्ध कस आत्मा को पक्ष बनाकर यह अनुमान प्रद र्शत कया है। प्र सद्ध आत्मा को अर्थात् जीवात्मा को अथवा अप्र सद्धात्मा अर्थात् परमात्मा को यदि जीवात्मा को पक्ष बनाया गया है तो सद्ध साधन

या इष्ट सद् ध है, क्यों क हम भी जीवात्मा को सर्वज्ञ या क्षत्यादि का कर्ता नहीं मानते हैं। और यदि अप्र सद्ध आत्मा अर्थात् परमात्मा को पक्ष बनाया गया है तो उसके सद्ध न होने से आश्रृ या सद् ध हेत्वाभास तो पूर्ववत् है ही उसके अतिरिक्त 'हेत्व सद् ध अर्थात् स्वरूपा सद् ध भी हो जायेगी। पक्ष वृ त्तहोन हेतु का ज्ञान अनुमान का प्रयोजक होता है वह यहाँ पक्ष के न होने से पक्षवृ त्तत्व व शष्ट हेतु का ज्ञान भी अभाव होने से हेतु सद् ध भी होगी।**22**'

एवमेव बौद्धों द्वारा ईश्वर के निरासार्थ अनेक प्रमाणों, अनुमानों का प्रयोग कया गया परन्तु उन सभी अनुमानों में आश्रय सद् ध या स्वरूपा सद् ध हो जाने से अभीष्ट सद् ध न हो पाई है। आचार्य उदयन ने यह सद्ध कया क अनुपल ध तथा अनुमान इन दोनों प्रमाणों से ईश्वर का अभाव सद्ध करने का प्रयास उनका असफल रहा क्यों क अनुपल ध का अभाव सही मानने में तो आकाश, धर्माधर्मादि का भी वलोम हो जाता है जो बौद्ध को मान्य नहीं है। ये नित्य आत्मा तथा ईश्वर की सत्ता को तो नहीं मानते परन्तु आकाश, धर्माधर्मादि का अस्तित्व मानते हैं। इस लये अनुपल ध को अभाव सा धका मानने से तो उक्त पदार्थों का निषेध होने लग जाता है तो बौद्धायभीत हो उठता है। इसी प्रकार अनुपल ध को अभाव सा धका मान लेने पर अनुमान प्रमाण का कोई उपयोग नहीं रहता है और उसके अनुमान का भी लोप हो जाता है, यह भी बौद्ध को अभीष्ट नहीं है क्यों क बौद्ध प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमानादि प्रमाण को मानता ही नहीं है। और जब आकाश, धर्माधर्मादि और अनुमान के लोप का अवसर आता है तब वह चुप हो जाता है फलस्वरूप वह अनुपल ध को अभाव सा धका भी नहीं मान सकता है। वस्तुतः यह उसके सद्धान्त की बहुत बड़ी कमजोरी है इस कारण वह ईश्वर का अभाव सद्ध करने में असमर्थ रहा है।

प्रत्यक्ष प्रमाण से ईश्वर सद् धः– मह र्ष दयानन्द प्रत्यक्ष प्रमाण से ईश्वर की सद् ध करना अभीष्ट मानते हैं। वह यह जानते थे क चार्वाक, जैन बौद्धादि नास्तिक मतानुयायी ईश्वर वषय में ईश्वर प्रत्यक्ष दिखाने पर बल देते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का है। 1. बाह्य प्रत्यक्ष 2. आयन्तर प्रत्यक्ष प्रथम कोटि का प्रत्यक्ष चक्षुरादि इन्द्रिय जन्य होता है जो ईश्वर में नहीं घटता है क्यों क ईश्वर सर्वातिसूक्ष्म होने के कारण चक्षुरादि स्थूल इन्द्रियों का वषय नहीं है। दूसरा अयन्तर प्रत्यक्ष है जो आत्मा द्वारा ही परमात्मा का साक्षात्कारात्मक ज्ञान प्राप्त करता है। जैसा क प्राचीन ऋ षयों ने आत्मा के द्वारा आत्मा (परमात्मा) को प्रत्यक्ष कया। इस लये मह र्ष ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम पृष्ठ पर लखा 'नमो ब्राह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मा स। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्या म'**23**

सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास जिसमें ईश्वर वषय तथा वेद वषय का निरूपरण कया है। इसमें ही ईश्वर सद् ध के वषय में पूर्व प्रश्न उठाते हुए लखा है क 'आप ईश्वर ईश्वर कहते हो उसकी सद् ध कस प्रकार करते हो? (उत्तर) सब प्रत्यक्षादिप्रमाणों से (पूर्व) ईश्वर में प्रत्यक्षादिप्रमाण कभी नहीं घट सकते (उत्तर) इन्द्रियान सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानं अव्ययदेश्यं अव्य भचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।' यह गौतम मह र्ष कृत न्याय दर्शन (1/1/4) का सूत्र है। जो श्रोत्रत्व चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्य और असत्य वषयों के साथ सबन्ध होने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको प्रत्यक्ष कहते हैं, परन्तु वह निर्भ्रम हो। अब वचारना चाहिये क इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं । जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का ज्ञान होने से गुणी

पृथवी उसका आत्मयुक्त मन से प्रत्यक्ष कया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष के होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को कसी वषय में लगाता है वा चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि अच्छी बाते करने में जिस क्षण में आरभ करता है उस समय जीव की इच्छा ज्ञान आदि उसी इच्छित वषय पर झुक जाती है, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे काम करने में आय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं कन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध हो के परमात्मा का वचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्यों क कार्य को देखकर कारण का अनुमान होता है। (पूर्व.) ईश्वर व्यापक है वा कसी देश वशेष में रहता है? (उत्तर) व्यापक है, क्यों क जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता सबका स्रष्टा, सबका धर्त्ता और प्रलय कर्त्ता नहीं हो सकता, अप्राप्तदेश में कर्त्ता की क्रया का असभव है।**24**

उपदेश मंजरी के प्रथम उपदेश में ही ईश्वर सद्ध का वषय है। यहाँ पर मह र्ष ने कहा क प्रथम हमें ईश्वर की सद्ध करनी चाहिए उसके पश्चात् धर्मप्रान्ध का वर्णन करना योग्य है क्यों क 'सति कुडये चत्रम्' इस न्याय से जब तक ईश्वर की सद्ध नहीं हो जाती तब तक धर्म व्यायान करने का अवकाश नहीं।**25**

क्या उपासनार्थ उपास्य के आकार की आवश्यकता है?:-

भक्त लोग प्रायः यह कहा करते हैं क परमेश्वर की उपासना करने के लए उसके आकार की आवश्यकता महसूस होती है। 'इसी प्रकार भक्तों को उपासना करने के लये ईश्वर का कुछ आकार होना चाहिए, परन्तु यह कहना भी ठीक नहीं है, क्यों क शरीरस्थ जो जीव है, वह भी आकार रहित है, यह सब कोई मानते हैं अर्थात् वैसा आकार न होते भी हम परस्पर एक दूसरे को पहचानते हैं, प्रत्यक्ष कभी न देखते हुए भी केवल गुणानुवादों ही से सद्भावना और पूज्यबुद्ध मनुष्यादि के वषय में रखते हैं। उसी प्रकार ईश्वर के सबन्ध में नहीं हो सकता, यह कहना ठीक नहीं है। इसके सवाय मन का आकार नहीं है मन के द्वारा परमेश्वर ग्राह्य है, उसे जड़ इन्द्रिय ग्राह्यता लगाना यह अप्रयोजक है।'**26** प्रमाण बहुत प्रकार के हैं यथा- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द.......परन्तु सब शास्त्रकार अपने शास्त्र के उपयोगी प्रमाण को मानते हैं। 'सारे प्रमाणों का अन्तर्भाव करके तीन प्रमाण अप शष्ट रहते हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। प्रत्यक्ष भी स वकल्प और नि र्वकल्प होता है। अनुमान तीन प्रकार का होता है- पूर्ववत् शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट। इन तीन प्रकार के प्रमाणों की व्या पका ईश्वर सद्ध वषयक प्रयत्न करते समय प्रत्यक्ष की व्या पका (वचार) करने से पूर्व अनुमान की ला पका करनी चाहिये क्यों क प्रत्यक्ष का ज्ञान बहुत संकु चत और शुद्र है'.........इससे प्रत्यक्ष को एक ओर रखकर शास्त्रीय वषयों में अनुमान प्रमाण ही वशेष गना गया है। व्यवहार के लये अनुमान आवश्यक है। अनुमान के बिना भ वष्य के व्यवहारों के वषय में हमारा जो दृढ़ निश्चय रहता है, वह निरर्थक होगा। कल सूर्य उदय होगा यह प्रत्यक्ष नहीं है तथा प इस वषय में कसी के मन में तिलमात्र की भी शंका नहीं होती।**27**

अनुमान और प्रत्यक्ष से ईश्वर सद्धः– 'तीन प्रकार के अनुमान की ला पक करने से ईश्वर= परमपुरुष= सनातन ब्रह्म सब पदार्थों का बीज है, ऐसा सद्ध होता है। रचना रूपी कार्य

दिखता है, इससे अनुमान होता है क इस सृष्टि को रचने वाला अवश्य कोई है। पंच महाभूतों की सृष्टि आप ही आप रची हुई नहीं है, क्यों क व्यवहार में घर का सामान वद्यमान होने ही से केवल घर नहीं बन जाता, यह हमारा देाा हुआ अनुभव सर्वत्र है। साथ ही साथ पंच महाभूतों का मश्रण निय मत प्रमाण से व शष्ट उत्पन्न होने की ही सुगमता के लए कभी भी आप स्वयं घटित नहीं होता। इससे स्पष्ट है क सृष्टि की व्यवस्था जो हम देखते हैं, उसका उत्पादक और नियंता ऐसा कोई श्रेष्ठ पुरुष अवश्य होना चाहिये।'**28**

'अब कसी को यह अपेक्षा लगे क ईश्वर की सद् ध में प्रत्यक्ष प्रमाण होना चाहिए, उसका वचार यूँ है क प्रत्यक्ष रीति से गुण का ज्ञान होता है। गुण का अ धकरण जो गुणी द्रव्य है उसका ज्ञान प्रत्यक्ष रीति से नही होता। इसी प्रकार ईश्वर सबन्धी गुण का अ धकरण जो ईश्वर है उसका ज्ञान होता है, ऐसा समझना चाहिए।'**29** **'**हिरण्य र्गाः**'** इस मन्त्र को प्रस्तुत करके लखा है क हिरण्यर्गा का अर्थ शा लग्राम की वटिया नहीं है, कन्तु हिरण्य अर्थात् 'ज्योति जिसके उदर में है, वह ज्योति स्वरूप परमात्मा ऐसा अर्थ है।'

यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यत्विजानाति स भूमा

यत्र अन्यत् पश्यति अयत् शृणोति**,** अन्यत् वजानति तत् अल्पभ।

यो वैभूमा तदमृतमथ यदलयं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन्

प्रतिष्ठितः इति स्वे महिति यदिवा न महिम्नीति।**30**

जब उपासक अन्य वस्तुओं को जानता नहीं। वह भूमा है। और जब उपासक अन्य वस्तु को देखता है। अन्य वस्तु को सुनता है। अन्य वस्तु को जानता है। वह अल्प है। जो भूमा है वही अमृत है। जो अल्प है वही मर्त्य मरण योग्य है। नारद- वह भूमा कसमें प्रतिष्ठित है? सनत्कुमार-निज महिमा में यह प्रतिष्ठित है।

एतदालबनं श्रेष्ठ एतदालंवनं परम्।

एतदालंवनं ज्ञात्वा स ब्रह्म लेके महीयते।।

टिप्प णयाँ

1. सत्यार्थप्रकाश, पृ. 383
2. सत्यार्थप्रकाश, पृ. 383-384
3. अमरकोश 118
4. सत्यार्थप्रकाश, 12वाँ समु., पृ. 384 पर स्वामी वेदानन्द की टिप्पणी
5. वही देखें, पृ. 384
6. वही देखें, पृ. 384
7. न्याय कुसुमांज ल, तृतीयस्तबक, पृ. 101
8. वही देखें, पृ. 101
9. न्याय कुसुमांज ल, पृ. 101
10. वही देखें, पृ. 103

11. वही देखें, पृ. 102
12. वही देखें, पृ. 102
13. वही देखें, पृ. 103
14. वही देखें, पृ. 103
15. तर्कभाषा, पृ. 111
16. वही देखें, पृ. 103
17. वही देखें, पृ. 103
18. वही देखें, पृ. 104
19. वही देखें, पृ. 105
20. वही देखें, पृ. 106
21. वही देखें, पृ. 106
22. सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समु., पृथम पृथम पृष्ठ
23. सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समु., पृ. 154-155
24. उपदेश मंजरी, पृ. 2
25. वही देखें, पृ. 3
26. उपदेश मंजरी, पृ. 3
27. वही देखें, पृ. 4
28. छान्दोग्योपनिषद् 7/24/1

चार्वाक दर्शन एवं वेदः – डॉ. वेद प्रकाश

NOVEMBER 18, 2015 1 COMMENT

(सत्यार्थप्रकाश के द्‌वादश समुल्लास के आलोक में)

– डॉ. वेद प्रकाश

[वर्ष 2013 में ऋ ष – मेले के अवसर पर आयोजित वेद-गोष्ठी में प्रस्तुत एवं पुरस्कृत यह शोध लेख पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत है।] -सपादक

सृष्टि के प्रारभ से ही आर्यावर्त में वेद की प्रतिष्ठा रही है। ईश्वर द्‌वारा प्रदत्त तथा वैदिक ऋ षयों द्‌वारा अनुभूत वेद ज्ञान सत्यासत्य के निर्णय का एक मात्र आधार रहा है। भारतीय चन्तन में वैदिक ज्ञान की सर्वोत्कृष्टता इस बात से भी परिल क्षत होती है क आस्तिकता और नास्तिकता का नियामक भले ही लोक में ईश्वर है, परन्तु शास्त्र की दृष्टि से वेद है। अर्थात् जो वेद को मानता है वह आस्तिक है तथा जो वेद को नहीं मानता , वह नास्तिक है। मनु के शदों में 'नास्तिको वेदनिन्दकः'(मनुस्मृति 2.11)। परन्तु धीरे-धीरे भारत में वेद मन्त्रों के मनमाने अर्थ कये जाने लगे तथा वैदिक यज्ञों एवं कर्मकाण्ड में आडबर, हिंसा आदि अमानवीय भावनाओं का प्रभुत्व बढता गया। परिणामस्वरूप वेद वद्‌या के स्थान पर अ वद्‌या का प्रसार होने लगा। इसी के परिणामस्वरूप भारत में चार्वाक, जैन एवं बौद्‌ध दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ। ये दर्शन वेद को प्रमाण नहीं मानते हैं, अतः इन्हें भारतीय दार्शनिक परपरा में नास्तिक दर्शन कहा जाता है।

चार्वाक दर्शन के सद्धान्त अन्य दार्शनिक ग्रन्थों यथा ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य, कमलशीलकृत तत्वसंग्रहपञ्जिका, ववरणप्रणेयसंग्रह, न्यायमञ्जरी, सर्व सद्धान्तसंग्रह, षड्दर्शनसमुच्चय, तर्करहस्यदी पका, सर्वदर्शनसंग्रह आदि ग्रन्थों में पूर्वपक्ष के रूप में हुआ है। चार्वाक दर्शन का आधार मुय रूप से वेद- वरोध है, जैसा क इनके वेद वषयक सद्धान्तों से वदित होता है-

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भाण्डधूर्तनिशाचराः।

प्रस्तुत शोधपत्र में मह र्ष दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में प्रस्तुत चार्वाक दर्शन के सद्धान्तों को प्रस्तुत कर उनकी दार्शनिक ग्रन्थों के आधार पर प्रामा णकता सद्ध की गयी है। इसके पश्चात् मह र्ष दयानन्द द्वारा चार्वाक दर्शन के सद्धान्तों का खण्डन तथा उनकी वेदानुकूलता प्रस्तुत कर चार्वाक दर्शन के जो सद्धान्त वेदानुकूल है, उनकी समीक्षा मह र्ष दयानन्द द्वारा प्रस्तुत सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास के सन्दर्भ में की गयी है।

मह र्ष दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में चार्वाक दर्शन के निम्न ला ित सद्धान्तों को प्रस्तुत कया गया है-

पुनर्जन्म का सद्धान्त– चार्वाक दर्शन पुनर्जन्म के सद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है। मह र्ष दयानन्द ने इस कथन की पुष्टि के लए 12 वें समुल्लास के प्रारभ में बृहस्पति नामक आचार्य का एक प्र सद्ध पद्य प्रस्तुत कया है –

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

अर्थात् जब तक जीवन है, सुखपूर्वक जीयें। क्यों क मृत्यु से कुछ भी अगोचर नहीं है। भस्मीभूत होने वाले इस शरीर का पुनः आगमन कहां होगा? अर्थात् मृत्यु के पश्चात् जीव पुनः संसार में नहीं आता है। अतः-

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।**3**

अर्थात् सुखपूर्वक जीने के लए ऋण लेकर भी घी पीना चाहिए।

मह र्ष दयानन्द जीव को अनादि मानते हैं। परलोक के सबन्ध में उनका वचार है क जैसे इस समय सुख दुःख का भोक्ता जीव है, वैसे ही परजन्म में भी होता है।4 वेद में पुनर्जन्म के समर्थन में अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं, जिनका सारांश निम्न प्रकार से है- सत्य के ज्ञाता और अहिंसक उन जीवों ने फर प्राणधारण कया।5 कसने मुझे पुनः वशाल पृ थवी पर जन्म दिया।6 मैं पुनः जन्म लेकर माता- पता के दर्शन करूँ।7 कठोपनिषद् का यह प्र सद्ध वाक्य –

सस्य मव मर्त्यः पच्यते सस्य मवाजायते पुनः।**8** तथा-

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।

स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।**9**

अर्थात् जिसका जैसा कर्म होता है और शास्त्रादि के श्रवण के द्वारा जिसको जैसा भाव प्राप्त हुआ है, उन्हीं के अनुसार शरीर धारण करने के लिए कितने ही जीव अनेक प्रकार की योनियों को प्राप्त हो जाते हैं और अन्य कितने ही स्थावर भाव का अनुसरण करते हैं।

शरीर में चार महाभूतों के योग से चैतन्य-उत्पत्ति – चार्वाक की यह मान्यता है कि हमारा शरीर पृथवी, जल, अग्नि तथा वायु इन चार महाभूतों के संयोग से बना है। चार्वाक चार ही महाभूत स्वीकार करता है।10 वह आकाश को स्वीकार नहीं करता। इस शरीर में इन चार महाभूतों के योग से चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मादक द्रव्य खाने पीने से मद उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ ही नष्ट हो जाता है।11 फिर किसको पाप-पुण्य का फल होगा? अर्थात् शरीर के नष्ट होने के साथ ही जीवन भी नष्ट हो जाता है। अतः पाप-पुण्य का भोक्ता कौन होगा अर्थात् कोई नहीं।

महर्षि दयानन्द इसके समाधान में कहते हैं कि पृथव्यादि भूत जड़ हैं तथा जड़ पदार्थों से चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती। मद के समान चेतन की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता, क्योंकि मद चेतन को होता है, जड़ को नहीं। पदार्थ नष्ट अर्थात् अदृष्ट होते हैं परन्तु अभाव किसी का नहीं होता। इसी प्रकार अदृश्य होने पर जीव का भी अभाव नहीं मानना चाहिए। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है। जब वह शरीर को छोड़ देता है, तब यह शरीर जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है वह जैसा चेतनयुक्त पूर्व में था वैसा नहीं हो सकता।

महर्षि दयानन्द के उपरोक्त विचारों का वेद में समर्थन प्राप्त होता है। जैसा कि चार्वाक मानते हैं कि शरीर के नष्ट होने के साथ ही जीव भी नष्ट हो जाता है। परन्तु वेद कहता है कि – मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।**12** अर्थात् मनुष्यों में अमर जीवात्मा विद्यमान है। जहाँ तक जीवात्मा के पाप-पुण्य भोगने की बात है, वहाँ भी चार्वाक का मत वेद विरुद्ध है। वेद के अनुसार – जीवात्मा भोक्ता रूप में सांसारिक विषयों का भोग करता है।**13** चार्वाक चार महाभूतों को ही स्वीकार करता है। वह प्रत्यक्ष न होने से आकाश को स्वीकार नहीं करता है। उपनिषद् का वचन है-

सर्वेषां वा एष भूतानामाकाशः परायणम् सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशाादेव जायन्ते।**14**

चैतन्य विशिष्टदेह ही आत्मा – चार्वाकों का सिद्धान्त है कि –

तच्चैतन्य विशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्।**15**

अर्थात् चैतन्य विशिष्टदेह ही आत्मा है, देह से अतिरिक्त आत्मा के विषय में प्रमाण का अभाव होने से। इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हीं के वियोग के साथ ही नष्ट हो जाता है। क्योंकि मरने के बाद कोई जीव प्रत्यक्ष नहीं होता।

महर्षि दयानन्द इसके समाधान में कहते हैं कि जो देह से पृथक् आत्मा न हो तो जिसके संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता होती है, वह देह से पृथक् है। जैसे आँख सबको दोती है पर वह स्वयं को नहीं देख सकती। इसी प्रकार प्रत्यक्ष का करने वाला अपने ऐन्द्रिय का प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। जैसे आँख से सब घट-पटादि पदार्थ देखता है वेसे आँख को अपने ज्ञान से देखता है। जो दृष्टा है वह दृष्टा ही रहता है, दृश्य कभी नहीं होता। कठोपनिषद् से इस तथ्य की पुष्टि होती है –

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते।

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।**16**

पुरुषार्थ का फल – चार्वाकों के अनुसार सुन्दर स्त्री से आलिङ्गन करना ही पुरुषार्थ का फल है।17

यदि इसे पुरुषार्थ का फल मानते हैं तो इससे क्षणिक सुख और दुःख भी होता है, वह भी पुरुषार्थ का ही फल होगा। जब ऐसा है तो स्वर्ग ही की हानि होने से दुःख भोगना पड़ेगा। जो कहो कि सुख के बढ़ाने और दुःख के घटाने में प्रयत्न करना चाहिए तो मुक्ति सुख की हानि हो जाती है। इसलिए वह पुरुषार्थ का फल नहीं।18

परलोक– चार्वाक परलोक की धारणा को व्यर्थ मानते हैं। क्योंकि इस लोक के उपस्थित सुख को छोड़कर अनुपस्थित स्वर्ग के सुख की इच्छा कर धूर्त कथित वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्ड का अनुष्ठान परलोक के लिए करते हैं, वे अज्ञानी हैं। जो परलोक है ही नही, उसकी आशा करना मूर्खता का काम है । क्योंकि-

यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।

कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः।।**19**

यदि इस देह से निकल कर जीव किसी अन्य लोक में जाता है तो वह अपने बन्धुओं के स्नेह के कारण पुनः अपने घर में ही क्यों नहीं आ जाता।

इस सन्दर्भ में चार्वाकों की वेद विरुद्धता पुनर्जन्म के निरुपण के समय ही स्पष्ट कर दी गयी है। महर्षि दयानन्द इस विषयमें कहते हैं कि देह से निकल कर जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त होता है और उसको पूर्वजन्म तथा कुटुबादि का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता, इसलिए वह पुनः कुटुब में नहीं आ सकता।20

अग्निहोत्र, वेद, त्रिदण्ड, भस्मगुण्ठन – चार्वाकों के अनुसार-

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।

बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः।।**21**

अग्निहोत्र, वेद, त्रिदण्ड, भस्मगुण्ठन ये सभी बुद् ध एवं पौरुषहीन व्यक्तियों की आजी वका के साधन हैं।

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भाण्डधूर्तनिशाचराः।

जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्।।**22**

अर्थात् तीनों वेदों के कर्ता भाण्ड, धूर्त और निशाचर हैं तथा जर्फरी-तुर्फरी इत्यादि पण्डितों के धूर्ततायुक्त वचन हैं।

अश्वस्यात्र हि शश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम्।

भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकी र्ततम्।।**23**

तथा अश्व के शश्न को यजमान की पत्नी ग्रहण करे।

मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्।।**24**

मांसाहार प्रतिपादन करने वाला वेद राक्षसों का बनाया हुआ है।

मह र्ष दयानन्द के अनुसार अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद् ध द्वारा आरोग्यता का होना, उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सद् ध होती है।25 उपनिषद् का वाक्य है क स्वर्ग की कामना के लए अग्निहोत्र करें –

अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः।**26** तथा –

यथेह क्षु धता बाला मातरं पर्य्युपासते।

एवँ्सर्वा ण भूतान्यग्निहोत्रमुपासते।।**27**

चार्वाकों द्वारा कया गया त्रिदण्ड तथा भस्मधारण का खण्डन ठीक है। क्यों क सपूर्ण वैदिक वाङ्मय में स्तुति, प्रार्थना अथवा उपासना की पद्धति में कहीं भी त्रिदण्ड अथवा भस्मधारण क उल्लेख नहीं है। मह र्ष दयानन्द कहते हैं क जो चार्वाकादि ने वेदादि सत्यशास्त्र देखे, सुने वा पढ़े होते तो वेदों की निन्दा कभी न करते क वेद भांड, धूर्त और निशाचरवत्् पुरुषों ने बनाये हैं, ऐसा वचन कभी न निकालते हाँ। भांड धूर्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं, उनकी धूर्तता है, वेदों की नहीं।28

जहाँ तक वेदों के निर्माण का प्रश्न है मह र्ष दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभू मका के वेदोत्प त्त वषय में शतपथ ब्राह्मण के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद को प्रस्तुत कया है –

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्व सतमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ् गरसः।**29**

अर्थात् याज्ञवल्क्य कहते हैं क हे मैत्रेयी! महान् आकाश से भी वृहद् परमेश्वर से ही ऋग्वेदादि वेद्चतुष्टय निःश्वास के समान सहज रूप से निकले हैं, ऐसा मानना चाहिए। जैसे

शरीर से उच्छ्वास निकल कर पुनः शरीर में ही प्रवेश कर जाता है, वैसे ही ईश्वर से वेद का प्रादुर्भाव और तिरोभाव होता है, ऐसा मानना चाहिए।**30**

भला! वचारना चाहिए क स्त्री से अश्व के लङ्ग का ग्रहण कराके उससे समागम कराना और यजमान की कन्या से हाँसी ठट्ठा आदि करना सवाय वाममार्गी लोगों से अन्य मनुष्यों का काम नहीं है। बिना इन महापापी वाममा र्गयों के भ्रष्ट, वेदार्थ से वपरीत, अशुद्ध व्यायान कौन करता? और जो माँस खाना है यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है। वेदों में कहीं माँस का खाना नहीं लखा।**31**

मोक्ष – चार्वाकों के अनुसार देह का नाश होना ही मोक्ष है।32

इस पर मह र्ष दयानन्द कहते हैं क- तो फर गधे, कुत्ते आदि पशुओं और मनुष्यों में क्या अन्तर रहा।33 अर्थात् वैदिक और दार्शनिक ग्रन्थों में मोक्षप्राप्ति के यम-नियमादि मार्ग बतलाये गये हैं, उनकी कोई प्रासङ् गकता न रहेगी।

जगत् स्वाभा वक है – चार्वाकों के अनुसार अग्नि उष्ण है, जल शीत है, तथा वायु स्पर्श में सम है। ऐसा इनको कसने बनाया है? अर्थात् कसी ने भी नहीं। इस लए जगत् के समस्त पदार्थ स्वाभा वक हैं।

अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः।

केनेदं चत्रितं तस्मात्स्वभावात्तदव्यवस्थितिः।।**34**

मह र्ष दयानन्द इसके समाधान में कहते हैं क बिना चेतन परमेश्वर के निर्माण कये जड़ पदार्थ स्वयं आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। इस वास्ते सृष्टि का कर्ता अवश्य होना चाहिए। यदि स्वभाव से ही होते तो द् वतीय सूर्य, चन्द्र, पृ थवी और नक्षत्रादि लोक आपसे आप क्यों नहीं बन जाते हैं।**35** इस सन्दर्भ में वेद का कथन है क वह ईश्वर सत् वस्तुओं का कारण तथा अमूर्त वायु आदि का प्रकाशक है।**36**

वर्ण एवं आश्रम – चार्वाकों के अनुसार न कुछ स्वर्ग है, न अपवर्ग है तथा न ही यह आत्मा दूसरे लोक में जाता है तथा न ही वर्णाश्रम आदि की क्रयाएँ फल देने वाली हैं।

न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौ ककः।

नैव वर्णाश्रमादीनां क्रयाश्च फलदायिकाः।।**37**

मह र्ष दयानन्द कहते हैं क स्वर्ग सुख भोग और नरक दुःख भोग का नाम है। जो जीवात्मा न होता तो सुख दुःख का भोक्ता कौन हो सके? जैसे इस समय सुख दुःख का भोक्ता जीव है वैसे परजन्म में भी होता है। क्या सत्यभाषण और परोपकारादि क्रया भी वर्णाश्र मयों की निष्फल होगी? की नहीं।**38**

सुख दुःख का भोक्ता जीव है, इस तथ्य की पुष्टि उपनिषद् इस प्र सद्ध मन्त्र से हो जाती है –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अ भचाकशीति।।**39**

यज्ञ में पशुब ल – चार्वाक कहते हैं क ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारा हुआ पशु यदि स्वर्ग में जायेगा, ऐसा मानकर यजमान यज्ञ में पशु की हिंसा करता है तो वह अपने पता को मारकर स्वर्ग में क्यों नहीं भेज देता।

पशुश्चेन्निहतः स्वर्ग ज्योतिष्टोमे ग मष्यति।

स्व पता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।।**40**

मह र्ष दयानन्द इसके समाधान में कहते हैं क पशु मार के होम करना वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं नहीं लखा है।41

श्राद्ध एवं तर्पण – चार्वाक कहते हैं क यदि मृतक प्रा णयों का श्राद्ध उन मरे हुए प्रा णयों की तृप्ति का कारण है तो कहीं अन्य स्थान पर जाते हुए व्यक्तियों के लए पाथेय अर्थात् मार्ग के लए भोज्यादि सामग्री आदि की कल्पना व्यर्थ है। स्वर्ग में स्थित व्यक्ति जब दान से तृप्त हो जाते हैं तब प्रासाद के ऊपरि भाग में स्थित व्यक्ति को नीचे से भोजन क्यों नहीं पहुँचाया जा सकता है। अतः ब्राह्मणों के द्वारा अपनी जी वकोपार्जन के लए ही मृतकों के लए ये प्रेत क्रयाएँ बनायी गयी हैं।**42**

इस पर मह र्ष दयानन्द का मन्तव्य है क मृतकों का श्राद्ध, तर्पण करना कपोलकल्पित है क्यों क यह वेदादि सत्यशास्त्रों के वरुद्ध होने से भागवतादि पुराणवालों का मत है। इस लए इस बात का खण्डन अखण्डनीय है।**43**

नरक – चार्वाकों के अनुसार काँटे आदि के लगने से होने वाले दुःख का नाम नरक है।**44** इस पर मह र्ष दयानन्द कहते हैं क तो महारोगादि नरक क्यों नहीं।**45** अर्थात् लोक में और भी बड़े-बड़े दुःख दिखायी देते हैं। उन सबको नरक मानना चाहिए।

परमेश्वर – चार्वाकों की मान्यता है क लोक सद्ध राजा ही परमेश्वर है।**46**

इस पर मह र्ष दयानन्द कहते हैं क राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ माने तो ठीक है, परन्तु जो अन्यायकारी और पापी राजा हो तो उसको भी परमेश्वर के समान मानते हो तो तुहारे जैसा कोईाी मूर्ख नहीं।**47**

अतः स्पष्ट है क मह र्ष दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में चार्वाक दर्शन के सपूर्ण सद्धान्तों को स्पष्ट कया गया है तथा साथ ही प्र सद्ध दार्शनिक गन्थ सर्वदर्शन संग्रह के उद्धरणों को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत कया गया है। मह र्ष दयानन्द द्वारा चार्वाक दर्शन के सद्धान्तों के सबन्ध में दोनों ही प्रकार के वचार प्राप्त होते हैं। वे चार्वाक दर्शन के कुछ मतों का समर्थन करते हैं तथा कुछ मतों का वरोध भी। परन्तु यहाँ समर्थन अथवा वरोध का एकमात्र कारण चार्वाकों के सद्धान्तों की वेदानुकूलता है। चार्वाकों के जो मत वेदानुकूल हैं, मह र्ष दयानन्द उनका समर्थन करते हैं तथा जो वेदानुकूल नहीं हैं, उनका

वरोध। चार्वाकों के त्रिदण्ड, भस्मगुण्ठन, यज्ञ में पशुब ल तथा श्राद्ध एवं तर्पण वषयक वचारों का मह र्ष दयानन्द समर्थन नहीं करते हैं। वस्तुतः ये सभी मत वेद वरुद्ध हैं। त्रिदण्ड एवं भस्मगुण्ठन का वधान कसी भी वैदिक यज्ञ अथवा वधान में नहीं है तथा न ही इनकी दैनिक जीवन में कोई उपयो गता दिखायी देती है। जहाँ तक यज्ञ में पशुब ल का प्रश्न है, इसका भी कहीं वेद में समर्थन नहीं मलता। परन्तु कुछ वेद के भाष्यकार ऐसे भी हुए जिन्होंने वेदमन्त्रों से यज्ञ में पशुब ल को सद्ध कया। अतः यह दोष उन तथाक थत वेदभाष्यकारों का है, न क वेद का। यहीं स्थिति श्राद्ध एवं तर्पण के वषय में है। ये दोनों ही जी वत व्यक्तियों के सन्दर्भ में हैं। परन्तु कालान्तर में जनमानस पर पोरा णक प्रभाव के कारण कुछ कर्मकाण्डियों ने इन्हें अपनी जी वका का साधन बना लया। चार्वाकों ने वेदों का अध्ययन तो कया नहीं, अ पतु उन्होंने महीधरादि वेदभाष्यकारों तथा पौरा णकों द्वारा यज्ञादि के नाम से समाज में प्रच लत कये गये पाखण्ड को वेद से जोड़ दिया तथा वेद की निन्दा करने लगे।

इसके अतिरिक्त मह र्षदयानन्द ने चार्वाक दर्शन के पुनर्जन्म का सद्धान्त, शरीर में चार महाभूतों के योग से चैतन्य-उत्प त्त, चैतन्य व शष्टदेह ही आत्मा, पुरुषार्थ का फल, परलोक, अग्निहोत्र, वेद, मोक्ष, जगत् स्वाभा वक है, वर्ण एवं आश्रम, नरक तथा परमेश्वर वषयक सद्धान्तों का खण्डन कया है। खण्डन का सपूर्ण आधार वेद है, जैसा क प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रत्येक स्थल पर प्रद र्शत कया गया है। अन्त में मह र्ष दयानन्द के ही शदों में- जो वाममा र्गयों ने मथ्या कपोलकल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, माँस खाने और परस्त्री गमन करने आदि दुष्ट कामों की प्रवृ त्त होने के अर्थ वेदों को कलङ्क लगाया, इन्हीं बातों को देखकर चार्वाक, बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे और पृथक् एक वेद वरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लया। जो चार्वाकादि वेदों का मूलार्थ वचारते तो झूठी टीकाओं को देखकर सत्य वेदोक्त मत से क्यों हाथ धो बैठते? क्या करे बिचारे ' वनाशकाले वपरीतबुद् धः'। जब नष्ट भ्रष्ट होने का समय आता है तब मनुष्य की उल्टी बुद् ध हो जाती है।**48**

सन्दर्ा –

1. चार्वाकसमीक्षा, पृ. 6
2. सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 2, पंक्ति 17-18
3. वही पृ. 14, पं. 122-123
4. सत्यार्थ प्रकाश पृ. 291 आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली -6,65 वाँसंस्करण, नवबर 2007
5. असुं स ईयुरवृका ऋतज्ञाः। ऋग्वेद 10.15.1

6 को नो महया अदितये पुनर्दात्। वही 1.24.1

7 पतरं च दृशेयं मातरं च। वही 1.24.1

8 कठोपनिषद् 1.1.6

9 वही 2.4.7

10 अत्र चत्वारि भूतानि भू मवार्यनलानिलाः। सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 7, पंक्ति 60

11 तत्र पृ थव्यादीनि भूतानि चत्वारि तत्त्वानि। तेय एव देहाकारपरिणतेयः कण्वादियो मदशक्तिवच्चैतन्य-मुपजायते। तेषु वनष्टेषु सत्सु स्वयं वनश्यति।

वही पृ. 2-3, पंक्ति 23-25

12 ऋग्वेद 10.45.7

13 अथर्ववेद 10.8.21

14 नृ संहपूर्वता पन्युपनिषद् 3.5

15 सर्वदर्शनसंग्रह पृ.3, पं. 27-28

16 कठोपनिषद् 3.12

17 अङ्गनाद्या लङ्गनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः। सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 3, पं. 29-30

18 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 289

19 सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 14, पं. 124-125

20 सत्यार्थप्रकाश, पृ.291

21 सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 5, पं. 50-51

22 वही पृ. 14, पं. 128-129

23 वही पृ. 15, पं. 130-131

24 वही पृ. 15, पं. 132

25 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 289

26 मैत्रायण्युपनिषद् 6.36

27 छान्दोग्योपनिषद् 5.24.5

28 सत्यार्थप्रकाश पृ. 289

29 श. का. 14, अ. 5 (ब्रा. 4, क. 10)

30 याज्ञवल्क्योऽ भवदति – हे मैत्रेयी! महत आकाशाद प बृहतः परमेश्वरस्यैव सकाशादृग्वेदादिवेदचतुष्टयं (निःश्व सत) निःश्वासवत्सहजतया निःसृतमस्तीति

वेद्यम्। यथा शरीराच्छ्वासो निःसृत्य पुनस्तदेव प्र वशति तथैवेश्वराद्वेदानां प्रादुर्भावतिरो-भावौ भवतः इति निश्चयः। ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, वेदोत्प त्त वषय 3

31 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 291-292

32 देहोच्छेदो मोक्षः। सर्वदर्शनसंग्रह पृ.6,पं. 53

33 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 289

34 सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 13,पं. 110-111

35 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 291

36 सतश्च योनिमसतश्च व वः। यजुर्वेद 13.3

37 सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 13, पं. 114-115

38 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 291

39 श्वेताश्वतरोपनिषद् 4.6

40 सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 13, पं. 114-115

41 सत्यार्थप्रकाश पृ. 291

42 मृतानाम प जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।

गच्छता मह जन्तूनां व्यर्थ पाथेयकल्पनम्।।

स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।

प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते।।

ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणै र्वहितस्त्विह।

मृतानां प्रेतकार्या ण न त्वन्यद् वद्यते क्व चत्।। सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 13-14, पं. 116, 118, 120, 121, 126, 127

43 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 291

44 कण्टकादिजन्यं दुःामेव नरकः। सर्वदर्शनसंग्रह पृ. 6, पं. 52

45 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 289

46 लोक सद्धो राजा परमेश्वरः। वही पृ. 6, पं. 52-53

47 सत्यार्थप्रकाश, पृ. 289

48 वही, पृ. 292

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1 अथर्ववेद, भाष्यकार – क्षेमकरणदास त्रिवेदी, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2007

2 उपनिषद् संग्रह – सं. – पं. जगदीश शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980

3 ऋग्वेद, भाष्यकार – मह ष दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2005

4 त्रग्वेदादिभाष्यभू मका – मह ष दयानन्द सरस्वती, दिल्ली

5 चार्वाकसमीक्षा – स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती, वश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, हो शयारपुर, 1964

6 सत्यार्थप्रकाश – मह ष दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 65 वाँ संस्करण, नवबर 2007

7 सर्वदर्शनसंग्रह – सायण-माधव, प्राच्य वद्या संशोधन मन्दिर, पुना, 1924

8 यजुर्वेद, भाष्यकार – मह ष दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2006

– सहायक आचार्य, पंजाब वश्व वद्यालय, वश्वेश्वरानन्द वश्वबन्धु संस्कृत एवं भारत-भारती अनुशीलन संस्थान, हो शयारपुर

‘प्रातः व सायं संन्ध्या करना सभी मनुष्यों का मुख्य धर्म’ -मनमोहन कुमार आर्य

NOVEMBER 17, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

प्रतिदिन प्रातः व सायं सूर्योदय व सूर्यास्त होता हैं। यह कसके ज्ञान व शक्ति से होता है? उसे जानकर उसका ध्यान करना सभी प्रा णयों मुख्यतः मनुष्यों का धर्म है। यह मनुष्य का धर्म क्यों है, इस लए है क सूर्याेदय व सूर्यास्त करने वाली सत्ता से सभी प्रा णयों को लाभ पहुंच रहा है। जो हम सबको लाभ पहुंचा रहा है उसके प्रति कृतज्ञ होना नि र्ववाद रूप से कर्तव्य वा धर्म है। यदि सूर्योदय व सूर्यास्त होना बन्द हो जाये तो हमारी क्या दशा व स्थिति होगी, इस पर हमें वचार करना चाहिये। ऐसा होगा नहीं, परन्तु यदि सूर्योदय होना बन्द हो जाये तो हमारा जीवन दूभर हो जायेगा। एक स्थान पर यदि दिन है तो वहां दिन ही रहेगा और रात्रि व सायं का समय है तो वहां हमेशा अर्थात् प्रलय काल तक वैसा ही रहेगा जिससे मनुष्यों का जीवन

कंचत आगे चल नहीं सकता। वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा होने पर संसार की प्रलय हो जायेगी और सब कुछ नष्ट हो जायेगा। यह तो हमने एक ही दृष्टि से वचार कया परन्तु यदि हम सृष्टि की उत्प त्त से लेकर वनस्पति व प्राणी जगत की उत्प त्त तक के, सृष्टि के सभी अपौरूषेय कार्यों पर वचार करें तो हमें इस सृष्टि को बनाने, चलाने, वनस्पति व प्राणी जगत को उत्पन्न करने, सृष्टि की आदि में वेद ज्ञान देने, समय पर ॠतु परिवर्तन करने, सृष्टि में मनुष्यों व अन्य प्रा णयों के नाना प्रकार के सुख वा भोग के पदार्थ बनाकर बिना कसी मूल्य के हमें देने के लए हमें स्रष्टा ईश्वर का ॠणी तो होना ही है। इस ॠण को चुकाने के लए हमारे पास अपनी कोई वस्तु नहीं है जिसे ईश्वर को देकर हम उॠण हो सकते हों। इसके लए तो बस हमें ईश्वर की प्रतिदिन प्रातः व सायं स्तुति, प्रार्थना व उपासना ही करनी है। ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना की सत्य व लाभकारी व ध चार वेद व वैदिक साहित्य में ही मलती है जिसके आधार पर मह र्ष दयानन्द ने ईश्वर उपासना के लए ''सन्ध्या पद्धति'' का निर्माण कर हमें प्रदान की है। यदि हम इस व ध से ईश्वर का ध्यान न कर अन्य प्रच लत पद्धतियों को अपनाते हैं, तो हमारा मानना है क इससे हमें वह लाभ नहीं होगा जो क वैदिक सन्ध्या पद्धति से ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना करने से होता है। अतः अन्य पद्धतियां हमारे लए लाभकारी कम हानिकारक अ धक सद्ध होंगी।

सन्ध्या क्या है? यह ईश्वर के स्वरूप का चन्तन करते हुए उसके द्वारा हमारे नि मत्त कये गये सभी उपकारों को स्मरण करना और उसकी स्तुति अर्थात् उसके सत्य गुणों का वर्णन करते हुए उससे ज्ञान, सदबुद् ध, सद्गुणों, स्वास्थ्य, बल, ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना करना और साथ हि सभी उपकारों के लए उसका धन्यवाद करना है। यह सन्ध्या व ईश्वर का सम्यक् ध्यान सूर्यादय से पूर्व व सायं सूर्यास्त व उसके बाद लगभग 1 घंटा व अ धक करने का वधान है। इसके लए सभी दिशा निर्देश मह र्ष दयानन्द ने 'पंचमहायज्ञ व ध' पुस्तक में कये हैं। सन्ध्या में ईश्वर का ध्यान करने से मनुष्य की आत्मा व उसके स्वभाव के दोष दूर होकर ईश्वर के समान गुण, कर्म व स्वभाव सुधरते व बनते हैं। ईश्वर सकल ऐश्वर्य सम्पन्न है, अतः सन्ध्या करने से जीवात्मा वा मनुष्य भी अपनी अपनी पात्रता के अनुसार ईश्वर द्वारा ऐश्वर्यसम्पन्न कया जाता है। अतः ऐश्वर्य की प्राप्ति के लीए सभी मनुष्यों को प्रतिदिन सन्ध्या अवश्य ही करनी चाहिये। यदि सन्ध्या नहीं करेंगे तो हम कृतघ्न ठहरेंगे और यह कृतघ्नता महापातक वा महापाप होने से कसी भी अवस्था में मननशील व बुद् धजीवी मनुष्य के लए करने योग्य नहीं है। आप कल्पना कर सकते हैं क यदि ईश्वर एक क्षण भी अपने कर्तव्य कर्मों में कंचत असावधानी व व्यवधान पैदा कर दे, तो सारे संसार में प्रलय की स्थिति आ जायेगी। ऐसी अवस्था में उस अपने प्रयतम ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्य ''सन्ध्या'' का आचरण न करना घोर अवज्ञा, कृतघ्नता और दण्डनीय कार्य हो जाता है। इससे सभी को बचना चाहिये।

सन्ध्या के लए यदि हमें कसी महापुरुष का उदाहरण लेना हो तो हम कौशल्या-दशरथ नन्दन मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, देवकी-वसुदेव नन्दन योगेश्वर श्री कृष्ण व कर्षनजी तिवारी के पुत्र मह र्ष दयानन्द सरस्वती को ले सकते हैं। यह तीनों ईश्वर भक्त व उपासक थे। इनका जीवन पूर्णतया ईश्वरीय ज्ञान वेद की पालना में ही व्यतीत हुआ है। आज तक भी

इनका यश है जब क सृष्टि में वगत समय में अग णत मनुष्यों का जन्म व मृत्यु हो चुका है जिनका नाम कसी को स्मरण नहीं। हमें लगता है क वस्मृत महापुरूषों के जीवनों के अतिरिक्त यह तीनों ही महापुरूष मानवता के सच्चे आदर्श व मुक्तिगामी महापुरूष थे। यदि हम इनका अनुकरण करेंगे तो हमारा जीवन भी इनके अनुरूप ही यशस्वी व सफल होगा अन्यथा हम भी एक सामान्य व साधारण मनुष्य की तरह कालकव लत होकर वस्मृत हो जायेंगे। इन महापुरूषों का अनुकरण करने के लए हमें वेद व योगदर्शन सहित समस्त वैदिक साहित्य, बाल्मिकी रामायण, महाभारत, गीता, मह र्ष दयानन्द जी के पं. लेखराम, पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी सत्यानन्द र चत जीवन चरित्र व सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, संस्कार व ध, आर्या भ वनय आदि उनके ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। इस अध्ययन से मनुष्य ईश्वर व जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त कर अभ्युदय व निःश्रेयस प्राप्त कराने वाली जीवन शैली को प्राप्त कर, निःशंक एवं निभ्र्रान्त होकर, मनुष्य जीवन को सफल कर सकता है।

जिस परिवार में वैदिक पद्धति से निय मत सन्ध्या होगी वह परिवार आजकल के प्रदू षत सामाजिक वातवारण में भी सच्चा आस्तिक परिवार होगा और उसमें अन्यों की तुलना में सुख, शान्ति व कल्याण की स्थिति अ धक अच्छी होगी। माता- पता व वृद्ध जन अपने छोटो को सु श क्षत करने के लए प्रयत्नरत रहेंगे और इस प्रकार से नि र्मत संस्कारित सन्तानें भी माता- पता व परिवार के वृद्धों के प्रति अपने कर्तव्यों को जानकर उनकी सेवा श्रुशुषा करेंगीं। आजकल के समाज की भांति माता- पता व सन्तानों के वचारों में जीवन शैली के प्रति मत- भन्नता व बिखराव नहीं होगा। सन्ध्या के अन्त में उपासक ध्याता ईश्वर को समर्पण करते हुए कहता है क 'हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयानेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सद् धर्भवेन्नः।' अर्थात् 'हे परमेश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से जप और उपासना आदि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सद् ध को शीघ्र प्राप्त होवें।' सन्ध्या करने से होने वाले अनेक लाभों में से एक लाभ आत्मा को ईश्वर का साक्षात्कार होना है। मह र्ष दयानन्द ने स्वानुभूत ववरण देते हुए बताया है क जब जीवात्मा शुद्ध (अ वद्या, दुर्गुण व दुव्यस्नों से मुक्त) होकर परमात्मा का वचार करने में तत्पर रहता है, उस को उसी समय दोनों, ईश्वर व आत्मा, प्रत्यक्ष होते है। सन्ध्या से हमारा जीवन व आचरण श्रेष्ठ बनेगा, हम आ र्थक रूप से सुखी व समृद्ध होंगे और इससे हम अपने सभी सत्य स्वप्नों, कामनाओं व इच्छाओं को पूर्ण कर सकेंगे, साथ ही मृत्यु के बाद बार-बार जन्म व मृत्यु के बन्धन से भी छूट जायेंगे।

वैदिक धर्म में मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति है। जीवात्मा के इस मोक्ष की कसी भी मत में ता र्कक चर्चा नहीं है। यह केवल वैदिक व आर्य धर्म में ही है जिसे तर्क व युक्तियों से मह र्ष दयानन्द सहित उनके पूर्ववर्ती दर्शनकारों ने सद्ध कया है। वेदों में भी इसकी चर्चा है। मोक्ष का ही अन्य नाम ''अमृत'' है। अमृत का अर्थ है मृत्यु को प्राप्त न होने वाला वा मृत्यु से छूट जाने वाला। वैदिक धर्म व जीवन पद्धति पर चलकर ही मनुष्य को अमृत व मोक्ष की प्राप्ति होती है जिससे वह सदा-सदा के लए जन्म-मरण रूपी दुःखों व कर्मों के बन्धनों से छूट जाता है। आईये, वैदिक धर्म की शरण लें और ईश्वर की सन्ध्या सहित अन्य उपादेय यज्ञ आदि अनुष्ठानों को करके धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति कर उसे सद्ध करें।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196 चुक्खूवाला-2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

sandhya

क्यों माने ईश्वर को?’ -मनमोहन कुमार आर्य

NOVEMBER 16, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

ईश्वर को क्यों माने? यह प्रश्न कसी भी मननशील मनुष्य के मस्तिष्क में आ सकता है। वह अपनी बुद् ध के अनुसार वचार करेगा और हो सकता है क उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त न हो। यदि वह अपने परिवार व मत्रों से इसकी चर्चा करेगा तो सबके उत्तर अलग-अलग होंगे। सभी मतों व सम्प्रदायों के वचार व उत्तर, परस्पर वैचारिक समानता न होने के कारण, अलग-अलग होंगे, यह निश्चित है। अब जिज्ञासु मनुष्य को उन सभी वचारों व मान्यताओं पर वचार कर निर्णय करना होगा। हमें लगता है क उसे जो भी उत्तर प्राप्त होंगे या तो वह गलत होंगे या अधूरे होंगे जिससे जिज्ञासु प्रवृ त के ववेकशील मनुष्य का समाधान नहीं हो सकेगा। उसके पास एक ही मार्ग शेष रहता है क वह कसी वेद या आर्य वद्वान की शरण ले और उससे इस प्रश्न की चर्चा करे, तो अनुमान है क उसका पूरा समाधान अवश्य ही होगा। इसका कारण यह है क वेद व आर्य वद्वानों के पास ईश्वर प्रदत्त ज्ञान वेद का प्रकाश है। इन वैदिक आर्य वद्वानों में ईश्वर की वशेष कृपा भी होती है जो क सम्भवतः अन्य मतों के वद्वानों व अनुयायियों में नहीं देखी जाती जब क उनके दावे बड़े-बड़े होते हैं। व भन्न मतों के आचार्यों व उनके अनुयायियों के ईश्वर सम्बन्धी कए जाने वाले दावो में उनकी अज्ञानता छिपी हुई दिखाई देती है। सत्य व असत्य का जैसा वश्लेषण व समीक्षा वेद व आर्य वद्वान करते हैं, वैसी समीक्षा व वश्लेषण अन्य कसी मत में नहीं कया जता है। यही कारण है क वेदभक्त आर्यों को ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होने के साथ उन्हें ईश्वर के मानने से लाभ व न मानने से होने वाली हानियों का भी पूरा-पूरा ज्ञान होता है।

हम एक पौरा णक मान्यता व वश्वास वाले परिवार में जन्में और अपनी आयु के 18 से 20 वर्षों तक हम अपने सभी धा मक्क कार्य यथा पूजा-उपासना आदि पौरा णक रीति के अनुसार ही करते थे। एक युवा सज्जन वद्वान मत्र की प्रेरणा से हमें आर्यसमाज का परिचय मला जो हमें र ववार के अवकाश के दिन खाली समय में वहां धुमाने ले जाने लगे। हमने वहां वद्वानों के प्रवचनों को सुना और समाज-मन्दिर में उपलब्ध सत्यार्थ प्रकाश आदि वैदिक साहित्य को लेकर पढ़ा। आर्यसमाज के वद्वानों के तर्क पूर्ण प्रवचनों और सत्यार्थप्रकाश की बुद् ध व तर्क पूर्ण मान्यताओं को पढ़कर उन वचारों व मान्यताओं का हमारे मन व

मस्तिष्क पर धीरे-धीरे प्रभाव होने लगा। अब वचार करने पर हमें अपनी जन्मना पौरा णक मान्यताओं की सत्यता के सन्तोषप्रद समाधान नहीं मले और आर्यसमाज की वेदमूलक मान्यताओं की सत्यता की साक्षी व पुष्टि हमारा मन-मस्तिष्क व हृदय करने लगा। फर जो होना था वही हुआ। हमने आर्यसमाज की सदस्यता का फार्म लेकर भर दिया और आर्यसमाज के साप्ताहिक यज्ञ व सत्संगों में वहां जाने लगे। हर बार वहां से कसी नये धा र्मक वषय की पुस्तक ले आते जिसे पढ़कर उस वषय का ज्ञान हो जाता था। वेद व आर्यसमाज की मान्यताओं को हम अपने पौरा णक तर्कों से काटना चाहते थे, परन्तु हमारे पास तर्क होते ही नहीं थे। अतः वैदिक वचारों ने हमारे पौरा णक वचारों पर पूर्ण वजय प्राप्त कर ली जिसका परिणाम है क हम वगत 40 से 45 वर्षों से मन व आत्मा से आर्यसमाज की वचारधारा से जुड़े हुए हैं।

ईश्वर को मानना व न मानना हमारी निजी सोच पर निर्भर होता है। संसार में बहुत से लोग हैं जो ईश्वर को नहीं मानते। उन्हें साम्यवादी कह सकते हैं। यह बात अलग है क बंगाल व अन्यत्र रहने वाले हमारे भारत के साम्यवादी व उनके कुटुम्बी दुर्गापूजा आदि जैसे नाना प्रकार के धा र्मक अनुष्ठान भी करते हैं। जो लोग ईश्वर को बिल्कुल नहीं मानते और जो वदूरप ईश्वर पूजा को मानते व करते हैं, उसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह है क वह न तो स्वयं आत्म चन्तन करते हैं और न ही ईश्वर व जीवात्मा वषयक सर्वा धक प्रमा णक वैदिक साहित्य को पढ़ते हैं। यदि यह लोग उपनिषद ही पढ़ ले तो ईश्वर के स्वरूप से परि चत हो सकते हैं। उपनिषदें यद्य प संस्कृत भाषा में है परन्तु इनके हिन्दी सहित अनेक भाषाओं में भाष्य व अनुवाद उपलब्ध हैं। ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप और संसार की रचना की पहेली के यथार्थ रहस्य को जानने के लए ''सत्यार्थप्रकाश'' ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में ईश्वर की सत्ता को तर्क व युक्ति से समझाया गया है।

सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में मह र्ष दयानन्द जी ने प्रश्न प्रस्तुत कया है क आप ईश्वर–ईश्वर कहते हो, परन्तु उसकी सद् ध कस प्रकार करते हो? इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं क सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। फर वह प्रश्न प्रस्तुत करते हैं क ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते। इसके उत्तर में वह न्यायदर्शन का सूत्र ''इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्य भचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।'' प्रस्तुत करते हैं और बताते हैं क श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्यासत्य वषयों के साथ जो सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको प्रत्यक्ष कहते हैं, परन्तु वह निर्भ्रम हो। अब वचारना चाहिये क इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृ थवी उस का आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष कया जाता है, वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना वशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा, मन और इन्द्रियों को कसी वषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित वषय पर झुक जाते हैं। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं कन्तु परमात्मा की ओर से (होता) है। और जब जीवात्मा शुद्ध

होकर परमात्मा का वचार करने में तत्पर रहता है, उस को उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का (शुद्ध हृदय से वचार व ध्यान करने पर) प्रत्यक्ष होता है अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्यों क कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है। हमने इन पंक्तियों में मह र्ष दयानन्द के वचारों की कुछ झलक प्रस्तुत की है। वस्तार से जानने के लए जिज्ञासुओं को सत्यार्थ प्रकाश का गहन अध्ययन करना चाहिये। हमारा अनुमान है क बार-बार सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से अध्येता को ईश्वर के बारे में निभ्र्रान्त ज्ञान अवश्य हो जाता है।

ईश्वर है और उसी ने इस सृष्टि को बनाया है तथा वही इसका संचालन कर रहा है। उसी से, जन्म के बाद मृत्यु की भांति, संसार की प्रलय होती है व आगे चलकर इस सृष्टि की भी होगी। उसी परमात्मा से सभी प्राणी अस्तित्व में आते हैं और अपने कर्मानुसार सुख-दुःख रूपी फलों का भोग करते हैं। इस सन्दर्भ में हम यह निवेदन करना चाहते हैं क संसार के कसी वैज्ञानिक, मत-पन्थ के आचार्य व अन्य के पास सृष्टि और सभी प्रा णयों के जन्मदाता का बुद् धसंगत निर्भान्त ज्ञान व उत्तर उपलब्ध नहीं है। यह केवल वेद और वैदिक साहित्य में ही उपलब्ध होता है। अभी तक ईश्वर व जीवात्मा वषयक वेद, दर्शन, उपनिषद व सत्यार्थ प्रकाश आदि कसी ग्रन्थ की मान्यताओं व सद्धान्तों का कसी वैज्ञानिक व नास्तिक वद्वान ने युक्ति व तर्कपूर्वक खण्डन नहीं कया है। अतः ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व वषयक अन्य कोई सन्तोषजनक पक्ष न होने के कारण सभी मनुष्यों को वेदसम्मत ईश्वर को मानने में ही कल्याण है। ईश्वर है, यदि उसे मानेंगे तो ईश्वर को मानने से मलने वाले लाभों से समृद्ध होंगे और यदि नहीं मानेंगे तो उन लाभों से वं चत हो जायेंगे। कुछ क्षण के लए यदि इस मथ्या मान्यता को भी स्वीकार कर लें क ईश्वर नहीं है, तो भी ईश्वर को मानने से हमें कोई हानि नहीं होगी। क्यों क जब वह है हि नहीं तो हानि होने का प्रश्न ही नहीं है। परन्तु यदि ईश्वर है और हम उसे नहीं मानेंगे तो हानि होना निश्चित है। अतः दोनों ही स्थितियों में ईश्वर को मानने में ही मनुष्य को लाभ है।

ईश्वर को मानने से क्या लाभ हैं? पहला लाभ तो यह है क ईश्वर को जानने व मानने तथा उसकी स्तुति प्रार्थना व उपासना करने से जीवात्मा के बुरे गुण-कर्म-स्वभाव छूट कर ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुरूप, शुद्ध व प वत्र, हो जाते हैं। आत्मा का बल इतना बढ़ता है क जिससे दुःखों की निवृ त्त होने के साथ सभी प्रकार के भय दूर होते हैं। मृत्यु का भय भी समाप्त हो जाता है। अभ्युदय व निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। मनुष्य को स्वस्थ जीवन का लाभ होने के साथ सुख व समृद् ध सहित धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की उपलब्धि होती है। इसके वपरीत ईश्वर को न मानने पर मनुष्य इन अ धकांश लाभों से वं चत हो जाता है। उसे केवल अपने सत्यासत्य कर्मों के फल ही ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त होते हैं। ईश्वर से जो सत्प्रेरणायें जीवात्माओं कों प्राप्त होती है उसका अनुभव अधा र्मक नास्तिक लोग नहीं कर पाते। असली सहिष्णुता ईश्वर को मानने वाले धा र्मक लोगों में ही पायी जाती है। ईश्वर के सच्चे स्वरूप को न जानने व मानने वाले लोग सहिष्णुता का दिखावा करते हैं, वह सहिष्णुता के मूल स्वभाव व चरित्र से कोशों दूर होते हैं। जीवात्मा अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अ वनाशी व अमर है। इसका पुनर्जन्म सुनिश्चित व अवश्यम्भावी है जो जीवात्मा के कर्मानुसार ईश्वर

द्वारा दिया जाता है। यदि ईश्वर को नहीं मानेंगे तो हमारा आगामी जीवन बिगड़ेगा अर्थात् निम्न व नीच योनियों में जन्म लेकर दीर्घ अव ध तक दुःखों को भोगना ही होगा। ईश्वर को मान कर और उसकी वैदिक व ध से स्तुति-प्रार्थना उपासना कर नास्तिकों व अर्धनास्तिक मत-पन्थ के अनुयायियों को होने वाली हानियों से बचा जा सकता है। हम आशा करते हैं क यह लेख पाठकों को उपयोगी होगा।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

सृष्टि की उत्प त्त कससे, कब व क्यों? -मनमोहन कुमार आर्य

NOVEMBER 15, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

हम जिस संसार में रहते हैं वह हमें बना बनाया मला है। हमारे जन्म से पूर्व इस संसार में हमारे माता- पता व पूर्वज रहते आयें हैं। न तो हमें हमारे माता- पता से और न हमें अपने अध्यापकों व वद्यालीय पुस्तकों में इस बात का सत्य ज्ञान प्राप्त हुआ क यह संसार कब, कसने व क्यों बनाया है। क्या यह प्रश्न महत्वहीन है, या फर इसका ज्ञान संसार में कसी को है ही नहीं? हमें दूसरा प्रश्न ही कुछ सीमा तक उ चत प्रतीत होता है। यदि इन प्रश्नों के उत्तर हमारे वैज्ञानिकों, वद्वानों वा अध्यापकों आदि के पास होते तो वह निश्चय ही इसका प्रचार करते। अध्ययन करने पर इसका मुख्य कारण ज्ञात होता है क वगत 5 हजार वर्षों में हमारे देश के लोगों ने वेद और वैदिक साहित्य का सत्य वेदार्थ पद्धति से अध्ययन करना छोड़ दिया जिस कारण मनुष्य न केवल इन प्रश्नों के उत्तर से ही वं चत व अन भज्ञ हो गया अ पतु ईश्वर व जीवात्मा आदि के सच्चे ज्ञान से भी दूर होकर अज्ञान, अन्ध वश्वासों और कुरीतियों से ग्र सत हो गया। यही स्थिति मह र्ष दयानन्द के 12 फरवरी, 1825 को गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर जन्म के समय भी थी परन्तु उनमें इन प्रश्नों को जानने की जिज्ञासा थी और इसके लए अपना जीवन लगाने का जज्बा भी उनमें था। उन्होंने घर के सभी सुखों का त्याग कर इस संसार के सत्य रहस्यों को जानने का निश्चय कया और वद्वानों की संगति व सेवा में जाकर जिससे जितना व जो भी ज्ञान प्राप्त हो सकता था, उसे प्राप्त कया। स्वामी दयानन्द ने कसी एक ही व्यक्ति को अपना गुरू बनाकर सन्तोष नहीं कया अ पतु देश में सर्वत्र घूम कर जिससे जहां जो भी ज्ञान मला उसे अपनी बुद् ध व स्मृति में स्थान दिया जिसका परिणाम हुआ क अनेक वद्वानों के सम्पर्क में आकर वह शून्य से आरम्भ होकर अनन्त ज्ञान वेद व ईश्वर तक पहुंचे और सभी जिज्ञासाओं, प्रश्नों,

शंकाओं व भ्रान्तियों के उत्तर प्राप्त कये और उससे सारे संसार को भी आलो कत व लाभान्वित कया। मथुरा के गुरू प्रज्ञाचक्षु स्वामी वरजानन्द का तीन वर्ष शष्यत्व प्राप्त कर उनसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वह सन्तुष्ट हुए थे।

सृष्टि की रचना व उत्प त्त के प्रसंग में यह महत्वपूर्ण तथ्य है क संसार में कोई भी रचना व उत्प त्त बिना कर्त्ता के नहीं होती। इसके साथ यह भी महत्वपर्ण तथ्य है क कर्ता को अपने कार्य का पूर्ण ज्ञान होने के साथ उसको सम्पादित करने के लए पर्याप्त शक्ति वा बल भी होना चाहिये। इससे यह निष्कर्ष निकलता है क यह सृष्टि एक कर्ता जो ज्ञान व बल से युक्त है, उसी से बनी है। वह स्रष्टा कौन है? संसार में ऐसी कोई सत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती जिसे इस सृष्टि की रचना का अ धष्ठाता, रचयिता व उत्प त्तकर्ता कहा व माना जा सके। अतः यह सुनिश्चित होता है क वह सत्ता है तो अवश्य परन्तु वह अदृश्य सत्ता है। क्या संसार में कोई अदृश्य सत्ता ऐसी हो सकती है जिससे यह सृष्टि बनी है? इस पर वचार करने पर हमारा ध्यान स्वयं अपनी आत्मा की ओर जाता है। हम एक ज्ञानवान चेतन तत्व वा पदार्थ है जो शक्ति वा बल से युक्त हैं। हमने स्वयं को आज तक नहीं देखा। हम जो, इस शरीर में रहते हैं व इस शरीर के द्वारा अनेक कार्यों को सम्पादित करते हैं, वह आकार, रंग व रूप में कैसा है? हम अपने को ही क्यों ले, हम अन्य असंख्य प्रा णयों को भी देखते है परन्तु उनके शरीर से ही अनुमान करते हैं क इनके शरीरों में एक जीवात्मा है जिसके कारण इनका शरीर कार्य कर रहा है। इस जीवात्मा के माता के गर्भ में शरीर से संयुक्त होने और संसार में आने पर जन्म होता है और जिस चेतन जीवात्मा के निकल जाने पर ही यह शरीर मृतक का शव कहलाता है। हम यह भी जानते हैं क सभी प्रा णयों के शरीरों में रहने वाला जीवात्मा आकार में अत्यन्त अल्प परिणाम वाला है। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण इसका अस्तित्व होकर भी यह दिखाई नहीं देता है। अतः संसार में हमारी इस आत्मा की ही भांति जीवात्मा से सर्वथा भन्न एक अन्य शक्ति, निराकार स्वरूप और सर्वव्यापक, चेतन पदार्थ, आनन्द व सुखों से युक्त, ज्ञान-बल-शक्ति की पराकाष्ठा से परिपूर्ण, सूक्ष्म जड़ प्रकृति की नियंत्रक सत्ता ईश्वर वा परमात्मा हो सकती है। ऐसी ईश्वर नामी सत्ता से ही सूर्य, चन्द्र, ग्रह-उपग्रह, नक्षत्र, असंख्य सौर मण्डलों से युक्त यह संसार, सृष्टि, ब्रह्माण्ड व जगत अस्तित्व में आ सकता है, इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं। यही एक मात्र वकल्प हमारे सामने हैं। अन्य कोई दूसरा वकल्प है ही नहीं। अब इस अनुमान का प्रमाण प्राप्त करना है जो क वेद व वैदिक साहित्य के गहन व गम्भीर अध्ययन तथा ईश्वरोपासना, वचार, चन्तन, मनन, ध्यान व समा ध के द्वारा प्राप्त कया जा सकता है।

अब हमें यह भी वचार करना है क वस्तुतः वेद और वैदिक साहित्य है क्या? इसको जानने के लए हमें इस सृष्टि के आरम्भ में जाना होगा। जब सुदूर अतीत में यह सृष्टि उत्पन्न हुई तो अन्य प्रा णयों को उत्पन्न करने के बाद मनुष्यों को भी उत्पन्न कया गया होगा। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों की उत्प त्त माता- पता से न होकर अमैथुनी व ध से परमात्मा व सृष्टिकर्ता करता है। इसका भी अन्य कोई वकल्प नहीं है, अतः ईश्वर द्वारा अमैथुनी सृष्टि को ही मानना हमारे लए अनिवार्य व अपरिहार्य है। सृष्टि, सूर्य, चन्द्र, पृ थवी आदि तथा पृ थवी पर अग्नि, वायु, जल व प्राणी जगत सहित मनुष्य भी उत्पन्न हो जाने पर मनुष्यों को

ज्ञान की आवश्यकता होती है जिससे वह अपने दैनन्दिन कार्यों का सुगमतापूर्वक निर्वाह कर सके। यह ज्ञान भी उसे यदि मल सकता है वा मला है तो वह सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी ईश्वर से ही मला है। इसके अनेक प्रमाण हमारे पास हैं। पहला प्रमाण तो परम्परा का है। भारत में वपुल वैदिक साहित्य है जिसमें सर्वत्र वेदों को ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् ईश्वर से प्रदत्त ज्ञान बताया गया है। वेद संसार में सबसे प्राचीनतम होने के कारण भी ईश्वरीय ज्ञान सद्ध होता है। मनुष्य अपने सारे जीवन में ज्ञान की उत्प त्त नहीं करता, वह तो ज्ञान की खोज करता है जो इस सृष्टि में पहले से ही सर्वत्र वद्यमान है। यह ज्ञान ईश्वर का स्वाभा वक गुण है और उसमें सदा सर्वदा व सनातन काल से है और शाश्वत व नित्य भी है। ईश्वर ने अध्ययन, ध्यान व चन्तन आदि से ज्ञान को उत्पन्न नहीं कया अ पतु यह उसमें स्वतः अनादि काल से चला आ रहा है। परिमाण की दृष्टि से पूर्ण होने के कारण इसमें न्यूना धक नहीं होता और यह अनादि काल से ही एकरस व एक समान बना हुआ है और आगे भी इसी प्रकार का बना रहेगा। वेदों का अध्ययन कर भी वेद ईश्वरीय ज्ञान सद्ध होते हैं क्यों क वेदों में ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति व संसार वषयक पूर्ण मौ लक ज्ञान बीज रूप में वद्यमान है जिसका समर्थन ज्ञान व वज्ञान से भी होता है। वेदों का ज्ञान पूर्णरूपेण सृष्टि-क्रम के अनुकूल होने से वज्ञान का पोषक है। वेदों की सभी मान्यतायें ज्ञान, बुद् ध, तर्क, ऊहा व वाद- ववाद कर सत्य सद्ध होती हैं। सृष्टि के आदि से मह र्ष दयानन्द पर्यन्त कोटिशः सभी ऋ षयों ने वेदों का अध्ययन कर यही निष्कर्ष निकाला है। अतः वेद ज्ञान ईश्वर प्रदत्त आदि ज्ञान सद्ध होता है जो सभी सत्य वद्याओं सहित सभी प्रकार के आधुनिक ज्ञान व वज्ञान का भी एकमात्र व प्रमुख आधार है। यदि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से मनुष्यों को ज्ञान न मलता तो यह संसार आगे चल ही नहीं सकता था। वही वैदिक ज्ञान काल के प्रवाह व भौगो लक कारणों से आज अनेक भाषाओं में न्यूनताओं को समेटे हुए हमें सर्वत्र प्राप्त होता है। सृष्टि के आरम्भ में वेदों की उत्प त्त व ऋ षयों को उसकी प्राप्ति के पश्चात समय-समय पर ऋ षयों ने लोगों के हितार्थ वपुल वैदिक साहित्य की रचना की। संक्षेप में कहें तो वैदिक आर्ष व्याकरण, निरुक्त, वैदिक ज्योतिषीय ज्ञान, कल्प ग्रन्थ, 6 दर्शन, उपनिषद, प्रक्षेपों से रहित शुद्ध मनुस्मृति और वेदों की शाखायें हमारे ऋ षयों ने अल्पबुद् ध वाले हम मनुष्यों के लए बना दी जिससे मनुष्य जाति का उपकार व हित हो सके।

यह सद्ध हो गया है क सृष्टि उत्प त्त वषयक सभी प्रश्नों का सत्य उत्तर हमें वेद और वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होगा। सृष्टि की उत्प त्त कससे हुई प्रश्न का उत्तर है क यह सृष्टि ईश्वर क जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव प वत्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त है, उसी से ही यह सृष्टि की उत्प त्त हुई है। सृष्टि कब उत्पन्न हुई, का उत्तर है क एक अरब छियानवें करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष पूर्व। यह काल गणना भी वैदिक परम्परा व ज्योतिष आदि शास्त्रों के आधार पर है। सृष्टि की रचना क्यों हुई का उत्तर है क जीवात्माओं को उनके जन्म जन्मान्तरों के कर्मों के सुख व दुःख रूपी फलों वा भोगों को प्रदान करने के लए परम दयालु परमेश्वर ने की। सृष्टि रचना व संचालन का कारण जीवों के कर्म व उनके सुख–दुःख रूपी फल प्रदान करना ही है। जीवात्मा को उसके लक्षणों से जाना जाता है। उसके शास्त्रीय लक्षण हैं, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, ज्ञान, कर्म, अल्पज्ञता व नित्यता आदि।

हमने अपने विगत 45 वर्षों में जो अध्ययन किया है उसके अनुसार हमें यह ज्ञान पूर्णतयः सत्य, बुद्धि संगत व विज्ञान की आवश्यकताओं के अनुरुप लगता है। हमारे वैज्ञानिक अनेक कारणों से ईश्वर व धर्म को नहीं मानते। आने वाले समय में उन्हें इस ओर कदम बढ़ाने ही होंगे अन्यथा उनकी सत्य की खोज अधूरी रहेगी। इन्हीं शब्दों के हम लेख को विराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

'सब सत्य विद्याओं एवं उससे उत्पन्न किए व हुए संसार व पदार्थों का मूल कारण ईश्वर' -मनमोहन कुमार आर्य

NOVEMBER 14, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

हम कोई भी काम करते हैं तो उसमें विद्या अथवा ज्ञान का प्रयोग करना अनिवार्य होता है। अज्ञानी व्यक्ति ज्ञान के अभाव व कमी के कारण किसी सरल कार्य को भी भली प्रकार से नहीं कर सकता। जब हम अपने शरीर का ध्यान व अवलोकन करते हैं तो हमें इसके आंख, नाक, कान, श्रोत्र, बुद्धि, मन व मस्तिष्क आदि सभी अवयव किसी महत् विद्या के भण्डार व सर्वशक्तिमान सत्ता रूपी कर्ता का ही कार्य अनुभव होतें हैं। बिना विद्या के कोई भी कर्ता कुछ कार्य नहीं कर सकता और बिना कर्ता के भी कोई कार्य नहीं होता। इससे यह सिद्ध है कि हमारे शरीर व इस सृष्टि के सभी पदार्थों का कर्ता व रचयिता एक निराकार, सर्व विद्या व ज्ञान से पूर्ण सूक्ष्मातिसूक्ष्म अदृश्य सत्ता व उसका अस्तित्व है। उस सत्ता के आंखों से न दिखने के अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें से एक कारण उसका अति सूक्ष्म होना भी व ही है। यह सारा ब्रह्माण्ड उस ईश्वर की रचना है और इस रचना से ही इसके कर्ता ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध होता है। संसार में आज तक ऐसी रचना देखने को नहीं मिली जो स्वमेव, बिना किसी बुद्धिमान-ज्ञानी-चेतनसत्ता के उत्पन्न हुई हो और जो मनुष्यों व प्राणियों के उपयोगी वा बहुपयागी हो जैसी कि हमारी यह सृष्टि व इसके पदार्थ सूर्य, चन्द्र, पृथवी, अग्नि, जल, वायु, हमारे व अन्य प्राणियों के शरीर, वनस्पति जगत आदि हैं।

इससे यह निर्विवाद रुप से सिद्ध होता है कि यह संसार एक निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अनादि, नित्य, अमर सत्ता की रचना है। रचना को देखकर इसमें प्रयुक्त ज्ञान से ईश्वर का सर्वज्ञ अर्थात् सर्वज्ञान व विद्याओं का भण्डार होना भी सिद्ध होता है। इस निष्कर्ष पर पहुंच कर हमें सभी विद्याओं की प्राप्ति के लिए ईश्वर की शरण में ही जाना आवश्यक हो जाता

है। ईश्वर की शरण में कैसे जा सकते हैं? इसका उपाय सद्ग्रन्थों का अध्ययन वा स्वाध्याय, ज्ञानी–निर्लोभी–निर भमानी–अनुभवी गुरूओं का शष्यत्व सहित बुद् ध को शुद्ध, प वत्र व सात्विक बनाकर उससे ईश्वर के स्वरुप का चन्तन व मनन करना है। कसी वषय का गहन चन्तन व मनन करना ही ध्यान कहलाता है। जब एक ही वषय यथा ईश्वर के स्वरुप का निय मत रूप से निश्चित समय पर लम्बी अव ध तक मनुष्य चन्तन व मनन करते हैं तो वह ध्यान की अवस्था ही कालान्तर में समा ध का रूप ले लेती है। इस अवस्था में एक समय वा दिवस ऐसा आता है क जब ध्याता को ध्येय ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। यह साक्षात्कार मनुष्य वा योगी में यह योग्यता उत्पन्न करता है क जिससे वह जब जिस वषय का अध्ययन व चन्तन करता है, कुछ ही समय में उसका उसको साक्षात ज्ञान हो जाता है। यह सफलता ईश्वर द्वारा प्रदान की जाती है। इसी लए हमारे देश में जितने भी ज्ञान- वज्ञान सम्पन्न ऋ ष व मुनि हुए हैं, वह सभी योगी ही हुआ करते थे। यदि हम आजकल के वैज्ञानिकों व उच्च श्रेणी के ज्ञानियों की स्थिति पर वचार करें तो हमें ज्ञात होता है क यह सभी भी वचारक, चन्तक, इष्ट वा अभीष्ट वषय का निरन्तर ध्यान करने वाले व समा ध की स्थिति व उससे कुछ पूर्व की स्थिति तक पहुंचे हुए व्यक्ति ही प्रायः होते हैं। अतः ज्ञान की प्राप्ति वचार, चन्तन व ध्यान से ही होती है। यह भी स्पष्ट है क इस प्र क्रया को अपनाकर बुद् ध में प्राप्त ज्ञान ईश्वर से ही प्रेरित वा प्राप्त होता है। हम यह भी अनुभव करते हैं क हमारे आज के वैज्ञानिक व इंजीनियर बन्धुओं को जो उच्च ज्ञान वज्ञान की उपलब्धि हुई है वह, कोई माने या न माने, ध्यान व कं चत समा ध की अवस्था आने पर ईश्वर के द्वारा ही सुलभ हुई है।

संसार को समझने के लए ज्ञान की आवश्यकता है और ज्ञान के रूप में सृष्टि के सबसे प्राचीन ग्रन्थ "वेद" हमें उपलब्ध है। प्रमाण, परम्परा, तर्क व ववेचन से यह सद्ध होता है क चारों वेदों का ज्ञान सृष्टि की आदि में चार ऋ षयों को ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान है। इस बारे में गहन स्वाध्याय व अध्ययन न करने वालों को अनेक प्रकार की भ्रान्तियां हैं जिसका कारण उनका इस वषय का अध्ययन न करना ही मुख्य है। यदि वह इसका अध्ययन करें तो उनकी सभी शंकाओं व भ्रान्तियों का निवारण हो सकता है जिस प्रकार से सृष्टि के आदि काल से महाभारत काल पर्यन्त ऋ षयों सहित मह र्ष दयानन्द सरस्वती और पं. गुरुदत्त वद्यार्थी जी आदि का हुआ था। मह र्ष दयानन्द जी और उनके अनुवर्ती आर्य वद्वानों का वेदभाष्य इस बात का प्रमाण है क वेद परा और अपरा वद्या का आदि स्रोत व भण्डार होने के साथ पूर्णतया सत्य ज्ञान है। मह र्ष दयानन्द की यह घोषणा भी हमें ध्यान में रखनी चाहिये क ''वेद सब सत्य वद्याओं का पुस्तक है।" इस लए वेदों का सभी आर्यों वा मनुष्यों को पढ़ना व पढ़ाना परम धर्म है। इससे यह सद्ध हो रहा है क मनुष्य धर्म वेदों अर्थात् सत्य ज्ञान का अध्ययन व आचरण करना ही है। हमारे वैज्ञानिकों ने बहुत सी अपरा वद्याओं को खोज कर अपूर्व कार्य कया है। वह वश्व मानव समुदाय की ओर से अ भनन्दन के पात्र हैं। परन्तु यह भी सत्य है क हमारे वैज्ञानिक बन्धु परा वद्या वा ईश्वर-जीवात्मा के सत्य ज्ञान से बहुत दूर हैं। इसकी पूर्ति वैज्ञानिक व ध से रिसर्च व अनुसंधान से नहीं होगी। इसका उपाय तो वेद और वैदिक साहित्य का अध्ययन, योगाभ्यास, ध्यान व समा ध को सद्ध कर ही प्राप्त होगा। जिस दिन हमारे वैज्ञानिक वज्ञान के शोध व उपयोग के साथ वेद व वैदिक साहित्य के अध्ययन सहित योगाभ्यास में अग्रसर होंगे, तभी उनका अपना जीवन भी पूर्णता को प्राप्त

होगा और इससे मानवता का भी अपूर्व हित व कल्याण होगा। हमें लगता है क मह र्ष दयानन्द सहित सभी प्राचीन ऋ षयों में ईश्वर वषयक ज्ञान व आधुनिक वा भौतिक वज्ञान दोनों का ही समन्वय था जिससे संसार में सुख अ धक और दुःख कम थे और आज की परिस्थितियों में स्थिति सर्वथा वपरीत है। अध्यात्मिक ज्ञान से ही मनुष्य की दुष्प्रवृ त्तयों व बुरे आचरण पर नियन्त्रण कया जा सकता है।

इस लेख में हमने यह समझने का प्रयास कया है क संसार की वद्याओं व ज्ञान की उत्प त्त का आदि स्रोत ईश्वर है और उसी से सभी वद्यायें इस सृष्टि की रचना, इसके पालन व वेदों के माध्यम से प्रकट हुई है। हमें चन्तन, मनन व ध्यान आदि की क्रयाओं से उसे और अ धक उन्नत करना होता है। यदि ईश्वर यह संसार न बनाता और वेदों का ज्ञान न देता तो हम और हमारे वचारकों, चन्तकों व वैज्ञानिकों को करने के लए कुछ न होता। अतः सबको कल्पित ईश्वर नहीं अ पतु सच्चे ईश्वर की शरण में जाना आवश्यक है जिससे जीवन के उद्देश्य वा लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम व मोक्ष की प्राप्ति हो सके। इसी के साथ इस लेख को वराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

मैं और मेरा देश' -मन मोहन कुमार आर्य

NOVEMBER 9, 2015 LEAVE A COMMENT

मैं अपने शरीर में रहने वाला एक चेतन तत्व हूं। आध्यात्मिक जगत् में इसे जीवात्मा कह कर पुकारा जाता है। मैं अजन्मा, अ वनाशी, नित्य, जन्म-मृत्यु के चक्र में फंसा हुआ तथा इससे मुक्ति हेतु प्रयत्नशील, चेतन, स्वल्प परिमाण वाला, अल्पज्ञानी एवं ससीम, आनन्दरहित, सुख-आनन्द का अ भलाषी तत्व हूं। मेरा जन्म माता- पता से हुआ है। मेरे माता- पता व इस संसार को, जिसमें मुझे भेजा गया है, पहले से ही रचा व बनाया गया है। पहले सृष्टि की रचना कसी सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और चेतन सत्ता ने की, उसके पश्चात वनस्पति और पशु व पक्षी आदि प्रा णयों की रचना करके मनुष्योत्प त्त की। वगत 1,96,08,53,115 वर्षो से यह क्रम अनवरत जारी है। मुझे, मेरे माता- पता को व इस सृष्टि को बनाने वाला कौन है? इसका उत्तर शास्त्रों के अध्ययन, चन्तन-मनन व ववेक से मलता है क कोई सत्य, चेतन, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, निराकार, कारण प्रकृति का स्वामी व नियंत्रक, नित्य, अनुत्पन्न, अ वनाशी, सर्व-अन्तर्यामी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व है जिसे हम ईश्वर, परमात्मा, भगवान,

सृष्टिकर्ता, गाड, खुदा, अल्लाह, रब, मा लक आदि नामों से जानते हैं। यह ईश्वर सत्ता एक ही हो सकती है, एक से अ धक नहीं, ऐसा सृष्टि को देखकर व वचार करने पर ज्ञात होता है। सृष्टि के आरम्भ से अब तक इस जगत में अनेक श्रेष्ठ पुरूषों ने जन्म लया है जिनका यश व कीर्ति आज तक वद्यमान है। यह सभी सत्याचारी, अन्याय से पी ड़त लोगों की रक्षा करने वाले, त्यागी, तपस्वी, ईश्वरभक्त, वेदभक्त एवं वेदानुयायी, माता- पता व आचार्यो के प्रति सेवा व भक्ति-भावना रखने वाले थे। इनमें से कुछ ज्ञात महापुरूष मनु, राम, कृष्ण, चाणक्य, दयानन्द, सरदार पटेल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, राम प्रसाद बिस्मिल, चन्द्र शेखर आजाद, बन्दा बैरागी, भगत संह आदि हुए हैं। हमें महापुरूषों के जीवन से प्रेरणा लेकर उनके गुणों को धारण करना है, यही उन महापुरूषों की पूजा है एवं स्तुति-प्रार्थना-उपासना-ध्यान आदि केवल ईश्वर का ही करना है और यही ईश्वर की पूजा है।

वेदादि साहित्य का अध्ययन करने पर हमने पाया क हमारा जन्म भोग व अपवर्ग के लए हुआ है। भोग का अर्थ है क हमने अपने पूर्व जन्मों में जो अच्छे-बुरे कर्म कये थे उन कर्मों में जिन कर्मों का भोग अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है, वह हमारा प्रारब्ध है। उसे हमें इस जन्म व अगले जन्मों में भोगना है। इन कर्मो के फलों को भोगने के साथ ईश्वर ने हमें एक सु वधा यह भी दी है क यदि हम स्वाध्याय से अपने ज्ञान को बढ़ा कर एवं यथार्थ वेदोक्त स्तुति-प्रार्थना-उपासना से ध्यान व समा ध को सद्ध कर ईश्वर का साक्षात्कार कर लेते हैं तो हमारी मुक्ति व हमें मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी। मुक्ति की अव ध एक परान्तकाल अर्थात् 31,10,40,00,00,00,000 वर्ष वा इकतीस नील दस खरब चालीस अरब वर्ष होती है। उसके बाद हमारा पुनः जन्म होगा। इस मुक्ति की अव ध में हमें कं चत भी दुःख की अवस्था से नहीं गुजरना पड़ेगा। यह उपलब्धि हमारे शास्त्राध्ययन एवं उसके अनुसार जीवन-यापन व योग साधना से प्राप्त होती है। यहां यह भी लखना उ चत होगा क सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक और यहां से मध्य काल में बौद्ध मत के आरम्भ तक सारे वश्व में केवल वैदिक धर्म व संस्कृति का ही प्रचार-प्रसार-पालन व धारण सर्वत्र रहा है। महाभारत काल के पश्चात अज्ञानतावश बौद्ध, जैन, पौरा णक व अन्य दूरस्थ देशों में ऐसे ही भन्न भन्न मतों का प्रादुर्भाव हुआ। यदि सभी मतों के व्यक्ति मल कर परस्पर मत्रता व निष्पक्षता से वचार- वमर्श कर मनुष्य धर्म का निर्धारण करें तो निश्चित रूप से वैदिक धर्म व मत को ही सर्वसम्मति से स्वीकार करना होगा और तब वेदेतर मत के लोगों को जीवन में ईश्वरीय आनन्द की उपलब्धि एवं उसके पश्चात मुक्ति प्राप्त हो सकेगी।

मेरा जन्म आज से लगभग 63 वर्ष पूर्व भारत में हुआ। तब से मैं यहां रह रहा हूं। शैषव अवस्था ने माता पता ने धर्म व रीति रिवाज सम्बन्धी जो बातें बताई व समझाईं, उन्हें उसी रूप में बिना सोचे वचारे मैंने स्वीकार कर लया और मानता रहा। वद्यालय की शक्षा के समय एक पड़ोसी आर्य समाजी मत्र मल गये, 18 वर्ष की आयु में उनके साथ सायंकाल भ्रमण की आदत पड़ गई। यदा-कदा वह यत्र-तत्र हो रहे प्रवचनों में ले जाया करते थे और आर्य समाजी दृष्टिकोण से उनकी समालोचना करते थे। आरम्भ में पौरा णक संस्कारों के कारण मुझे वह प्रायः उ चत नहीं लगती थी। यदा-कदा आर्य समाज भी जाना होता था और वहां यज्ञ, भजन व वद्वानों के वचारों को सुना और पुस्तकें क्रय करके स्वाध्याय कया। धीरे-धीरे पता नहीं कब आर्य समाज के वेद संबंधी वचारों ने मेरे मन व मस्तिष्क पर

अ धकार कर लया और पौरा णक अज्ञान-अन्ध वश्वास व कुरीतियों से युक्त बातें मन से दूर चली गईं। मेरा अब दृण वश्वास है क ईश्वर की सगुण व निर्गुण भक्ति के स्थान पर पौरा णक रीति से मैं जो मूर्ति पूजा व कर्मकाण्ड आदि करता था, वह अ धकांश असत्य, अनावश्यक और अनु चत था। आज मैं आत्मिक सन्तोष का अनुभव करता हूं। यह सब मुझे सत्यार्थ प्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों के स्वाध्याय व वद्वानों के प्रवचनों तथा चन्तन व मनन से प्राप्त हुआ है। आत्मा व मन इस बात से सन्तुष्ट हैं क हमें इस संसार व ईश्वर के बारे में यथार्थ ज्ञान है।

जो ज्ञान व संस्कार अब हमारे हैं वह भारत के सभी लोगों व वश्व के लोगों के नहीं है। वहां इस प्रकार के सत्य व परम उपयोगी वचारों को जानने व उसके प्रचार प्रसार की कसी प्रकार की व्यवस्था नहीं है। यदि समु चत व्यवस्था होती तो मुझे लगता है क वद्यार्थी काल में जिस प्रकार से मेरा बौद् धक मतान्तरण हुआ, उसी प्रकार शायद संसार के सभी लोगों का हो सकता था। मुझे इन वचारों को मानने या अपनाने के लए कसी ने जोर-जबरस्ती नहीं की अ पतु यह स्वतः हुआ और तब हुआ जब मेरी आत्मा ने उसे स्वीकार कया। मुझे लगता है और यह वास्त वकता है क संसार में वैदिक वचारों, सद्धान्तों व मान्यताओं का प्रचार नगण्य है एवं दूसरे मतानुयायी योजनाबद्ध रूप से वेद एवं पौरा णक लोगों को मतान्तरित कर उन्हें स्वमत में दी क्षत कर इस देश की राजनैतिक सत्ता को ह थया कर अपना छद्म उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं। इसके लए वह अन्दर ही अन्दर सब प्रकार के कुत्सित कार्य भी करते हैं परन्तु बाहर से स्वयं को बहुत ही अच्छा व मानवता का सेवक दिखाते हैं।

मुझे लगता है क मेरा कर्तव्य है क ईश्वर से प्राप्त वेद एवं वैदिक ज्ञान की रक्षा होनी चाहिये, कहीं यह वलुप्त न हो जाये। इसके लए हमें हर सम्भव प्रयास करना है। अपनों को मनाना है व उन्हें इस वश्व-वरेण्य संस्कृति के महत्व को हृदयगंम कराना है। हमें वश्व के अन्य मतावलम्बी बन्धुओं को भी आमन्त्रित करना है क वह भी ईश्वर, जीवात्मा के स्वरूप पर हमसे प्रेमपूर्वक संवाद व चर्चा करें। यदि उन्हें हमारे वचारों में कहीं कोई कमी दृष्टिगोचर होती है तो वह हमें बतायें, हम सदिच्छा से उसे समझ कर उसका समाधान व निराकरण करेंगे। यह तभी सम्भव होगा जब हम स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, पं. गुरूदत्त वद्यार्थी, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी अमर स्वामी, पं. शान्तिप्रकाश, पं. गणपति शर्मा जैसा स्वयं को बनायें। इसके लए हमें अपने गृहस्थ जीवन में भी और उसके पश्चात 50 या 60 वर्ष की आयु में गृहस्थ व व्यवसाय से सेवानिवृत्त होकर घर में रहते हुए या वानप्रस्थी की भांति इस कार्य में जुटना पड़ेगा। गृहस्थ व सेवाकाल व व्यवसाय के काल में भी इस कार्य को यथाशक्ति करना होगा तभी सेवा निवृ त्त के पश्चात यह काम कर सकेंगे। यदि इसकी उपेक्षा करेंगे तो वह दिन दोबारा आ सकता है जब बौद्धों के प्रचार की भांति हमारे सभी बन्धु भन्न-2 मतों के अनुयायी बन जायेंगे और उन मतों के लोग हमारी वैदिक धर्म व संस्कृति को नेस्तनाबूद कर देंगे। ऐसा पहले भी करने के प्रयास हुए हैं, वह आं शक सफल भी रहे हैं, जिससे हमें अपूर्व हानि हुई है अन्यथा आज का इतिहास कुछ और ही होता। इस बात की कोई गारण्टी नहीं है और न हो सकती है, क ऐसा कभी नहीं होगा, अतः सावधान होकर अपने कर्तव्य का पालन जैसा क हमारे पूर्व पुरूषों ने कया है, हमें भी करना है।

हमने इस लेख के शीर्षक में 'मैं और मेरा देश' शब्दों का प्रयोग कया है। इन शब्दों से हमारा तात्पर्य वैदिक संस्कारों से युक्त मैं व मेरे देशवासी व वश्व-वा सयों से है जो सत्य, यथार्थ, सृष्टि क्रम के अनुरूप सद्धान्तों व मान्यताओं को जाने और अपने कल्याणार्थ उसे माने। जब हमारे देश के सभी या अ धकांश लोग वैदिक मतानुयायी हो जायेगें तब यह देश वश्व शान्ति का धाम बन जायेगा। इसके लए हमें सत्य, प्रेम, सहयोग, परोपकार, सेवा, शक्षा, वेद प्रचार का प्रयोग करना है। ईश्वर की शक्ति व प्रेरणा हमारे साथ है, अतः हमें चन्ता नहीं करनी है। हमारी आत्मा अमर है, यह हमारा दृण वष्वास है, अतः भय का काई स्थान नहीं। सत्य व धर्म की रक्षा व प्रचार के मार्ग में चलकर यदि कुछ अ प्रय भी होता है तो ईश्वर से हमें उसकी क्षतिपूर्ति ही नहीं होगी अ पतु असीम सुख व आनन्द की उपलब्धि होगी। अतः आर्य समाज के सभी लोगों को अपने मतभेद भुलाकर वचार मन्थन कर वह योजना बनानी होगी जिससे हम देश के सभी मतों के वद्वानों को अपना सत्य-सन्देश देकर उन्हें आलोचना व समीक्षा का अवसर दें और निवेदन करें क यदि वह आलोचना नहीं कर रहे हैं और उन्हें हमारी मान्यतायें सत्य लगती हैं तो वह उन्हें स्वीकार कर हमारे साथ मलकर कार्य करें। ऐसा होने पर ही देश से भ्रष्टाचार, लूट, स्वार्थ का कारोबार, सामाजिक बुराईयां, आतंकवाद, अनाचार व दुराचार आदि समाप्त होगा। सामाजिक अन्याय दूर होगा, जातिवाद, ऊंच-नीच की भावना समाप्त होगी, शोषण व अन्याय समाप्त होगा और हमारा देश ऐसा होगा जिससे न केवल हम ही प्रसन्न

व सन्तुष्ट होगें अ पतु समस्त देशवासी सुःख से अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगे। आईये, इस वषय पर चन्तन करते हैं और जिससे जो बन सकता है उसके लए अपने जीवन से समय निकाल कर व अपनी सामथ्र्य के अनुसार धन का दान कर अपना कर्तव्य निभायें। हम सत्य पर हैं अतः ईश्वर हमारे साथ है, साथ रहेगा, साथ देगा, इसकी आशंका नहीं होनी चाहिये।

– मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196 चुक्खूवाला-2**

देहरादून-248001

दूरभाषः **09412985121**

गो-वध व मांसाहार का वेदों में कही भी नामोनिशान तक नहीं है: शवदेव आर्य

NOVEMBER 9, 2015 LEAVE A COMMENT

प्रायः लोग बिना कुछ सोचे समझे बात करते हैं क वेदों में गो-वध तथा गो-मांस खाने का वधान है। ऐसे लोगों को ध्यान में रखकर कुछ लखने का यत्न कर रहा हूॅं, आज तक जो भी ऐसी मान सकता से घिरे हुऐ लोग हो वे जरुर इसको पढ़ कर समझने का प्रयास करें। क्ष णक स्वार्थ व लाभ के लए वेद व गोमाता का नाम अप वत्र करने की को शश न करें। यदि लेशमात्र भी संदेह है तो इन मन्त्रों को समझों-

प्रजावतीः सुयवसे रुशन्तीः शुध्द अपः सुप्रपाणे पबन्तीः।

मा वस्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु।। **(अथर्व.-7.75.1)**

इस मन्त्र का देवता 'अघ्न्या' है। जो क वैदिक कोश के अनुसार गाय का मुख्य नाम है। इसका निर्वचन करते हुए लखा है – न हन्तव्या भवति अर्थात् गाय इतना अ धक उपकारी पशु है क इस का वध करना पाप ही नहीं अ पतु महापाप है।

इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार होगा क– हे मनुष्यो! तुम्हारे घरों में प्रजावतीः उत्तम सन्तान वाली, सुयवसे (जौ) के क्षेत्रों मे चरने वाली और शुध्द जलों को पीने वाली गौ हो और इसकी सुरक्षा ऐसी हो क कोई चोर उन्हें चुरा न सके और पापी डाकू आदि गाय को अपने वश में न कर सके । रुद्र परमात्मा की हेति=वज्रशक्ति तुम्हारे चारों तरफ सदा वद्यमान रहे।

यदि नो गां हं स यद्यश्वं यदि पूरुषम्।

तं त्वा सीसेन वध्यामः।। **(अथर्व.-1.16.4)**

अर्थात् राजन्! यदि कोई मनुष्य हमारी गाय, अश्व आदि पशुओं को मारता है, उसे हत्यारे को (सीसेन) कारागार या कठोर दण्ड देकर हमारी रक्षा करो।

पयः पशूनां रसमोषधीनाम्।

बृहस्पतिः स वता मे यच्छतात्।। **(अथर्व.-19.31.5)**

अर्थात् हे सवोत्पदाक परमेश्वर! हम सब को जीवन निर्वाह के लए गाय का दूध और औष धयों का रस भोजन के लए प्रदान करो।

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्र्वेषु या रुचः।

इन्द्राग्नी ता भ सर्वाभी रुचं नो धत्तबृहस्पते।। **(यजु.-13.23)**

इस मन्त्र के माध्यम से कहने का यत्न कया गया है क गो, अश्व आदि प्रा णयों से सदैव प्रीति कया करें।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पतेव पुत्रम भरक्षताद् इमान् स्वाहा।। **(यजु.-35.17)**

अर्थात् हे (अम्बे) राजन्! जैसे पता अपने पुत्रों की रक्षा करता है वैसे आप गाय के मधुर और रोगनाशक दूध घृत आदि की व्यवस्था कर हमारी रक्षा करें।

दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽन...........जायताम्।(यजु.-22.22)

इस मन्त्र में राष्ट्रिय प्रार्थना है – हमारे देश में प्रचुर दूध देने वाली गोएें भार ढोने में समर्थ तथा कृ ष के योग्य बैल और यानों में सक्षम और शीघ्रगामी घोड़े पैदा हों।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाॅं2ऽअस्तु सूर्य्यः।

माध्वीर्गावो भवन्तु नः।। (यजु.-13.29)

गाय से जैसी कल्याणकारी करणें हम सब मनुष्य के लए निकलती हैं, ठीक ऐसी ही कल्याणकारी करणों को प्राप्त करने के लए प्रशं सत कोमलता गुणयुक्त वनस्पतियों से होम करो।

इस मन्त्र से स्पष्ट प्रतीत होता है क गाय के दुग्ध, मूत्र, मल आदि से उस गाय के अन्दर से कल्याणकारी करणें निकलती हैं, जो हम सब के लए अत्यन्त लाभप्रद हैं।

इमं मा हिंसीद्‍ वपादं पशुं सहस्त्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चन्वानस्तन्वो निषीद। मयुं ते शुगृच्छतु यं द्‍ वष्मस्तं ते शुगृच्छतु।। (यजु.-13.47)

इस मन्त्र के द्वारा परम पता परमेश्वर मनुष्य को आदेश देता है क सबके उपकार करने हारे गवादि पशुओं को कभी न मारें, कन्तु इनकी अच्छी प्रकार से रक्षा कर और इनसे उपकार लेके सब मनुष्यों को आनन्द देवे।

इमं साहस्त्रं शतधारमुत्सं व्यच्मानं सरिरस्य मध्ये।

घृतं दुहानामदिति जनायाग्ने मा हिंसी परमे व्योमन्।

गवयामारण्यमनु ते दिशा म तेन चन्वानस्तन्वो निषीद।

मवयं ते शुगृच्छतु। यं द्‍ वष्मस्तं ते शुगृच्छतु।। (यजु.-13.49)

इस मन्त्र में भी इसी प्रकार की चर्चा प्राप्त होती है। देव दयानन्द जी इस मन्त्र के भावार्थ में लखते हैं क- हे राजपुरुषों! तुम लोगों को चाहिए क जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम, जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं क जिन के दूध आदि से प्रजा की रक्षा होती है, उनको कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें, उनको राजादि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें।

अक्षराजाय कतवं कृतायादिनदर्शं त्रेतायै द्वापराया धकल्पिनमास्कदाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोधातं क्षुधे यो गां वकृन्तन्तं भक्षमाणऽउप तिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्य्यं पाप्मने सैलगम्।। (यजु.-30.18)

इस मन्त्र में कहा गया है क जो समाज को चलाने वाले राजादि लोग हैं वे तभी सामथ्र्यशील हैं, जो गाय आदि पशुओं को मारने, काटने वाले मनुष्यों को कठोर से कठोर सजा देता हो कन्तु बड़ा दुर्भाग्य है क हमारे समाज के राजादिगण लोग तो गो हत्या करने वालों को प्रोत्साहित करते, ये बडी दुःखद स्थिति है।

जो समाज को दिशा व दशा प्रदान करने वाले हैं, वे स्वयं ही गो-वध को कराने वाले हैं तथा गो-मांस का भक्षण करते हैं, और इसप्रकार लोगों को भी करने के लए सदैव प्रेरित करते हैं। इससे राजनीति भी करते हैं। अभी कुछ समय पूर्व की घटनाओं से आप सभी सम्यक्तया परि चत ही है।

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अ भष्टुताः।

त्रायन्तामस्मिन्ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम्।। (अथर्व.-**8.7.11)**

इस मन्त्र में कहा गया है क रोगों का शमन करने वाली औष धयों से गौ, घोड़े, मनुष्य व पशुओं की रोग से रक्षा करें।

मधुममूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव। मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम।। (अथर्व.-**8.7.12)**

इस मन्त्र में ओष धयों का चत्रण करते हुए 'गो पुरो गवम्'गाय को सर्व प्रथम स्थान पर रखा गया है। इस गाय के दूध व घी के साथ ओष धयों के सेवन से हमारा उत्तम स्वास्थ्य होवे।

गोरक्षा के लए महा र्ष दयानन्द का आन्दोलनः-

वेदों में कहा है – गोस्तु मात्रा न वद्यते।।(यजु.-23.48) अर्थात् गाय इतना अ धक महत्त्वपूर्ण पशु है जिसकी तुलना करना सम्भव ही नहीं है। गाय का दूध अमृत होता है और इसका मूत्र व गोबर भी रोग निवारक और सर्वोत्तम खाद है। कृ ष प्रधान भारत के लए तो इसका महत्त्व अत्य धक हो जाता है। इस लए दयार्द्र दयानन्द की दया 'गोकरुणा-नि ध'में ही उजागर होती है। गायों की नृशंस हत्या को देखकर ऋ ष दयानन्द के जीवन में कतिपय प्रसंग ही ऐसे आते हैं जिन अवसरों पर ऋ ष दयानन्द के अश्रु बहते हुए देखे गये-

देश में बढ़ती हुई गोहत्या देखकर रोये थे स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

गोमाता के वध पर प्रतिबन्ध लगाने के लए दो करोड़ भारतवा सयों के हस्ताक्षर कराकर ब्रिटेन की महारानी वक्टोरिया को प्रतिवेदन करते हुए मह र्ष ने कहा था- बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या करना महापाप है, इसको बन्द करने से भारत देश फर समृध्दशाली हो सकता है। गाय हमारे सुखों का स्रोत है, निर्धन का जीवन और धनवान् का सौभाग्य है। भारत देश की खुशहाली के लए यह रीढ़ की हड्डी है।

महारानी वक्टोरिया को भेजा प्रतिवेदन

“ ऐसा कौन मनुष्य जगत् में है जो सुख के लाभ में प्रसन्न और दुःख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के कये अपने उपकार में स्वयम् आनन्दित होता है वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिये। क्या ऐसा कोई भी वद्वान् भूगोल में था, है या होगा, जो परोपकार रूप धर्म और-परहानि स्वरूप अधर्म के सवाय धर्म और अधर्म की सध्दि कर सके। धन्य वे महाशयजन हैं जो अपने तन,मन और धन से संसार का उपकार सध्द करते हैं। द् वतीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन,मन और धन से जगत् में परहानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं।

सृष्टिक्रम में ठीक ठीक यही निश्चय होता है क परमेश्वर ने जो जो वस्तु बनाया है वह पूर्ण उपकार के लये है, अल्पलाभ से महाहानि करने के अर्थ नहीं। वश्व में दो ही जीवन के मूल हैं- एक अन्न और दूसरा पान। इसी अ भप्राय से आर्यवर शरोम ण राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते और न कसी को मारने देते थे। अब भी इस गाय,बैल,भैंस आदि को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते हैं, क्यों क अन्न और पान की बहुताई इन्हीं से होती है। इससे सब का जीवन सुखी हो सकता है। जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुकसान इनके मारने और मरवाने से होता है, उतना अन्य कसी कर्म से नहीं। इस का निर्णय ‘गोकरुणानि ध’ पुस्तक में अच्छे प्रकार से प्रकट कर दिया है, अर्थात् एक गााय के मारने और मरवाने से चार लाख बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है। इस लए हम सब लोग प्रजा की हितै षणी श्रीमती-राजराजेश्वरी क्वीन महारानी वक्टोरिया की न्यायप्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े-बड़े उपकारक गााय आदि पशुओं की हत्या होती है, इसको इनके राज्य में से छुड़वाके अति प्रसन्न होना चाहते है।

यह हम को पूरा वश्वास है क वद्या, धर्म, प्रजाहित प्रय श्रीमती राजराजेश्वरी क्वीन महारानी वक्टोरिया पा र्लयामेण्ट सभा तथा सर्वोपरि प्रधान आर्यावत्र्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय, बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह तथा प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सब को परम आनन्दित करें। दे खए क उक्त गााय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध, घी और कसानों की कतनी हानि होकर राजा और प्रजा की बड़ी हानि हो गई और नित्यप्रति अ धक-अ धक होती जाती है। पक्षपात छोड़के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म और पर हानि को अधर्म निश्चित जानता है। क्या वद्या का यह फल और सध्दान्त नहीं है क जिस जिस से अ धक उपकार हो, उस उस का पालन वर्धन करना और नाश कभी न करना। परम दयालु, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस समस्त जगदुपकारक काम करने में हमें ऐकमत्य करें।

हस्ताक्षर. दयानन्द सरस्वती

संसार के राजा, महाराजाओं से वनति करके मह षं दयानन्द ने संसार के अ धपति परमेश्वर से भी प्रार्थना की-‘ हे महाराजा धराज जगदीश्वर! जो इनको कोई न बचावे तो आप उनकी रक्षा करने और हम से करानो में शीघ्र उद्यत हूजिए।’

मह षं दयानन्द और गोरक्षा के लाभ

- गाय आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का ही नाश हो जाता है।

- वेदों में परमात्मा की आज्ञा है- क अघ्न्या यजमानस्य पशून् पाहि।। यजु. हे पुरुष तू इन पशुओं को कभी मत मार और यजमान अर्थात् सब के सुख देने वाले जनों के सम्बन्धी पशुओं की रक्षा कर, जिनसे तेरी भी पूरी रक्षा होवे।
- ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे।
- हे मांसाहारियो! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं।
- हे परमेश्वर! तू क्यों न इन पशुओं पर जो क बिना अपराध मारे जोते हैं, दया नहीं करता । क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है। क्या उनके लये तेरी न्याय सभा बन्द हो गई? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहंी देता और उनकी पुकार नहीं सुनता। क्यों इन मांसाहारियों की आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषें को ूदर नहीं करता?
- और इन की रक्षा में अन्न भी महंगा नहीं होता, क्यों क दूध आदि के अ धक होने से दरिद्री को भी खान पान में मलने पर न्यून ही अन्न खाया जाता है। और अन्न के कम खाने से मल भी कम होता है। मल के न्यून होने दुर्गन्ध भी न्यून होता है, दुर्गन्ध के स्वल्प होने से वायु और वृष्टिजल की शुध्दि भी वशेष होती है। उससे रोगों की न्यूनता से हाने से सब को सुख बढ़ता है।
- देखो! तुच्छ लाभ के लये लाखों प्रा णयों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं।
- जितना (लाभ) गाय के दूध और बैलों के उपयोग से मनुष्यों को सुखों का लाभ होता है उतना भैं षयों के दूध और भैसों से नहीं। क्यों क जितने आरोग्य कारक और वृध्दिवर्धक आदि गण्ुा गाय के दूध और बैलों में होते हैं उतने भैंस के दूध और भैंसे के दूध और भैंसे आदि में नहीं हो सकते। (गोकरुणानि ध से)

गाय ही सर्वोत्तम क्यों!

गौ और कृ ष अन्योन्या श्रत हैं। इसी लए मह र्ष ने गोकृष्यादिर क्षणी सभा नाम रखा था। गाय का दूध सर्वोत्तम क्यों है? इसमें निम्न ल खत मुख्य वशेषताएॅं हैं-

- गाय का दूध पीला और भैंस का सफेद होता है। इसी लए इसके दूध के वशेषज्ञ कहते हैं क गाय के दूध में सोने का अंश हेता है जो क स्वास्थ्य के लए उत्तम है और रोगनाशक है।
- गाय का दूध बुध्दिवर्धक तथा आरोग्यप्रद है।
- गाय का अपने बच्चे के साथ स्नेह होता है जब क भैंस का बच्चे के साथ ऐसा नहीं होता है।
- गाय के दूध में स्फर्ति होती है। इसी लए गाय के बछडे व बछियाॅं खूब उछलते कूदते फरते हैं। भैंस के दूध पीने से आलस्य व प्रमाद होता है।
- गााय के बछड़े को 50 गायों या अ धक में छोड़ दिया जाय तो वह अपनी माता को जल्दी ही ढूॅंए लेता है। जब क भैंस के बच्चों में यह उत्कृष्टता नहीं होती।
- गाय का दूध तो सर्वाेत्तम होता ही है, साथ ही गाय का गोबर व मूत्र भी तुलना में श्रेष्ठ है। गाय का गोबर स्वच्छ व कीटनाशक होता है। गाय की खाद तीन वर्ष तक उपजाउळ

शक्ति बढ़ाती रहती है कन्तु भैंस की खाद एक दो वर्ष के बाद ही बेकार हो जाती है। और गोमूत्र का स्प्रे करके कीड़ों के नाश में भी उपयोग लया जाता है।

- गोमूत्र उत्तम औष ध है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में पचास से भी अ धक रोगों में इसका उपयोग होता है।
- कृ ष के कार्यों के लए गाय के बछड़े सर्वोत्तम हैं। भारतवर्ष में आज के मशीनीयुग में भी 5 प्रतिशत खेती बैलों से होती है।
- गाय एक सहनशील पशु है। वह कड़ी धूप व सर्दी को भी सहन कर लेता है। इसी लए गाय जंगल में घूमकर प्रसन्न रहती है।
- गाय के दूध में सूरज की करणों से भी नीरोगता बढ़ती है। इसी लए वह अ धक स्वास्थ्यप्रद है।
- गाय की अपेक्षा भैंस के बच्चे/भैंसा धूप में कार्य करने में सक्षम नहीं होते।
- गाय की अपेक्षा भैंस के घी में कण अ धक होते हैं। जो क सुपाच्य नहीं होते।
- गाय का घी सुक्ष्मतम ना ड़यों में प्रवेश करके शक्ति देता है। मस्तिष्क व हृदय की सूक्ष्मतम ना ड़यों में पहुॅंच कर गोघृत शक्ति प्रदान करता है। आयुर्वेद में गोघृत का ही शारीरिक शोधन में प्रयोग होता है।
- वज्ञानवेत्ताओं के अनुसार भैंस के दूध में लांग चेन फैट की मात्रा अ धक होती है, जो क ना ड़यों में जम जाती है। और हृदय के रोग पैदा हो जाते हैं। परन्तु हृदय के रो गयों के लये भी गाय का दूध वशेष उपयोगी होता है।
- गाय का दूध वात नाशक, पत्तशामक और कफनाशक भी है।
- गाय का दही मधुर, रु चकारक, अग्निप्रदीपक, हृद्य, प्रय और पोषक होता है।
- गाय का मक्खन हितकारक, रंग साफ करने वाला, बलवर्धक, अग्नि प्रदीपक और व भन्न रोगों में रसायन व आयुवर्धक माना है।
- गाय का मट्ठा ;छाछद्ध तो लाखों रोगों की एक अचूक दवा है।
- गाय के दूध, मूत्र, गोबर, दही और घी से तैयार कया पंचगव्य तो असाध्य रोगों में अचूक दवा है। जिन रोगों में अन्य औषध्यिां काम नहीं कर पातीं उनमें पंचगव्य की मात्रा देने से आशतीत लाभ मलता है। मान सक उन्माद आदि रोगों में पंचगव्य रामबाण औष ध है।
- ना ड़यों में अवरोध होने पर उत्पन्न व भन्न रोगों में गाय का घी, गो-मूत्र और प´चगव्य रोगनाश में परम सहायक होते हैं।

मह र्ष मनु महाराज भी गाय के महत्व से पूर्णरूपेण परि चत थे, जिसके कारण वे लखते हैं क-

नाकृत्वा प्रा णनां हिसा मांसमुत्पद्यते क्व चत्।

न प्रा णवधः स्वग्र्यस्तस्मान्मांसं व वर्जयेत्।। **(मनु॰ 5/48)**

अर्थात् प्रा णयों की हिंसा कये बिना मांस की प्राप्ति नहीं होती और प्र णयों का वध करना सुखदायक नहीं, इस करण मॉंस नहीं खाना चाहिये।

समुत्प त्तं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।

प्रसमीक्ष्य निवत्र्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्।। **(मनु॰ 5/49)**

अर्थात् हमें मांस की उत्प त में और प्रा णयों की हत्या और बन्धन को देखकर सब प्रकार के मांस भक्षण का त्याग कर देना चाहिये।

अनुमन्ता वशिसता निहन्ता क्रय वक्रयी।

संस्कर्ता चापहत्र्ता च खादकश्चेति घातकाः।। **(मनु॰ 5/59)**

अर्थात् प्रा णयों की हत्या में आठ व्यक्ति हत्या से होन वाले पापों के भागीदार होते हैं।1.पशुओं को मारने की आज्ञा देने वाला 2. मांस को काटने वाला। 3. पशुओं को मारने वाला। 4. पशु को खरीदने वाला। 5.पशु को बेचने वाला। 6. मांस पकाने वाला। 7. परोसने वाला और मांस को खाने वाला।

वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवलानि च। **(मनु॰ 6/94)**

अर्थात् नशा करने वाले मद्य और मांस का परित्याग कर देना चाहिये।

हिंसारतश्च ये नित्यं नेहासौ सुखमेधते।। **(मनु॰ 4/170)**

अर्थात् जो मनुष्य मांस प्राप्ति के लए प्रतिदिन हिंसारत रहता है वह कभी सुख प्राप्त नहीं करता है।

गो-मांस व मांसाहार की बात करते हैं, उनके तर्कों का खण्डन

- परमेश्वर ने मनुष्यों के दांत मासाहारी पशुओं की तरह बनाये हैं, अतः मनुष्यों को मांस खाना चाहिये। ऐसी बातों का उत्तर मह र्ष ने यह दिया है-यह बात अपने पक्ष में कहते हैं कन्तु इससे उनका पक्ष सध्द नहीं होता। क्यों क मनुष्य पशुओं के तुल्य नहीं है। मनुष्य और पशुजाति भन्न भन्न हैं। मनुष्यों के दो पग और पशुओं के चार, मनुष्य वद्या पढ़कर सत्यासत्य का ववेक कर सकते हैं पशु नहीं। और बन्दर के दांत संह और बिल्ली आदि के समान हैं, कन्तु बन्दर मांस कभी नहीं खाते। बन्दर फलादि खाकर अपना निर्वाह करते हैं, वैसे मनुष्यों को भी करना चाहिये।
- मांसाहारी पशु और मनुष्य बलवान् होते हैं, अतः मांस खाना चाहिये। यह बात भी सत्य नहीं। संह मांस खाता है और अरणा भैंसा नहीं खाता, परन्तु संह अरणा भैंसे से डरता है और संह मनुष्यो पर आक्रमण करे तो एक दो गोली या तलवार के प्रहार से मर भी जाता है। जब क जंगली सुअर या अरणा भैंसा अनेक गो लयों अथवा तलवार आदि के प्रहार से भी शीघ्र नहीं मरता। और प्रत्यक्ष दृष्टांत देखना हो तो पूर्णरूप से शाकाहारी राममूर्ति, चन्दगी राम, गामा पहलवान, दारा संह, सतपाल पहलवान आदि ऐसे उदाहरण हैं, जो मांसाहार करने वाले हैं उनको नाम मात्र काल में ही परास्त कर देते थे। मांसाहार करना बलवर्धक न होकर हानिकारक, अधर्म एवं दुष्टकर्म हैं।
- मांसाहारी व्यक्ति एक यह भी तर्क देते हैं- जो मांसाहार न कया जाये तो संसार में पशु इतने बढ़ जायें क पृ थवी पर भी न समायें। इसी लए पशुओं को खाना उ चत है। परन्तु मह र्ष ने इसका उपहास उड़ाते हुआ लखा है- यह बुध्दि का वपर्यास मांसाहार ही से हुआ होगा? इसके वपरीत मनुष्य का मांस कोई नहीं खाता पुनः वे क्यों नहीं बढ़ गये। वास्तव

में एक मनुष्य के पालन के लए अनेक पशुओं की अपेक्षा होती है, अतः ईश्वर ने मनुष्य की अपेक्षा पशुओं को अ धक उत्पन्न कया है।

- कुछ व्यक्ति कहते हैं क पशुओं को मारकर अधर्म तो नहीं होता। जो अधर्म मानता है वह न खाये, हमारे मत में अधर्म नहीं होता। अतः मांसाहार करना अनु चत नहीं हैं। यह बात भी सत्य नहीं, क्यों क धर्म-अधर्म कसी के मानने अथवा न मानने से नहीं होता। पर हानि अथवा हिंसा करना अधर्म और परोपकार करना धर्म होता है। चोरी जारी इस लए अधर्म होता है क इससे दूसरे की हानि होती है। अतः लाखों पशुओं के मारने में अधर्म और उन्हें सुख देने में धर्म क्यों स्वीकार नहीं करना चाहिए।
- कुछ व्यक्ति ऐसा भी कहते हैं क जो पशु काम में आते हैं उन्हें मारना अधर्म है परन्तु जब बूढ़े हो जायें अथवा स्वयं पर जायें तो उनका मांस खाने में तो दोष नहीं। क्या ऐसा करने से कृतघ्नता रूपी महापाप नहीं होगा। इसी प्रकार जिन गाय, बैल आदि पशुओं से जीवन भी लाभ लया, उनसे अमृत जैसा दूध व अन्न प्राप्त कया, और इधर-उधर आने जाने में भार ढोने का काम लया, क्या उनकी हत्या करने में पाप नहीं होगा और कृतघ्नता तो महापाप है, उससे बचा नहीं होता उनको मारकर खाने में तो कोई हानि नहीं होती। प्रथम तो ईश्वर ने कसी भी पशु को निरर्थक नहीं बनाया है, उससे लाभ होता है या नहीं, यह हम नहीं जानते हैं। कन्तु हम प्रयास कर उस वृद्ध गाय आदि पशुओं का उपयोग कर सकते हैं, गो-मूत्र, गो-गोबर आदि से। भारतवर्ष में आज भी ऐसी गोशालाएंं हैं, जिनमें इसप्रकार के कार्य होते हैं, ऐसी गोशालाओं में जा कर हम सबको इससे सबक लेना चाहिए। दूसरी बात यह है क मरने के बाद मांंस खाने से मांंसाहारी हिंसक स्वभाव अवश्य हो जायेगा, अतः मांंसाहार करना सर्वथा अनु चत ही नहीं अ पतु निषेधनीय है।

‘मनुष्य और उसका धर्म’-मनमोहन कुमार आर्य

- NOVEMBER 9, 2015 1 COMMENT
-
- संसार के सभी मनुष्य अपने-अपने माता- पताओं से जन्मे हैं। जन्म के समय वह शशु होते हैं। इससे पूर्व 10 माह तक उनका अपनी माता के गर्भ में निर्माण होता है। मैं कौन हूं? यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। मैं वह हूं जो अपनी माता से जन्मा है और उससे पूर्व लगभग 10 माह तक गर्भ में रहा है। माता के गर्भ में यह कैसे आया यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर को ढूढने से पूर्व हम यह देखते हैं क जब वृद्धावस्था आदि में मनुष्य की मृत्यु होती है तो वस्तुतः होता क्या है? पृ थवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश नामी पंच-भूतों से नि र्मत उसका जड़ शरीर हमारे सामने होता है जिसका शास्त्रीय व लोक नियमों के अनुसार दाह संस्कार कर दिया जाता है। अनेक देशों में मृतक शव को दफनाने की प्रथा भी वद्यमान है। मृत्यु से पूर्व तक जड़ शरीर में एक चेतन तत्व भी होता है जो शरीर से निकल जाता है जिससे उस मनुष्य व उसके शरीर की मृत्यु कही जाती है। वह चेतन तत्व क्या है, आईये, वचार करते हैं। मृत्यु से पूर्व मनुष्य के शरीर में हम ज्ञान व क्रयाओं वा कर्मों की निरन्तरता को बना हुआ देखते हैं जो मृत्यु होने पर बन्द हो जाती है। शरीर की संवेदनायें समाप्त हो जाती है और वह पूर्णतः निष्क्रिय हो जाता है। अतः यह सद्ध होता है क जी वत अवस्था में शरीर में ज्ञान व क्रयायें कसी एक चेतन सत्ता की वद्यमानता के कारण हो रही थी जिसके न रहने, निकल जाने या शरीर छोड़ कर चले जाने पर वह पूर्णतः बन्द हो गई। अतः शरीर में दिखने वाला ज्ञान व क्रयायें

एक चेतन तत्व अर्थात् जीवात्मा की उपस्थिति का प्रमाण होने के साथ यह दोनों ज्ञान व क्रयायें=कर्म, जीवात्मा का स्वभाव वा स्वाभा वक गुण हैं। जीवात्मा के स्वाभा वक ज्ञान व क्रयाओं को जानने के बाद आईये, जानते हैं क जीवात्मा के अन्य गुण वा उसका स्वरूप कैसा है? हम सभी अनुभव करते हैं क जीवात्मा शरीर तक ही सीमत है। अतः जीवात्मा अल्प परिमाण वाली एवं एकदेशी सत्ता है। अल्प परिमाण एवं एकदेशी सत्त अल्प शक्ति वाली ही हो सकती है। हम यह भी देखते हैं क हम और अन्य सभी प्राणी दुःख, रोग व मृत्यु से भयभीत होते हैं। अतः यह हमारी अल्प शक्ति के साथ परतन्त्रता को भी सद्ध करता है। प्रश्न उपस्थित होता है क हमें दुःख, रोग व मृत्यु कससे मलता है? उत्तर प्राप्त होता है क इसका कारण हमारा अज्ञान व हमारे अज्ञान-जनित कर्म होते हैं। अज्ञान का कारण हमारी अल्पज्ञता है जिसे सर्वज्ञ ईश्वर एवं ज्ञानी गुरूओं का सान्निध्य प्राप्त कर दूर कया जा सकता है। मनुष्य जब सर्वज्ञ ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त करता है और स्तुति, प्रार्थना व उपासना करता है तो इसके प्रभाव से धीरे-धीरे उसकी आत्मा, मन, बुद् ध व अन्तःकरण के मल छटने वा दूर होने आरम्भ हो जाते हैं। निरन्तर अभ्यास से आत्मा आदि के मल दूर हो जाने से वह निर्मल होकर ईश्वर व आत्मा में स्थिति को प्राप्त करता है। इस अवस्था में पहुंचने पर उसे दुःख, रोग व मृत्यु आदि का भय समाप्त हो जाता है। संसार में जहां भी मनुष्य निवास करता है, वह कसी भी मत, सम्प्रदाय, मजहब का अनुयायी हो, परन्तु उसके समस्त दुःख व भय आदि केवल व केवल ईश्वर की उपासना से ही दूर हो सकते हैं। 'नान्यः पन्था वद्यते अयनायः' अर्थात् इन मलों को दूर करने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

-
- उपर्युक्त ववेचन से यह निष्कर्ष निकलता है क जीवात्मा, सत्य, चत्त, एकदेशी, अल्पज्ञ, कर्म करने में स्वतन्त्र व फल भोगने में परतन्त्र है। योग व ध से स्तुति, प्रार्थना व उपासना व वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन वा स्वाध्याय करके वह अपनी अज्ञानता व अ वद्या को दूर करके ववेक को प्राप्त होकर दुःखों से मुक्त होता है। दुःखों के साथ-साथ वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष अर्थात् मुक्ति को भी प्राप्त हो जाता है और नियत अव ध तक मुक्ति का सुख भोगता है।
-
- जीवात्मा का स्वरूप जान लेने के पश्चात प्रश्न आता है क जीवात्मा अपनी उन्नति, प्रगति व उत्थान के लए क्या करे? जीवात्मा को जब अपने स्वरूप का ज्ञान होता जाता है तो इसके साथ ही साथ परमात्मा का भी ज्ञान हो जाता है। कारण यह है क ज्ञान प्राप्त होने पर जीवात्मा यह जान जाता है क यह कार्य जगत अथवा वशाल सृष्टि उसे बनी बनाई मली है जिसे संसार में वद्यमान दूसरी सर्वव्यापक चेतन सत्ता, ईश्वर ने बनाया है। ईश्वर व स्वयं को जानकर जीवात्मा को यह ज्ञान भी हो जाता है क उसे भोगों का त्याग पूर्वक उपभोग करना है। इसके अतिरिक्त जो ज्ञान उसने गुरूओं, वृद्धों, सृष्टि के दर्शन व चन्तन-मनन-ऊहा करके प्राप्त कया है उसे अज्ञानियों व अल्पज्ञानियों में फैलाना है। उसे इसकी प्रेरणा सूर्य, वायु, जल व नदी-समुद्र-वर्षा, वृक्ष आदि सभी से मलती है। सूर्य के पास प्रकाश है, वह उसे अपने पास न रखके पूरे सौर्य मण्डल में फैला रहा है। नदिया व समुद्र अपना जल अपने पास नहीं रखते अ पतु उसे वाष्प बना कर वायु में उड़ा देते हैं जो वर्षा के द्वारा असंख्य लोगों को लाभ पहुंचाता है। नदियों का जल कसानों द्वारा खेती में उपयोग कया

जाता है व नदी के आस-पास बसे ग्राम व नगर के लोग, जल की अपनी भन्न- भन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में करते हैं। इसी प्रकार वृक्ष, ओष धयां, दुधारू पशु, भू म आदि सभी परोपकार-यज्ञ कर रहे हैं जिससे संसार चल रहा है। यह सब जीवात्मा को परोपकारमय जीवन व्यतीत करने की शक्षा देते हैं। इनका मनन कर मनुष्य अपने जीवन का उद्देश्य ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, ध्यान, परोपकार एवं यज्ञ आदि करना निश्चित करता है। यही जीवात्मा वा मनुष्यों का कर्तव्य व धर्म भी है। इन कार्यो को करते हुए वह अपने पुर्व कये हुए कर्मो को भोगेगा व आगे के लए नये कर्मों को करके प्रारब्ध तैयार करेगा। जड़ पदार्थ परोपकार कार्यो में संलग्न हैं तो बुद् धमान जीवात्मा इस कार्य में पीछे कैसे रह सकता है?

-
- इस सं क्षप्त लेख में जीवात्मा के स्वरूप व उसके कर्तव्य-धर्म का संक्षेप में वचार कया है। मनुष्य को अपने जीवन के सभी प्रश्नों के उत्तर व जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के साधनों एवं उपायों को जानने के लए मह ष दयानन्द सरस्वती कृत सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का आश्रय लेना चाहिये। इस ग्रन्थ में मनुष्य जीवन से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का सत्य व यथार्थ समाधान वद्यमान है। वगत 140 वर्षों में संसार के करोड़ों लोगों द्वारा इस ग्रन्थ में प्रस्तुत वचारों से लाभ उठा कर अपने जीवनों को संवारा जा चुका है।
-
- – मनमोहन कुमार आर्य
- पताः **196 चुक्खूवाला-2,**
- देहरादून-**248001**
- फोनः **09412985121**

- # ‘संसार के सभी मनुष्यों का धर्म क्या एक नहीं है?’ -मनमोहन कुमार आर्य

- OCTOBER 24, 2015 LEAVE A COMMENT
- ओ३म्
- संसार में सम्प्रति अनेक मत-मतान्तर फैले हुए हैं जिनकी अनेक मान्यतायें समान, कुछ भन्न व कुछ एक दूसरे के वपरीत भी हैं। यह सभी मत कसी एक ऐतिहा सक पुरुष द्वारा चलाये गये हैं। यही भी सत्य है क मनुष्य अल्पज्ञ होता है। यह भी तथ्य है क सभी मतों के प्रवर्तक वेद ज्ञान से शून्य थे। सब मतों का अपना-अपना एक व एक से अ धक ग्रन्थ हैं जिसे वह धर्म ग्रन्थ कहते हैं और उसकी शक्षाओं को मानना ही अपना धर्म समझते हैं। यदि सभी मतों की सभी बातें सत्य होती, परस्पर वरोधी न होती, पूर्ण निष्पक्ष होती, तो कसी को कुछ कहने के लए नहीं था। सभी मतों में प्रायः एक समान्य बात देखने को मलती है और वह यह है क वह अपने मतों की समीक्षा, परीक्षा व मूल्यांकन क वह सभी सत्य हैं तथा उनमें कहीं कोई बात असत्य तो नहीं है, इसका वचार नहीं करते। इनका यह वचार व स्वभाव ज्ञान की उन्नति व वज्ञान के सद्धान्तों के सर्वथा वपरीत होने से वचारणीय प्रतीत होता है। दूसरी ओर सृष्टि के आरम्भ से चला आ रहा वैदिक धर्म, जिसका आधार ग्रन्थ चार वेद हैं, अपने अनुयायियों को सभी ग्रन्थों के स्वाध्याय, मनन, वचार, चन्तन, सत्यान्वेषण, सत्य व भद्र के ग्रहण व असत्य-अभद्र के त्याग की पूरी अनुमति व

स्वतन्त्रता देता है। इस वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने वाले मह षे दयानन्द (1825-1883) सभी सत्य मान्यताओं व उनके आचरण को ही धर्म मानते हैं। उनका कहना है क सभी मतों में जो सत्य है, वह सबमें एक समान होने से धर्म है और उनमें जो सत्य नहीं है, वह उनका अपना है, वह धर्म नहीं हैं। मह षे दयानन्द वेदों को ईश्वर प्रदत्त होने से स्वतः प्रमाण मानते हैं और अन्य सभी ऋ षयों के र चत शास्त्रों के वेदानुकूल होने पर सत्य व वरुद्ध होने पर संशोधनीय, उसमें सुधार करने वा उन्हें त्याज्य मानते हैं। उनके अनुसार जिस मत में सत्य व असत्य दोनों प्रकार की न्यूना धक मान्यतायें व सद्धान्तों हों, उसे वह मत, सम्प्रदाय, मजहब ही स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में धर्म वह है, जो शत-प्रतिशत सत्यासत्य की दृष्टि से ववे चत, तर्क व युक्तियों से पो षत, समीक्षा कया गया, सृष्टिक्रम के पूर्णरूपेण अनुकूल, मनुष्यों में कसी प्रकार के भेदभाव से रहित, सबकी समानता का पोषक, हिंसा, छल, कपट, प्रलोभन से रहित तथा साथ हि जो वचार व चन्तन कर असत्य पाये जाने पर उसमें संशोधन की अनुमति देता हो।

-
- धर्म को समझने के लए हमें यह जानना है क संसार में तीन सत्य, नित्य व अनादि पदार्थ है जिनमें एक चेतन ईश्वर है, दूसरा चेतन जीवात्मा व तीसरा जड़ प्रकृति है। इन तीनों में एक हम व संसार के सभी प्राणी चेतन जीवात्मा होते हैं जिनकी संख्या अनन्त हैं। चेतन तत्व में ज्ञान व गति होती है। गति को कर्म के नाम व रूप में भी जान सकते हैं। जीवात्मा का एक गुण व स्वभाव, जन्म व मृत्यु, फर जन्म और फर मृत्यु को प्राप्त होना है। यह जन्म व मृत्यु तथा अनेक प्राणी योनि में से एक समय में कसी एक योनि वशेष में इसका जन्म इसके द्वारा पूर्व व वर्तमान मनुष्य योनि में कये गये व कए जाने वाले शुभ व अशुभ कर्मों का परिणाम होता है। परमात्मा का कर्तव्य है क वह जीव को करणीय व अकरणीय कर्तव्यों का ज्ञान कराये। यह ज्ञान वह सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में चार ऋ षयों व अनेक स्त्री-पुरूषों की रचना कर करता है। परमात्मा द्वारा कर्तव्य व अकर्तव्यों का ज्ञान ही ‘‘चार वेद” अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। यही कारण है क वगत लगभग 2 अरब वर्षों से यह ज्ञान हमारे पूर्वज ऋ ष-मुनियों की कृपा से आज तक मूल रूप में सुर क्षत है। चारों वेदों की भाषा दिव्य संस्कृत है जो ईश्वर व ऋ षयों की भाषा है। समय के साथ अनेक उतार चढ़ाव देश व समाज में आये। अतः ऋ षयों ने वेदों को समझाने के लए उसके अंग व उपांग रूप ग्रन्थों की रचना की। इसके बाद भी जब लोगों ने वेद समझने में कठिनाईयों का अनुभव कया तो ईश्वर प्रदत्त क्षमता से ऋ ष और वैदिक वद्वानों ने संस्कृत व हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में वेदों का तात्पर्य समझाने के लए भाष्य व टीकायें लखी जिसे पढ़कर भी वेदों में निहित मनुष्यों के कर्तव्य व अकर्तव्यों को जाना जा सकता है। वेदों में निर्दिष्ट कर्तव्य ही धर्म कहलाते हैं और नि षद्ध व कर्तव्यों के वपरीत कार्य व क्रयाओं को ही अधर्म कहा जाता है। संसार के मत व सम्प्रदायों की पुस्तकें जिस सीमा तक वेदों के अनुकूल मान्यताओं व सद्धान्तों से युक्त हैं, वहां तक वह धर्मयुक्त हैं और जो बातें, कहीं की व कसी की भी, वैदिक शक्षाओं, मान्यताओं व सद्धान्तों के वपरीत हैं, वह धर्म नहीं हैं और कहीं-कहीं अधर्म भी हैं। धर्म का पालन करने से सभी मनुष्यों की उन्नति होती है, हानि कसी भी मुनष्य या प्राणी की नहीं होती और अधर्म वह है जो अज्ञान के कारण अपने लाभ के लए कया जाता है जिससे दूसरों को हानि पहुंचने से वह धर्म न

होकर अधर्म ही होता है। अतः आवश्यकता इस बात की है क सभी संसार के लोग वेदों की शक्षाओं को पूर्णतः मानें जो क सबके लाभ व हित के लए हैं अथवा वह अपने-अपने मत की पुस्तकों का वेदों से मलान कर उसे संशो धत व परिष्कृत करें। यह संसार व संसार के सभी मनुष्यों के हित में है। यदि ऐसा करते हैं तो वश्व में प्रेम व भ्रातृभाव में वृद् ध होगी अन्यथा हानि ही होगी व हो रही है।

-
- धर्म के वषय में यदि हम सामान्य रूप से वचार करें तो धर्म कसी पदार्थ के गुणों को कहते हैं जो सदैव एक समान रहते हैं। अग्नि का गुण जलाना, ताप देना व प्रकाश करना है। साथ ही हम आंखों से जिन आकारवान पदार्थों को देखते हैं वह उनमें अग्नि की उपस्थिति व उसके व्याप्त होने के कारण ही दिखाई देती हैं। यह ताप, जलना, प्रकाश व दर्शन अग्नि का धर्म है। जल का गुण शीतलता देना, मनुष्यों की पपासा को शान्त करना, अन्न उत्प त्त में सहायक होना, वर्षा द्वारा स्थान-स्थान पर ओष धयों, अन्न व फलों को उत्पन्न करना व अनेक प्रकार से सभी प्रा णयों के लए उपयोगी होता है। जल का मुख्य गुण शीतलता है। इसी प्रकार से वायु का गुण स्पर्श, पृ थवी का अपना मुख्य गुण गन्ध तथा आकाश का शब्द है। इसी प्रकार से जब जीवात्मा वा मनुष्य की बात करते हैं तो मनुष्य के धर्म में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति को जानना, ईश्वरोपासना करना, यज्ञ करना, माता- पता-आचार्य- अति थयों का आदर व सत्कार करना आदि कर्तव्य होते हैं। प्राणी मात्र को प्रेम व मत्र की दृष्टि से देखना और उनके प्रति कसी प्रकार की हिंसा का भाव अपने अन्दर न लाना, वेदों का अध्ययन, गृहस्थ आश्रम के वेद प्रतिपादित कर्तव्यों का पालन, सबसे प्रीतिपूर्वक, यथायोग्य, धर्मानुसार व्यवहार करना ही मनुष्य का धर्म निश्चित होता है। मनुष्य का यह भी कर्तव्य व धर्म है क स्वयं धर्म को जानकर धर्म को न जानने वाले व वपरीत आचरण करने वालों को यथायोग्य व्यवहार और साम, दाम, दण्ड व भेद की सहायता से उन्हें धर्म का ज्ञान व पालन करना सखाये। धर्म में हिंसा, अत्याचार, बल प्रयोग, छल, कपट, प्रलोभन आदि का व्यवहार करना अनु चत होता है। जो भी व्यक्ति इनको करता है वह धा र्मक कदा प नहीं हो सकता। इससे यह भी ज्ञात होता है क संसार के सभी मनुष्यों का धर्म केवल और केवल एक ही है। जिस मत में सब सत्य गुणों का समावेश हो वह धर्म और जिसमें असत्य व दूसरों के प्रति अनु चत व्यवहार व ज्ञान पूर्वक कर्मों का अभाव व न्यूनता हो वह धर्म न होकर मत, पन्थ व सम्प्रदाय की श्रेणी में ही होते हैं। इस दृष्टि से संसार में धर्म तो एक ही सत्याचरण है। यह धर्म वैदिक धर्म है। यदि कोई अपने आप को वैदिक धर्मी कहे और आचरण वेदों के वरुद्ध करे तो वह वैदिक धर्मी होकर भी आचरण की दृष्टि से धा र्मक न होकर उस सीमा तक अधा र्मक ही होता है जिस सीमा तक उसका व्यवहार वैदिक मान्यताओं व सद्धान्तों के वपरीत होता है।
-
- धर्म का एक आवश्यक अंग ईश्वरोपासना है। ईश्वरोपासना क्या है? यह मनुष्यों द्वारा ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप व गुण-कर्म-स्वभाव को जानकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, ईश्वर का ध्यान, दुष्ट व बुरे कर्मों का त्याग व सत्याचरण का ग्रहण, प्रा णमात्र पर दया व परोपकार आदि को कहते हैं। इस प्रकार के कर्म व पुरुषार्थ करके अपने सभी शुभकर्मों को ईश्वर को सम र्पत करना और ईश्वर का ध्यान व चन्तन कर स्वयं को अहंकार शून्य करना ही ईश्वरोपासना है और सभी मनुष्यों का

धर्म है। ईश्वर को जान लेने और उपासना करने से ईश्वर से हमें प्रारब्ध और पुरुषार्थ के अनुसार सुख व दुःख आदि मलते ही हैं, उपसना का अतिरिक्त फल भी प्राप्त होता है। मह र्ष दयानन्द ने बताया है क ईश्वर की उपासना का अतिरिक्त फल यह मलता है क जिस प्रकार अग्नि के पास जाने से शीत निवृत हो जाता है उसी प्रकार ईश्वर का ध्यान व उपासना करने से जीवात्मा के सभी अभद्र गुण-कर्म-स्वभाव दूर होकर, ईश्वर के अनुरुप भद्र होते जाते हैं। इतना ही नहीं, आत्मा का बल इतना बढ़ता है क मृत्यु के समान बड़े से बड़ा दुःख प्राप्त होने पर भी मनुष्य घबराता नहीं है और उसे सहन कर लेता है। यह छोटी बात नहीं है। अन्य कसी प्रकार से यह आत्मिक बल प्राप्त नहीं होता, अतः सभी को अष्टांग योग की व ध से ईश्वर की सत्य व शुभ परिणामदायक उपासना अवश्य करनी चाहिये।

- सृष्टि उत्प त्त के कुछ समय बाद मनुष्यों को नियम में रखने के लए एक राजा, राज परिषद व राज नियमों की आवश्यकता हुई थी। यह कार्य वेदों के ऋ ष मह र्ष मनु ने कया था और संसार को एक अद् वतीय ग्रन्थ ''मनुस्मृति'' दिया। अपने आरम्भ काल से लेकर महाभारत व उसके बाद की कई शताब्दियों तक मनुस्मृति अपने शुद्ध स्वरुप में वद्यमान रही। उसके बाद उत्पन्न अनेक सम्प्रदायों के लोगों ने इसमें अपनी-अपनी अशुद्ध व वेद वरुद्ध मान्यताओं के श्लोक बनाकर मला दिये। इस प्रकार मनुस्मृति अनेक प्रक्षेपों से युक्त हो गई। इस मनुस्मृति में धर्म के लक्षण वषयक एक मूल श्लोक है जिसमें उन्होंने कहा है क धर्म के दश प्रमुख लक्षण धृति अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, सदबुद् ध, वद्या, सत्य व अक्रोध हैं। जिस मनुष्य में यह लक्षण हों वही धा र्मक होता है। धर्म के यह दश लक्षण सभी मनुष्यों में कुछ-कुछ पाये जाते हैं, कसी में कुछ कम व कसी में कुछ अ धक, परन्तु धर्म के दसों लक्षणों से पूर्णतया युक्त व उसके वपरीत गुणों व लक्षणों से सर्वथा रहित मनुष्यों का मलता दूभर है। हमें मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम, योगेश्वर श्री कृष्ण और मह र्ष दयानन्द आदि में यह लक्षण पूर्ण रुप से वद्यमान दिखाई देते हैं। यह तीनों महात्मा वस्तुतः पूर्ण धा र्मक थे। इनके बाद इतिहास में इनके समान इन दस लक्षणों से युक्त व इनका सर्वात्मा प्रचार करने वाला मनुष्य वा महापुरुष हमें दृष्टिगोचर नहीं होता। यह धर्म के लक्षण भी सार्वभौ मक एवं सार्वजनीन है। इनसे भी मनुष्यों का एक धर्म होना सद्ध होता है। इन लक्षणों को मानने वाले सभी मनुष्य वैदिक धर्मी वा मनु-मत के अनुयायी ही सद्ध होते हैं जिसमें संसार के सभी मनुष्य आ जाते हैं। इन लक्षणों के अनुरुप जीवन के निर्माण के लए वैदिक शक्षा पूर्ण सहायक है। वर्तमान की स्कूली शक्षा में इन धा र्मक लक्षणों के अनुरुप शक्षा न होने के कारण वास्त वक धर्म हमारे जीवन में न्यूनतम हो गया है।

- संसार में जितनी भी मनुष्यों की भौगो ल क दृष्टि से जातियां, मत व सम्प्रदाय हैं उसके सभी मनुष्यों को सुख समान रूप से प्रय लगते हैं व दुःख सबको समान रुप से सताते हैं। ऐसा कोई नहीं क भारत में कसी को सुई चुभायें तो उसे दुःख होता हो और यूरोप व अन्य कसी देश-प्रदेश में ऐसा ही कया जाये तो वहां सुख होता हो। इससे तो यही सद्ध हो रहा है क संसार के सभी मनुष्यों के गुण-कर्म-स्वभाव, कर्तव्य व धर्म एक ही वा एक प्रकार के हैं। सत्य बोलना, सत्य का आचरण करना, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना और बड़ों का आदर सभी मतों में एक समान

हैं। यदि सभी धर्मों व मतों की मौ लक शक्षायें एक ही प्रकार की हैं, तो यह सभी मनुष्यों का एक धर्म होने का संकेत कर रही हैं। संसार के सभी मनुष्यों को उनके एक समान धर्म के अ धकार से वं चत कया जाना उनके प्रति व मानवता के प्रति न्याय नहीं है। हम सभी मत व सम्प्रदायों के आचार्यों से यह कहना चाहते हैं क वह स्वयं से ही प्रश्न करें क क्या संसार के लोगों के धर्म व मत अलग-अलग मानना उ चत है? हमें लगता है क उत्तर नहीं में मलेगा। यह बात इससे भी सद्ध है क कुछ मतों के लोग दूसरे मतों व धर्मों के लोगों का लोभ, बल प्रयोग, छल-कपट व हिंसा आदि से धर्म-परिवर्तन करते हैं। इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है। यदि एक व्यक्ति का एक व अ धक बार अन्य अन्य मतों में धर्म परिवर्तन हो सकता है तो यह सम्प्रदाय परिवर्तन ही कहा जा सकता है, धर्म परिवर्तन नहीं। इस धर्म परिवर्तन से उस व्यक्ति में गुणों व लक्षणों की दृष्टि कुछ मौ लक परिवर्तन होता हुआ देखा नहीं जाता। जैसा वह पहले होता है, वैसा ही बाद में भी रहता है। हां, उसके कपड़े, रहन-सहन के तरीके व पूजा पद्धति में कं चत बदलाव होता है परन्तु उसके सुख-दुःखों में कोई अन्तर आता हो, इसका पता नहीं चलता। सुख में वृद् ध तो सत्याचरण व ईश्वर के निकट जाने से ही मलती है और उस ईश्वर से दूरी होने पर दुःख, अवनति व वनाश ही होता है। हमारा वनम्र निवेदन है क सभी मतों व धर्मों के लोग सच्चे मन से वचार करें क क्या सभी मनुष्यों का धर्म एक ही है या नहीं? अगर कसी से कोई नई बात पता चलती है, तो हम अनुग्रहीत होंगे।

- –मनमोहन कुमार आर्य
- पताः **196** चुक्खूवाला-**2**
- देहरादून-**248001**
- फोनः**09412985121**

- # ‘न्यायकारी व दयालु ईश्वर कभी कसी का कोई पाप क्षमा नहीं करता।’ -मनमोहन कुमार आर्य

- OCTOBER 20, 2015 LEAVE A COMMENT
- ओ३म्
- संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं, चेतन व जड़ पदार्थ। चेतन पदार्थ भी दो हैं एक ईश्वर व दूसरा जीवात्मा। ईश्वर संख्या में केवल एक हैं जब क जीवात्मायें संख्या में अनन्त हैं। ईश्वर के ज्ञान में जीवात्माओं की संख्या सी मत है परन्तु अल्पज्ञ जीवात्माओं की अल्प शक्ति होने के कारण वह बड़ी संख्या अनन्त ही होती है। चेतन पदार्थों में ज्ञान व कर्म, दो गुण पाये जाते हैं। सर्वथा ज्ञानहीन सत्ता चेतन नहीं हो सकती, वह सदैव जड़ ही होगी। इसी प्रकार से ज्ञान से युक्त सत्ता जड़ नहीं हो सकती वह सदा चेतन ही होगी। दो प्रकार की चेतन सत्ताओं में से एक सत्ता सर्वव्यापक है तो दूसरी एकदेशी है। सर्वव्यापक सत्ता सर्वज्ञ है और एकदेशी सत्ता अल्पज्ञ अर्थात् अल्पज्ञान वाली है। यह दोनों चेतन सत्तायें तथा एक तीसरी जड़ सत्ता प्रकृति, यह तीनों अनादि, अनुत्पन्न व नित्य हैं। अनादि होने के कारण इनका कभी अन्त वा नाश नहीं होगा। यह सदा से हैं और सदा रहेंगी। इसी कारण आत्मा को अनादि व अमर कहा जाता है। ईश्वर सर्वव्यापक होने के साथ निराकार, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ भी है। सर्वज्ञ का अर्थ है क ईश्वर में ज्ञान की पूर्णता व पराकाष्ठा है, न्यूनता के चत नहीं है। यह सर्वज्ञता उसमें

स्वाभा वक है और अनादि काल से है तथा अनन्त काल तक अर्थात् सदैव बनी रहेगी। ईश्वर सत्व, रज व तम गुणों वाली, त्रिगुणात्मक सूक्ष्म प्रकृति से इस सृष्टि की रचना करता है, उसका पालन करता है और अव ध पूरी होने पर प्रलय भी करता है। ईश्वर ही समस्त प्राणी जगत का उत्प त्तकर्ता और पालनकर्ता है जिसमें मनुष्य व सभी पशु, पक्षी आदि प्राणी सम्मि लत है। यह भी जानने योग्य है क ईश्वर से अ धक व उसके समान कोई सत्ता ब्रह्माण्ड में नहीं है। ईश्वर एक है और वह अपने समस्त कार्य स्वयं, अकेला व स्वतन्त्र रूप से करता है। उसे अपने कार्यों के सम्पादन में कसी अन्य जड़ व चेतन सत्ता अर्थात् प्रकृति व जीवात्माओं की अपेक्षा नहीं है। प्रकृति व सृष्टि उसके पूर्ण रूप से वश में है तथा जीव कर्म करने में स्वतन्त्र तथा फल भोगने में ईश्वरीय व्यवस्था में परतन्त्र है।

-
- ईश्वर में अनन्त गुण हैं जिनमें उसका न्यायकारी होना व दयालु होना भी सम्मि लत है। दयालु होने के कारण कुछ भावुक व स्वार्थी प्रकृति के लोग अ ववेकपूर्ण बात कह देते हैं क ईश्वर दयालुता के कारण जीवात्माओं के पापों को क्षमा कर देता है। पापों को क्षमा करने की बात ईश्वर के स्वभाव के सर्वथा वपरीत है। ईश्वर कसी मनुष्य के कसी कर्म को दयालु होने पर कदा प कं चत क्षमा नहीं करता और न हि कर सकता है। यदि वह कसी के पापों को क्षमा करेगा तो फर वह न्यायकारी न होकर अन्यायकारी कहा जायेगा। यह अन्याय उस मनुष्यादि प्राणी के प्रति होगा जिसके प्रति अपराध व पाप हुआ है। दया का अर्थ यह कदा प नहीं होता क दयालु व्यक्ति कसी बुरा काम करने वाले व्यक्ति के काम को क्षमा कर दे। यदि कोई ऐसा करता है तो वह उस व्यक्ति का अपराधी होता है जिसके प्रति अपराध हुआ है। हम यह सभी जानते हैं क अपराध को क्षमा करने से अपराध की प्रवृ त्त कम होने के स्थान पर बढ़ती है। दूसरी बात यह भी है क जिस व्यक्ति के प्रति अपराध कया गया है, वह निर्दोष व्यक्ति भी अपराध क्षमा करने वाले के प्रति अ वश्वास की भावना रखने लगता है जो क उ चत ही है। यदि ईश्वर ऐसा करेगा तो उसके प्रति भी यही वचार बनेंगे। मनुष्य तो अपने राग, द्वेष, हठ, दुराग्रह, स्वार्थ व अ वद्यादि दोषों से ऐसा कर सकता है परन्तु सर्वशक्तिमान व सबके सब कर्मों का साक्षी परमात्मा ऐसा नहीं कर सकता। हम देखते हैं क संसार में अपने धा र्मक मतों की मान्यताओं के अनुसार उन उन मतों का ईश्वर अपने भक्तों के पापों को क्षमा कर देता है, ऐसा कहा जाता व प्रचार कया जाता है। इसका एक प्रयोजन यह भी लगता क उस मत के लोग दूसरे मत के लोगों को फंसा कर अपने मत में लाना चाहते हैं और अपने मत के लोग दूसरे सच्चे मतों में न चले जायें, यह उनका उद्देश्य होता है। अब उनसे प्रश्न है क यदि उन मतों के अनुयायियों के पापों को उनके ईश्वर ने क्षमा कर दिया है तो फर वह रोगी क्यों होते है, दुःख क्यों भोगते हैं, कस कारण उनकी इच्छायें पूरी नहीं होती, वह धन व सुख की कामना करते हैं, अ धकांश को वह नहीं मलता, इसका क्या कारण है? जब कोई पाप बचा ही नहीं तब भी मनुष्य का दुःखी होना उस मत के ईश्वर का पापरहित जीवात्माओं के प्रति अन्याय ही कहा जायेगा। अब उसी दयालुता कहां गई। कसी बात का दुःख उन मनुष्यों को मल रहा है, जिनके पाप क्षमा कर दिये गये हैं? इसका एक ही कारण है क ईश्वर एक है और वह सभी मतों के अनुयायियों को एक समान रूप से कर्मों के फल प्रदान करता है। दुःख हमारे जाने व अनजाने, इस जन्म व पूर्व जन्म में कये गये कर्मों का परिणाम होते है, और ईश्वर उन्हें कसी भी स्थिति

में क्षमा नहीं करता। यदि हमारे पूर्व कृत बुरे कर्मों व पापों को ईश्वर क्षमा कर देता तो हम ज्ञान, स्वास्थ्य, साधनों व धन आदि में पूर्णतया सन्तुष्ट व सुखी होते। कसी को भी कोई क्लेष, कष्ट व दुःख नहीं होता। हमें अपनी कसी इच्छित वस्तु का कें चत अभाव व कमी न होती। ऐसा न होने का कारण यही है क हमारा प्रारब्ध व इस जन्म के कर्म ही हमारे इच्छित भोगों की प्राप्ति में बाधक हैं। यह भी स्पष्ट कर दें क एक बार पाप हो जाने पर वह कसी पौरा णक पूजा व क्रया से भी समाप्त नहीं हो सकता। उसका तो केवली एक ही उपाय है प्रायश्चित। प्रायश्चित करने में कसी धर्म गुरू आदि की आवश्यकता नहीं है। प्रायश्चित स्वयं कया जाना है। उसमें तो अपने उस कर्म की भर्तस्ना व निन्दा करनी है जिससे की भ वष्य में वह पाप न हो। कये पाप का फल तो प्रायश्चित करने पर भी भोगना ही होता है क्यों क यदि उसका फल ईश्वर नहीं देगा तो वह न्यायकारी नहीं रहेगा। हां पाप का फल देते हुए, और क्षमा प्रार्थना को अस्वीकार कर भी ईश्वर दयालु ही रहता है जिस प्रकार माता- पता व आचार्य बच्चों के दोषों को दूर करने के लए दण्ड देते समय उनके हित के लए व अपनी दया प्रद र्शत करने के कारण ही उसे दण्ड देते हैं। दण्ड का उद्देश्य सुधार है, हां अकारण दण्ड देना अनु चत है जो क ईश्वर कभी कसी के प्रति नहीं करता।

-
- आईये, वेदों के महान वद्वान, वश्व गुरू व धर्मवेत्ता मह र्ष दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश में लखे एतद् वषयक प्रकरण पर एक दृष्टि डाल लेते हैं। मह र्ष ने प्रश्न प्रस्तुत कया है क ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं? इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं क (ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा) नहीं करता। जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय, और सब मनुष्य महापापी हो जायें, क्यों क क्षमा की बात सुन कर ही उन को पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साहपूर्वक अ धक-अ धक बड़े-बड़े पाप करें। क्यों क राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उन को भी भरोसा हो जाय क राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे ओर जो अपराध नहीं करते, वे भी अपराध करने से न डर कर, पाप करने में प्रवृत हो जायेंगे। इस लये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं। (प्रश्न) जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र? (उत्तर) अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र हैं। 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' यह पा णनीय व्याकरण का सूत्र है। जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है, वही कर्त्ता है। (प्रश्न) स्वतन्त्र कस को कहते हैं? (उत्तर) जिस के आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उस को पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्यों क, जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मार के अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सद्ध हों तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। स्वर्ग-नरक, अर्थात् सुख-दुःख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे कसी मनुष्य ने शस्त्र वशेष से कसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है, और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीवन पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इस लये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इस लये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःख रूप फल भोगने में

परतन्त्र होता है। (प्रश्न) जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता। इस लए परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है। (उत्तर) जीव उत्पन्न कभी नहीं हुआ, अनादि है। ईश्वर और जगत् का उपादान कारण, नित्य है। जीवात्मा का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप-पुण्य करता है, वही भोक्ता है, ईश्वर नहीं। जैसे कसी ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को कसी व्यापारी ने लया, उस की दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई, उससे कसी सपाही ने तलवार ले ली, फर उस से कसी को मार डाला? अब यहां जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उस से लेने, तलवार बनाने वाले और तलवार को पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देता कन्तु, जिसने तलवार से मारा, वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीरादि की उत्प त्त करने वाला परमेश्वर उस के कर्मों का भोक्ता नहीं होता, कन्तु जीव को भुगाने वाला होता है। जो परमेश्वर कर्म कराता होता तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्यों क परमेश्वर प वत्र और धा र्मक होने से कसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इस लए जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है, वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है। अर्थात् जीवों के पाप-पुण्य रूपी कर्मों के फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र है, वह जीवों के पापों को क्षमा नहीं करता और इससे उसकी दया में कं चत हानि नहीं उत्पन्न होती।

- हम समझते हैं क ईश्वर के न्याय व दया का स्वरूप पाठकों को स्पष्ट वदित हो गया होगा। दोनों पृथक पृथक है। संसार में कोई मनुष्य कसी मत व सम्प्रदाय को माने, परन्तु जो अशुभ व पाप कर्म वह करेगा उसका दण्ड उसको ईश्वर अवश्य देगा और जीवों को वह भोगना ही पड़ेगा। कोई जीव अपने अशुभ व पाप कर्म के फल से बच नहीं सकता और न संसार में कोई मनुष्य, धर्मगुरू बचा सकता है, ईश्वर भी कसी को बिना पाप का फल भोगे, छोड़ नहीं सकता। जब ऐसा है तो फर बुरे कर्म करें ही क्यों? इसी कारण हमारे पूर्वज वेदों का ज्ञान प्राप्त कर ऋ ष व वद्वान बनते थे और पाप नहीं करते थे। जब से संसार में अनेकानेक मतों की वृद् ध हुई है, उसी अनुपात में अशुभ-पाप कर्म भी बढ़े हैं। कर्म-फल सद्धान्त को जानकर मनुष्य पाप करने से बच सकता है और प वत्रात्मा बनकर लोक-परलोक में उन्नति कर सकता है। अन्त में यह भी कहना चाहते हैं क कई बार लोग अपने दुःखों से दुःखी होकर इसके लए ईश्वर को दोष देते हैं। वह कहते हैं क हमने इस जन्म में तो कोई बुरा कर्म कया नहीं फर हमें यह भीषण दुःख क्यों? उनकी यह भी दलील होती है क उनकी जानकारी में बुरे कर्म करने वाले सुखी हैं। इसका कारण हमारे पछले जन्म के कारण ही सम्भा वत होते हैं। हम भूल चुके हैं परन्तु ईश्वर कुछ भी भूलता नहीं है। कर्म-फल सद्धान्त भी यही है क कर्मों के फल जन्म-जन्मान्तर में भोगे जाते हैं। अतः दुःखी व्यक्ति को ईश्वर में वश्वास रखते हुए यह सोचकर सन्तोष करना चाहिये क जो कर्म भोग लए वह तो कम हो ही गये और शेष कर्म भी ईश्वर को याद करते हुए भोग कर समाप्त हो जायेंगे। अन्य कोई उपाय भी हमारे पास नहीं है।

- मनमोहन कुमार आर्य
- पताः **196** चुक्खूवाला-**2**
- देहरादून-**248001**

- फोनः09412985121
- # ‘वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन, तर्क, ववेचना और सम्यक् ज्ञान-ध्यान के बिना ईश्वर प्राप्त नहीं होता’ -मनमोहन कुमार आर्य
- OCTOBER 13, 2015 LEAVE A COMMENT
- संसार में कसी भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना हो तो उसे देखकर व वचार कर कुछ-कुछ जाना जा सकता है। अ धक ज्ञान के लये हमें उससे सम्बन्धित प्रामा णक वद्वानों व उससे सम्बन्धित साहित्य की शरण लेनी पड़ती है। इसी प्रकार से ईश्वर की जब बात की जाती है तो ईश्वर आंखों से दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु इसके नियम व व्यवस्था को संसार में देखकर एक अदृश्य सत्ता का वचार उत्पन्न होता है। अब यदि ईश्वर की सत्ता के बारे में प्रामा णक साहित्य मल जाये तो उसे पढ़कर और उसे तर्क व ववेचना की तराजू में तोलकर सत्य को पर्याप्त मात्रा में जाना जा सकता है। ईश्वर का ज्ञान कराने वाली क्या कोई प्रमा णत पुस्तक इस संसार में है, यदि है तो वह कौन सी पुस्तक है? इस प्रश्न का उत्तर कोई ववेकशील मनुष्य ही दे सकता है। हमने भी इस वषय से सम्बन्धित अनेक वद्वानों के ग्रन्थों को पढ़ा है। उन पर वचार व चन्तन भी कया है। इसका परिणाम यह हुआ क संसार की धर्म व ईश्वर की चर्चा करने वाली पुस्तकों में सबसे अ धक प्रमा णत पुस्तक ‘‘चार वेद’’ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। इसके साथ ही वेदों की अन्य टीकाओं सहित वेदों पर आधारित दर्शन एवं उपनिषद आदि ग्रन्थ भी हैं। इन ग्रन्थों वा ईश्वर के स्वरूप वषयक ग्रन्थों का वेदानुकूल भाग ही प्रमा णत सद्ध होता है। वेद के बाद सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों में सत्यार्थ प्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्य भू मका प्रमुख हैं। इनकी वशेषता यह है क इन्हें एक साधारण हिन्दी भाषा का जानने वाला व्यक्ति पढ़कर ईश्वर के सत्यस्वरूप से अ धकांशतः परि चत हो जाता है और इसके बाद केवल योग साधना द्वारा उसका साक्षात्कार करने का कार्य ही शेष रहता है।
-
- कसी भी मनुष्यकृत पुस्तक की सभी बातें सत्य होना सम्भव नहीं होता अतः यह कैसे स्वीकार कया जाये क वेद में सब कुछ सत्य ही है? इसका उत्तर है क हम संसार की रचना व व्यवस्था में पूर्णता देखते हैं। इसमें कहीं कोई कमी व त्रुटि कसी को दृष्टिगोचर नहीं होती। दूसरी ओर मनुष्यों की रचनाओं को देखने पर उनमें अपूर्णता, दोष व क मयां दृष्टिगोचर होती हैं। अतः मनुष्यों द्वारा र चत सभी पुस्तकें व ग्रन्थ अपूर्णता, अशुद् धयों, त्रुटियों व क मयों से युक्त होते हैं। इसका मुख्य कारण मुनष्यों का अल्पज्ञ, ससीम व एकदेशी होना है। यह संसार कसी एक व अ धक मनुष्यों की रचना नहीं है। सूर्य मनुष्यों ने नहीं बनाया, पृ थवी, चन्द्र व अन्य ग्रह एवं यह ब्रह्माण्ड मनुष्यों की कृति नहीं है, इस लए क उनमें से कसी में इसकी सामर्थ्य नहीं है। यह एक ऐसी अदृश्य सत्ता की कृति है जो सत्य, चत्त, दुःखों से सर्वथा रहित, अखण्ड आनन्द से परिपूर्ण, सर्वातिसूक्ष्म, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सृष्टि निर्माण के अनुभव से परिपूर्ण, जीवों के प्रति दया व कल्याण की भावना से युक्त, अनादि, अज, अमर, अजर व अभय हो। ऐसी ही सत्ता को ईश्वर नाम दिया गया है। उसी व ऐसी ही अदृश्य सत्ता से मनुष्यों को सृष्टि के आदि में ज्ञान भी प्राप्त

होता है। यह ऐसा ही क जैसे सन्तान के जन्म के बाद से माता- पता अपनी सन्तानों को ज्ञानवान बनाने के लए सभी उपाय करना आरम्भ कर देते हैं। यदि संसार में व्यापक उस सत्ता से आदि मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त न हो तो फर उस पर यह आरोप आता है क वह पूर्ण व ज्ञान देने में समर्थ नहीं है अर्थात् उसमें अपूर्णता या क मयां हैं।

-
- हम संसार में वेदों को देखते है और जब उसका अध्ययन कर उसकी बातों पर वचार करते हैं तो यह तथ्य सामने आता है क वेदों की कोई बात असत्य नहीं है। वेदों की एक शक्षा है 'मा गृधः' अर्थात् मनुष्यों को लालच नहीं करना चाहिये। लालच के परिणाम हम संसार में देखते हैं जो अन्ततः बुरे ही होते हैं। एक व्यक्ति धन की लालच में चोरी करता है। एक बार व कई बार वह बच सकता है, परन्तु कुछ समय बाद पकड़ा ही जाता है और उसकी समाज में दुर्दशा होती है। वह अपने परिवारजनों सहित स्वयं की दृष्टि में भी गर जाता है। इस एक शक्षा की ही तरह वेदों की सभी शक्षायें सत्य एवं मनुष्यों के लए कल्याणकारी हैं। मह र्ष दयानन्द चारों वेदों व वैदिक साहित्य के अ धकारी व प्रमा णक वद्वान थे। उन्होंने चारों वेदों की एक-एक बात पर वचार कया था और सभी को सत्य पाया था। उसके बाद ही उन्होंने घोषणा की क वेद सृष्टि की आदि में परमात्मा के द्वारा आदि चार ऋ ष अग्नि, वायु, आदित्य व अं गरा को दिया गया ज्ञान है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद, इन नामों से उपलब्ध मन्त्र संहितायें सभी सत्य वद्याओं की पुस्तकें हैं। इसमें परा वद्या अर्थात् आध्यात्मिक वद्यायें भी हैं और अपरा अर्थात् सांसारिक वद्यायें भी हैं। मह र्ष दयानन्द की इस मान्यता को चुनौती देने की योग्यता संसार के कसी मत व मताचार्य में न तो उनके समय में थी और न ही वर्तमान में हैं। इसकी कसी एक बात को भी कोई खण्डित नहीं कर सका, अतः वेद मनुष्यकृत ज्ञान न होकर अपौरूषेय अर्थात् मनुष्येतर सत्ता से प्राप्त, ईश्वरीय ज्ञान सद्ध है। इसका प्रमाण मह र्ष दयानन्द व आर्य वद्वानों का कया गया वेद भाष्य एवं अन्य वैदिक साहित्य है। यह ज्ञान सृष्टि के सभी पदार्थों जिनमें पूर्णता है, उसी प्रकार से पूर्ण एवं निर्दोष है। यहां यह भी उल्लेखनीय है क संसार का कोई मत अपने मत की पुस्तक को सत्यासत्य की कसौटी पर न स्वयं ही परीक्षा करता है और न कसी को अ धकार देता है। अपनी पुस्तकों के दोषों को छिपाने के सभी ने अजीब से तर्क गढ़ लये हैं जिससे उसके पीछे उनकी संशय वृ त्त का साक्षात् ज्ञान होता है। इसी कारण वह सत्य ज्ञान से दूर भी है और यही संसार की अ धकांश समस्याओं का कारण है।
-
- कसी भी वस्तु के अस्तित्व को पांच ज्ञान इन्द्रियों, मन, बुद् ध, अन्तःकरण वा आत्मा के द्वारा होने वाले ज्ञान व अनुभवों से ही जाना जाता है। यह संसार कब, कसने, कैसे व क्यों बनाया, इसका निभ्रान्त व युक्तियुक्त उत्तर कसी मत के वद्वान या वैज्ञानिकों के पास आज भी नहीं है। इसके अतिरिक्त चारों वेद बार-बार निश्चयात्मक उत्तर देते हुए कहते हैं क यह सारा संसार इसको बनाने वाले ईश्वर से व्याप्त है। यह चारों वेद संसार का सबसे प्राचीन ज्ञान व पुस्तकें हैं। यह महाभारतकाल में भी थे, रामायणकाल व उससे भी पूर्व, सृष्टि के आरम्भ काल से, वद्यमान हैं। अतः वेदों की अन्तःसाक्षी और संसार को देख कर तर्क, ववेचना व ईश्वर का ध्यान करने पर ईश्वर ही वेदों के ज्ञान का दाता सद्ध होता है। इस कसौटी को स्वीकार कर लेने पर संसार

के सभी जटिल प्रश्नों के उत्तर मल जाते हैं जिनका उल्लेख मह र्ष दयानन्द सरस्वती ने अपने अपूर्व व अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में कया है।

-
- ईश्वर वषयक तर्क व ववेचना हम स्वयं भी कर सकते हैं और इसमें 6 वैदिक दर्शनों योग-सांख्य-वैशे षक-वेदान्त-मीमांसा और न्याय का भी आश्रय ले सकते हैं जो वैदिक मान्यताओं को सत्य व तर्क की कसौटी पर कस कर वेदों के ज्ञान को अपौरूषेय सद्ध करते हैं। अतः ईश्वर का अस्तित्व सत्य सद्ध होता है। ईश्वर का अस्तित्व सद्ध हो जाने पर संसार की उत्प त्त की गुत्थी भी सुलझ जाती है। यदि ईश्वर है तो यह सृष्टि उसी की कृति है क्यों क अन्य ऐसी कोई सत्ता संसार में नही है जो ईश्वर के समान हो। सृष्टि रचना का नि मत्त कारण होने से प्राणीजगत, वनस्पति जगत व इसके संचालन का कार्य भी उसी से हो रहा है, यह भी ज्ञान होता है। वेदाध्ययन, दर्शन व उपनिषदों आदि वैदिक साहित्य का अध्ययन कर लेने पर जब मनुष्य ईश्वर, वेद, जीव व प्रकृति आदि वषयों का ज्ञान करता है तो ईश्वर की कृपा से इन सबका सत्य स्वरूप ध्याता व चन्तक की आत्मा में प्रकट हो जाता है। इस ध्यान की अवस्था को योग दर्शन में समा ध कहा गया है। समा ध और कुछ नहीं अ पतु वैदिक मान्यताओं को जानकर ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना में लम्बी लम्बी अव ध तक वचार मग्न रहना व इसके साथ मन का ईश्वर के अतिरिक्त कसी अन्य वषय को स्मृति में न लाना ही समा ध कहलाती है। इस स्थिति को प्राप्त करने का सभी मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये। अन्य मतों में बिना तर्क व ववेचना के उस मत की पुस्तक की मान्यताओं को न, नुच के मानना ही कर्तव्य बताया जाता है जब क वैदिक धर्म व केवल वैदिक धर्म में इस प्रकार का कं चत बन्धन नहीं लगाया गया है। साधक व उपासक को स्वतन्त्रता है क हर प्रकार से ईश्वर के अस्तित्व को जांचे व परखे और असत्य का त्याग कर सत्य को ही ग्रहण करे।
-
- अतः निष्कर्ष में यह कहना है क ईश्वर के यथार्थ ज्ञान के लए वचार व चन्तन के साथ वेद, वैदिक साहित्य सहित सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्यभू मका का अध्ययन और योगाभ्यास करते हुए वचार, ध्यान, चन्तन व उपासना कर ईश्वर को प्राप्त कया जा सकता है। मह र्ष दयानन्द ने अनेक ग्रन्थ लखकर यह कार्य सरल कर दिया है। स्वाध्याय के आधार पर हमारा यह भी मानना है क वैदिक धर्मी स्वाध्यायशील आर्यसमाजी ईश्वर को जितना पूर्णता से जानता व अनुभव करता है, सम्भवतः संसार के कसी मत का व्यक्ति अनुभव नहीं कर सकता क्यों क वहां आधेय के लए आधार वैदिक धर्म की तुलना में कहीं अ धक दुर्बल है। आईये, वेदाध्ययन, वैदिक साहित्य के अध्ययन, सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभू मका ग्रन्थों का बार-बार अध्ययन करने सहित योगाभ्यास का व्रत लें और जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को सद्ध कर जीवन को सफल करें, बाद में पछताना न पड़े।
-

- –मनमोहन कुमार आर्य
- पताः **196** चुक्खूवाला-**2**
- देहरादून-**248001**
- फोनः**09412985121**

- # स्तुता मया वरदा वेदमाता-19
- OCTOBER 12, 2015 LEAVE A COMMENT
- समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः
- घर में भोजन सब को आवश्यकता और स्वास्थ्य के अनुकूल मलना चाहिए। घर में सौमनस्य का उपाय है भोजन में समानता। वास्तव में सु वधा व असु वधाओं को सयक् वभाजन तथा सयक् वतरण सुख-शान्ति का आधार है। साथ-साथ भोजन करने का बड़ा महत्त्व है, साथ-साथ भोजन करने से प्रसन्नता बढ़ती है, स्वास्थ्य का लाभ होता है। साथ भोजन करने से सबको समान भोजन मलता है। जहाँ पर अकेले-अकेले भोजन कया जाता है, वहाँ शंका रहती है, स्वार्थ रहता है। परिवार में ही नहीं, समाज में भी सहभोज का आयोजन कया जाता है, इन आयोजनों को प्रीतिभोज भी कहते हैं। ये समाज में सहयोग और प्रेम बढ़ाने के साधन होते हैं।
- घर में जो भी बनाया जाये, उसका कम है तो समान वतरण हो और पर्याप्त है तो यथेच्छ वतरण करना उ चत होता है। भोजन में मनु महाराज ने खाने के क्रम में अति थ, रोगी, बच्चे, ग र्भणी को प्रथम खलाने का वधान कया गया है। भोजन का वधान करते हुए मनु ने गृहस्थ के लये दो प्रकार से भोजन करने के लये कहा है। गृहस्थ भुक्त शेष खा सकता है या हुत शेष खा सकता है। भुक्त शेष का अर्थ है- अति थ को भोजन कराके भोजन करना तथा हुत शेष का अर्थ है यज्ञ में आहुती देने के पश्चात् गृहस्थ भोजन का अ धकारी होता है। भोजन की यह व्यवस्था बड़ी मनोवैज्ञानिक है। मनुष्य अकेला होता है तो भोजन व्यवस्थित नहीं कर पाता है। वशेष रूप से हम घरों में देखते हैं गृह णयाँ जब पति-बच्चे घर में होते हैं तो भोजन यथावत् बनाती हैं और यदि वे अकेली रह जाती हैं, तो वे भोजन बनाने में आलस्य करके जैसे-तैसे बनाकर खा लेती हैं। इसी कारण शास्त्र ने मनुष्य को उ चत भोजन करने के लये एक व्यवस्था बना दी, गृहस्थ हुत शेष खाये या भुक्त शेष खाये।
- हुत शेष या भुक्त शेष खाने में जो रहस्य है, यदि वह समझ में आ जावे तो मनुष्य की कभी अति थ को खलाने में संकोच नहीं करेगा। कसी गृहस्थ के घर पर जब अति थ आता है तो मनुष्य चाहे कतना भी निर्धन या गरीब क्यों न हो, वह यथाशक्ति यथा साव अति थ को अच्छा भोजन कराना चाहता है, अतः अति थ घर में आता है तो वशेष भोजन बनाया ही जाता है। इसी प्रकार मनुष्य मन्दिर के लये कुछ बनाकर ले जाता है तब अच्छा बना कर ले जाना चाहता है। यज्ञ के लए बनाना चाहता है तो अच्छा ही बनाया जाता है। इसी कारण हमारे ऋ षयों ने हमारे लये अपने लये पकाने और अकेले अपने आप खाने का निषेध कया है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है जो केवल अपने लये पकाता है और आप अकेले ही खाता है, वह पाप ही पकाता है और पाप ही खाता है। इसके वपरीत यज्ञ के लये पकाता है और यज्ञ शेष खाता है, वह पुण्य ही पकाता है और पुण्य ही खाता है। हम हवन के लये बनाते हैं, बनाते तो बहुत हैं, थोड़ा-सा देर यज्ञ में डालते हैं, शेष सबको वतरित करते हैं, प्रसाद के रूप में बांटते हैं। बनाया यज्ञ के नि मत्त है, इस लये इसे यज्ञ शेष कहते हैं। भगवान के नि मत्त बनाते हैं, अतः बांटते समय उसे प्रसाद कहते हैं। मूल रूप से प्रसाद संस्कृत का शब्द है, इसका अर्थ प्रसन्नता है। प्रसन्नता से कया गया कार्य प्रसाद है।

- हम समझते हैं अति थ को भोजन कराने से हमारी हानि होती है। यज्ञ करने से व्यय होता है परन्तु व्यवहार यह बताता है क इस नियम का पालन करने वाले सदा सुखी और प्रसन्न रहते हैं। जो इसको अन्यथा समझते हैं, उनको तो दुःख भोगना ही पड़ता है। मनुष्य ववशता में बाँटता नहीं है, उस समय उसकी वृ त समेटने की रहती है। जब मनुष्य प्रसन्न होता है तभी उदार भी होता है। इसी लये आम भाषा में कहते हैं- खुले हाथों से बाँटना, अर्थात् खुले हाथों से वही बाँट सकता है जिसका दिल खुला हो, हृदय उदार हो। खलाने के सुख का अनुभव करना दुनिया से भूख के दुःख को दूर करने का एक मात्र उपाय है और परिवार में साथ बैठकर खाना प्रसन्नता और सुख का आधार है।

वैदिक देवता पृथ्वी : मूर्तिपूजा की परिणति – देव र्ष कलानाथ शास्त्री

- OCTOBER 11, 2015 1 COMMENT
- श्री कलानाथ शास्त्री एक भाषा शास्त्री, संस्कृत, हिन्दी भाषा के अ धकारी वद्वान्, इतिहास एवं संस्कृति के मर्मज्ञ वद्वान् आप परोपकारी के पुराने पाठक हैं। शास्त्री जी कहते हैं- आर्यसमाजी मुझे पौरा णक समझते हैं तथा संगी-साथी पौरा णक समझते हैं क परोपकारी पढ़ते शास्त्री जी आर्यसमाजी बन गये हैं। – सपादकीय
-
- यह एक सु वदित तथ्य है क भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से पूर्व जिन वेदकालीन देवताओं की आराधना देश में की जाती थी, वे यथा प आज भी प्रत्येक धा र्मक कृत्य के अवसर पर पूजे जाते हैं जैसे- इन्द्र, वरुण, प्रजापति, अग्नि, सूर्य आदि, कन्तु भक्ति आन्दोलन ने जिन कृष्ण, राधा, राम, सीता आदि को जन-जन के हृदय में आसीन कर दिया, वे वेदकाल के देवता नहीं थे। अन्य कुछ ऐसे देवताओं की आराधना भी अत्यन्त लोक प्रय हो गई जो वेदकाल में ज्ञात नहीं थे, जैसे हनुमान, भैरव आदि। कुछ ऐसे देवता भी हैं, जिनकी पूजा आज घर-घर में बड़ी अ भलाषाओं के साथ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा की जाती है, वशेषकर दीवाली के अवसर पर, जो हैं तो वेदकालीन देवता, कन्तु उनकी वेदकालीन पहचान ने इतना रूप परिवर्तन कर लया क आज वह स्वरूप पूरी तरह अनजाना और अनचाहा हो गया। ये देवी हैं धन की अ धष्ठात्री लक्ष्मी, जिनकी पूजा का प्रमुख उत्सव दीपावली को माना जाता है। लक्ष्मी हैं तो वेदकालीन देवी, वे वष्णु की अर्धां गनी हैं, नारायण की पत्नी हैं। लक्ष्मीनारायण की पूजा और लक्ष्मीनारायण के मन्दिर देशभर में सु वदित हैं, कन्तु वेदकालीन ऋ ष जिसका अ भगम वैज्ञानिक था, उन्हें धन की देवी मात्र नहीं मानता था।
- वष्णु वश्व के प्रतिपालक हैं। वे त्रि वक्रम हैं, वश्वरूप हैं। वेद उन्हें सूर्यमण्डल में देखकर प्रणत होता है। वे आकाश का रंग धारण कए हुए हैं, गगन-सदृश हैं, मेघवर्ण हैं। उनके तीन चरण हमारी समस्त काल यात्रा को, काल गणना को नाप लेते हैं। एक चरण से वे चौबीस घण्टे के रात-दिन बनाते हैं, दूसरे वक्रम से बारह महीनों का सवत्सर बनाते हैं, तीसरे वक्रम से युग मन्वन्तर और कल्प बनाते हैं। इस त्रैलोक्य पालक देवता (सूर्य, जो वेद के प्रमुख देव हैं) की से वका है हमारी पृथ्वी, जो वेद काल की सबसे उपकारिणी देवी है। यही हमें जीवन दान देती है, लाखों वर्षों से हम इससे निकला जल पीकर जी रहे हैं, जो वर्ष में अनेक बार धान्यों की फसल देकर करोड़ों वर्षों से हमें जीवन दान दे रही है। यह ब्रहमाण्ड का सुन्दरतम ग्रह है। इससे बड़ी

कौन-सी देवी हो सकती है? सबसे पहले और सबसे बढ़कर तो इसकी पूजा की जानी चाहिए। क्या हम इसे भूल गए हैं?

- नहीं, वेद का ऋ ष इसके लए दीवाना था। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त के वे 63 मन्त्र, जो पृथ्वी की गरिमा का गान करते हैं, आज भी रोमांच पैदा कर देते हैं। इसकी पूजा तो हम आज भी करते हैं, पर कसी दूसरे रूप में। कस रूप में, इस प्रश्न का उत्तर सगुण भक्ति और मूर्तिपूजा की परपरा ही दे सकती है। हम देवनदी गंगा के ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकते, उसे देवी मानते हैं, पर मूर्तिपूजा की परपरा में हमारे हृदय तब तक सन्तुष्ट नहीं होते, जब हम उस जीती-जागती, बहती- खल खलाती नदी की मूर्ति मगर पर बैठी कलश लए मानवाकृति के रूप में बनाकर उसकी आरती नहीं उतारते। यही हुआ है पृथ्वी के साथ। हम उसकी पूजा तो आज भी करते हैं, पर मूर्ति बनाकर। लक्ष्मी यही पृथ्वी है, मूर्ति के रूप में। इसके हाथ में कमल है, अभय है, चारों दिशाओं के गहरे बादल हाथी बनकर जलधारा के कलशों से इसे नहला रहे हैं। वष्णु सूर्य हैं, नारायण आकाश का रंग धारण कए लक्ष्मी के पति हैं, लक्ष्मी उनके चरण दबाती है। आज भी प्रातःकाल उठते समय हम वष्णु की पत्नी पृथ्वी से हाथ जोड़कर कहते हैं- ' वष्णुपत्नि नमस्तुयं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।' यह पृथ्वी सूर्य के सुनहले प्रकाश में चमकती हुई हिरण्यवर्णा है, उसका रंग चमकदार पीला है, इसी लए लक्ष्मी 'कान्त्या कांचन संनिभा' है। उसकी खानों में से सोना निकलता है- 'यस्यां हिरण्यं वन्देयम्।' वेद का ऋ ष इसी सूर्य और भूदेवी के जोड़े का आराधक था। मूर्तिपूजा की परिकल्पना में वह हो गया लक्ष्मी और नारायण का जोड़ा। वज्ञान और ता र्कक चन्तन आराधना का लबास पहनकर कस प्रकार ब्रह्माण्डीय तत्त्वों को देवता बना देता है, यह तथ्य क्या रोमांचकारी नहीं है?
- बहुतों को शायद इस तथ्य को मानने में असु वधा हो क लक्ष्मी अथवा श्री पूरी तरह हमारी माता पृथ्वी का मानवीकृत रूप है। उनके लए केवल यह निवेदन ही पर्याप्त है क वे वेद के उस सूक्त को देख लें, जिसका नाम श्रीसूक्त है, जिसे लक्ष्मी की आराधना का सर्वा धक प्रभावी साधन माना जाता है और जिसके मन्त्र बोल-बोल कर पुरोहित लोग धन की कामना वाले यजमानों से खीर की सोलह आहुतियाँ दिलवाते हैं। इसके अर्थ की ओर सभवतः हम अ धक ध्यान नहीं दे पाते, कन्तु यदि इसका अर्थ समझना चाहें तो पृथ्वी की स्तुति माने बिना इसका अर्थ ही नहीं लगेगा। सारे मन्त्र पृथ्वी को स्पष्टतः अ भहित करते हैं। श्री और लक्ष्मी उसी के दो स्वरूप या दो अवस्थाएँ हैं, एक सूर्योन्मुख प्रकाशमान, दूसरी प्रकाशरहित। श्री सूक्त का सर्वा धक प्रच लत मन्त्र बतलाता है क वह शुद्ध गोबर से लपी हुई है, गन्ध उसका गुण है, वह हर बार नई-नई फसलें पैदा कर सकती है, नित्य पुष्ट होकर समस्त प्रा णयों का पोषण करती है-
- 'गन्धशरां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करी षणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तानिहोपह्वये श्रयम्।' श्रीसूक्त 'श्री' को चन्द्रां, सूर्यां आदि तो कहता ही है, ''आर्द्रां ज्वलन्तीं'' आदि भी कहता है। वह गीली भी हो जाती है, गर्मा भी। उसके दो पुत्र बताए गए हैं- कर्दम, चक्लीत। आनन्द, कर्दम चक्लीत श्री सूक्त के ऋ ष भी कहे जाते हैं। कर्दम है दलदल और चक्लीत 'नमी' (मॉइस्चर)। ये ही पृथ्वी के उपजाऊ तत्त्व हैं। आनन्द है प्राणवायु। सूक्त में स्पष्ट कहा गया है क आपकी वनस्पतियाँ और वृक्ष हमारे हितकारी हैं (तव वृक्षोऽध बिल्वः छठा मन्त्र)। ये सब पृथ्वी से सबन्धित हैं। लक्ष्मी की जो मूर्ति हमने

परिकल्पित की है, उस पर इनकी संगति कैसे बैठेगी? प्रतीक अर्थ लेकर ही तो हम वष्णु (वश्व के स्वामी) और लक्ष्मी (हमारी माल कन) की आराधना करते रहे हैं।

- शास्त्रों ने वष्णु के आयुधों, वाहनों, अङ्गों आदि के जो ववरण दिये हैं, उनमें वज्ञान और आस्था दोनों का अद्‌भुत समन्वय स्पष्ट दिखलाई देता है। हम सदा बोलते हैं- **'**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ**'**, ये ही हैं **'**अहोरात्रे पार्श्वे**'** जो वष्णु के आदित्य रूप के दो आयाम हैं, दोनों ओर हैं। हमारी साधना पद्‌धति इसी दृष्टि से बुद्‌ ध, तर्क, वज्ञान और ज्ञान तथा आस्था, वश्वास, अध्यात्म और भावना को भी आदर देती है। तभी तो यह सनातन परपरा सहस्राब्दियों से चली आ रही है, उसमें आचार का परिवर्तन होता रहता है, आधार का नहीं। युगानुरूप परिवर्तन को हमने काी नकारा नहीं, वह परिवर्तन ही तो हमारी सनातनता का रहस्य है। तभी तो अनेक वेदकालीन परपराएँ आज भी कसी-न-कसी रूप में हमारे जनजीवन में घुली मली लगती हैं। अथर्ववेद के पृ थवी सूक्त की पृथ्वी या भूदेवी श्री सूक्त की श्री देवी बन गई, फर यक्ष संस्कृति की कुबेर लक्ष्मी बनी, आज धनलक्ष्मी बनी हुई है, कन्तु आज भी गाँव-गाँव में दीपोत्सव के दिन लक्ष्मी पूजन में पृथ्वी से जुड़े हुए मट्‌टी के बर्तनों (हटडी, कुल्हड़ आदि) में फसलों से उपजे धान्य (खील, लाई आदि) ही रखे जाते हैं। लक्ष्मी के ये सारे रूप हमारे पूज्य हैं। वह धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, गजलक्ष्मी, सौभाग्यलक्ष्मी, सौन्दर्यलक्ष्मी आदि न जाने कतने रूपों में देश में पूजी जाती है। आजाी तिरुपति के वेंकेटेश्वर मन्दिर में श्रीपति के साथ भूदेवी देखी जा सकती है। यह क्रम न जाने कतनी सदियों से चल रहा है क नये प्रयोग उभरते हैं, कुछ रूढ़ियाँ जन्म लेती हैं, कुछ युग के तकाजे में दबकर समाप्त हो जाती हैं, कन्तु परपरा सनातन रहती है, वह रूपान्तरित भले हो जाए, समाप्त नहीं होती। यही भारत की भारतीयता है।
- – सी**/8,** पृथ्वीराज रोड**,** सी स्कीम**,** जयपुर**-302001 (**राज**)**

' वश्व में वेद-ज्ञान-भाषा की उत्प त्त और आर्यो का आदि देश**'** -मनमोहन कुमार आर्य

- OCTOBER 2, 2015 1 COMMENT

- **"**आर्य**"** शब्द की उत्प त्त का इतिहास वेदों पर जाकर रूकता है। वेदों में अनेको स्थानों पर अनेकों बार आर्य शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है क आर्यों की उत्प त्त में वेद की मान्यतायें व सद्‌धान्त सर्वमान्य हैं। वेद कोई 500, 1500 या 2000 वर्ष पुराना ज्ञान या ग्रन्थ नहीं है अ पतु वश्व का सबसे पुरातन ग्रन्थ है। इसे सृष्टि के प्रथम ज्ञान व ग्रन्थ की संज्ञा दी जा सकती है क्यों क इससे पूर्व व पुरातन ज्ञान व ग्रन्थ अन्य कोई नहीं है। वेदों के बारे में मह र्ष दयानन्द की तर्क व युक्तिसंगत मान्यता है क वेद वह ज्ञान है जो अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न चार ऋ षयों अग्नि, वायु, आदित्य व अं गरा को सृष्टिकर्ता, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार व सर्वान्तर्यामी ईश्वर से मला था। वेदों के आ वर्भाव के रहस्य से अपरि चत व्यक्ति यह अवश्य जानना चाहेगा क निराकार व शरीर रहित ईश्वर, जिसके पास न मुख है, न वाक्-इन्द्रिय, वह सृष्टि के आदि मे ज्ञान कैसे दे सकता है व देता है? इसका उत्तर है क ईश्वर आत्मा के भीतर सर्वव्यापक व सर्वान्तरयामी स्वरूप से वद्‌यमान होने के कारण ऋ षयों की आत्माओं में प्रेरणा देकर ज्ञान प्रदान करता है। ईश्वर के चेतन तत्व, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं सर्वान्तरयामी होने के कारण इस प्रकार ज्ञान देना सम्भव कोटि में आता है। भौतिक

जगत के उदाहरण से हम जान सकते है क यदि कसी दूर खड़े व्यक्ति को कोई बात कहनी हो तो जोर देकर बोलते हैं और पास खड़े व्यक्ति को सामान्य व धीरे बोलने से भी वह सुन व समझ जाता है। अब यदि कहने व सुनने वाले आमने-सामने हैं और कोई गुप्त बात कान में कहें तो बहुत धीरे बोलने पर भी सुनने वाला व्यक्ति समझ जाता है। यह स्थिति उन दों व्यक्तियों की है जिनकी आत्मायें अलग-अलग शरीरों में हैं। अब यदि दोनों आत्मायें एक दूसरे से सटे हों या एक आत्मा दूसरी आत्मा में अन्तर्निहित, अन्तर्यामी व भीतर हो तो बोलने की आवश्यकता ही नहीं है। वहां तो अन्तर्यामी आत्मा की प्रेरणा व भावना को व्याप्य आत्मा जान व समझ सकता है। इससे सम्बन्धित एक योग का उदाहरण लेते हैं। योग की सफलता होने पर जीवात्मा के काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी मल, वक्षेप व आवरण हट व कट जाते हैं जैसे क एक दर्पण पर मल की परत चढ़ी हो, वह साफ हो जाये तो उसके सामने का प्रतिबिम्ब दर्पण में स्पष्ट भाषता वा दिखाई देता है। योग में यही ईश्वर साक्षात्कार है और इस अवस्था में योगी – द्रष्टा के सभी संशय दूर हो जाते हैं और हृदय की ग्रन्थियां खुल जाती हैं। इसका अर्थ है क उसे परमात्मा का साक्षात्कार, उसका दर्शन अर्थात् निर्भरान्त स्वरूप ज्ञात होकर वह संशय रहित हो जाता है। इस प्रकार जो सद्ध योगी होता है उसे ईश्वर के बिना बोले वह सभी ज्ञान प्राप्त हो जाता है जिसकी उसे ईश्वर से अपेक्षा होती है।

-
- यद्य प ईश्वर की प्रेरणा को समझना, जानना, दूसरों को जनाना व प्रवचन करना आदि एक वज्ञान है जिसे आदि व पश्चातवर्ती ऋ षयों, योगदर्शनकार मह र्ष पतंज ल, अन्य दर्शनकार, योगेश्वर कृष्ण, मह र्ष दयानन्द सरस्वती आदि ने जाना, समझा, प्रत्यक्ष व साक्षात् सद्ध कया था। सृष्टि की आदि में यदि ऐसा न हुआ होता तो फर संसार की पहली पीढ़ी से लेकर अद्याव ध कोई भी मनुष्य ज्ञानी नहीं हो सकता था। इसका कारण यह है क ज्ञान चेतन तत्व का गुण है। चेतन तत्व दो हैं, एक ईश्वर और दूसरी जीवात्मा। ईश्वर सर्वज्ञ एवं त्रिकालदर्शी है, वह जीवों के कर्मो की अपेक्षा से सब कुछ जानता है। ईश्वर के सर्वज्ञ, नित्य तथा जन्म-मृत्यु से रहित होने से इसका अस्तित्व सदा रहेगा। जड़ प्रकृति ज्ञानहीन व संवेदनाशून्य है। जीवात्मा ज्ञान की दृष्टि से अल्पज्ञ कहा जाता है व वस्तुतः है भी। यह साधारण मनुष्य हो या ऋ ष, इसका ज्ञान अल्पज्ञ कोटि का होता है और ईश्वर साक्षात्कार हो जाने व समस्त संशयों के पराभूत हो जाने पर भी यह अल्पज्ञ ही रहता है। अल्पज्ञ जीवात्मा में, अन्यों की अपेक्षा से कम या अ धक, जितना भी ज्ञान है वह उसका ईश्वर प्रदत्त स्वाभा वक व नै म त्तक है। स्वाभा वक व नै म त्तक ज्ञान का दाता व मूल कारण भी एकमात्र ईश्वर ही है। ईश्वर अपनी सर्वज्ञता से अपने ज्ञान के अनुरूप सृष्टि व मनुष्यों आदि प्रा णयों की रचना करता है। ईश्वर की रचना को देखकर मनुष्य अपने स्वाभा वक ज्ञान व ऋ षयों-माता- पता-आचार्यों से प्राप्त ज्ञान से सृष्टि आदि को देख व समझ कर नै म त्तक ज्ञान प्राप्त करता है व उसमें वृद् ध करता है। यदि ईश्वर अपने ज्ञान से सृष्टि व प्रा णयों की रचना न करे व मनुष्य आदि प्रा णयों को स्वाभा वक ज्ञान न दे, तो फर मनुष्य सदा-सदा के लए अज्ञानी ही रहेगा। अतः सृष्टि की आदि में परमात्मा आदि चार ऋ षयों को वेदों का ज्ञान देता है। उसी ज्ञान से ऋ ष भाषा का उच्चारण व संवाद आदि करते हैं व ईश्वर का ध्यान करते हुए भाषा व ल प का चन्तन कर उसी की सहायता से ल प व व्यापकरण आदि की रचना करते हैं। इस

क्रम में उपदेश, प्रवचन, अध्ययन, अध्यापन व लेखन आदि के द्वारा मनुष्यादि अन्य भाषा व व वध ज्ञान का संवर्धन करते हैं।

-
- इस प्रकार परम्परा से चला आ रहा ज्ञान माता- पता को मलता है, वह अपने पुत्र को देते हैं और फर वह पुत्र गुरूकुल व वद्यालय में आचार्यों से अध्ययन व पुरूषार्थ करके अपने ज्ञान में वृद् ध करते हैं। यह ज्ञान की वृद् ध भी उसकी बुद् ध की ऊहापोह एवं ईश्वर की कृपा व सहयोग का परिणाम होती है। यदि सर्वज्ञ ईश्वर आरम्भ में ज्ञान न दे तो मनुष्य या मनुष्य समूह कदा प स्वयं भाषा व ज्ञान को उत्पन्न करके उसे प्रका शत नहीं कर सकते। ज्ञान भाषा में निहित होता है। यदि भाषा नहीं है तो मनुष्य वचार ही नहीं कर सकता। बिना वचार व ज्ञान के दो मनुष्य एक दूसरे को संकेत भी नहीं कर सकते। अतः माता- पता द्वारा सन्तानों को भाषा का ज्ञान कराने की भांति सृष्टि के आरम्भ में आदि मनुष्यों को भाषा की प्राप्ति ईश्वर से ही होती है। वह आदि भाषा वैदिक भाषा थी। ईश्वर ने आदि सृष्टि में चार ऋ षयों को चार वेदो का ज्ञान भाषा व मन्त्रों के पदो के अर्थ सहित दिया था। वेदों से सम्बन्धित सभी जानकारियों, वेदों के मर्म व तात्पर्य आदि को जानने के लए मह र्ष दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ को देखना उपयोगी व अनिवार्य है।
-
- वचार, चन्तन, यौ गक अनुभव व आप्त प्रमाणों से सद्ध है क सृष्टि के आदि में अमैथुनी व उसके बाद अनेक पीढ़ियों तक मनुष्यों की स्मरण शक्ति वर्तमान के मनुष्यों की तुलना में अ धक तीव्र थी। उस समय उन्हें स्मरण करने के लए कागज, पेन, पें सल व पुस्तकों की आवश्यकता नहीं थी। वह जो सुनते थे वह उन्हें स्मरण हो जाता था। कालान्तर में स्मृति ह्रास होना आरम्भ हो गया तो ऋ षयों ने इसके लए व्याकरण सहित अनेक वषय के ग्रन्थों की रचना की। वर्तमान में इस कार्य के लए व्याकरण के ग्रन्थ पा णनी अष्टाध्यायी, पतंज ल महाभाष्य, यास्क के निरूक्त व निघण्टु आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं। प्राचीन काल में भी समय-समय पर अनेक ऋ षयों ने आवश्यकता के अनुरूप व्याकरण व अन्य ग्रन्थों की रचना की जिससे वेदार्थ ज्ञान में कोई बाधा नही आई। इस वषय पर वस्तार से जानने के लए पं. यु धष्ठिर मीमांसक कृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पठनीय है। मीमांसक जी ने इस ग्रन्थ की रचना कर एक ऐसा कार्य कया है जो सम्भवतः भ वष्य में अन्य कसी के द्वारा कया जाना सम्भव नहीं था। इसके लए सारा संस्कृत जगत उनका चरऋणी रहेगा।
-
- मह र्ष दयानन्द ने अपने पुरूषार्थ व लगन से वेद व उसके व्याकरण के ग्रन्थों का अध्ययन करने में अपूर्व पुरूषार्थ कया। उनका यह पुरूषार्थ प्रज्ञाचक्षु स्वामी वरजानन्द के रूप में एक योग्य गुरू के प्राप्त होने से सफलता को प्राप्त हुआ। सत्य की खोज के प्रति दृण इच्छा शक्ति, मृत्यु व ईश्वर के सत्य स्वरूप की खोज, अपने वशद अध्ययन, पुरूषार्थ, योगाभ्यास आदि से वह वेदों में निष्णात अद् वतीय ब्रह्मचारी बने। मह र्ष दयानन्द के समय में सारा देश वेदों से दूर जा चुका था। लोग मानते थे क वेद लुप्त हो गये हैं। वेदों के साथ ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद माना जाता था जिनमें वेदों से वरूद्ध अनेक मान्यतायें व वधान थे। गीता व रामायण की प्रतिष्ठा वेदों से अ धक थी। सायण व महीधर आदि वद्वानों के पूर्ण व आं शक जो

वेद भाष्य यत्र-तत्र थे, वह भी वेदों के यथार्थ भाष्य न होकर वद्रूप अर्थो ये युक्त थे। वदेशी व हमारा शासक वर्ग वेदों को गड़रियों के गीत, बहुदेवतावाद का पोषक व अस्पष्ट अर्थो का संग्रह बता रहे थे। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान, सब सत्य वद्याओं का पुस्तक, धर्म जिज्ञासा में वेद परम प्रमाण एवं इतर संसार के सभी वेदानुकूल हाने पर परतः प्रमाण जैसी सत्य मान्यतायें एवं सद्धान्त बताकर वेदों को स्वतः प्रमाण की संज्ञा दी। उन्होंने कहा क ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद ही सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से प्राप्त प्रथम, आदि व नित्य ज्ञान की पुस्तकें हैं। वेद में ज्ञान, वज्ञान, सृष्टिक्रम, युक्ति व प्रमाणों के वरूद्ध कुछ भी नहीं है। मह र्ष दयानन्द ने ही उद्घोष कया क संसार में मनुष्यों की दो ही श्रे णयां है। एक आर्य व दूसरा अनार्य। आर्य भारत के मूल निवासी हैं। आर्यो के आर्यावर्त वा भारत को आदि काल में बसने व बसाने से पहले यहां कोई मनुष्य समुदाय, जाति के लोग निवास नहीं करते थे। सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक र चत असंख्य ग्रन्थों में कहीं नहीं लखा क आर्य कसी अन्य देश व प्रदेश से आकर यहां बसे, यहां के लोगों से युद्ध कर उन्हें पराजित कया। जब सम्पूर्ण आर्यावर्त के लोगों में आर्य व अनार्य का कोई ववाद ही नहीं है तो फर स्वार्थी व चालाक व आर्य धर्म व संस्कृति वरोधी अन्य पक्षपाती वदेशी मताग्रहियों का आरोप क्यों व कैसे स्वीकार कया जा सकता है? वदे शयों के पास धन व अन्य प्रचुर साधन थे। उन्होंने इस देश के कुछ पठित लोगों को अपने प्रलोभन देकर व उनसे आक र्षत कर छद्म व स्वार्थी मान सकता से प्रभा वत कया। कुछ प्रलोभन में फँस गये और उनकी हां में हां मलाने लगे। ऐसा होना स्वाभा वक होता है। कुछ धर्म को अफीम मानने की वचारधारा से पो षत तथाक थत इतिहासकार आर्य संस्कृति से घृणा रखते रहे हैं। उन्होंने सत्य प्रमाणों पर ध्यान दिये बिना अर्थात् वेद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत व 18 पुराणों का अवगाहन कए बिना, एक षडयन्त्र के अन्तर्गत वदे षयों की मान्यताओं व वचारों को स्वीकार कर लया। आज भी वदे शयों की आर्यो के अन्य देशों से भारत आने की स्वार्थ व पक्षपातपूर्ण मान्यता को हम वमूढ़ बनकर ढ़ो रहे हैं। हमें लगता है क इन मान्यताओं के अनुगामी व प्रवर्तक हमारे स्वदेशी तथाक थत बुद् धजीवी सत्य के आग्रही कम ही हैं जिसका कारण उनका पाश्चात्य वद्वानों का अनुमागी होना, संस्कृत ज्ञान से अन भज्ञता, संस्कृत भाषा के अध्ययन से वरत होना व आलस्य प्रवृति तथा धन का मोह आदि ऐसे कारण हैं जिससे वह सत्य तक पहुंचने में असमर्थ है। मह र्ष दयानन्द ने अनेक दुर्लभ सहस्रों संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन कया था जिससे वह निर्णय कर सके थे क आर्य भारत के मूल निवासी हैं व इनसे पूर्व आर्यावर्त्त में आर्यो से भन्न कोई जाति निवास नहीं करती थी।

-
- आर्यो का आदि व मूल देश इस पृ थवीतल पर कौन हो सकता है? इस पर वचार करने पर यह तथ्य सामने आता है क जहां आर्यो का धर्म ग्रन्थ, साहित्य, संस्कृति व सभ्यता अ धकतम् रूप में व्यवहृत, प्रयोग की जाती हो, जहां उसका चलन हो व वह फल-फूल रही हो। इतिहास में भारत के अतिरिक्त ऐसा अन्य कोई स्थान वदित नहीं है जहां आर्यो के इतिहास से सम्बन्धित इतने अ धक स्थान, साहित्य व अन्य सहयोगी प्रमाण हों। लाखों वा करोड़ों वर्ष पूर्व हुए राम-रावण, द्वापर की समाप्ति पर हुए महाभारत युद्ध व उस समय व उसके पूर्ववर्ती राजवंशों का इतिहास, महाभारत नामक वशाल ग्रन्थ में उपलब्ध व सुर क्षत हैं। पुराणों में भी इतिहास वषयक अनेक

उल्लेख व स्मृतियां उल्लि खत हैं। यह महाभारत का युद्ध आज से लगभग 5,200 वर्ष पूर्व हुआ था। हम अनुभव करते हैं क जिस प्रकार से सूर्य का उदय पूर्व दिशा से होता है उसी प्रकार से ज्ञान के आदि ग्रन्थ 'वेद' रूपी सूर्य का उदय भी भारत से ही हुआ है जिसका प्राचीन नाम आर्यावर्त था। यही भू म वेदों व अमैथुनी सृष्टि के उद्गम की भू म है। भारत का ही प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है और आर्यावर्त्त नाम से पूर्व इस देश का कुछ भी नाम नहीं रहा है और न ही आर्यो से पूर्व कोई मनुष्य या उनका समुदाय निवास करता था। यह भी ध्यान देने योग्य है क आर्यावर्त के अस्तित्व में आने तक संसार का अन्य कोई देश अस्तित्व में नहीं आया था क्यों क उन निर्जन देशों को बसाने के लए आर्यावर्त्त से आर्यो को ही जाना था।

- आज संसार की सारी पृ थवी पर लोग बसे हुए हैं। समस्त पृ थवी पर लगभग 194 देश हैं। इन देशों के निवासी पूर्व समयों में पड़ोस के देशों से आकर वहां बसे हैं। जो आरम्भ में, सबसे पूर्व, आये होगें, उससे पूर्व वह स्थान खाली रहा होगा। हो सकता है उसके बाद निकटवर्ती वा पड़ोस की अन्य तीन दिशाओं से भी कुछ लोग वहां आकर बसे हों। उन देशों में वहां क्यों क प्रायः एक ही मत या धर्म है, अतः कहीं कोई ववाद नहीं है। सृष्टि के आरम्भ से पारसी व बौद्ध-जैन-ईसाई मत के आ वर्भाव तक संसार के सभी लोग एक वैदिक मत को मानते रहे। इस मान्यता के पक्ष में भी प्रमाण उपलब्ध हैं क लगभग 5,200 वर्ष पूर्व भारत की भू म पर हुए महाभारत युद्ध के बाद आर्यावर्त्त अवनति को प्राप्त हुआ। इससे पूर्व हमारे देश के राजपुरूष देश-देशान्तर के सभी देशों में जाते-आते थे। परस्पर व्यापार भी होता था और वहां की राज व्यवस्था भारत के ऋ षयों, वद्वानों व राजपुरूषों के दिशा-निर्देश में चलती थी। वह माण्ड लक राज्य कहलाते थे और भारत के चक्रवर्ती राज्य को कर देते थे। मह र्ष दयानन्द (1825-1883) ने अपने काल में हस्त ल खत दुलर्भ हजारों ग्रन्थों का अध्ययन कया था। उन्होंने निष्कर्ष रूप में लखा है क सृष्टि के आरम्भ से महाभारत पर्यन्त आर्यो का सारे वश्व में एकमात्र, सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य रहा है। अन्य देशों में माण्ड लक राजा होते थे जो भारत को कर देते थे और हमारे देश के राजपुरूष व ऋ ष आदि भी इन देशों में सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था को आर्यनीति के अनुसार चलाने, शक्षा-धर्म प्रचार व व्यापार आदि कार्यो हेतु आया-जाया करते थे। यह प्रमाण अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह वाक्य देश- वदेश में रहने वाले करोड़ों वेदभक्तों के लए तो मान्य है परन्तु अंग्रेजी परम्परा के लेखक व वद्वानों के लए यह इस लए स्वीकार्य नहीं है क वदेशी वद्वान ऐसा नहीं मानते थे। वह क्यों नहीं मानते थे इसके कारणों में जाने की इन वद्वानों के पास न योग्यता है और न आवश्यकता। उनका अपना मनोरथ सद्ध हो जाता है, अतः वह गहन व अति श्रम साध्य गम्भीर अनुसंधान नहीं करते। ऐसे कार्य तो स्वामी दयानन्द व उनके अनुयायी पद-वाक्य प्रमाणज्ञ पण्डित बहमदत्त जिज्ञासु, पं. यु धष्ठिर मीमांसक, पं. भगवद्दत्त व स्वामी वद्यानन्द सरस्वती जैसे खोजी व जुझारू लोग ही कर सकते थे व कया है। हम यहां यह भी निवेदन करना चाहते हैं क आर्यो को भारत से भन्न स्थानों का निवासी मानने और आर्यो का अन्य स्थान से भारत में आने के मथ को सत्य मानने वालों के पास एक भी पुष्ट प्रमाण नहीं है जब क मह र्ष दयानन्द व उनके अनुयायियों मुख्यतः स्वामी वद्यानन्द सरस्वती आदि ने आर्यो का भारत का मूल निवासी होना

अनेक तर्कों, प्राचीन ग्रन्थों, युक्ति-प्रमाणों, इतिहास व पुरातत्व के प्रमाणों आदि की सामग्री से सद्ध कया है।

-
- यहां हम इस सम्भावना पर भी वचार करते है क यदि महाभारत युद्ध न हुआ होता तो क्या होता? महाभारत युद्ध दुर्योधन की हठध र्मता का परिणाम था। यदि उसका जन्म ही न होता या वह साधु प्रकृति का होता तो भी महाभारत न हुआ होता। ऐसी स्थिति में श्री कृष्ण, भीष्म, वदुर, अर्जुन व यु धष्ठिर आदि आर्यावर्त-भारत व सारे वश्व को वेदमार्ग पर चलाते। अर्जुन ने तो अमेरिका के राजा की पुत्री उलोपी से ववाह तक कया था। भारतवा सयों का अमेरिका आने-जाने का यह एक प्रमाण है। ऐसे अनेक उल्लेख व प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। मह र्ष वेद व्यास के पुत्र पाराशर के अमेरिका में जाने वहां निवास करने और अध्ययन-अध्यापन कराने के प्रमाण भी मलते हैं। महाभारत यदि न होता तो इस सम्भावना के आधार पर यह कहा जा सकता है क फर सारे संसार मे केवल एक वैदिक धर्म ही होता। अज्ञानता के कारण व भारत से दूर होने के कारण मध्यकाल में भारत से बाहर वैदिक मत से इतर पारसी, ईसाई व इस्लाम आदि जिन मतो का आ वर्भाव हुआ, वह न हुआ होता। ऐसी स्थिति में हम व दुनियां के अन्य देश जो गुलाम हुए, वह भी न हुए होते। और इन सब स्थितियों में कसी देशी या वदेशी द्वारा इस ववाद को जन्म ही न दिया जाता क "आर्य" भारत के ही मूल निवासी हैं या नहीं? अंग्रेजो का वदेशी होना और भारत को पराधीन बना कर यहां के मूल निवासी आर्यों पर शासन करना ही इस ववाद का मुख्य कारण है। अंग्रेजों को यह डर सताता था क इस देश के नागरिक उन्हें वदेशी कहकर ' वदे शयों भारत छोड़ों' या 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' या फर 'अपने देश में अपना राज्य' या 'स्वदेशीय राज्य सर्वोपरि उत्तम होता है और स्वदेशी राज्य की तुलना में माता– पता के समान कृपा, न्याय व दया होने पर भी वदे शयों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता' आदि सद्धान्तों व नारों के आधार पर भारत से बाहर न निकाल दें। अंग्रेजों में असुरक्षा की भावना इस कारण थी क उन्होंने भारतीयों को गुलाम बनाया हुआ है। वह वदेशी थे और भ वष्य मे वह दिन आ सकता था क जब उनके वदेशी होने के आधार पर उन्हें भारत छोड़ने के लए मजबूर कया जा सकता था। ऐसा ही हुआ। उनकी लूट, अत्याचारों व वदेशी होने के कारण ही उनके वरूद्ध क्रान्तिकारी व अहिंसक आन्दोलन चले। अतः अपनी जड़े जमाने व चरकाल तक भारत पर शासन करने के लए उन्होंने भारत के प्रबुद्ध वर्ग ''आर्यो" को वदेशी कहा। मह र्ष दयानन्द तो सन् 1875 में सत्यार्थ प्रकाश में खुलकर कह चुके थे क अपने देश में अपना स्वदेशी राज्य ही सर्वोत्तम होता है एवं माता- पता के समान न्याय, दया व कृपा होने पर भी वदे शयों का राज्य पूर्ण सुखदायक कभी नहीं हो सकता। महाभारत का युद्ध आर्यो अर्थात् कौरव-पाण्डव राज-परिवारों की परस्पर स्वार्थ वा फूट, उनके आलस्य व प्रमाद आदि कारणों से हुआ जिसके भावी परिणामों से वर्तमान में भारत में अज्ञान, पाखण्ड, कुरीतियां, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फ लत ज्योतिष, वर्ण या जातीय व्यवस्था आदि के नाम पर स्त्री व अपठित व असंगठित शूद्रों पर अत्याचार आदि की वृद् ध होना, वदेशों में नाना अवैदिक व अज्ञानपूर्ण मतों का अस्तित्व में आना, सारी दुनियां में धर्मान्तरण का चक्र चलना व इस प्रकार के कारणों से एक दूसरे का घात करना आदि, जिससे समय-समय पर भयंकर युद्ध हुए व सज्जनों को मृत्यु के घाट उतारा गया।

-
- यह संसार ईश्वर ने बनाया है। यह हमारी पृ थवी वश्व ब्रह्माण्ड में एकमात्र नहीं अ पतु ऐसी असंख्य पृ थ वयां एवं सूर्य व चन्द्र आदि ग्रहों से सारा ब्रह्माण्ड भरा है। यह ईश्वर की वषालता, उसकी सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता, निराकारता व सत्य, चत्त व आनन्दस्वरूप होने का प्रमाण है। यहां यह वचार करते हैं क ईश्वर ने इस वशाल पृ थवी को बनाकर मनुष्यों को कसी एक स्थान पर जन्म दिया या संसार के अनेकानेक भागों में उत्पन्न कया? इसके लए यह वचार करना उपयोगी होगा क जब भी हम कसी नई चीज का आ वष्कार करते हैं तो पहले कुछ सांचे या प्रोटोटाइप बनायें जाते हैं जिनकी संख्या सी मत होती है। प्रथम उत्पादन एक ही स्थान पर होता है, सर्वत्र नहीं। आवश्यकता पड़ने पर परिस्थिति के अनुसार अनेक स्थानों पर वस्तार कया जाता है। जब एक स्थान पर कुछ सहस्र स्त्री-पुरूषों के जन्म लेकर समय के साथ उनकी संख्या में वृद् ध होने व परस्पर के ववादों आदि के होने पर वह सारे संसार में फैल सकते हैं तो सर्वत्र मनुष्यों की सृष्टि करना ईश्वर के लए करणीय नहीं था। हम देखते हैं क परिवार का मुख्य व्यक्ति परिवार की आवश्यकता के अनुरूप निवास बनाता है। आगे चल कर परिवार में नई सन्तानें आती हैं, वह बड़ी होती है, उनमें क्षमता होती है, वह अपने साधनों, क्षमता, अपनी भावना व इच्छानुसार उ चत स्थान का चयन कर अपने निवास के लए अपना पृथक भवन बनवाते हैं। इसी प्रकार से संसार में निवास बनते हैं। सृष्टि के आरम्भ में यही सम्भावना अ धक बलवती लगती है, और इसका आप्त प्रमाण भी है, क सृष्टि के आरम्भ में केवल एक स्थान 'त्रि वष्टिप' या 'तिब्बत' में ईश्वर ने मानव सृष्टि की। सहस्रों स्त्री-पुरूषों व अग्नि, वायु, आदित्य, अं गरा, ब्रह्मा आदि ऋ षयों को उत्पन्न कया। ऋ षयों को प्रेरणा देकर उन्हें वेदों का ज्ञान दिया। उन्होंने अन्यों को पढ़ाया। उन युवा स्त्री-पुरूषों के ववाह आदि सम्पन्न कये। उन सभी को उनके कर्तव्यों का बोध कराया। उनसे सन्तानोत्प त्त हुई। समय व्यतीत होने के जनसंख्या बढ़ी। परस्पर ववाद भी हुए। भन्न मत के लोग समूह में अन्यत्र जाकर रहने लगे। वहां भी जनसंख्या बढ़ी और फर उनमें से लोग अपनी आवश्यकता, इच्छा, अन्वेषण की रू च आदि के कारण खाली पड़ी पृ थवी में चारों दिशाओं में स्थान-स्थान पर जाकर बसने लगे। इस प्रकार से 1,96,08,53,115 वर्षों में यह आज का संसार अस्तित्व में आया है। यहां अब पश्चिमी वद्वान मैक्समूलर का वचन उद्धृत करते हैं – 'यह निश्चित हो चुका क हम सब पूर्व से ही आये हैं। इतना ही नहीं, हमारे जीवन की जितनी भी प्रमुख और महत्वपूर्ण बातें हैं, सबकी सब हमें पूर्व से ही मली हैं। ऐसी स्थिति में जब हम पूर्व की ओर जाएँ तब हमें यह सोचना चाहिए क पुरानी स्मृतियों को संजोये हम अपने पुराने घर की ओर जा रहे हैं।' अंग्रेजी में अपनी पुस्तक **"India : What can it Teach us?" (Page 29)** पर उन्होंने लखा क 'We all come from the East—all that we value most has come to us from the East, and by going to the East, every-body ought to feel that he is going to his 'old home' full of memories, if only we can read them.' मैक्समूलर के यह शब्द मह र्ष दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम् समुल्लास मे लखे शब्दों की स्वीकारोक्ति हैं जहां उन्होंने लखा है क ''मनुष्यों की आदि सृष्टि त्रि वष्टप अर्थात् तिब्बत में हुई और आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देष भारत में आकर बसे। इसके पूर्व इस देश का कोई भी नाम नहीं था और न कोई आर्यो के पूर्व इस देश में बसते थे।'' हम यहां यह भी जोड़ना उपयुक्त समझते है जब आर्य तिब्बत से यहां आकर बसे उस

समय इस भू म भारत व संसार के समस्त भूभाग पर कहीं कोई मनुष्य निवास नहीं करता था। इन्हीं प्रो. मैक्समूलर ने सन् 1866 में प्रका शत ‘ चप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप’ के पृष्ठ 27 पर लखा है क ‘‘वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या बिल्कुल बचकानी, निकृष्ट, जटिल और अत्यन्त साधारण है।” बाद में यही लेखक इसके वपरीत अपने ऋग्वेद संहिता के भाष्य के चैथे खण्ड में लखता है क ‘‘एक वैदिक वद्वान अथवा वद्वानों की एक पीढ़ी द्वारा भी ऋग्वेद की ऋचाओं के रहस्यों को खोज निकालना असम्भव है।” वेद, वैदिक धर्म एवं संस्कृति के मर्मज्ञ वद्वान स्वामी वद्यानन्द सरस्वती ने मैक्समूलर के इन शब्दों पर अपनी टिप्पणी करते हुए लखा है क ऋग्वेद के सम्बन्ध में इस प्रकार की भावना व्यक्त करने के लए मैक्समूलर तभी ववश हुए होंगे जब उन्हें वहां इतने ऊंचे वचार दीख पड़े होंगे जिनके मुकाबिले में वकासवाद की दीवारें हिलती जान पड़ी होंगी। हम समझते हैं क मैक्समूलर का यह लखना क ऋग्वेद की ऋचाओं के रहस्यों को खोज निकालना असम्भव है, इससे उनका तात्पर्य यह है क ऋग्वेद के मन्त्रों के जो यथार्थ अर्थ हैं वह इतने गम्भीर, अर्थ पूर्ण, महत्वपूर्ण व उपादेय हैं क उनके व उनके समकक्ष वद्वान के लए वेदों के यथार्थ अर्थ जानना, प्रकट करना व बताना असम्भव है। मह र्ष दयानन्द ने अपने वेदाध्ययन में इस तथ्य को साक्षात् कया क वेद मनुष्य कृत ज्ञान न होकर ईश्वर से प्राप्त ज्ञान है और घोषणा की क वेद सब सत्य वद्याओं का पुस्तक है। मैक्समूलर भी प्रकारान्तर से इसका समर्थन करते दीखते हैं।

-
- लेख को वराम देने से पूर्व हम 5,200 वर्ष पूर्व र चत महाभारत में उपलब्ध आर्यो का आदि देष वषयक एक पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। महाभारत में कहा है – ‘‘हिमालया भधानोऽयं ख्यातो लोकेषु पावनः। अर्धयोजन वस्तारः पंचयोजनमायतः।। परिमण्डलयोर्मध्ये मेरूरूत्तमपर्वतः। ततः सर्वाः समुत्पन्ना वृतयो द् वजसत्तम।। ऐरावती वतस्ता च वशाला दे वका कुहू। प्रसूतिर्यत्र वप्राणां श्रूयते भरतर्षभ।।” इसका अर्थ व इस पर टिप्पणी करते हुए इस वषय के अ धकारी मर्मज्ञ वद्वान स्वामी वद्यानन्द सरस्वती अपनी प्र सद्ध पुस्तक ‘आर्यो का आदि देश और उनकी सभ्यता’ में लखते हैं क – ‘संसार में प वत्र हिमालय है। इसमें आधा योजन चौड़ा और पांच योजन घेरे वाला ‘मेरू’ है जहां मनुष्यों की उत्प त्त हुई। यहीं से ऐरावती, वतस्ता, वशाला, दे वका और कुहू आदि नदियां निकलती हैं। इन प्रमाणों में हिमालय के मेरू प्रदेश में प्रथम व आदि सृष्टि होने का वर्णन है।’ वह आगे लखते हैं क इससे भी अ धक पुष्ट प्रमाण हमें इस वषय में मले हैं जिनसे अमैथुनी सृष्टि के हिमालय में होने का निश्चय होता है। जिस मेरू स्थान का महाभारत के उक्त श्लोकों में निर्देष कया गया है, उसी के पास ‘दे वका पंचमे पाशर्वे मानसं सद्धसे वतम्’ अर्थात् दे वका के निवास के पश्चिमी कनारे पर ‘मानस’ है। यह मानस अब एक झील है जो तिब्बत के अन्तर्गत है। एक बार पुनः मह र्ष दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में लखे उनके शब्दों को देख लेते हैं जिनसे महाभारत के उपर्युक्त वचनों की संगति लगती है – ‘मनुष्यों की आदि सृष्टि त्रि वष्टप अर्थात् तिब्बत में हुई और आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश भारत में आकर बसे। इससे पूर्व इस देश का कोई भी नाम नहीं था और न कोई आर्यो के पूर्व इस देश में बसते थे।’ हम समझते है क इससे भारत ही आर्यो का मूल देश सद्ध हो जाता है। इसके वपरीत वचार या मान्यतायें कल्पित, पूर्वाग्रहों से युक्त होने व प्रमाणों के अभाव में निरस्त हो जाती है।

-
- –मन मोहन कुमार आर्य
- पताः **196** चुक्खूवाला**-2**
- देहरादून**-248001**
- दूरभाषः **09412985121**
- # जीव फल भोगने में परतन्त्र क्यों? – इन्द्रजित् देव
- SEPTEMBER 30, 2015 1 COMMENT
- प्रत्येक जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। वह चाहे जैसा कर्म करे, यह उसकी स्वतन्त्रता है। अपने ववेक, ज्ञान, बल, साधन, इच्छा व स्थिति के अनुसार ही कर्म करता है परन्तु अपनी इच्छानुसार वह फल भी प्राप्त कर ले, यह निश्चित नहीं। इसे ही दर्शनान्दु सार फल भोगने में परतन्त्रता कहते हैं।
- कर्म का कर्त्ता व इसका फल भोक्ता जीव है परन्तु वह फलदाता नहीं। यही न्याय की माँग है। फलदाता स्वयं बन जाता तो पक्षपात व अन्यय सर्वत्र व्याप्त हो जाएगा। हम लोग-समाज में देखते हैं क हम कर्म कए बिना फल चाहते हैं। फल भी ऐसा चाहते हैं जो सुखदायक हो। यदि हम चाहते-न-चाहते हुए पाप कर्म कर लेते हैं तो भी फल तो पुण्यकर्म का चाहते हैं-
- फलं पापस्य नेछन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।
- फलं धर्मस्य चेछन्ति धर्मं न कुवन्ति मानवाः।।
- हमारी इच्छानुसार व्यवस्था हो जाए तो अनाचार, अन्याय व अव्यवस्था का साम्राज्य स्था पत हो जाएगा। अतः ईश्वर ने जीव को कर्म करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी है तथा कर्मों का फलदाता वह स्वयं ही है। इससे व्यवस्था ठीक रखन में सहायता मलती है। यदि हमारी इच्छानुसार ही व्यवस्था हो जाए व हम न्याय व सत्य को तिलाञ्ज ल देकर कर्म करेंगे तो समाज में अनाचार, अव्यवस्था व अत्याचार का साम्राज्य स्था पत हो जाएगा। अतः ईश्वर ने जीवों को केवल कर्म करने की स्वतन्त्रता प्रदान की तथा कर्मफल का अ धकार अपने पास ही रखा है। फल भोगने में परतन्त्रता का दूसरा कारण यह है क जीव सर्वज्ञ नहीं है। दूसरों के कर्मों को जानना तो दूर की बात है, वह अपने सभी कर्मों को भी पूर्णतः नहीं जानता। कर्मों की संया न उनका शुभ-अशुभ होना, पापयुक्त या पुण्ययुक्त होना, कस कर्म का क्या फल है- इन बातों की जानकारी जीव को नहीं होती। मनुष्य योनि में रह रहे जीव को यदि तनिक-सा ऐसा ज्ञान हो भी जाए पर मनुष्येतर योनियों में तो ज्ञान होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। मनुष्येतर योनियों में जीव केवल आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन- इन चार कर्मों से अ धक कर्म करने की क्षमता, ज्ञान व इच्छा नहीं होती। मनुष्य योनि में आया जीव उपरोक्त चार कर्मों के अतिरिक्त धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदि से युक्त कर्म करने का सामर्थ्य रखता है परन्तु वह भी एक सीमा तक। अपनी सीमा में रहकर भी अपने सब कर्मों को स्मरण रखना व उनका निर्णय करने की पूर्ण क्षमता जीव में है ही नहीं।
- तीसरा कारण यह है क जीव को फल प्राप्त करने हेतु शरीर, आयु व भोग पदार्थों की आवश्यकता है। शरीर रहित जीव को यह भी बोध नहीं होता क वह है भी अथवा नहीं। प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन व बुद् ध आदि के बिना वह ऐसे रहता है, जैसे

अस्पताल में मूर्च्छित अवस्था में एक व्यक्ति पड़ा रहता है। तब उसे अनुभव नहीं होता क वह है भी अथवा नहीं। वह कौन है, कहाँ है, क्यों है, यह भी ज्ञात नहीं होता। अंग-प्रत्यंग, श्वास-प्रश्वास आदि को प्राप्त करके ही जीव फल भोगने में समर्थ होता है। ये वस्तुएँ उसे पूर्व जन्मों के कृत कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होती हैं।

- इस सबन्ध में मह र्ष दयानन्द सरस्वती जी का निन ल खत लेख वषय को अ धक स्पष्ट करता है-
- प्रश्न– जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र?
- उत्तर– अपने कर्त्तव्य- कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। 'स्वतन्त्र कर्त्ता' यह पा णनीय व्याकरण का सूत्र (=अष्टा. 1/4/54) है जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है, वही कर्त्ता है।
- प्रश्न– स्वतन्त्र कसको कहते हैं?
- उत्तर– जिसके अधीन शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ और अन्तःकरण आदि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता क्यों क जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों की मार के भी अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और अधीनता से काम सद्ध हों तो जीव की पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी भी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक-स्वर्ग अर्थात् दुःख-सुख की प्राप्ति भी परमेश्वर की होवे। जैसे कसी मनुष्य ने शस्त्र- वशेष से कसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं, वैसे पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसी लए सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसी लए कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःख रूप फल और पुण्य के सुख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।
- प्रश्न– जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता। इस लए परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।
- उत्तर– जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है। जैसा ईश्वर और जगत् का उपादान कारण नित्य है और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाए हुए हैं परन्तु वे सब जीव के अधीन है। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप-पुण्य करता है, वही भोक्ता है, ईश्वर नहीं।''
- – सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास
- – चूना भट्ठियाँ, सटी सेन्टर के निकट, यमुनानगर-**135001** (हरियाणा)
-

ईश्वर को प्राप्त करने की सरल व ध क्या है' - मनमोहन कुमार आर्य

- SEPTEMBER 24, 2015 LEAVE A COMMENT
- प्रत्येक व्यक्ति सरलतम रूप में ईश्वर को जानना व उसे प्राप्त करना चाहता है। हिन्दू समाज में अनेकों को मूर्ति पूजा सरलतम लगती है क्यों क यहां स्वाध्याय, ज्ञान व जटिल अनुष्ठानों आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती। अन्य मतों की भी कुछ कुछ यही स्थिति है। अनेक मत वालों ने तो यहां तक कह दिया क बस आप हमारे मत पर वश्वास ले आओ, तो आपको ईश्वर व अन्य सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। बहुत से भोले-भाले लोग ऐसे मायाजाल में फंस जाते हैं परन्तु ववेकी पुरूष जानते हैं क यह

सब मृगमरी चका के समान है। जब रे गस्तान की भू म में जल है ही नहीं तो वह वहां प्राप्त नहीं हो सकता। अतः धा र्मक लोगों द्वारा अपने भोले-भाले अनुयायियों को बहकाना एक धा र्मक अपराध ही कहा जा सकता है। दोष केवल बहकाने वाले का ही नहीं, अ पतु बहकने वाले का भी है क्यों क वह संसार की सर्वोत्तम वस्तु 'ईश्वर' की प्राप्ति के लए कुछ भी प्रयास करना नहीं चाहते और सोचते हैं क कोई उसके स्थान पर तप व परिश्रम करे और उसे उसका पूरा व अ धकतम लाभ मल जाये। ऐसा पहले कभी न हुआ है और न भ वष्य में कभी होगा। यदि कसी को ईश्वर को प्राप्त करना है तो पहले उसे उसको उसके यथार्थ रूप में जानना होगा। उस ईश्वर व जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप को जानकर या फर कसी सच्चे वद्वान अनुभवी वेदज्ञ गुरू का शष्य बनकर उससे ईश्वर को प्राप्त करने की सरलतम व ध जानी जा सकती है। इस कार्य में हम आपकी कुछ सहायता कर सकते हैं।

-
- ईश्वर व जीवात्मा को जानने व ईश्वर को प्राप्त करने की सरलतम व ध कौन सी है और उसकी उपलब्धि कस प्रकार होगी? इसका प्रथम उत्तर है क इसके लए आपको मह र्ष दयानन्द व आर्यसमाज की शरण में आना होगा। मह र्ष दयानन्द ने वेदों के आधार पर अपने ग्रन्थों में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के सत्य व यथार्थ स्वरूप का वर्णन कया है जिसे स्वयं पढ़कर जानना व समझना है। यदि यह करने पर जिज्ञासु को कहीं कं चत भ्रान्ति होती है तब उसे कसी वद्वान से उसे जानना व समझना है। उपासक को मह र्ष दयानन्द की उपासना वषयक मान्यताओं व निर्देशों को अच्छी तरह से समझ कर पढ़ना व अध्ययन करना चाहिये। इस कार्य में मह र्ष दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भू मका, आर्या भ वनय, पंच महायज्ञ व ध, आर्योद्देश्यरत्नमाला, व्यवहारभानु आदि पुस्तकें सहायक हो सकती हैं। आईये, इसी क्रम में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को जानने का प्रयास करते हैं।
-
- जीवात्मा को ईश्वर के उपकारों से उऋण होने तथा जन्म मरण से मुक्ति के लए ईश्वर की उपासना करनी है अतः इन दोनों सत्ताओं के सत्य स्वरूप उपासक को वदित होने चाहिये नहीं तो भ्रान्तियों में पड़कर उपासक सत्य मार्ग का चयन नहीं कर सकता। पहले ईश्वर का वेद व र्णत स्वरूप जान लेते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के 'स्वमन्तव्य–अमन्तव्य प्रकाश' में मह र्ष दयानन्द ने ईश्वर के स्वरूप वा गुण, कर्म व स्वभाव को संक्षेप में बताते हुए लखा है क 'जिसके ब्रह्म परमात्मा आदि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिस के गुण, कर्म, स्वभाव प वत्र हैं। जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं।' ईश्वर के इस स्वरूप का उपासक को बार बार वचार करना चाहिये और एक एक गुण, कर्म, स्वभाव व लक्षण को तर्क वतर्क कर अपने मन व मस्तिष्क में अच्छी तरह से स्थिर कर देना चाहिये। जब इन गुणों का बार बार वचार, चन्तन व ध्यान करते हैं तो इसी को उपासना कहा जाता है। उपासना की योग निर्दिष्ट व ध के लए मह र्ष पंतज ल का योग दर्शन भी पूर्ण सावधानी, तल्लीनता व ध्यान से पढ़ना चाहिये जिससे उसमें व र्णत सभी वषय व बातें बुद् ध में स्थित हो जायें। ऐसा होने पर उपासना व उपासना की व ध दोनों का ज्ञान हो जाता है। ईश्वर के स्वरूप व उपासना व ध के ज्ञान सहित जीवात्मा को अपने स्वरूप के बारे में भी भली प्रकार से

ज्ञान होना चाहिये। जीव का स्वरूप कैसा है? आईये इसे ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव के आधार पर निश्चित कर लेते हैं। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है तो जीव भी सत्य व चेतन स्वरूप वाला है। ईश्वर में सदैव आनन्द का होना उसका नित्य, शाश्वत् व अनादि गुण है परन्तु जीव में आनन्द नहीं है। यह आनन्द जीव को ईश्वर की उपासना, ध्यान व चन्तन से ही उपलब्ध होता है। उपासना का प्रयोजन भी यही सद्ध होता है क ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति व उसकी उपलब्धि करना। ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव प वत्र हैं परन्तु जीव को ज्ञान के लए माता- पता व आचार्य के साथ वैदिक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता होती है, तब यह कुछ कुछ प वत्र बनता है। वह मनुष्य भाग्यवान है क जिसके माता- पता व आचार्य धा र्मक हों व वैदिक वद्या से अलंकृत हों। धा र्मक माता- पता व आचार्य के सान्निध्य व उनसे शक्षा ग्रहण कर ही कोई मनुष्य प वत्र जीवन वाला बन सकता है, अन्यथा नहीं। हमारा आजकल का समाज इसका उदाहरण है जिसमें माता- पता व आचार्य धा र्मक व वैदिक वद्वान नहीं है, और इसी कारण समाज में भ्रष्टाचार, अनाचार व दुराचार आदि देखें जाते हैं। आजकल के माता- पता व आचार्य स्वयं सत्य व आध्यात्मिक ज्ञान से हीन है, अतः उनकी सन्तानों व शष्यों में भी सत्य वैदिक आध्यात्मिक ज्ञान नहीं आ पा रहा है। इसका हमें एक ही उपाय व साधन अनुभव होता है और वह मह र्ष दयानन्द व वेद सहित प्राचीन ऋ ष-मुनियों के ग्रन्थों एवं वेदांगों, उपांगों अर्थात् 6 दर्शन तथा 11 उपनिषदों सहित प्रक्षेप रहित मनुस्मृति आदि का अध्ययन है। इन्हें पढ़कर मनुष्य ईश्वर, जीवात्मा व संसार से संबं धत सत्य ज्ञान को प्राप्त हो जाता है। मह र्ष दयानन्द ने ईश्वर को वेद के आधार पर सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त बताया है। इस पर वचार करने से जीवात्मा अल्पज्ञ, सूक्ष्म एकदेशी बिन्दूवत आकार वाला, सर्वव्यापक ईश्वर से व्याप्य, अनुत्पन्न, अल्पशक्तिमान, दया-न्याय गुणों से युक्त व मुक्त दोनों प्रकार के स्वभाव वाला, ईश्वरकृत सृष्टि का भोक्ता और ज्ञान व वज्ञान से युक्त होकर अपनी सामर्थ्य से सृष्टि के पदार्थों से नाना प्रकार के उपयोगी पदार्थों की रचना करने वाला, कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु उनके फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था के अधीन आदि लक्षणों वाला जीवात्मा है। इस प्रकार से वचार करते हुए हम जीवात्मा के अन्य गुणों को भी जान सकते हैं क्यों क हमारे सामने कसौटी वेद, आप्त वचन व ईश्वर का स्वरूप आदि हैं तथा वचार व चन्तन करने की वैदिक चन्तन पद्धति है। सृष्टि में तीसरा महत्वपूर्ण पदार्थ प्रकृति है जो कारणावस्था में अत्यन्त सूक्ष्म तथा सत्व, रज व तम गुणों की साम्यावस्था है। ईश्वर इसी प्रकृति को अपनी सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता से पूर्व कल्पों की भांति रचकर स्थूलाकार सृष्टि करता है जिसमें सभी सूर्य, ग्रह व पृ थवी तथा पृ थवीस्थ सभी भौतिक पदार्थ सम्मि लत हैं।

-
- अब ईश्वर को प्राप्त करने की व ध पर वचार करते हैं। ईश्वर को प्राप्त करने के लए जीवात्मा को स्तुति, प्रार्थना सहित सन्ध्या-उपासना कर्मों व साधनों को करना है। मह र्ष दयानन्द ने दो सन्ध्या कालों, रात्रि व दिन तथा दिन व रात्रि की सन्धि के कालों में सन्ध्या-उपासना को करने के लए सन्ध्यायेपासना की व ध भी लखी है जिसको जानकर सन्ध्या करने से लाभ होता है। इस पुस्तक की उन्होंने सं क्षप्त भू मका दी है। सन्ध्या के मन्त्र व उनके अर्थ देकर उन्होंने जो सन्ध्या करने का

 वधान लखा है, उसे सभी मनुष्यों को नियतकाल में यथावत करना चाहिये। सन्ध्या व अन्य नित्य कर्मों, दैनिक अग्निहोत्र, पतृ यज्ञ, अति थ यज्ञ एवं ब लवैश्वदेव यज्ञ को करने का फल यह है क ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सद् ध का होना। इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सद्ध होते हैं। इनको प्राप्त होकर मनुष्यों का सुखी होना उ चत है। सन्ध्या के समापन से पूर्व समर्पण का वधान करते हुए उपासक को ईश्वर को सम्बो धत कर सच्चे हृदय से कहना होता है क 'हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सद् धर्भवेन्नः।' इसका अर्थ कर वह कहते हैं क सन्ध्या के मन्त्रों व उनके अर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके आगे समर्पण करें क हे ईश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से जो जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वह सब आपके समर्पण हैं। हम लोग आपको प्राप्त होके धर्म अर्थात् सत्य व न्याय का आचरण, अर्थ अर्थात् धर्म से पदार्थों की प्राप्ति, काम अर्थात् धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन तथा मोक्ष अर्थात् सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना, इन चार पदार्थों की सद् ध हमको शीध्र प्राप्त हो। मोक्ष जन्म व मरण के चक्र से छूटने को कहते हैं। मोक्ष की पहली शर्त है क उपासना व सत्कर्मों को करके ईश्वर का साक्षात्कार करना व जीवनमुक्त जीवन व्यतीत करना। बिना ईश्वर का साक्षात्कार कये मोक्ष वा जन्म मरण से मुक्ति प्राप्त नहीं होती। अतः गौण रूप से समर्पण में यह भी कहा गया है क ईश्वर हमें अपना दर्शन वा साक्षात्कार कराये और हम जन्म-मरण से मुक्त भी हों। ईश्वर का साक्षात्कार होने पर मनुष्य जीवनमुक्त का जीवन व्यतीत करता है और मृत्यु आने पर जन्म-मरण से छूट जाता है।

-
- वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋ षयों अग्नि, वायु, आदित्य व अं गरा को दिया था। ईश्वरीय ज्ञान वेद के हम 3 मन्त्र पाठकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। यह तीनों मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के हैं। मन्त्र हैं- 'अहम्भुवं वसु नः पूव्र्यस्पतिरहं धनानि संजया म शश्वतः। मां हवन्ते पतरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वभजा म भोजनम्।1।', दूसरा मन्त्र 'अह मन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन। सोम मन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन।2।' तीसरा मन्त्र 'अहं दां गृणते पूव्र्य वरवहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्। अहं भुवं यामानस्य चोदितायज्वनः सा क्ष वश्वरिमन्भरे।3।' इन तीनों मन्त्रों के अर्थ हैं प्रथम मन्त्र- ईश्वर सब को उपदेश करता है क हे मनुष्यों ! मैं ईश्वर सब के पूर्व वद्यमान सब जगत् का पति हूं। मैं सनातन जगत्कारण और सब धनों का वजय करनेवाला और दाता हूं। मुझ ही को सब जीव, जैसे पता को सन्तान पुकारते हैं, वैसे पुकारें। मैं सब को सुख देनेहारे जगत् के लये नानाप्रकार के भोजनों का वभाग पालन क लये करता हूं।1। मैं परमैश्वर्यवान् सूर्य के सदृश सब जगत् का प्रकाशक हूं। कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूं। मैं ही जगत् रूप धन का निर्माता हूं। सब जगत् की उत्प त्त करने वाले मुझ ही को जानो। हे जीवो ! ऐश्वर्य प्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग वज्ञानादि धन को मुझ से मांगो और तुम लोग मेरी मत्रता से पृथक मत होओ।2। हे मनुष्यों ! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं। मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझको वह वेद यथावत् कहता, उससे सब के ज्ञान को मैं बढ़ाता, मैं सत्पुरुष का प्रेरक, यज्ञ करने हारे को फल प्रदाता और इस वश्व में जो कुछ है, उस सब कार्य का बनाने और धारण करनेवाला हूं।

इस लये तुम लोग मुझ को छोड़ कर कसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो।3। इन मन्त्रों को प्रस्तुत करने का हमारा अ भप्रायः पाठको को कुछ वेद मन्त्रों व उनके अर्थों से परि चत कराना है। सृष्टि की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु ईश्वरीय ज्ञान वेद का सभी को प्रतिज्ञापूर्वक नित्य प्रति स्वाध्याय करना चाहिये।

-
- मनुष्य जब ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व ध्यान-उपासना करते हुए ईश्वर में मग्न हो जाता है तो समा ध के निकट होता है। कालान्तर में ईश्वर की कृपा होती है और जीवात्मा को ईश्वर का प्रत्यक्ष वा साक्षात्कार होता है। इसका वर्णन करते हुए उपनिषद में कहा गया है क जिस पुरुष के समा धयोग से अ वद्यादि मल नष्ट हो गये हैं, जिसने आत्मस्थ होकर परमात्मा में चत्त को लगाया है, उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है, वह वाणी से कहा नहीं जा सकता। क्यों क उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है। उपासना शब्द का अर्थ समीस्थ होना है। अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उस को सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामीरूप से प्रत्यक्ष करने के लये जो जो काम करना होता है, वह वह करना चाहिये। यहां हम पुनः दोहराना चाहते हैं क उपासना में सफलता के लए मह र्ष दयानन्द के सभी ग्रन्थों में स्तुति-प्रार्थना-ध्यान-उपासना के सभी प्रसंगों को ध्यान से देखकर उसे अपनी स्मृति में स्था पत करना चाहिये और तदवत् आचरण करना चाहिये।
-
- उपासक वा यो गयों को ईश्वर को प्राप्त करने के लए उपासना करते समय कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर से ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार का वेश्म अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है और इसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस होकर भर रहा है, यह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रका शत स्थान के बीच में खोज करने से मल जाता है। दूसरा उसके मलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है। यह शब्द मह र्ष दयानन्द ने स्वानुभूति के आधार पर लखे हैं। तर्क से भी यह सत्य सद्ध हैं। अतः उपासक को इस प्रकार से उपासना करनी चाहिये जिसका परिणाम शुभ होगा और सफलता भी अवश्य मलेगी।
-
- यह भी वचारणीय है क सभी मत मतान्तरों के अनुयायी भन्न भन्न प्रकार से उपासना व पूजा आदि करते हैं। क्या उन्हें उन्हें ईश्वर की प्राप्ति होती है वा नहीं? वचार करने पर हमें लगता है क उससे लाभ नहीं होता, जो लाभ होता है वह उनके पुरूषार्थ तथा प्रारब्घ से होता है। ईश्वर के यथार्थ ज्ञान तथा योग दर्शन की व ध से उपासना कये बिना कसी को ईश्वर की प्राप्ति व धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सद् ध प्राप्त नहीं होती, यह स्वाध्याय व चन्तन से स्पष्ट होता है। अतः ईश्वर की प्राप्ति के लए सभी को वैदिक धर्म व वैदिक उपासना पद्धति का ही आश्रय लेना उ चत है। यही ईश्वर प्राप्ती की एकमात्र सरल व ध है। अन्य प्रकार से उपासना से ईश्वर प्राप्ति सम्भव नहीं है।

- –मनमोहन कुमार आर्य
- पताः **196** चुक्खूवाला-**2**
- देहरादून-**248001**
- फोनः**09412985121**

अमैथुनी सृष्टि के मनुष्यों की आयुः- – राजेन्द्र जिज्ञासु

SEPTEMBER 23, 2015 1 COMMENT

आदि सृष्टि का वैदिक सद्धान्त सर्व वदित है। परोपकारी के गत अंकों में बताया जा चुका है क एक समय था क हमारी इस मान्यता का (अमैथुनी सृष्टि) का कभी उपहास उड़ाया जाता था परन्तु अब चुपचाप करके अवैदिक मत पंथों को ऋ ष दयानन्द की यह देन स्वीकार्य है। परोपकारी में बाइबिल के प्रमाण देकर इस वैदिक सद्धान्त की दिग्विजय की चर्चा की जा चुकी है। हमारे इस सद्धान्त के तीन पहलू हैंः-

1. आदि सृष्टि के मनुष्य बिना माता- पता के भू म के गर्भ से उत्पन्न हुए।
2. वे सब युवा अवस्था में उत्पन्न हुए।
3. उनका भोजन फल, शाक, वनस्पतियाँ और अन्न दूध आदि थे।

इस सद्धान्त की खल्ली उड़ाने वाले आज यह कहने का साहस नहीं करते क आदि सृष्टि के मनुष्य शशु के रूप में जन्मे थे। इसके वपरीत बाइबिल में स्पष्ट लखा है क परमात्मा भ्रमण करते हुए उद्यान में आदम उसकी पत्नी हव्वा की खोज कर रहा था। उनको आवाजें दी जा रही थी क अरे तुम कहाँ हो? स्पष्ट है क पैदा हुये शशु आवाज सुनकर, समझ ही नहीं सकते। वे उत्तर क्या देंगे? उन्होंने लज्जावश अपनी नग्नता को पत्तों से, छाल से ढ़का। लज्जा शशुओं को नहीं, जवानों को आती है।

निर्णायक उत्तरः– बाइबिल से यह भी प्रमा णत हो गया है क अब ईसाई भाई एक जोड़े की नहीं, अनेक स्त्री-पुरुषों की उत्प त्त मान रहे हैं। अब वैदिक मान्यता पर उठाई जाने वाली आप त्तयों का निर्णायक उत्तर हम पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के शदों में आगे देते हैं सृष्टि के आदि के मनुष्यों का, ''आमाशय बच्चों के समान होता तो उनके जीवन-निर्वाह के लए केवल माता का दूध ही आवश्यक था क्यों क बच्चों के आमाशय अ धक गरिष्ठ (पौष्टिक) भोजन को पचा नहीं सकते परन्तु यह बात असभव है कारण? उनकी कोई माता नहीं थी जो उन्हें दूध पलाती परन्तु यदि उनके आमाशय अन्न को पचा सकते थे तो यह स्वीकार करना पड़ेगा क उनके आमाशय युवकों के समान स्वस्थ व सशक्त थे। युवा आमाशय केवल युवा शरीर में ही रह सकते हैं। यह असभव है क आमाशय तो युवा हो और अन्य अंग शैशव अवस्था में हों।''

आर्य दार्शनिक पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने अपने अनूठे, सरल, सबोध तर्क से वरो धयों के आक्षेप का उत्तर देकर आर्ष सद्धान्त सबको हृदयङ्गम करवा दिया।

स्तुता मया वरदा वेदमाता-18

SEPTEMBER 23, 2015 LEAVE A COMMENT

मन्त्र के प्रथम पद में घर में रहने वाले सदस्यों के मध्य भोजन अन्नपान आदि की व्यवस्था सन्तोषजनक होने की बात की है। घर के सभी सदस्यों को उनकी आवश्यकता, वय,

परिस्थिति के अनुसार पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिये। घर में भोजन के शिष्टाचार में बच्चे, बूढ़े, रोगी और महिलाओं के बाद पुरुषों का अधिकार आता है। असुविधा दो कारणों से उत्पन्न हो सकती है- प्रथम आलस्य, प्रमाद, पक्षपात से तथा दूसरी ओर अभाव से। इसके लिये उत्पादन से वितरण तक अन्न की प्रचुरता का शास्त्र उपदेश करता है।

वेद में अन्न को सब धनों से बड़ा धन बताया है। विवाह संस्कार के समय अयातान होम की आहुतियाँ देते हुए मन्त्र पढ़ा जाता है- अन्नं साम्राज्यानां अधिपति- संसार में, जीवन में किसी वस्तु का सबसे अधिक महत्त्व है तो वह अन्न है। वेद ने अन्न को साम्राज्यानां अधिपति कहा है। अन्न संसार में राजा से भी बड़ा है। यदि राज्य में अकालादि के कारण अन्न का अभाव हो जाये तो राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। अन्न नहीं तो मनुष्य नहीं, मनुष्य नहीं तो समाज नहीं फिर देश और राष्ट्र की बात ही कहाँ से आती? इसलिये प्राण को बचाने का आधार होने से अन्न को ही प्राण कहा गया है- अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः।

अन्न की मात्रा की चर्चा करते हुए हर प्रकार से सभी प्रकार के अन्नों को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करने का विधान किया गया है। शास्त्र कहता है- अन्नं बहु कुर्वीत– अन्न को बहुत उत्पन्न करना चाहिए। प्राकृतिक रूप से स्वयं उत्पन्न अन्न जंगली प्राणी, तपस्वी साधकों के लिये होते हैं। नगर, ग्रामवासियों को तो अन्न अपने पुरुषार्थ से उत्पन्न करना पड़ता है। अन्न उत्पन्न करने की पद्धति वेद से प्रतिपादित है। अन्न को उत्पन्न करने की प्रक्रिया को कृषि कहा गया है। अन्न एवं उससे सबन्धित सामग्री का उत्पादक कृषिवलः या कृषक होता है। वेद समस्त मनुष्यों को उपदेश देता है- कृषिमत् कृषस्व, हे मनुष्य तू खेती कर, इसी में पशुओं की प्राप्ति है। इसी से धन की प्राप्ति है। जब वर्षा न होने से अन्नादि की उत्पति न्यून होती है, तब संसार के सारे व्यवसाय स्वयं नीचे आ जाते हैं। समस्त साधनों, सुख-सुविधाओं का मूल खेती है, अतः जो देश समाज सुखी होना चाहते हैं, उन्हें अपनी खेती को गुणकारी और समुन्नत बनाना चाहिए। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कृषि के महत्त्व को देखकर लिखा है कि किसान राजाओं का राजा है। संसार के जीवन का आधार अन्न है और अन्न का आधार किसान है।

संसार में मनुष्य को जीवनयापन के साधनों का संग्रह करना पड़ता है, साधनों के लिए धन प्राप्ति हेतु नाना व्यवसाय करने होते हैं। संसार में हजारों व्यवसाय हैं, परन्तु सभी व्यवसाय गौण हैं। समाज में दो ही व्यवसाय मुय हैं– एक खेती और दूसरा है शिक्षा। एक से शरीर जीवित रहता है, बलवान बनता है, दूसरे से आत्मा सुसंस्कृत होती है। अन्य सभी व्यवसाय तो इन दो से जुड़े हुए हैं।

अन्न को उत्पन्न करने के साथ उसे नष्ट न करने या उसका दुरुपयोग रोकने के लिये भी कहा गया है। कभी अन्न की निन्दा न करने के लिये कहा है, इसीलिये भारतीय संस्कृति में अन्न को देवता कहा गया है। अन्न को जूठा छोड़ने या बर्बाद करने को पाप कहा गया है। हम भोजन कराने वाले को अन्नदाता कहते हैं। अन्न को बुरी दृष्टि से न देखें। अन्न के उत्पादन, सुरक्षा एवं सदुपयोग को मनुष्य के जीवन का अङ्ग बताया गया है। इस प्रवृत्ति के रहते ही मनुष्य अन्न का इच्छानुसार पर्याप्त मात्रा में उपभोग कर सकता है। किसी के प्रेम को प्राप्त करने के उपाय के रूप में प्रेम से भोजन कराने का निर्देश है। स्वामी दयानन्द ने कहा है- भोजन प्राणिमात्र का अधिकार है। हर भूखा प्राणी भोजन का अधिकार रखता है।

ईश्वर न्यायकारी व दयालु अवश्य है परन्तु वह कभी कसी का कोई पाप क्षमा नहीं करता' - मनमोहन कुमार आर्य

SEPTEMBER 22, 2015 LEAVE A COMMENT

ईश्वर कैसा है? इसका सरलतम् व तथ्यपूर्ण उत्तर वेदों व वैदिक शास्त्रों सहित धर्म के यथार्थ रूप के द्रष्टा व प्रचारक मह षे दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों में प्रस्तुत कया है जहां उनके द्वारा प्रस्तुत ईश्वर वषयक गुण, वशेषण व सभी नाम तथ्यपूर्ण एवं परस्पर पूरक हैं, वरोधी नहीं। सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में अपने 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' में ईश्वर के वषय में वह लखते हैं क ईश्वर वह है 'जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिस के गुण, कर्म, स्वभाव प वत्र हैं। जो सर्वज्ञ निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं।' यहां ईश्वर के लए 'न्यायकारी' गुण वा नाम का प्रयोग हुआ है तथा उसे सब जीवों को सत्य न्याय से कर्मों का फलदाता आदि लक्षणयुक्त बताया गया है। मह षे दयानन्द ने ईश्वर के जिस स्वरूप का वर्णन कया है वह वेदों के आधार पर है तथा उसे वेदों से सत्य सद्ध कया जा सकता है। यदि सृष्टि पर दृष्टि डाले तो यह ईश्वर का स्वरूप सृष्टि में वद्यमान नियमों के अनुसार भी सत्य सद्ध होता है। यदि हम सच्चिदानन्द शब्द पर ही वचार करें तो यह शब्द सत्य, चत्त तथा आनन्द से मलकर बना है। यह तीनों गुण ईश्वर में वद्यमान है, यह सच्चिदानन्द शब्द से व्यक्त होता है। सत्य का अर्थ है क ईश्वर की सत्ता है। ईश्वर का अस्तित्व व सत्ता है, यह कथन बन्ध्या स्त्री के पुत्र के समान कल्पित व असम्भव बात नहीं है। सत्तावान पदार्थ दो प्रकार के होते हैं एक दृश्यमान व दूसरे अदृश्यमान। यह ससार तथा इसमें मनुष्य व प्रा णयों के देहादि को हम देखते हैं, यह दृश्य सत्तावान पदार्थ है। आकाश, ईश्वर, जीवात्मा, मूल प्रकृति, वायु में वद्यमान आक्सीजन आदि अनेकानेक गैसें, बहुत दूर और बहुत पास की अनेक वस्तुएं हमें दिखाई नहीं देतीं। यह अदृश्यमान पदार्थ हैं परन्तु इनका अस्तित्व शास्त्र के प्रमाणों तथा युक्ति व तर्क आदि से सद्ध है।

अतः ईश्वर के अदृश्य होने पर भी उसकी सत्ता सत्य है एवं स्वयं सद्ध है जिसे सृष्टि में होने वाले अपौरुषेय कार्यों के सम्पादन वा लक्षणों से भी जाना जा सकता है। सच्चिदानन्द में दूसरी बात यह है क ईश्वर चेतन पदार्थ है। इसका अर्थ है क वह जड़ व निर्जीव पदार्थ नहीं है। जड़ व निर्जीव पदार्थ चेतन जीवों व ईश्वर के प्रयोग व उपयोग के लए होते हैं। जड़ व निर्जीव पदार्थ सृष्टि में प्रकृति व इसके वकार के रूप में यह दृष्टि जगत व इस पर उपलब्ध पृ थवी, अग्नि, जल, वायु आदि हैं। चेतन पदार्थों के दो मुख्य गुण, ज्ञान व कर्म होते हैं। ईश्वर के चेतन तत्व होने के सहित उसमें अन्य असंख्य गुणों में सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमान का गुण भी सम्मि लत है। इन दोनों गुणों के कारण ही उसने यह संसार रचा, इसका पालन करता है व जीवों को उनके शुभाशुभ कर्मानुसार यथावत् सुख व दुःख रूपी कर्म फलों को देता है। इन कार्यों को करने से ईश्वर का स्वरूप चेतन सत्य सद्ध होता है। ईश्वर का तीसरा

गुण उसका आनन्द स्वरुप होना है। ईश्वर आनन्द स्वरूप है, इसका कारण यह है क ईश्वर सृष्टि का रचयिता, पालक व संहारक है। जिस चेतन पदार्थ में आनन्द व सुख-शान्ति का गुण नहीं होगा वह परहित का कुछ अच्छा कार्य भली प्रकार से नहीं कर सकता। दुःखी व्यक्ति तो दया का अ धकारी होता है। उससे सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमत्ता के कार्यों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। हम संसार में प्रत्येक क्षण ईश्वर की सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता के दर्शन करते हैं। वह सूर्य को बना कर धारण कये हुए है। इसी प्रकार से ब्रह्माण्ड में अन्यान्य असंख्य ग्रह, उपग्रह व अन्य पण्ड आदि की रचना कर उसका धारण व पोषण कर रहा है और यह सब भी उसकी व्यवस्था का पालन कर रहे हैं या वह पालन करा रहा है। इससे ईश्वर का सृष्टि में सर्वत्र, सर्वव्यापक व आनन्दमय होना सद्ध होता है। यदि वह आनन्दमय न होता तो सृष्टि की रचना व संचालन न कर सकता। यजुर्वेद के 40/1 मन्त्र में कहा गया है क 'ईशा वास्य मदं सर्वम्' अर्थात् परमैश्वर्यवान् परमात्मा चराचर जगत में व्यापक है। इससे ईश्वर के अस्तित्व व सत्ता सहित उसका चेतन व आनन्दयुक्त होना ज्ञात होता है। परमैश्वर्यववान चेतन सत्ता ही होती है न क जड़ सत्ता। और ऐश्वर्य उसी का होता है जो आनन्दमय या आनन्द से युक्त हो। दुःखी व्यक्ति तो दरिद्र ही होता है। इस ववेचन को प्रस्तुत करने का तात्पर्य यह था क मह षं दयानन्द व र्णत ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव आदि सत्य हैं। अब ईश्वर के न्यायकारी स्वरूप पर वचार करते हैं।

यजुर्वेद के 40/8 मन्त्र में ईश्वर को 'पाप वद्धम्' कहा गया है। इसका अर्थ है क ईश्वर पापाचरण से रहित है। न्याय न करना वा सत्य व न्याय के वरुद्ध आचरण करना पापाचरण होता है और न्याय व इसका आचरण करना धर्माचरण कहा जाता है। ईश्वर सदा सर्वदा तीनों कालों में धर्माचरण करने से न्यायकारी सद्ध होता है। न्याय क्या है? सत्य का पालन और असत्य का त्याग ही न्याय व धर्म है। सत्याचरण अर्थात् धर्म का आचरण व पालन करने वालों को प्रसन्नता व आनन्द प्रदान करना व पापाचरण वा अधर्माचरण करने वालों दण्डित, कष्ट व दुःख देना न्याय कहलाता है। न्यायालय में क्या होता है? जो व्यक्ति सत्य व सदाचार का पालन करता है, उसे वजयी कया जाता है और जो व्यक्ति असत्य पक्ष का होता है उसकी बात स्वीकार न कर उसे दण्डित कया जाता है। पूरा पूरा न्याय कौन कर सकता है? न्याय वह कर सकता है क जो सब मनुष्य आदि प्रा णयों के सब कार्यों को, भले ही वह रात्रि के अन्धकार में छिप पर कोई करे व दिन के प्रकाश में, उन सब कार्यों का प्रत्यक्षदर्शी वा साक्षी हो। दूसरा जिनका न्याय करता है, उनसे अ धक बलवान व बुद् धमान हो अर्थात् सर्वज्ञानमय हो। तीसरा न्यायकर्त्ता कं चत पक्षपात करने वाला न हो। पक्षपात करना सत्य को दबाना और असत्य को अनदेखा करना है। जो चेतन सत्ता, मुनष्य वा ईश्वर, सत्य में स्थित होती है वह न तो पक्षपात करती है और कसी के प्रति अन्याय। वह तो सत्य पक्ष को भी न्याय प्रदान करती है और असत्य को दण्ड देकर भी न्याय ही करती है। सत्य को सम्मानित करना और असत्य को अपमानित व दण्डित करना ही न्याय की मांग है। यदि सत्य को अपमानित होना पड़े और असत्य को महिमा से युक्त कया जाए तो यह घोर अन्याय ही होता है और इसे करने वाला दुष्ट ही कहा जा सकता है। न्याय करने वाली सत्ता का निडर, भयरहित व साहसी होना भी आवश्यक है। यह सभी गुण कुछ कुछ मनुष्यों में मलते हैं परन्तु ईश्वर में इन गुणों की पराकाष्ठा है। अतः ईश्वर पूर्णतया न्यायकारी हो सकता है व वस्तुतः पूर्ण न्यायकारी है भी, इसमें कं चत सन्देह नहीं है। यदि वह न्याय न

करे तो यह संसार चल नहीं सकता। इसमें सर्वत्र अव्यवस्था फैल जायेगी और वश्व में सुख व शान्ति कहीं भी देखने को नहीं मलेगी। वश्व में यत्र तत्र सर्वत्र सुख व शान्ति का होना इस बात का प्रमाण है क वश्व में सत्य व न्याय वद्यमान है।

अब प्रश्न होता है क क्या ईश्वर पापों को क्षमा करता है। वैदिक धर्म से इतर संसार के प्रायः सभी मतों में यह माना जाता है क ईश्वर पापों को क्षमा करता है। हमारे सामने ऐसा कोई मत व सम्प्रदाय नहीं है जो यह न मानता तो क ईश्वर पापों को क्षमा नहीं करता? तर्क यह दिया जाता है क क्यों क ईश्वर दयालु है, इस लये वह मनुष्यों व प्रा णयों को अपनी उदारता के कारण क्षमा कर देता है। ऐसा होना असम्भव है। दया निर्दोषों के प्रति की जाती है, दोषी प्रा णयों के प्रति नहीं। दो षयों को तो दण्ड देना ही दया है। यदि दो षयों पर दया कर उन्हें क्षमा कर दिया जाये तो यह पी ड़तों के प्रति अन्याय हो जायेगा। अतः दो षयों व पा पयों को क्षमादान करने को न्याय नहीं कह सकते। यदि ईश्वर ऐसा करेगा तो वह न्यायकारी नहीं अ पतु पा पयों व अधर्म करने वालों का संरक्षक ही कहा जायेगा। इससे धा र्मक लोग भी पाप करना आरम्भ कर देंगे, इस लए करेंगे क उन्हें यह वश्वास होगा क पाप करके सुख भोगेंगे और क्षमा मांग कर उस पाप के दण्ड से मुक्त हो जायेंगे। यदि ऐसा होता तो सम्भवतः संसार के सभी मनुष्य जमकर पाप करते। सर्वत्र हत्या, चोरी, लूट, असत्य, मारपीट, छीना-झपटी का ही आलम होता। ऐसा नहीं है, इसी लए पाप करते समय मनुष्य के हृदय में ईश्वर की ओर से भय, शंका व लज्जा उत्पन्न होती है और धर्म व परोपकार के कार्य करने में मन व आत्मा में उत्साह, आनन्द और प्रसन्नता होती है जो क अन्तर्यामी ईश्वर की ओर से होती है, स्वतः नहीं हो सकता और न ही अन्य कोई बाहरी सत्ता ऐसा कर सकती है। इससे सद्ध है क ईश्वर धर्म व सत्य का व्यवहार करने वालों को प्रसन्नता देता है और अधर्म व असत्य का व्यवहार करने वालों को डराता है। मह र्ष दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में प्रश्न कया है क क्या ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं? इसका स्वयं उत्तर देते हुए मह र्ष लखते हैं क नहीं, ईश्वर कसी के पाप क्षमा नहीं करता। क्यों क जो ईश्वर पाप क्षमा करे तो उस का न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। इस लए क क्षमा की बात सुन कर ही पाप करने वालों को पाप करने में निभर्यता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा यदि अपरा धयों के अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साहपूर्वक अ धक अ धक बड़े-बड़े पाप करें। क्यों क राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उन को भी भरोसा हो जायेगा क राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने में न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे। इस लए सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता इसका उदाहरण प्रकृति में घट रही एक घटना से मलता है। हर व्यक्ति चाहता है क वह अ धकतम सुखी हो व उसे कोई दुःख न हो। वचार करने में पता चलता है क अ धकतम सुख बलवान व स्वस्थ शरीर तथा धन ऐश्वर्य सम्पन्न मनुष्यों को ही मलता है। अतः यदि ईश्वर पाप क्षमा करता तो सब जीवों को मनुष्यों की श्रेष्ठ योनियां ही मलनी चाहियें थी। जो मत पाप क्षमा व स्वर्ग आदि को मानते हैं वह सब स्वर्ग में होते,

उनको मृत्यु लोक में मनुष्य आदि जन्म लेने की आवश्यकता ही नहीं थी। पाप क्षमा होने पर पशु, पक्षी, कीट व पतंग आदि प्राणी के रूप में तो कसी का जन्म ही न होता क्यों क यह तो पापों का दण्ड हैं। पाप क्षमा होने पर कसी को कोई रोग व शोक तो कदा प न होता क्यों क यह सब हमारे बुरे कर्मों के कारण होते हैं। यदि वह बुरे कर्म क्षमा कर दिये जाते तो फर दुःख व क्लेश का प्रश्न ही पैदा नही होता। क्यों क मनुष्य व अन्य प्रा णयों के रूप में जीवात्मायें वगत लगभग 2 अरबों से जन्म लेती आ रही हैं और दुःख व सुख दोनों भोग रही हैं, अतः सद्ध है क कसी व्यक्ति का कोई पाप क्षमा नहीं हुआ व होता है। अतः ईश्वर को न्यायकारी मानकर हमने जो ववेचन कया है, वह सृष्टि में स्पष्ट व मूर्त रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। लेख को और अ धक वस्तार न देकर हम इसे समाप्त करते हुए कहना चाहते है क ईश्वर न्यायकारी है, वह कसी भी मनुष्य के कसी भी अशुभ व पाप कर्म को क्षमा नहीं करता। अशुभ व पाप कर्मों के सुख व दुःख रूपी फल तो सब जीवात्माओं को अवश्य ही भोगने हांेगेण् कहा है क 'अवश्मेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।' कर्मों का फल भोगे बिना कोई बच नहीं सकेगा। अतः यदि दुःखों से बचना है तो कभी कोई अशुभ कर्म न करें अन्यथा जन्म जन्मान्तरों में भटकना व दुःख अवश्यमेव भोगने होंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

स्तुता मया वरदा वेदमाता-17 समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समानेयोक्त्रे सह वो युनज्मि। सयञ्चोऽग्निं सपर्यतारा ना भ मवा भतः।।

SEPTEMBER 19, 2015 LEAVE A COMMENT

वेद में, परिवार में सुख से रहने और अन्य सदस्यों को सुखी रखने का उपाय बताया है, इस मन्त्र में बहुत सारी छोटी-छोटी प्रतिदिन उपयोग में आने वाली बातों की चर्चा है। मन्त्र के प्रथम भाग में परिवार के अन्दर खानपान कैसा हो, इसकी चर्चा है। भोजनपान में सभी सदस्यों में समानता का भाव रहना चाहिए। पक्षपात का प्रारभ घरों में भोजन और काम के वभाजन से होता है। मनुष्य का स्वभाव है वह कम से कम करना चाहता है और अ धक से अ धक पाना चाहता है। मनुष्य समूह में होता है तो उसकी इच्छा अ धक और अच्छा पाने की रहती है। सभी ऐसा चाहेंगे तो समाधान नहीं होगा, मन में चोरी का भाव आयेगा, छुपकर पाने की और छुपकर खाने की इच्छा होगी। इस प्रकार जो अकेला खाना चाहता है वह पाप करता है, इसी कारण वेद ने कहा है-

केवलाघो भवति केवलादी।

जो मनुष्य अपने आप अकेला खाता है, वह पाप ही खाता है। गीता में भी उपदेश दिया गया है-

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचनयत्म कारणात्।

जो लोग अपना ही पकाकर स्वयं अकेले ही खाना चाहते हैं, उनके लए गीता में कहा गया है- ऐसे व्यक्ति पाप ही पकाते हैं और पाप ही खाते हैं।

वैदिक संस्कृति में भोजन के सबन्ध में बहुत सारे निर्देश मलते हैं। एक गृहस्थ को भी भोजन अपने लए नहीं, यज्ञ के लये बनाने का वधान है। मनु महाराज कहते हैं- गृहस्थ को भोजन पाने की दो स्थितियाँ हैं। एक तो वह भुक्त शेष खा सकता है, दूसरा वह हुत शेष खा सकता है। दोनों ही परिस्थितियों में गृहस्थ का भोजन अपने लये नहीं है। वह शेष भोजी है। शेष तो मुय के उपयोग करने के पश्चात् जो बचता है उसे शेष कहते हैं। ये दोनों बन्धन आजकल के व्यक्ति को बाधक लगते हैं, उसे अपने साथ बड़ा अन्याय लगता है। यथार्थ में वचार करने पर इसमें बड़ा रहस्य ज्ञात होता है। पहली बात मनुष्य अपने लये पकाता है तो कुछ भी, कैसा भी बना कर खा लेता है, उसे बहुत चन्ता करने की आवश्यकता नहीं होती। वशेष रूप से परिवार में जब महिला अकेली रह जाती है, अन्य सदस्य घर पर नहीं होते तो उसे भोजन बनाना व्यर्थ लगता है, वैसे ही कुछ भी बनाकर कुछ भी खाकर काम चलाने की भावना रहती है। पति और बच्चों के रहने पर भोजन यथावत् अच्छा बनाने का प्रयास रहता है। इसी प्रकार घर में अति थ आ जाये तो भोजन कुछ वशेष बनता है, वशेष अति थ के आने पर भोजन की वशेषता बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब भगवान के लए, मन्दिर के लये यज्ञ के लए कुछ बनेगा तो अच्छा बनेगा, वशेष बनेगा आपके घर में सदा वशेष और अच्छा भोजन ही बने इस कारण गृहस्थ के भोजन पर नियम बना दिया गृहस्थ को हुत शेष खाना चाहिये या भुक्त शेष।

मनुष्य के मन में खलाने की भावना आ जाती है तो फर उसके अन्दर से पक्षपात या चोरी का भाव निकल जाता है। मनुष्य जब अकेला खाता है तब छिपकर खाता है परन्तु जब खलाने की इच्छा रखता है तो उसे सबके साथ खाने में आनन्द आता है। तब एक जैसा खाना होता है। भोजन को बांटकर खाता है। भोजन सबके साथ खाना और बांटकर खाना परस्पर प्रीति का कारण होता है परन्तु मुसलमानों की भांति जूठा एक ही पात्र में खाना स्वास्थ्य के लए हितकर नहीं होता। प्रेम का आधार पक्षपात रहित होना है, भोजन का एक स्थान पर होना नहीं है। भोजन सौहार्द और प्रीति का प्रतीक होता है, श्रीकृष्ण जी महाराज जब सन्धि का प्रस्ताव लेकर गये थे, तब दुर्योधन ने कृष्ण की बात तो नहीं मानी परन्तु अति थ के नाते उन्हें भोजन का प्रस्ताव अवश्य दिया, तब श्री कृष्ण ने दुर्योधन से कहा था- दुर्योधन दूसरे के यहाँ भोजन दो परिस्थितियों में कया जाता है या तो उससे अत्यन्त प्रीति हो या स्वयं वपदाग्रस्त हो। हमारे मध्य इन दोनों में से कुछ भी नहीं, अतः मैं तुहारा भोजन अस्वीकार करता हूँ।

सप्रीति भोज्यान्नानि, आपद् भोज्यानि वा पुनः।

न त्वं स प्रयसे राजन न चैवापद गता वयम्।

सभी चार आश्रमों में श्रेष्ठ व ज्येष्ठ गृहस्थाश्रम’- मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

SEPTEMBER 11, 2015 LEAVE A COMMENT

वैदिक जीवन चार आश्रम और चार वर्णों पर केन्द्रित व्यवस्था व प्रणाली है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास यह चार आश्रम हैं और शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण यह चार वर्ण कहलाते हैं। जन्म के समय सभी बच्चे शूद्र पैदा होते हैं। गुरूकुल व वद्यालय में अध्ययन कर उनके जैसे गुण-कर्म-स्वभाव व योग्यता होती है उसके अनुसार ही उन्हें वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण वर्ण आचार्यों व शासन व्यवस्था द्वारा दिये जाने का वधान वैदिक काल में था जो महाभारत काल के बाद जन्म के आधार पर अनेक जातियों में परिवर्तित हो गया। वेदानुसार चार वर्ण मनुष्यों के गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित हैं तो चार आश्रम मनुष्य की औसत वायु लगभग 100 वर्ष के पच्चीस पच्चीस वर्ष के क्रमशः चार सोपान व भाग हैं। प्रथम भाग जन्म से आरम्भ होकर लगभग 25 वर्षों तक का होता है जिसे आयु का ब्रह्मचर्यकाल कहते हैं। जीवन के ब्रह्मचर्यकाल में सन्तान व व्यक्ति को माता- पता-आचार्य के सहयोग से पूर्ण ब्रह्मचर्य अर्थात् सभी इन्द्रियों के संयम, तप व पुरुषार्थ को करते हुए अ धक से अ धक वद्याओं जिनमें वेदाध्ययन प्रमुख है, का अर्जन करना होता है। कन्याओं के लए यह आयु 16 वर्ष या कुछ अ धक होती है क्यों क वैदिक व्यवस्था में युवक द्वारा न्यूनतम पच्चीस वर्ष और कन्या की आयु 16 वर्ष की हो जाने पर उन्हें ववाह करने की अनुमति है। ववाह का होना गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना होता है। ववाह के बाद जो मुख्य कार्य करने होते हैं उसमें ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए आजी वका का चयन और उसका निर्वाह करने के साथ धर्म पूर्वक अर्थात् शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए श्रेष्ठ सन्तानों को उत्पन्न करना, उनका पालन करना व उनके अध्ययन आदि की व्यवस्था करना होता है। गृहस्थ आश्रमी व्यक्ति को इसके साथ नियत समय पर प्रातः सायं योग दर्शन पद्धति व मह र्ष दयानन्द निर्दिष्ट वेद व ध से प्रातःसायं ईश्वरोपासना, दैनिक यज्ञ, पतृयज्ञ, अति थ यज्ञ एवं ब लवैश्वदेव यज्ञ भी यथासमय व यथाशक्ति करने होते हैं। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए सभी स्त्री पुरुषों को सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य व्यवहार करने के साथ देश व समाज सेवा के श्रेष्ठ कार्यों यथा वेद वद्या के अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ व परोपकार आदि कार्यों में यथाशक्ति दान व सहयोग भी करना होता है। 50 वर्ष की आयु तक गृहस्थ जीवन में रहकर जब पुत्र पुत्रियों के ववाह हो जाये और सर के बाल श्वेत होने लगे तब गृहस्थ जीवन का त्याग कर वन में जाकर स्वाध्याय व शास्त्रों का अध्ययन करते हुए ईश्वर प्राप्ति की साधना में समय व्यतीत करना होता है। 25 वर्षों तक इन कार्यों का अभ्यास कर संन्यास लेने का वधान है जिसमें सभी उत्तरदायित्वों से पृथक, निवृत वा उनका त्याग कर देश व समाज के कल्याण की भावना से सद्ज्ञान वेदों की शक्षाओं का गृहस्थियों में प्रचार प्रसार करना होता है। इस संन्यास आश्रम की स्थिति में भी अ धक ध्यान ईश्वर प्राप्ति के लए साधना में लगाना होता है क्यों क ईश्वर साक्षात्कार कर अपना परलोक सुधार करना भी मनुष्य व जीवात्मा का प्रमुख कर्तव्य है। इस प्रकार से वेदों से पुष्ट चार आश्रमों का वधान वैदिक आश्रम व्यवस्था कहलाता है जो समूचे मानव समाज में सर्वत्र कं चत भन्न भन्न रूपों में आज भी वद्यमान दृष्टिगोचर होता है और यही सर्वा धक श्रेष्ठतम सामाजिक व्यवस्था है।

मह र्षि दयानन्द (1825-1883) के समय में देशवासी अन्ध वश्वासों व वदे शयों की दासता से ग्र सत थे और आश्रम व्यवस्था का महत्व भूल चुके थे। जो व्यक्ति जिस अवस्था में होता था उसी को श्रेष्ठ व ज्येष्ठ मानता था। ब्रह्चारी स्वयं को चारों आश्रमों में ज्येष्ठ व श्रेष्ठ तथा वानप्रस्थी व संन्यासी अपने अपने को ज्येष्ठ व श्रेष्ठ मानते थे। गृहस्थी क्यों क प्रायः युवा होते थे अतः वह अपने से अ धक आयु वाले वानप्रस्थियों व संन्या सयों को इस बारे में कुछ कह नहीं सकते थे और इस वषयक शास्त्रीय व प्रमा णत सोच व वचार भी उनमें नहीं था। हमारे शास्त्रों में गुरूकुल में अध्ययनरत ब्रह्मारियों को वशेष महत्व दिया गया है। शास्त्र कहते हैं क यदि ब्रह्मचारी कसी रथ में कहीं जा रहा है और सामने राजा व अन्य लोग मार्ग में कसी चैराहे पर आ जाये तो उस अवस्था में पहले जाने का अ धकार ब्रह्मचारी का होता है। इसका कारण वद्या को महत्व दिया जाना है। यह एक प्रकार से हमारे देश में वेद वद्या को महत्व प्रदान करने के कारण व्यवस्था दी गई थी जो युक्ति व तर्क संगत है। इन सब परिस्थितियों को जानते समझते हुए जब मह र्ष दयानन्द ने सन् 1874 व 1883 में आदिम सत्यार्थ प्रकाश व उसके संशो धत संस्करण तैयार कये तो उन्होंने भी चार आश्रमों में ज्येष्ठ आश्रम कौन सा है? इस पर भी वचार कया। उनके वचार तर्क व युक्ति संगत एवं स्थिति का नीर क्षीर व सारग र्भत वश्लेषण करते हैं। पाठकों के लाभार्थ उनके वचार प्रस्तुत हैं।

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ का चौथा समुल्लास समावर्तन, ववाह और गृहस्थाश्रम पर मह र्ष दयानन्द का वैदिक मान्यताओं पर उपदेश है। इस समुल्लास के अन्त में उन्होंने गृहस्थाश्रम पर प्रश्न करते हुए कहा क गृहाश्रम सब से छोटा वा बड़ा है? इसका उत्तर देते हुए वह लखते हैं क अपने–अपने कर्तव्यकर्मों में सब बड़े हैं। परन्तु यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्र मणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।1।। यथा वायुं समा श्रत्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमा श्रत्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः।।2।। यस्मात्त्रयोऽप्याश्र मणो दानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धारयन्ते तस्माज्जयेष्ठाश्रमो गृही।।3।। स संधारय्य: प्रयत्नेन स्वर्गमक्षय मच्छता। सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।4।। (यह चारों मनुस्मृति के श्लोक हैं)।

मनुस्मृति के इन चार श्लोकों का अर्थ करते हुए मह र्ष दयानन्द लखते हैं क जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं।।1।। बिना इस आश्रम के कसी आश्रम का कोई व्यवहार सद्ध नहीं होता है।।2।। जिस से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है।।3।। इस लये जो (अक्षय) मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने के योग्य नहीं है उसको (भीरु व निर्बल लोगों से इतर स्त्री पुरुष) अच्छे प्रकार धारण करे।।4।। मह र्ष दयानन्द आगे लखते हैं क इस लये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उस का आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्प त्त के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहां से हो सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री पुरुष दोनों

परस्पर प्रसन्न, वद्वान, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहार के ज्ञाता हों। इस लये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य (सभी इन्द्रियों व इच्छाओं का संयम व उन पर नियंत्रण) और पूर्वोक्त स्वयंवर (आजकल प्रच लत नाम लव मैरिज) ववाह है।

गृहस्थाश्रम की ज्येष्ठता के वषय में मह र्ष दयानन्द के समय में जो भ्रान्ति थी उसको उन्होंने सदा सदा के लए दूर कर दिया। मह र्ष दयानन्द के इन वचारों को भारतीय वा हिन्दू मत ने पूर्णतः स्वीकार कया है, यह अच्छी प्रशंसनीय बात है। यदि हमारा हिन्दू समाज मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फ लतज्योतिष, मृतक श्राद्ध को छोड़कर वैदिक मान्यताओं को अपना ले तथा ववाह में जन्मपत्री को महत्व न देकर युवक व युवती के गुणकर्मस्वभाव को महत्व दें और जन्मना जाति प्रथा को समाप्त कर दें, तो देश व समाज को बहुत लाभ हो सकता है क्यों क पौरा णक मान्यताओं का आधार सत्य पर नहीं है जिसे मह र्ष दयानन्द ने अपने समय में शास्त्रीय प्रमाणों के साथ युक्ति व तर्क से भी सद्ध कया है। यहां यह भी ध्यान देने योग्य है क गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्यों को लोभी व स्वार्थी न होकर दानी व परोपकारी होना चाहिये, यही प्रत्येक व्यक्ति के निजी व समाज के हित में होता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात है क गृहस्थ में रहते हुए सभी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये जिससे सभी निरोगी होकर दीघार्य हों। आज रोगों व अल्पायुष्य का कारण हमारा दू षत खान-पान, अनिय मत दिनचर्या, बड़ी बड़ी महत्वाकांक्षाओं संबंधी तनाव एवं वैदिक जीवन मूल्यों से दूर जाना है। वैदिक मूल्य वा वैदिक जीवन पद्धति ही आज की समस्त समस्याओं का एकमात्र निदान है। आईये, वेद की शरण लेकर जीवन को सुखी व जीवन के लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर आगे बढ़ें व उसे प्राप्त करें।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

आर्य और ईस्वी महीनो की तुलना – आर्य महीनो का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

AUGUST 26, 2015 1 COMMENT

पाठकगण ! इस लेख द्वारा हम यूरोपीय (ईसाई) तथा पंचांगों की तुलना करना चाहते हैं और यह दिखाना चाहते हैं की आर्य पंचांग में वशेषता और गुण क्या हैं।

ये जानना आज इस लए भी आवश्यक है की हमारे देश में एक ऐसी प्रजाति भी वक सत हो रही है जो ईसाइयो के अवैज्ञानिक और पाखंडरुपी चुंगल में फंसकर अपनी वैदिक संस्कृति जो

पूर्ण वैज्ञानिक आधार पर है उसे नकार कर अन्ध वश्वास में लप्त होकर देश व धर्म का अहित करते जा रहे हैं।

दे खये जो हमारे आर्य महीनो के वैदिक आधार पर पंचांगानुसार नाम हैं वो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कतना उन्नत और व्यवस्थित रूप है जब क ईसाइयो के महीनो का कच्चा चटठा हम इस पोस्ट के माध्यम से रखेंगे। आशा है आप सत्य को जान असत्य को त्याग देंगे।

ईसाई महीनो के नाम :

जनवरी (January) : यह वर्ष का प्रथम मास (Astronomy) ज्योतिष है जिसे रोमननिवा सयो ने एक देवता जेनस को सम र्पत कया और उसके नाम पर महीने का नाम रखा। उनका वश्वास था की इस देवता के दो शीश (सर) थे, इस लए यह दोनों और (आगे, पीछे) देख सकता था। यह देव आरम्भ देव था जिसको प्रत्येक काम के आरम्भ में मनाया जाता था। चूँ क जनवरी वर्ष का प्रथम मास है इस लए इसका नाम जेनसदेव के नाम पर रखा गया।

फ़रवरी – प्रायश्चित का महीना।

मार्च – लड़ाई के देवता "मार्स" के नाम पर रखा गया।

अप्रैल – यह महीना जब पृथ्वी से नए नए पत्ते, क लयाँ और फल फूल उत्पन्न होते हैं। यह नाम उस महीने की ऋतु का द्योतक है।

मई – यह महीना प्रारं भक भाग। भावार्थ यह है की इस मास में ऋतु ऐसी शोभायमान होती है जैसे नवयुवक और नवयुववतिया।

जून – छठा महीना जो आरम्भ में केवल २६ दिन का होता था इसके नाम का शब्दार्थ छोटा महीना है। महाराज जू लयस सीज़र के समय से इस महीने की अव ध ३० दिन की मानने लगे हैं।

जुलाई : जू लयस सीज़र के नाम पर, जो इस महीने मैं पैदा हुआ था यह नाम रखा गया।

अगस्त : महाराज अगस्टस सीज़र के नाम पर यह नाम रखा गया। चूं क जू लयस सीज़र के नाम पर रखा जाने वाला जुलाई का महीना ३१ दिन का होता था और है, इस लए अगस्टस सीज़र ने अगस्त का महीना भी उतने ही अर्थात ३१ दिन का रखा। और यह महीना तब से ३१ दिन का चला आता है।

सतम्बर : शब्दार्थ सातवां महीना क्यों क रोमनिवासी अपना वर्ष मार्च से प्रारम्भ करते थे।

अक्तूबर : शब्दार्थ आठवां महीना। रोमनिवासीयो के अनुसार आठवां महीना।

नवम्बर : शब्दार्थ नवां महीना। रोमनिवासीयो के अनुसार नवां महीना।

दिसम्बर : शब्दार्थ दसवां महीना। रोमनिवा सयो के अनुसार दसवां महीना।

तो मेरे मत्रो ऊपर दिए शब्दार्थो से आपको वदित होगा की अंग्रेजी महीनो के कुछ के नाम देवताओ के नाम पर, कुछ के ऋतु के अनुसार, कुछ के महाराजाओ के नाम पर और शेष के क्रम के अनुसार नाम रखे गए हैं। यानी कोई वैज्ञानिक आधार इस अंग्रेजी वर्ष और उसके दिए महीनो में नहीं निकलता।

अब हम आपको आर्य महीनो के नाम जो वैदिक पंचाग व्यवस्थानुसार सम्पूर्ण वैज्ञानिक रीति पर आधारित हैं उनसे परिचय करवाते हैं।

इन आर्य महीनो के नामो के शब्दार्थ समझने से पहले हमें कुछ ज्योतिष सद्धांत समझ लेने चाहिए तभी इन महीनो का वैज्ञानिक आधार और नामो का शब्दार्थ पूर्ण रूप से समझ आएगा। पोस्ट बड़ी न हो इस लए थोड़ा ही समझाया जा रहा है।

1. आर्य ज्योतिष के अनुसार पृथ्वी सूर्य के चारो और एक अंडाकार वृत्त में ३६५-२४ दिन में घूमती है। यह अंडाकार मार्ग बारह भागो में वभाजित है और उन १२ भागो के नाम मेष, वृष, मथुन, कर्क, संह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन हैं। इन १२ भागो नाम भी १२ रा शयों के नाम से वख्यात हैं। इसी ज्योतिष गणना को यदि वस्तार से बतलाओ तो लेख बहुत लम्बा हो जाएगा इसके बारे में कसी अन्य पोस्ट पर वस्तार से बताया जाएगा।

जिस प्रकार पृथ्वी सूर्य के चारो और एक अंडाकार वृत्त में घूमती है। इसी प्रकार चन्द्रमा भी पृथ्वी के चारो और एक अंडाकार वृत्त में २७ दिन ८ घंटे में घूम आता है। इसका मार्ग २७ भागो में वभाजित है और प्रत्येक भाग को नक्षत्र कहते हैं। २७ नक्षत्रो के नाम इस प्रकार हैं :

1. अश्विनी 2. भरणी 3. कृ त्तका 4. रोहिणी 5. मृग शरा 6. आर्द्रा 7. पुनर्वसु 8. पुष्य ९. अश्लेषा 10. मघा 11. पूर्वाफाल्गुनी 12. उत्तराफाल्गुनी 13. हस्त 14. चत्रा 15. स्वाती 16. वशाखा 17. अनुराधा 18. ज्येष्ठा 19. मुल 20. पुर्वाषाढा 21. उत्तरषाढा 22. श्रवण 23. धनिष्ठा 24. शत भषा 25. पूर्वभाद्रपद 26. उत्तरभाद्रपद 27. रेवती

आज पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र है इसका अ भप्राय है की आज चन्द्रमा पृथ्वी के चारो और के मार्ग के पूर्वाषाढ़ा नामक भाग में है।

हम पृथ्वी पर रहने वाले हैं पृथ्वी के साथ साथ घुमते हैं। इस कारण हमको पृथ्वी स्थिर प्रतीत होती है और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों घुमते दिखते हैं।

जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच में पृथ्वी होती है तो चन्द्रमा का वह अर्थ भाग जिस पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है पृथ्वी की और होता है। इसी कारण ऐसी अवस्था में चन्द्रमा सम्पूर्ण प्रकाशवान दीखता है अतः पूर्णमासी को जब चन्द्रमा पूर्ण प्रका शत होता है, चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वी के दोनों और उलटी दिशा में होते हैं।

आर्य महीनो के नाम नक्षत्रो के नाम पर रखे गए हैं। पूर्णमासी को जैसा नक्षत्र होता है उस महीने का नाम उसी नक्षत्र पर रखा गया है, क्यों क पू र्णमा को सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी के दोनों और उलटी दिशा में होते हैं।*

महीनो के नाम नक्षत्रानुसार इस प्रकार हैं :

1. चैत्र – चत्रा

2. वैशाख – वशाखा

3. ज्येष्ठ – ज्येष्ठा

4. आषाढ़ – पूर्वाषाढ़

5. श्रावण – श्रवण

6. भाद्रपद – पूर्वाभाद्रपद

7. आश्विन – अश्विनी

8. का र्तक – कृ त्तका

9. मार्ग शर – मृग शरा

१० पौष – पुष्य

11. माघ – मघा

12. फाल्गुन – उत्तरा फाल्गुन

इसी आधार पर हमें अंतरिक्ष में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सभी ग्रहो की चाल, और अभी वो कस जगह स्थित हैं ये पूर्ण जानकारी इसी वज्ञानं के आधार पर मलती जाती है।

सर डब्ल्यू जोंस की यह भी सम्मति है की आर्यो के महीनो के नाम इत्यादि से पूरा पता लगता है की आर्य ज्योतिष अत्यंत पुरानी है। आर्यो में प्राचीन काल में वर्ष पौष मास से आरम्भ होता था जब दिन अत्यंत छोटा और रात अत्यंत बड़ी होती है। इसी कारण मार्ग शर मास का द् वतीय नाम अग्र्हन्य था, जिसका अर्थ यह है की वह महीना जो वर्ष आरम्भ होने से पहले हो।

मेरे सभी हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई भाइयो से निवेदन है की वो इस अंग्रेजी महीने जो देवता, महाराज ऋतु इत्यादि के नाम पर रखे गए हैं त्याग देवे और अपने पूर्ण वज्ञानी रीति से जो आर्य महीने हैं उनकी प्रतिष्ठा को जान लेवे।

प्राचीन आर्य पुरुष ज्योतिष में अवश्य वशेष ज्ञान प्राप्त कर चुके थे और उनके ज्ञान के टूटे फूटे चन्ह ही आज तक आर्य समाज में पाये जाते हैं। क्या अच्छा हो यदि हम प्राचीन आर्य सभ्यता का मान करे और उसके बचे बचाये चन्हो से नयी नयी खोज कर समाज के सामने रखे जिससे देश व धर्म का कल्याण हो।

ये केवल संक्षेप में बताया गया फर भी इतनी बड़ी पोस्ट हो गयी, ले कन इसे नजरअंदाज न करे और वेद धर्म का प्रचार करे ता क हमारे अन्य हिन्दू भाई ईसाइयो के अन्ध वश्वास में न पड़े।

आओ लौटो वेदो की और

नमस्ते।

*इसमें सूर्य सद्धांत प्रमाण है :

भचक्रं भ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।
नक्षत्र नाम्ना मासास्तु क्षेयाः पर्वान्त योगतः।

अर्थात दैनिक भचक्र का भ्रमण करना ही नाक्षत्रिक दिन है।

पू र्णमानता धष्ठित नक्षत्र के नाम से मास का नाम जानना चाहिए।

सन्ध्याः- सच्चा स्थाई बीमा –श्री पं. चमूपति एम.ए.

AUGUST 24, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ3म् वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तँ शरीरम्।

ओ3म् क्रतो स्मर क्लिबेस्मर कृतँ्स्मर।।

-यजु. अ. 40 ।। मं. 15।।

प्राण जीवन की कला है। इसके चलने से शरीर चलता है, इसके रुकने से शरीर रुक जाता है। परमात्मा ने प्राणों की गति में कुछ ऐसा अनुपात रक्खा है, क एक श्वास-प्रश्वास की मात्रा बिगड़ी नहीं और यह अद्भूत यन्त्र वकृत हुआ नहीं। इसी गति के बिगाड़ का फल रोग और उसी का फल अन्त को मृत्यु है। जब यह बोलता चलता पा र्थव पुतला अचानक मौन साध बैठा, अर्थात् जीव ने शरीर से प्रस्थान कया, तो इसे ज्वाला की भेंट चढ़ायेंगे। उसका सारा सौन्दर्य तथा बल मुट्ठी भर भस्म होगा। फर तो प्राण-वायु, वायु-तत्व में जा मलेगा। मृत शरीर में भी वायु का प्रवाह तो होगा, परन्तु प्राण रूप में नहीं। तब उस शरीर से जीव का क्या सबन्ध?

उस समय जीव की अवस्था उस धनाढ्य की सी होगी, जिसने सारी आयु संसार में घूम-घूमकर वैभव इकट्ठा कया, एड़ी चोटी का बल लगाकर पूँजी कमाई, सारे घर को धन-धान्य से भर दिया, अकस्मात् एक दिन लकड़ी के ढेर में चनगारी सुलगती रहने से भवन में आग लग गई। ईश्वर ने इतनी ही कृपा की क कार्यवश गृह-स्वामी कुटुब सहित घर से बाहर था। लो। उन कपड़ों को आग लग रही है जो देश- वदेश के कारखानों से आये थे, कु सयाँ और मेजें ज्वाला के मुख में है। जिन दीवारों की सफेदी बिगड़ने के भय से माघ के शीत में आग न

जलाते थे, आज ईंधन ने उन पर काला रोगन कर दिया। पुस्तकों का तो नाम ही न रहा। उनके पत्र तथा अक्षर सबने म स का चोला स्वीकार कया है।

कड़। कड़।। कड़।।। शहतीर तथा क ड़याँ गर रही हैं जो सामग्री जलने की न थी, वह उनके दबाव में टूट गई। अब तो न बर्तन रहे, न भूषण, न कोई और नित्य निर्वाह की सामग्री। लाा का घर राख हो जाता है। पानी की गाड़ी आती है और गगनचुबी ज्वालाओं को बुझाती है। पर जो पदार्थ नष्ट हुए, उनको फर कौन लौटा लाएगा?

नगर का एक प्र सद्ध धनाढ्य पस गया। आओ । हम भी आ र्थक सहायता न सही, मौ खक सहानुभूति तो प्रकट कर दें। हम मुख को कुछ शोकावृत-सा बना लेते हैं क सहानुभूति हार्दिक प्रतीत हो। पर सेठजी की मुख कली वैसे ही प्रफुल्लित है, जैसी आग की आप त्त से पूर्व थी। कहते हैं- ''यह कोई मेरा बड़ा गोदाम न था। मेरा धन कसी वशेष स्थान में अथवा सामग्री के रूप में स्थित नहीं, कन्तु सारा व्यवसायों में लगा है। कपनियों में हिस्से हैं, अपने कार्यालय हैं, जिनसे स्थाई आय आती है। जो भवन जल गया, इसका भी बीमा करा दिया था। सो चट्ठी भेजी है, रुपया आ जाएगा, फर नया भवन बनवा लेंगे।''

शरीर रूपी भवन को भस्म होते देखने वाले जीव। क्या मन की यही अवस्था है जो उक्त सेठ की थी? क्या तेरी शारीरिक सप त्त भी व्यवसायगत है? क्या इससे तुझे स्थाई आय है? अर्थात् तेरी शारीरिक शक्तियों का प्रयोग ऐसा है, जिससे आत्मिक बल सदैव बढ़े? क्या इस शरीर के छूटने पर इससे अच्छा शरीर मलेगा? या मरे पीछे तू मुक्तिधाम को प्राप्त हो जाएगा? यदि अब तक यह यत्न नहीं कया तो आ, अब करें।

आत्मिक बही की पड़ताल

कसी प्रकार की भी उन्नति करने से पूर्व आवश्यक है क अपनी वर्तमान अवस्था का पूरा ज्ञान प्राप्त कया जाए।

व्यापारी दूसरे दिन की बिक्र ी उसी समय करता है, जब पहले दिन की बही मला चुके अर्थात् आय व्यय की तुलना करके देख ले क कतना बचा है? जिसको अपनी पूँजी का पता नहीं वह उसकी वृद् ध के उपाय क्यों कर करेगा?

प्रय मुमुक्षु। तू पहले अपनी आत्मिक अवस्था पर दृष्टि डाल। वेद कहता है ''कृतं स्मर'' अर्थात् अपने कए की याद कर। क्या कहीं श थलता है? त्रुटियाँ हैं? आलस्य उनकी निवृ त्त में बाधक है। समाज का भय उठने नहीं देता? लज्जा के कारण निर्बल है? ले, इसका भी एक अचूक उपाय है। ''क्लिबे स्मर'' अर्थात् बल के लए स्मरण कर। कसका? अर्थात् उस प वत्र पतितपावन,बल के पुञ्ज सर्वशक्ति के आधार, धर्मस्वरूप, तेज के स्रोत प्राु परमात्मा का। बस यही तीन कार्य हैं, जो तुझे प्रतिदिन करने हैं। (1) अपने आचरण पर ध्यान देना, (2) उसमें आई त्रुटियों को वचार गोचर रखना, और (3) सब बलों के भण्डार सर्वशक्तिमान् का स्मरण करना।

लोगों ने मृत्यु को भयानक समझा है। वास्तव में मृत्यु एक परिवर्तन है। मरते हुए पं. गुरुदत्त से लोगों ने पूछा- ''आप प्रसन्न क्यों है?'' कहा- ''इस देह में दयानन्द न हो सके थे, इससे

उत्तम देह पायँगे तो दयानन्द बनेंगे।'' जो परिवर्तन उन्नति का द्वार हो उसका स्वागत खुले दिल से कया जाता है। जिससे पतन की सभावना हो उससे डरते हैं। मृत्यु शत्रु है तो उसे जीत। घबराने से और भीरु होगा।

शक्तिमान् के स्मरण से शक्ति

शंका हो सकती है क परमात्मा के स्मरण-मात्र से ही शक्ति क्यों कर आएगी? यह बात जितनी गूढ है, उतनी आनन्दप्रद भी है। बच्चा नंगे सर कसी गली में ेलता है। अपने वचारानुसार जिस बालक को अपने से अच्छा समझता है, उसका अनुकरण करने लगता है। वह लाल रंग का कुर्ता पहने है, तो इसे भी लाल रंग का कुरता चाहिए। बड़ा हुआ, पाठशाला गया। अपने सहपाठियों में से कसी को आदर्श वद्यार्थी जानकर उसका अनुकरण करता है। छोटी श्रे णयों के लए बड़ी श्रे णयों के वद्यार्थी आचार व्यवहार में नेता हैं। बड़ों के लए उनका अध्यापक। यह अवस्था मनुष्य के सपूर्ण जीवन में बनी रहती है। कहते हैं, मरते समय भी जैसे संकल्प होते हैं वैसी ही योनि आगे मलती है। कथन का सार यह है क मनुष्य बिना मान सक आदर्श के नहीं रह सकता। कौन कह सकता है क खयाली नेताओं के नित्यप्रति चन्तन से बालक तथा मनुष्य की आत्मा को क्या लाभ अथवा हानि पहुँची? यह लोकोक्ति अक्षरशः सत्य है-

As a man thinketh, so he becometh अर्थात् जैसा मनुष्य सोचता है वैसा वह बन जाता है।

ग र्भणी माता के हृदय में जो संकल्प- वकल्प उठते रहते हैं, वह गर्भ स्थित बच्चे के मान सक जीवन का आधार बनते हैं। यदि मनन-शक्ति इतनी प्रभावशा लनी है, तो उस परमेश्वर के गुणों के स्मरण का लाभ जिसे नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सर्वशक्तिमान् इत्यादि वशेषणों से युक्त कहा है, क्या-क्या चमत्कार न दिखाएगा? एडीसन की माता एडीसन को पेट में रखती हुई निरन्तर वैज्ञानिक यन्त्रों का ध्यान करती रही तो एडीसन संसारभर का बड़ा वज्ञानवेत्ता हुआ, और मंगलादि नक्षत्रों से वद्युत द्वारा वार्त्तालाप का सबन्ध स्थिर करने लगा। उपासक भी अपने हृदय-गर्भ में सर्व-शक्तिमान् का ध्यान धारण करे तो अवश्य उसका आत्मा अपूर्व-शक्ति को प्राप्त होगा। बलवान् का स्मरण करना वास्तव में बल के लए अपनी आत्मा के कवाड़ खोलना है।

तो फर आ। उन्नति के पपासु। एक तो अपने नित्य-कृत्यों की पड़ताल कया कर। दूसरे, उस दुःखों के मोचनहार मुक्त स्वभाव को सदैव दृष्टिगोचर रख, जिसका स्मरण सर्वतः कल्याणप्रद है। उस मट्टी के पौधे की भाँति जो नारंगी के साथ जोड़ा जाकर स्वयं नारंगी का वृक्ष बन जाता है, और ''सग्ङतरे'' के नाम से स्पष्टतया जताता है, क मैं उत्तम सग्ङ तरे से तर गया हूँ, तू भी उस प्रयतम को अपनी दृष्टि का तारा बना और उसकी ज्योति में ज्योतिर्मय बन जा। फर देख अन्धकार निकट भी फटकता है? हाँ,हाँ उस निस्संग के उत्तम संग से तर।

मह र्ष दयानन्द का भारत के यथार्थ इतिहास पर महत्वपूर्ण उपदेश' -मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

AUGUST 22, 2015 1 COMMENT

मह षे दयानन्द (1825-1883) का सारा जीवन ईश्वर की खोज, मृत्यु पर वजय, योग, अध्ययन-अध्यापन, उपदेश, वेद-धर्म प्रचार, शास्त्रार्थ, समाज सुधार व अनुमानतः सन् 1857 के देश की आजादी के लए संग्राम में गुप्त रूप से कार्य करने में व्यतीत हुआ था। मह षे दयानन्द बाल ब्रह्मचारी थे। वह जन्म से ही प्रतिभाशाली, सुदृण व स्वस्थ शरीर, गौर वर्ण, आकर्षक व्यक्तित्व वाले व सत्य के प्रति दृण आस्थावान थे। मह षे दयानन्द जी की मातृभाषा गुजराती थी। उन्होंने संस्कृत का अध्ययन कया था और इस भाषा के वार्तालाप, प्रवचन-उपदेश करने व लेखन करने में उन्हें पूरा अ धकार व सद्धहस्ताता प्राप्त थी। महाभारत काल के बाद देश के वेदों के वह शीर्षस्थ वद्वान थे। उनकी तुलना का वेदों का वद्वान महाभारत काल व उनसे पूर्व व अद्याव ध भी इतिहास के पन्नों पर अं कत नहीं है। वेद ही उनके जीवन का आधार था। उनके सभी कार्य वेदों से प्रेरित व संचा लत थे। उन्होंने मध्याकालीन व बाद के ब्राह्मणों ने वेदों के जो मथ्यार्थ कर उसे कलं कत कया था, उस कलंक को पूरी तरह धोकर शुद्ध व निर्मल स्वरूप प्रदान कया। आज स्थिति यह है क वेदों की अन्तःसाक्षी के आधार पर कहा जा सकता है क वेदों के समान कोई भी धर्म-मत-सम्प्रदाय का ग्रन्थ इस पृ थवी पर नहीं है। वेद सर्वोपरि हैं एवं सब सत्य वद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना ही एकमात्र परम पुनीत मानव मात्र का यथार्थ धर्म है। वह जहां भी जाते थे, शुद्ध व सरल संस्कृत ही बोला करते थे। यद्य प सभी वद्वान संस्कृत समझते थे परन्तु जब वह साधारण जनता में संस्कृत में उपदेश करते थे तो उन्हें संस्कृत से हिन्दी के अनुवादक की आवश्यकता होती थी। इस कार्य के लए वह पौरा णक वद्वानों की सेवायें लेते थे जो स्वामी जी के कहे गये शब्दों को ही अनुवाद न कर उनके वचारों को अपनी मान्यताओं के अनुरूप तोड़ते मरोड़ते थे। अतः ब्रह्म समाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन के परामर्श पर उन्होंने आर्यभाषा हिन्दी का प्रयोग करना आरम्भ कया। इसके कुछ काल बाद उन्होंने अपना मुख्य दिव्य ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' प्रका शत कराया। यह ग्रन्थ उनके द्वारा पण्डितों को बोलकर लखाया गया था। लेखन के लए उनके पास ब्राह्मण लेखक थे जिन्होंने यत्र तत्र उनके बोले गये अ भप्राय के वरूद्ध अपनी मान्यताओं के वाक्यों को प्र वष्ट कर दिया। स्वामी जी के पास अवकाश न होने के कारण न तो वह इस ग्रन्थ को लखवाने के बाद उन लेखकों से सुन पाये और न हि छपने से पूर्व प्रूफ देख पाये थे। इस कारण प्रका शत होने के पश्चात पाठकों ने उन्हें कुछ अशुद् धयां अवगत कराई थी। इस मुख्य व अन्य कुछ कारणों से उन्होंने कुछ समय बाद इस ग्रन्थ का दूसरा शुद्ध संशो धत संस्करध्स भी तैयार कर प्रका शत कराया जो आजकल सर्वत्र उपलब्ध होता है। प्रथम संस्करण को आदिम सत्यार्थ प्रकाश भी कहा जाता है। इसी प्रथम संस्करण से हम आज उनका एकादश समुल्लास में प्रस्तुत देश के प्राचीन यथार्थ इतिहास पर एक धर्मोदेश प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे पाठक इतिहास वषयक कुछ नये तथ्यों से न केवल परि चत हो सकें अ पतु मह षे के इतिहास वषयक ज्ञान व उनकी भाषा से भी कुछ कुछ परि चत हो सकें। इस लेख के शेष भाग आगे के लेखों में जारी रखेंगे।

उनका धर्मोपदेश प्रस्तुत है-'सरस्वतीदृषद्वत्योदेवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनि र्मतं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते।' **(मनुस्मृति 2/17)**। सरस्वती जो क गुजरात और पंजाब के पश्चिम भाग में नदी है, उससे लेके नैपाल के पूर्वभाग की नदी से लेके समुद्र तक इन दोनों के बीच में जो देश है, सो आर्यावर्त्त देश है और वे देवनदी कहाती है। अर्थात् दिव्य देश के प्रान्त भाग में होने से देव

नदी इनका नाम है। सो देश देव नि र्मत है अर्थात् दिव्य गुणों से र चत है, क्यों क भूगोल के बीच में ऐसा श्रेष्ठ देश कोई नहीं है, जिस देश में सब श्रेष्ठ पदार्थ होते हैं और छः ऋतु यथावत् वर्तमान होते हैं और केवल सुवर्ण रत्न पैदा होते हैं। इस देश में जिसका राज्य होता है, वह दरिद्र होय तो भी धन से पूर्ण हो जाता हैै। इसी हेतु इसका नाम आर्यावर्त्त है, आर्य नाम श्रेष्ठ मनुष्य और श्रेष्ठ पदार्थ इनसे युक्त अर्थात् आर्यावर्त्त है। इस हेतु इस देश का नाम आर्यावर्त कहते हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शक्षेरन् पृ थव्यां सर्वमानवाः।। **(मनुस्मृति 2/20)**

इस देश में अग्रजन्मा नाम सब श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न जो पुरुष उत्पन्न होवें (उनका है), उससे सब भूगोल की पृ थवी के मनुष्य शक्षा अर्थात् वद्या तथा संसार के सब व्यवहारों का यथावत् वज्ञान (प्राप्त) करें। इससे क्या जाना जाता है क प्रथम इस (देश) में मनुष्यों की सृष्टि भई (हुई) थी। पीछे सब द्वीप-द्वीपान्तर में सब मनुष्य फैल गए, क्यों क पृ थवी में जितने मनुष्य हैं, वे इस देश वालों से वद्यादिक शक्षा ग्रहण करें और सब देश भाषाओं का मूल जो संस्कृत (है) सो आर्यावर्त्त ही में सदा से चला आता है। आजकाल भी कुछ-कुछ देखने में आता है, परन्तु फर भी सब देशों में संस्कृत का प्रचार अ धक है। जर्मनी और वलायत आदिक देशों में संस्कृत के पुस्तक इतने नहीं मलते जितने क आर्यावत्र्त देश में मलते हैं और जो कसी देश में संस्कृत के बहुत पुस्तक होंगे सो आर्यावर्त्त ही से लए होंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। सो इस देश से मश्र देश वालों ने पहिले वद्या ग्रहण की थी। उससे यूनान देश, उससे रूम, फर रूम से फरंग (अंग्रेरज) स्थान आदि में वद्या फैली है। परन्तु संस्कृत के बिगड़ने से गरीश (ग्रीस), लाटीन, अंगरेज और अरब देश वालों की भाषा बन गई हैं। सो इनमें अ धक लखना कुछ आवश्यक नहीं क्यों क इतिहासों के पढ़ने वाले सब जानते हैं और पता भी ऐसा ही मलता है। एक गोल्ड्स्टकर साहेब ने पहिले ऐसा ही निश्चय कया है क जितनी वद्या वा मत फैले हैं, भूगोल में, वे सब आर्यावर्त्त ही से लए हैं। और काशी में वालेण्टेन् साहेब ने यही निश्चय कया है क संस्कृत सब भाषाओं की माता है। तथा दारा शकोह बादशाह ने भी यह निश्चय कया है क जो वद्या है सो संस्कृत ही है क्यों क मैंने सब देशों की भाषाओं का पुस्तक देखा तो भी मुझको बहुत सन्देह रह गए, परन्तु जब मैंने संस्कृत देखा तब मेरे सब सन्देह निवृत्त हो गए और अत्यन्त प्रसन्नता मुझको भई। और काशी में मान मन्दिर जो रचा है, उसमें महाराज सवाई मान संह जी ने खगोल के कला और यन्त्र ऐसे रचे थे क जिस में खगोल का सब हाल देख पड़ता था। परन्तु आजकाल उसकी मरम्मत न होने से बहुत कला यन्त्र बिगड़ गए हैं तो भी कुछ-कुछ देख पड़ता है। फर आजकाल महाराज सवाई राम संह जी ने कुछ मरम्मत स्थान की कराई है जो उस यन्त्र की भी करावेंगे तो कुछ रोज (काली तक) बना रहेगा, अन्यथा नहीं।

जबसे महाभारत युद्ध भया (हुआ) है उस दिन से आर्यावर्त्त को बुरी दशा आई है सो नित्य-नित्य बुरी ही दशा होती जाती है। क्यों क उस युद्ध में अच्छे-अच्छे वद्वान् राजा और ब्राह्मण लोग प्रायः मारे गए। फर कोई राजा पूर्ण वद्या वाला इस देश में नहीं भया। जब राजा, वद्वान् और धर्मात्मा नहीं भया, तब वद्या का प्रचार भी नष्ट होता चला (गया)। फर कुछ दिन के पीछे आपस में लड़ने लगे, क्यों क जब वद्या नहीं होती तब ऐसे ही बहुत प्रमाद होते हैं। जो कोई प्रबल भया, उसने निर्बल का राज छीन के उसको मारा। फर प्रजा में भी गदर होने लगा क जहां जिसने जितना पाया, उसका वह राजा वा जमींदार बन बैठा। फर ब्राह्मण लोगों ने भी वद्या का परिश्रम छोड़ दिया। पढ़ना पढ़ाना भी नष्ट होता चला। जब ब्राह्मण लोग वद्याहीन होते चले, तब क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी वद्याहीन होते चले, केवल दम्भ, कपट और छल ही से व्यवहार करने लगे। फर जितने अच्छे काम होते थे वे सब बन्ध (बन्द) होते चले। वेदादिक वद्या का प्रचार भी बहुत थोड़ा होता चला गया।

फर ब्राह्मण लोगों ने वचार कया क आजी वका की रीति निकालनी चातिहए, सो सम्मति करके यही वचार कया क ब्राह्मण वर्ण में जो उत्पन्न होता है सोई (वही) देव है, सबका पूज्य है, क्यों क पूर्ण वद्या से ब्राह्मण वर्ण होता है। यह वर्णाश्रम की सनातनी रीति है, सोई ऋ ष मुनियों के पुस्तकों में भी लखी है। सो वद्यादिक गुणों से तो वर्ण व्यवस्था नहीं रक्खी, कन्तु कुल में जन्म होने से वर्ण व्यवस्था प्र सद्ध कर दी है। फर जन्म ही से ब्राह्मणादिक वर्णों का अ भमान करने लगे। फर वद्यादिक गुणों में पुरुषार्थ सबका छूटा, उसके छूटने से प्रायः राजा और प्रजा में मूर्खता अ धक-अ धक होने लगी। फर उन्हीं से ब्राह्मण लोग अपने चरण और शरीर की पूजा कराने लगे। जब पूजा होने लगी तब अत्यन्त अ भमान उनमें होने लगा। उन वद्याहीन राजाओं को और प्रजास्थ पुरुषों को (अपने) वशीभूत ब्राह्मणों ने कर लए। यहां तक क सोना, उठना और कोस दो कोस तक जाना, वह भी ब्राह्मणों की आज्ञा के वना नहीं करना और जो कोई करेगा सो पापी हो जायगा। फर शनैश्चरादिक ग्रह और नाना प्रकार के भूत प्रेतादिकों का जाल उनके ऊपर फैलाने लगे और वे मूर्खता के होने से मानने भी लगे। फर राजा लोगों को ऐसा निश्चय सब लोगों ने मल के कराया क ब्राह्मण लोग कुछ भी करें, परन्तु इनको दण्ड न देना चाहिए। जब दण्ड नहीं होने लगा, तब ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रमाद करने लगे और क्षत्रियादिक भी। फर बड़े-बड़े ऋ ष मुनि और ब्रह्मादिक के नामों से श्लोक और ग्रन्थ रचने लगे, उनमें प्रायः यही बात लखी क ब्राह्मण सब का पूज्य और सदा अदण्ड्य है। फर अत्यन्त प्रमाद और वषयासक्ति से वद्या, बल, बुद् ध पराक्रम और शूरवीरता नष्ट हो गई और परस्पर ईर्ष्या (में वृद् ध) अत्यन्त हो गई। कसी को कोई (सहानुभूतिपूर्वक) देख न सके और कोई कोई के (अन्य कसी के) सहायकारी न रहे, परस्पर लड़ने लगे। यह बात चीन आदिक देशों में रहने वाले जैनों ने सुनी और व्यापारादिक करने के हेतु (जो) इस देश में आते थे सो (उन्होंने) प्रत्यक्ष भी देखी। फर जैनों ने वचार कया क इस समय आर्यावर्त्त देश में राज्य सुगमता से हो सकता है फर वे (चीन से?) आए और राज्य भी आर्यावत्र्त में करने लगे। फर धीरे-धीरे बोधगया में राज्य जमाके और (उसे) देश-देशान्तर में फैलाने लगे। सो वेदादिक संस्कृत पुस्तकों की निन्दा करने लगे और अपने पुस्तकों के पठन पाठन का प्रचार तथा अपने मत का उपदेश भी करने लगे। सो इस देश में वद्या के नहीं होने से बहुत मनुष्यों ने उनके मत को स्वीकार कर लया। परन्तु कन्नौज, काशी, पर्वत, द क्षण और पश्चिम देश के पुरुषों ने स्वीकार नहीं कया था,

परन्तु वे बहुत थोड़े ही थे। फर इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था और वेदोक्त, कर्मों को मथ्या- मथ्या दोष लगा के अश्रद्धा और अप्रवृति बहुत करा दी। फर यज्ञोपवीतादिक कर्म भी प्रायः नष्ट हो गया और जो-जो वेदादिकों का पुस्तक पाया और पूर्व के इतिहासों का, उनका प्रायः नाश कर दिया। जिससे क इनको पूर्व अवस्था का स्मरण भी न रहे।

फर जैनों का राज्य इस देश में अत्यन्त जम गया। तब जैन भी बड़े अ भमान में हो गए और कुकर्म, अन्याय भी करने लगे, क्यों क सब राजा और प्रजा उनके मत में ही हो गए, फर उनको डर वा शंका कसी की न रही। अपने मतवालों को अच्छे-अच्छे अ धकार और प्रतिष्ठा करने लगे और वेदादिकों को पढ़े तथा उनमें कहे कर्मों को करें, उनकी अप्रतिष्ठा करने लगे। अन्याय से भी उनके ऊपर जाल (मथ्या आरोप) स्थापन करने लगे। अपने मत के पण्डित वा साधु की बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे, सो आज तक भी ऐसा करते हैं। और बहुत स्थान-स्थान में बड़े-बड़े मन्दिर रच लए और उनमें अपने आचार्यों की मूर्ति स्थापन कर दी तथा उनकी पूजा भी अत्यन्त करने लगे। सो जैनों के राज्य ही से मूर्ति पूजन चला, इसके आगे (पूर्व) न था। क्यों क जितने ऋ ष मुनियों के कए प्राचीन ग्रन्थ हैं, महाभारत युद्ध के पहिले जो क रचे गए हैं, उनमें मूर्तिपूजन का लेशमात्र भी कथन नहीं है। इससे दृढ़ निश्चय से जाना जाता है इस आर्यावर्त्त देश में (इनसे पूर्व) मर्तिपूजन नहीं था, कन्तु जैनों के राज्य से ही चला (मूर्तिपूजा की प्रवृ त हुई) है।

आज के इस लेख में मह र्ष दयानन्द ने इतिहास के अनेक तथ्यों का प्रतिपादन कया है जो अन्यत्र असुलभ है। मातृ भाषा गुजराती व संस्कृत के वद्वान होने तथा सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण लखने तक हिन्दी भाषा का अभ्यास न होने के कारण भाषा वर्तमान की अपेक्षा कुछ असहज है। पाठक इसे पढ़कर इतिहास के तथ्यों से परि चत होंगे। इसी प्रकार के अनेक तथ्यों से हम कल के लेख में परिचय करायेंगे। आशा है पाठकों का इससे ज्ञानवर्धन होगा और वह इसे सत्य व उपयोगी पायेंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

‘मैं और मेरा धर्म’ -मनमोहन कुमार आर्य।

AUGUST 21, 2015 LEAVE A COMMENT

मैं कौन हूं और मेरा धर्म क्या है? इस वषय पर वचार करने पर ज्ञात होता है क मैं एक मुनष्य हूं और मनुष्यता ही मेरा धर्म है। मनुष्य और मनुष्यता पर वचार करें तो हम, मैं कौन हूं व मेरे धर्म मनुष्यता का परिचय जान सकते हैं। इसी पर आगे वचार करते हैं। मनुष्य मननशील होने व

स्वात्मवत दूसरों के सुख–दुःख व हानि लाभ को समझने के कारण ही मनुष्य कहलाता है। यदि हम मनुष्य होकर मनन न करें तो हम मनुष्य नहीं अ पतु पशु समान ही होंगे क्यों क पशुओं के पास मनन करने वाली बुद् ध नहीं है। वह कुछ भी कर लें कन्तु मनन, वचार, चन्तन, सत्य व असत्य का वश्लेषण आदि नहीं कर सकते। अब प्रश्न उपस्थित होता है क मनन कससे होता है और मनन की प्रेरणा कौन करता है? इसका उत्तर यह है क हमारे शरीर में मस्तिष्कान्तर्गत बुद् ध तत्व, इन्द्रिय नहीं अ पतु इनसे मलता जुलता एक अलग उपकरण वा अवयव है, जो सत्य व असत्य, उ चत व अनु चत का चन्तन व वचार करता है, इसी को मनन करना कहते हैं। बुद् ध नामक यह उपकरण जड़ सूक्ष्म प्रकृति तत्व की वकृति है। यह मैं व हम से भन्न सत्ता है। मैं व हम एक चेतन, सूक्ष्म, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, अल्प-परिणाम, अनादि, अजन्मा, अमर, नित्य, अजर, शस्त्रों से अकाट्य, अग्नि से जलता नहीं, जल से भीगता नहीं, वायु से सूखता नहीं, कर्म-फल चक्र में बन्धा हुआ, सुख-दुःखों का भोगता, जन्म-मरणधर्मा व वैदिक कर्मों को कर मोक्ष को प्राप्त करने वाली सत्ता हैं। मुझे यह जन्म इस संसार में व्यापक, जिसे सर्वव्यापक कहते हैं तथा जो सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसके द्वारा मेरा जन्म अर्थात् मुझे इस मनुष्य शरीर की प्राप्ति हुई है। यह शरीर मुझसे भन्न मेरा अपना है और मेरे नियन्त्रण में होता है। मुझे कर्म करने की स्वतन्त्रता है परन्तु उनके जो फल हैं, उन्हें भोगने में मैं परतन्त्र हूं। मेरे शरीर की सभी पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन, बुद् ध आदि अवयव व तत्व मेरे अपने हैं व मेरे अधीन अथवा नियन्त्रण में है। मेरी अर्थात् आत्मा की प्रेरणा पर हमारी बुद् ध वचार, चन्तन व मनन करती है। यदि हम कोई भी निर्णय बिना सत्य व असत्य को वचार कर करते हैं और उसमें बुद् ध का प्रयोग नहीं करते तो यह कहा जाता है क यह मनुष्य नहीं गधे के समान है। गधा भी वचार कये बिना अपनी प्रकृति व ईश्वर प्रदत्त बुद् ध जो चन्तन मनन नहीं कर सकती, कार्य करता है। जब हम बुद् ध की सहायता से मनन करके कार्य करते हैं तो सफलता मलने पर हमें प्रसन्नता होती है और यह हमारे लए सुखद अनुभव होता है। इसी प्रकार से जब मनन करने पर भी हमारा अच्छा प्रयोजन सद्ध न हो तो हमें अपने मनन में कहीं त्रुटि वा कमी अनुभव होती है। पश्चात और अ धक चन्तन व मनन करके हम अपनी कमी का सुधार करते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं। सफलता मलने में हमारे प्रारब्ध की भी भू मका होती है परन्तु इसका ज्ञान परमात्मा को ही होता है। हम तो केवल आचार्यों से अ धका धक ज्ञान प्राप्त कर अपनी बुद् ध की क्षमता को बढ़ा सकते हैं और उसका प्रयोग कर सत्यासत्य का वचार व सही निर्णय कर सकते हैं।

जन्म के बाद जब हम 5 से 8 वर्ष की अवस्था में होते हैं तो माता- पता हमें आचार्यों के पास वद्या प्राप्ति के लये भेजते हैं। आचार्य का कार्य हमारे बुरे संस्कारों को हटा कर श्रेष्ठ व उत्तम संस्कारों व गुणों का हमारी आत्मा में स्था पत करना होता है। आचार्य के साथ हमें स्वयं भी वेदाध्ययन व अन्य सत्साहित्य का अध्ययन कर व अपने वचार मन्थन से श्रेष्ठ गुणों को जानकर उसे अपने जीवन का अंग बनाना होता है। श्रेष्ठ गुणों को जानना, उसे अपने जीवन में मन, वचन व कर्म सहित धारण करना और आचरण में केवल श्रेष्ठ गुणों का ही आचरण व व्यवहार करना धर्म कहलता है। धर्म को सरल शब्दों में यह भी कह सकते हैं क सत्य का आचरण ही धर्म है। सत्य का आचरण करने से पूर्व हमें सत्य की पहचान करने के साथ सत्य के महत्व को जानकर लोभ व काम-क्रोध को अपने वश में भी करना होता है। आजकल

देखा जा रहा है क उच्च श क्षत लोग अपने हित, स्वार्थ व अ वद्या के कारण लोभ व स्वार्थों के वशीभूत होकर भ्रष्टाचार, दुराचार, अनाचार, कदाचार, दुराचार, व्य भचार, बलात्कार जैसे अनु चत व अधर्म के कार्य कर लेते हैं। यह श्रेष्ठ गुणों के वपरीत होने के कारण अधर्म की श्रेणी में आता है। कोई कसी भी मत को मानता है परन्तु प्रायः सभी मतों के लोग इस लोभ के प्रति वशीभूत होकर, अनेक धर्माचार्य भी, अमानवीय व उत्तम गुणों के वपरीत कार्यों को कर अधर्मी व पापी बन जाते हैं। यह कार्य हमारा व कसी का भी धर्म नहीं हो सकता। मत और धर्म में अन्तर यही है क संसार के सभी मनुष्यों का धर्म तो एक ही है और वह सदगुणों को धारण करना व उनका आचरण करना ही है। इसमें ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानकर उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना, प्राण वायु-स्वात्मा की शुद् ध व परोपकार के लए अग्निहोत्र यज्ञ निय मत करना, माता- पता-आचार्यों व वद्वान अति थयों का सेवा सत्कार तथा सभी पशु-प क्षयों व प्रा णयों के प्रति अंहिसा व दया का भाव रखना ही श्रेष्ठ गुणों के अन्तर्गत आने से मननशील मनुष्य का धर्म सद्ध होता है। यह सभी कार्य सभी मनुष्यों के लए करणीय होने से धर्म हैं। आजकल जो मत-मतान्तर चल रहे हैं वह धर्म नहीं है। उनमें धर्म का आभास मात्र होता है परन्तु वह मनुष्यता के लए न्यूना धक हानिकर हैं। यह लोग अपने-अपने मत के स्वार्थ के लए नाना प्रकार की अमानवीय योजनायें बनाते व उन्हें गुप्त रूप से क्रयान्वित करते हैं जिससे समाज में वैमनस्य उत्पन्न होता है। मनुष्य मत-मतान्तरों में बंट कर एक दूसरे के वरोघी बनते हैं जैसा क आजकल देखने को मलता है। इसके साथ सभी मतों के अनुयायी भी ईश्वर की सच्ची उपासना, वेद प्रवर्तित ज्ञानयुक्त कार्यों को न करने और श्रेष्ठ गुणों को धारण कर उनका आचरण न करने से जीवन के उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष से वं चत हो जाते हैं। मह र्ष दयानन्द **(1825-1883)** ने मत-मतान्तरों में निहित अमानवीय व अधर्म वषयक प्रवृ त्तयों का संकेत कया था परन्तु अज्ञान, स्वार्थ व अहंकारवश लोगों ने उनकी वश्व का कल्याण करने वाली मान्यताओं की उपेक्षा की जिसका परिणाम यह हुआ क हम लोग श्रेष्ठ गुणों को धारण कर जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लक्ष्य से दूर हैं और वश्व की लगभग 7 अरब की जनसंख्या में से शायद कोई एक भी उसे कोई पूरा करता होगा?

हम लेख का अ धक वस्तार न कर संक्षेप में यह कहना चाहते हैं क हम सब मनुष्य व प्राणी एक जीवात्मा हैं और ईश्वर हमारे पूर्व कर्मानुसार हमारा अर्थात् हमारे शरीरों का जन्म दाता है। मनुष्य जन्म मलने पर सभी को श्रेष्ठ व उत्तम सत्य गुणों को धारण करना चाहिये। इनका आचरण ही धर्म होता हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है तथा सत्य मनुष्य धर्म व सभी वद्याओं का पुस्तक है। वेदाध्ययन करना और उसके अनुसार जीवन व्यतीत करना ही मनुष्य धर्म वा वैदिक धर्म है। वेद संस्कृत में हैं अतः संस्कृत न जानने वाले लोगों को सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभू मका, संस्कार व ध आदि ग्रन्थों सहित मह र्ष दयानन्द व अन्य वैदिक वद्वानों के वेदभाष्यों व ऋ ष मुनियों के अन्य ग्रन्थों शुद्ध मनुस्मृति, ज्योतिष, दर्शन व उपनिषदों का आत्मा की ज्ञानवृद् ध के लए अध्ययन करना चाहिये। ऐसा करके हमें, मैं व स्व का परिचय प्राप्त होने के साथ अपने कर्तव्य व धर्म का निर्धारण करने में सहायता मलेगी। मत-मतान्तरों के ग्रन्थों को पढ़कर मनुष्य भ्रान्तियों से ग्र सत होता है अथवा ऐसा मनुष्य बनता है जिसमें आत्मा व बुद् ध होने पर भी वह सर्वथा इनसे अपरि चत होता हुंआ मत-मतान्तरों की सत्यासत्य मान्यताओं में फंसा रहता है। ऐसा मनुष्य लगता है क केवल

खाने-पीने व सुख सु वधायें भोगने के लए ही जन्मा है। खाना पीना व सु वधायें भोगना मनुष्य जीवन नहीं अ पतु इससे ऊपर उठकर सद्ज्ञान प्राप्त कर उससे अपना व दूसरे लोगों का कल्याण करना ही मानव धर्म है। हम आशा करते हैं क इससे मैं व यथार्थ धर्म का कुछ परिचय पाठकों को प्राप्त होगा।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196 चुक्खूवाला-2**

देहरादून-**248001**

फोनः**09412985121**

इतिहास प्रदूषक वदु ष ले खका बहन फरहाना ताज "पार्ट – २"

AUGUST 10, 2015 6 COMMENTS

अं गरा ऋ ष के वषय में मत्स्य पुराण, भागवत, वायु पुराण महाभारत और भारतवर्षीय प्राचीन ऐतिहा सक कोष में वर्णन कया गया है।

मत्स्य पुराण में अं गरा ऋ ष की उत्प त्त अग्नि से कही गई है।

भागवत का कथन है क अं गरा जी ब्रह्मा के मुख से यज्ञ हेतु उत्पन्न हुए।

महाभारत अनु पर्व अध्याय 83 में कहा गया है क अग्नि से महा यशस्वी अं गरा भृगु आदि प्रजापति ब्रह्मदेव है।

भार्गववंश की मान्यतानुसार मह र्ष भृगु का जन्म प्रचेता ब्रह्मा की पत्नी वीरणी के गर्भ से हुआ था। अपनी माता से सहोदर ये दो भाई थे। इनके बडे भाई का नाम
अं गरा था।

ब्रह्मपुराण अध्याय – ३४ मे ऋ ष अं गरा को वषमबुद् ध से पढ़ाने वाला गुरु अर्थात शष्यो मे भेदभाव कर पढ़ाने वाला बताया है

इसके अतिरिक्त अं गरा ऋ ष को शवपुराण मे लोभी लालची आदि बताया है

आप सोच रहे होगे मै ये सब क्यो बता रहा हूं ?

इस लए बता रहा हूं क आर्यो के ऋ ष सद्धांतो को बदलने की गहरी साजिश चल रही है वेदो मे इतिहास सद्ध करने का षडयंत्र रचा जा रहा है यकीन नही ?

फरहाना ताज जी जैसी वदु ष ले खका का पोस्ट पढ़े वो ये साबित करने की फराक मे नजर आती है क कैलाश के राजा शंकर और हृदय मे वेद ज्ञान प्रकाश पाने वाले ऋ षयो मे एक ऋ ष अं गरा एक ही है

इनकी लेखनी यही नही रुकी इसके आगे इन्होने और लखते हुए जोर डाला क शव की पूजा करनी है मतलब सच्चे शव की तो अं गरा ऋ ष को पूजो यही नही हमारी बहन फरहाना ताज जी लखती है :
"अरे भोले लोगो देवो के देव आदि महादेव की ही पूजा करनी है तो अं गरा की पूजा करो, शवपुराण में भी शव का आदि नाम अं गरा ही है और अं गरा के मुख से परमात्मा की वाणी अथर्ववेद प्रकट हुआ, इस लए वेद पढ़ो।"

मतलब समझ आया ?

हम देवो के देव महादेव यानी ईश्वर की बात करते है क्यो क महादेव ईश्वर को ही संबोधन है हम उन्ही की उपासना करते है मगर हमारी बहन शायद हमारे सद्धांतो पर चोट करके उन्हे बदल कर हमे ईश्वर के स्थान पर मनुष्य की पूजा करवाना सखाना चाह रही है ले कन भूल गई हिन्दू समाज मे भी मुर्दापूजा निकृष्ट है आप उन्हे सच्चाई बताने की जगह एक मुर्दापूजा से निकाल दूसरी मुर्दापूजा मे दा खला दिलवा रही हो जैसे आर्य समाज मे अं गरा ऋ ष को शव घो षत कर वेदो मे इतिहास साबित करना चाहती हो

ऋ ष अं गरा और शव को एक बताने से पहले शवपुराण पर ही सही से दृष्टि डाल ली होती है, क्यों क शवपुराण में ही शव की शादी के चक्कर में अं गरा ऋ ष को लालची और लोभी बताया है,

क्या आप लोभी और लालची व्यक्ति को शव या अं गरा मान सकती हो ? ऊपर और भी प्रमाण दिए हैं की पुराणो में ऋ ष अं गरा का चरित्र कैसा दिखाया है – यदि आपने पुराण ही मानने हैं तो कृपया ऋ ष सद्धांतो पर चलने वाली स्वयं की उद्घोषणा न करे क्यों क ऋ ष ने महापुरषो के चरित्र पर दाग लगाने वाले पुराणो को त्याज्य बताया है और यहाँ ऋ ष अं गरा के चरित्र पर भी पुराण आक्षेप लगा रहे हैं, बेहतर है आप अपने लेख को ठीक करे।

मेरी बहन आर्य समाज सद्धांत पर आधारित है कृपया अप्रमा णक तथ्यहीन और मनगढंत बात लखने से पूर्व एक बार ऋ ष के सद्धांत और उनके महान कर्मो पर दृष्टि जरूर डाले

हो सके तो सत्य को स्वीकार कर असत्य को त्याग दे

नमस्ते

स्तुता मया वरदा वेदमाता-14

AUGUST 8, 2015 LEAVE A COMMENT

मन्त्र में प्रथम गुण बताया था परिवार को साथ रखने के लये मनुष्य को अपना दिल बड़ा रखना चाहिए। दूसरी बात मन्त्र में कही है परिवार के सभी सदस्य एक सूत्र में बंधे होने

चाहिए अधूरी बात। एक सूत्र में बंधे होने का अ भप्राय एक केन्द्र से बन्धे होना है। सब सदस्यों का परिवार के मु खया से जुड़ा होना अपे क्षत है। जहाँ भी दो या दो से अ धक मनुष्य एक साथ रहते हैं, उनका एक साथ रहना तभी सभव है जब वे कसी एक के निर्देशन में कार्य करते हों। एक व्यक्ति के आदेश का सभी पालन करते हों। जहाँ कोई नेता नहीं होता, वह परिवार या समाज नष्ट हो जाता है। जहाँ एक परिवार में अनेक नेता होते हैं, वह परिवार भी नष्ट हो जाता है। नेता एक हो, सभी उसका आदर करते हों, सभी उसका आदेश मानते हों, वही परिवार सुख से रह सकता है और उन्नति कर सकता है।

परिवार में एक मु खया का होना आवश्यक है, वहीं पर मु खया द्वारा सभी सदस्यों का ध्यान रखना, सब की चन्ता करना, सबकी उन्नति के लए प्रयत्नशील होना चाहिए। हमारे परिवारों में असन्तोष के अनेक कारण होते हैं, उनमें एक कारण होता है कसी सदस्य के वचारों को न रखा जाना। जहाँ तक परिवार में जो छोटे सदस्य होते हैं, उनके वषय में सोच लया जाता है, वे ठीक नहीं सोच सकते, उनके पास न ज्ञान होता है, न अनुभव। यह बात सामान्य रूप से ठीक है। परन्तु परिवार के सभी सदस्य सुख-दुःख का अनुभव करते हैं तथा उन्हें भी अच्छा-बुरा लगता है, अतः सभी सदस्यों के वचारों को अवश्य सुना जाना चाहिए।

छोटे सदस्यों को समझना कठिन होता है परन्तु उनके महत्त्व को समझने और उनके समान को बनाये रखने के लए उन्हें भी समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। परिवार की सामान्य चर्चा में सभी सदस्यों की भागीदारी होने से परिवार के सदस्य में उत्तरदायित्व की भावना वक सत होती है। बड़ों का कर्त्तव्य है क वे परिवार के सदस्यों में आत्म वश्वास व योग्यता उत्पन्न करें। उनके अन्दर योग्यता उत्पन्न करेंगे और कार्य का उत्तरदायित्व सौपेंगे तो उनके अन्दर आत्म वश्वास उत्पन्न होगा। परिवार के कसी सदस्य से भूल या गलती होने पर उसे डराना-धमकाना नहीं चाहिए। दण्डित करने के स्थान पर उसे अवसर देना चाहिए क उससे भूल हुई है। यदि मनुष्य को अनुभव हो क उससे भूल हुई है तो उसके अन्दर प्रायश्चित्त और पश्चाताप की भावना उत्पन्न हो सकती है। यही भावना मनुष्य को सावधान करती है और उसे दुबारा गलती करने से रोकती है। जो बालक हठी बनते हैं, उनके लए कठोर दण्ड उन्हें अ धक धृष्ट बना देता है। ऐसी परिस्थिति में बड़े लोग स्वयं को दण्डित करके उनके मन को कोमल बनाने का प्रयत्न करते हैं। परिवार में सदस्यों के अन्दर सद्भाव उत्पन्न करने के लय सदस्यों में संवाद का होना आवश्यक है। संवाद को बनाये रखने के लए परिवार में यज्ञ, भोजन, मनोरञ्जन, वचार- वमर्श के कार्य कये जाते हैं। पृथक् संवाद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, यदि घर में धा र्मक आयोजन निय मत होते रहते हैं, नित्य सन्ध्या-हवन होता है। वद्वान्, अति थ, संन्यासी, महात्माओं का घर में आगमन होता रहता है तो परिवार के सदस्यों के मन में धा र्मक व्यक्तियों व धर्म के प्रति आदर भाव उत्पन्न होता है। सदस्यों को पृथक् शष्टाचार का उपदेश देने की आवश्यकता नहीं रहती। बड़ों को वैसा करते देखते हैं, स्वयं भी करने लगते हैं। जो वचार माता- पता नहीं दे सकते, वे वचार परिवार के सदस्य वद्वानों से वार्तालाप करके प्राप्त कर लेते हैं। अतः परिवार में श्रेष्ठ पुरुषों का आवागमन परिवार को संयुक्त रखने में महत्वपूर्ण भू मका निभाता है।

आज जब संयुक्त परिवार की प्रथा टूट रही है और एकल परिवार अपनी आजी वका व्यापार, मजदूरी, नौकरी से समय नहीं निकाल पाते तो घरों में धा र्मक कर्त्तव्यों की न्यूनता स्वाभा वक है परन्तु धा र्मक कर्त्तव्यों के अभाव में परिवार को साथ रखने में कठिनाई अवश्य होगी।

परिवार में संवाद बनाये रखने का सहज उपाय है। दैनिक सन्ध्या-यज्ञ परिवार में संवाद और एकत्व बनाये रखने का सबसे आसान उपाय है। सन्ध्या के बाद ईश्वराक्ति के, धा र्मक वचारों के भजन गाये जा सकते हैं। दिनभर के क्रया कलापों पर चर्चा की जा सकती है, यदि दिन में इस कार्य का समय न मले तो यह कार्य सांयकाल या सोने से पूर्व कया जा सकता है। आज समाज में बहुत सारे लोग शकायत करते हैं, परिवार के बच्चों में संस्कार नहीं है, संस्कार तो अच्छे काम करने से बनते हैं। अच्छे कार्य करने से परिवार के बालकों में अच्छे संस्कार आते हैं और बुरे कार्य से बच्चों पर बुरे संस्कार पड़ते हैं। घर में अच्छे कार्य न करके बालकों में अच्छे संस्कारों की आशा करना व्यर्थ है। धा र्मक कार्यों से परिवार में सन्तोष का भाव उत्पन्न होता है, दान देते रहने से सहयोग की प्रवृ त्त बनी रहती है। संसार में कभी भी, कसी की भी इच्छायें पूर्ण नहीं हो पाती। अतः इच्छाओं को रोककर अपने साधनों में से मनुष्य अन्यों की सहायता करता है, तब उसके इस कार्य से मनुष्य के मन में लोभ और असन्तोष की भावनाओं पर नियन्त्रण करना आता है। इस प्रकार परिवार को एक केन्द्र से बान्ध कर चलने से नई पीढ़ी का निर्माण करने का अवसर मलता है, मन्त्र में सब सदस्यों के मलकर प्रयत्न करने के लये निर्देश दिया है।

कृपया शुक्ल और कृष्ण के बारे में स्पष्टिकरण देने की कृपा करें।

AUGUST 8, 2015 LEAVE A COMMENT

– आचार्य सोमदेव

समानीय आचार्य सोमदेव जी को मेरा सादर प्रणाम।

जिज्ञासा– श्रद्धास्पद आचार्य जी! मैं उदालगुरी आर्यसमाज का पुरोहित हूँ। मैं 2012 जून महीने में अनुष्ठित योग-साधना- श वर में उपस्थित रहकर एक सप्ताह तक योग-साधना आप ही से सीखकर आया हूँ। उसी समय से परोपकारिणी सभा की ओर से निय मत रूप से परोपकारी पत्रिका उदालगुरी आर्यसमाज को निःशुल्क मल रही हूँ। सभा को उदालगुरी आर्यसमाज की ओर से धन्यवाद ज्ञापन करते हैं।

आचार्य जी! मैं तीन साल से अन्य द्वारा पूछे गये जिज्ञासा-समाधान पढ़-पढ़ कर उपकृत होता आया हूँ। ले कन आज मेरे मन में भी एक जिज्ञासा है, समाधान चाहता हूँ।

प्रश्न- महोदय! यजुर्वेद के बारे में जानना था- प्रायः यजुर्वेद के बारे में शुक्ल और कृष्ण शद व्यवहार होता है। कन्तु मेरे पास जो वेद हैं, उसमें सर्फ 'यजुर्वेद' लखा हुआ है। कृष्ण-शुक्ल कुछ भी नहीं लखा है। कोई पौरा णक पण्डित संकल्प पढ़ते समय 'शुक्ल यजुर्वेदाध्यायी' ऐसाी पढ़ लेते हैं। कृपया शुक्ल और कृष्ण के बारे में स्पष्टिकरण देने की कृपा करें।

– रुद्र शास्त्री, गाँव- गोलमागाँव, पो.जि.- उदालगुरी, आसाम

समाधान – चारों वेदों में से यजुर्वेद दो प्रकार का मलता है। शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। इसके इन दोनों नामों का कारण है क शुक्ल यजुर्वेद में केवल मन्त्र भाग है, अर्थात् इसमें

मूल मन्त्र होने से शुक्ल (शुद्ध) वेद कहलाता है। कृष्ण यजुर्वेद वनियोग, मन्त्र व्याया आदि से म श्रत होने के कारण मूल न होकर म श्रत वा कृष्ण यजुर्वेद कहलाता है। मुय रूप से यही कारण शुक्ल और कृष्ण कहने का है।

शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ वर्तमान में मलती हैं, वाजसनेयि माध्यन्दिन संहिता और काण्व संहिता। दोनों में चालीस अध्याय हैं, काण्व संहिता का चालीसवां अध्याय ईशोपनिषद् के रूप में प्रयात है। कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएँ मलती हैं- तै त्तरीय, मैत्रायणी, काठक और कठ क पष्ठल शाखा।

मह र्ष दयानन्द के अनुसार मूल वेद शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा है। इसी का मह र्ष ने भाष्य कया है।

आपके प्रश्न का उत्तर तो इतने से ही है। इस वषय में पौरा णकों ने इन दोनों शुक्ल, कृष्ण को सद्ध करने के लए अपनी कथाएँ कल्पित कर रखी हैं। इन कत्थित कथाओं को छोड़ शुक्ल-कृष्ण का यथार्थ कारण उपरोक्त ही है।

अब यजुर्वेद के वषय में कुछ और लखते हैं। वेदों की कुल शाखा 1127 होने का प्रमाण पातञ्जल महाभाष्य में मलता है। वहाँ लखा है- एक वंशतिधा वाह्वृच्यम्, एकशतम् अध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, नवधाऽऽथर्वणो वेदः, अर्थात् इक्कीस शाखा ऋग्वेद की, एक सौ एक शाखा यजुर्वेद की, एक हजार शाखा सामवेद की और नौ शाखा अथर्ववेद की।

यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाओं में से छः शाखाएँ उपलध होती हैं। जो क ऊपर कह दिया है। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण है, जिसके रचयिता मह र्ष याज्ञवल्क्य हैं। कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण तै त्तरीय ब्राह्मण है, जिसकी रचना ति त्तरि आचार्य ने की है। शुक्ल यजुर्वेद का श्रौतसूत्र कात्यायन कृत है जो क कात्यायन श्रोतसूत्र कहलाता है। कृष्ण यजुर्वेद से सबन्धित आठ श्रौतसूत्र हैं- 1. बौधायन, 2. आपस्तब, 3. सत्यषाढ़ या हिरण्यकेशी, 4. वैखासन, 5. भारद्वाज, 6. वाधूल, 7. वाराह, 8. मानव श्रौतसूत्र।

मह र्ष दयानन्द यजुर्वेद के प्रतिपाद्य वषय के सबन्ध में अपने भाष्य के प्रार भक प्रकरण में लखते हैं क ''ईश्वर ने जीवों को गुण-गुणी के वज्ञान के उपदेश के लए ऋग्वेद में सब पदार्थों की व्याया करके यजुर्वेद में यह उपदेश कया क उन पदार्थों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करने के लए कर्म कस प्रकार करने चाहिए। उसके लए जो-जो अङ्ग और जो-जो साधन उपे क्षत हैं, उन सबका प्रकाश यजुर्वेद में कया गया है। जब तक ज्ञान क्रयानिष्ठ नहीं होता, तब तक उससे श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता। वज्ञान क्रया में नि मत्त बनता है, प्रकाशकारक होता है, अ वद्या की निवृ त्त करता है, धर्म में प्रवृ त्त करता है और धर्म तथा पुरुषार्थ का मेल कराता है, जो-जो कर्म वज्ञाननि मत्तक होता है, वह-वह सुखजनक हो जाता है। अतः मनुष्यों को चाहिए क वज्ञानपूर्वक ही नित्य कर्मानुष्ठान करें। जीव चेतन होने से बिना कर्म कये नहीं रह सकता। कोई भी मनुष्य आत्मा मन, प्राण और इन्द्रियों के संचालन के बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता। 'यजु र्भः यजन्ति' इस प्रमाण से यजुर्वेद के मन्त्रों से यजन कया जाता है। जिससे मनुष्य ईश्वर का और धा र्मक वद्वानों का पूजा सत्कार करते हैं, पदार्थों के संगतिकरण द्वारा शल्प वद्या की सद् ध कया करते हैं, शुभ वद्या और शुभ गुणों का दान कया करते हैं, यथायोग्य सबके उपकार में शुभ व्यवहार में और वद्वानों में

धनादि का व्यय करते हैं वह यजुः है।'' इस प्रकार यजुर्वेद में मुय करके कर्मकाण्ड का वषय है। मह षे ने इसी बात को सत्यार्थप्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्यभू मका में भी कहा है।

– ऋ ष उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

सत्पात्र बन सकूँ – रामनिवास गुणग्राहक

AUGUST 5, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ3म् वश्वानि देव स वतर्दुरितानि परासुव।

यद् भद्रं तन्नासुव।।

– यजु. 30/3

भावार्थ- हे सकल जगत् के उत्प त्त कर्त्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर। आप कृपा करके हमारे सपूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये और जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमें प्राप्त कराइये। (ऋ ष भाष्य)

यह मंत्र ऋ ष दयानन्द को बहुत प्रय था, यजुर्वेद का भाष्य करते समय ऋ षवर ने इसे प्रत्येक अध्याय के प्रारभ में आवश्यक रूप से लखा है। स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्रों का प्रारभ भी इसी मन्त्र के साथ कया है। स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्रों का शदार्थ करते समय मह षे दयानन्द ने बहुत ही सरल भाषा का प्रयोग कया है। भाषा सरल होने के साथ-साथ बड़ी रोचक, प्रवाहपूर्ण एवं मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट कर देने वाली है। स्तुति प्रार्थनोपासना के इन आठ मन्त्रों पर कई आर्य वद्वानों ने कलम उठाई है, उनमें से कुछ एक के वचारों को मैंने पढ़ा है। मैं जब दैनिक यज्ञ समाज में या कभी घर में करता हूँ तो सदैव ऋ षवर के अर्थ सहित मन्त्र पाठ करता हूँ। पाठ करते समय औपचारिकता निभाना मुझे कभी ठीक नहीं लगा, मैं मह षे पतंज ल के 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' के पालन करने का प्रयास करता हूँ। ऐसा करते समय कई बार मेरे मन में आया क मह षे ने इन मन्त्रों का जो अर्थ कया है, उसे ऋ ष के अर्थ ऋ ष की भावना के अनुरूप थोड़ा भाव- वस्तारपूर्वक लखा जाए ता क भक्त हृदय आर्य जन उसका पूरा आनन्द ले सकें। मैं अपनी इस सदिच्छा को लबे समय से टालता आ रहा था, ले कन आज (4-1-2015) मेरे हृदय ने कहा क कसी अच्छे वचार को कार्यरूप देने के समय बहानेबाजी करना ऐसा दोष है जो अपराध की कोटि में रखा जाता है। यह हमारे स्वभाव का पतनशील अंग है, जनहित की भावना को निर्बल बनाता है। मनुष्य को पुण्यों की पूँजी से वं चत करता है। हृदय में उठने वाले हर प्रकार के सद्भावों का पल्लवन उनके क्रयान्वयन पर टिका होता है। सद्भाव- सद् वचार व सद्गुण को व्यवहार के रास्ते वस्तृत धरातल पर वचरने की स्वतन्त्रता नहीं मलती, तब वो व्यवहार में प्रकट होने के लए हृदय में प्रतीक्षा करते-करते थक जाते हैं व्याकुल हो जाते हैं, उनका दम घुटता है और वे निर्बल और निर्जीव होकर निढ़ाल हो जाते हैं। व्यवहार में व्यक्त होने के लए व्याकुल सद्भाव, सद् वचार व सद्दगुण हमारी उपेक्षा व अनदेखी का शकार होकर अन्दर ही दम तोड़ दें तो हमारा हृदय दुर्भावों, दु र्वचारों व दुर्गुणों के फूलने-फलने का उपजाऊ खेत बनकर रह जाता है और हम न चाहते हुए भी पतन के गर्त में गरने लगते हैं। सुख शान्ति, समृद् ध

चाहने वालों का पहला कर्त्तव्य है क वे अपने हृदय में उठने वाले सद्भाव, सद् वचार, सत्सकंल्प एवं सद्गुण को व्यवहार का रूप देकर अपने स्वभाव का जीवन्त अंग बनाने में आलस्य न करें। ध्यान रहे जो व्यक्ति अपने स्वयं के हृदय में उठने वाले सद् वचारों, सद्भावों व सत्संकल्प का समान नहीं कर सकता, वह जगत् व्यवहार में कसी दूसरे के मानवीय सद्गुणों व सत्कर्मों के साथ कभी भी न्याय नहीं कर सकेगा। मुझे मेरी अच्छाई नहीं सुहाती तो कसी दूसरे की अच्छाई क्यों सुहाएगी?

चलो अब सीधे अपने वषय परआते हैं- मह र्ष दयानन्द ने मन्त्रार्थ में जो कुछ कहा है हम स्तुति-प्रार्थना की शैली में ऋ ष वाक्यों की अन्तर्यात्रा करने निकलें और अपने मन मस्तिष्क को इस पूरी यात्रा में साथ ही रखेंगे तो मन्त्रार्थ को आत्मसात करने में सुभीता रहेगा।

'हे सकल जगत् के उत्प त्तकर्ता' 'समग्र ऐश्वर्य युक्त'– ऋ ष दयानन्द जी ने स वता का अर्थ जगत् निर्माता व सब ऐश्वर्य से युक्त कया है। 'स वता वै प्रस वता भवति' के अनुसार स वता का अर्थ बनाने-उत्पन्न करने वाला होता है और जिसने जो बनाया है, वह उसका स्वामी तो हो ही गया। जगत् में जो कुछ ऐश्वर्य है, अनमोल दिखने वाला धन है वह सब परमात्मा ने ही बनाया है तो वही उस सबका स्वामी ठहरा। इसके साथ ही जान लें क स वता शद 'षु प्रेरणे' धातु से बनता है। निर्माण और प्रेरणा दोनों अर्थ स वता शद से लये जा सकते हैं। परामात्मा सबका निर्माण करने और सबको प्रेरित-संचा लत करने वाला है। स्तुति प्रार्थनोपासना के छठे मन्त्र में कहा है क जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होकर हम आपको पुकारें, आपका आश्रय लेवें, उस-उसकी कामना हमारी पूर्ण होवे। अर्थात् हमें जीवन में जो कुछ चाहिए उसे पाने के लए हमें परमात्मा से ही पुरुषार्थपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए। इससे सद्ध है क परमात्मा इस संसार की हर वस्तु को बनाकर उसे अपनी अटल न्यायपूर्ण व्यवस्था के अनुरूप चलाता, प्रेरित करता है।

'शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर'। देव शद का यही अर्थ ऋ षवर ने यहाँ कया है। सामान्य भाषा में भी देने वाले को देव कहते हैं। क्या दुःख देने वालो को भी? नहीं सुख या सुखद वस्तु देने वाले को ही देव कहा जाता है। परमात्मा भी सबके लए सब सुखों का देने वाला है। यहाँ एक व्यावहारिक बात समझ लेनी चाहिए क परमात्मा अपनी ओर से कभी कसी को सुख या सुखद वस्तुएँ नहीं देता। संसार में ज्ञान से बड़ा कोई दान नहीं, ऐसा मह र्ष मनु-'सर्वेषामेवदानानां ब्रह्म दानं व शष्यते' कहते हैं। यो गराज श्री कृष्ण ज्ञान के बारे में लखते हैं – नहि ज्ञानेन सदृशं प वत्र मह वद्यते। अर्थात् हमारे जीवन को ज्ञान ही सबसे अ धक प वत्र करने वाला है। जीवन की प वत्रता मानो सब सुखों व सुखद वस्तुओ को प्राप्त करने की पात्रता है। वह परमात्मा अपनी ओर से मनुष्य मात्र को ज्ञान-प्रेरणा निरन्तर देता रहता है। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है क हम प्रभु प्रदत्त प्रेरणा (ज्ञान) के अनुसार कर्म-व्यवहार करते हुए सब सुखों व सुखद वस्तुओं को प्राप्त करें। परमात्मा द्वारा सुख देना दूसरे प्रकार से भी सद्ध होता है। हमारी कमाई हुई धन-सप त्त को कोई दुष्ट व्यक्ति छीन या चुराकर ले जाए तो उस चोर को जितना दोषी मानते हैं उससे कहीं अ धक दोषी शासक व शासन की व्यवस्था को भी मानते हैं। शासक की न्याय व्यवस्था अगर हमारी चुराई व खोई चीज को हमें दुबारा दिला दे तो हम उसका धन्यवाद अवश्य करते हैं। ठीक इसी प्रकार से अगर हमारे शुभ कार्यों का यथायोग्य फल ईश्वर की अटल, न्याय व्यवस्था से मलता है तो उसका दाता ईश्वर को ही मानना चाहिए।

मन्त्र में स वता और देव के अर्थ स्पष्ट हो जाने के बाद दो बातें शेष रह जाती हैं और वे दोनों बातें अत्यन्त स्पष्ट हैं- ' वश्वानि दुरितानि परासुव' अर्थात् सपूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और 'यद् भद्रं तन्नासुव' जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है, वह सब हमको प्राप्त कराइये। मन्त्र को और सरलता से समझने के लए ' वश्वानि दुरितानि सपूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को-'परासुव' दूर करने या परे धकेलने की प्रार्थना को भली भाँति समझना होगा। यहाँ दुर्गुण हैं, जितने भी दुर्व्यसन से पूर्व सपूर्ण शद बहुत ही ध्यान देने योग्य है। हमारे जीवन में जितने भी दुर्गण हैं, जितने भी दुर्व्यसन हैं उन सब को दूर करने की प्रार्थना या पुकार यह सद्ध करती है क हमारा जीवन पूर्णतः निर्मल और प वत्र होना चाहिए। एक भी दुर्गुण व दुर्व्यसन मेरे जीवन में शेष न रहे। अगर हम थोड़ा सा भी दुख नहीं चाहते तो अपने अन्दर के सब दुर्गुणों को ढूँढ-ढूँढ कर निकाल फैंके। हमारे आन्तरिक दुर्गुणों के कारण हमारे व्यावहारिक जीवन में दुर्व्यसन उत्पन्न होते हैं और दोषों दुर्व्यसनों के परिणाम स्वरूप हमें दुःख भोगने पड़ते हैं। दुःख दूर करने की इच्छा है जिनकी वे दुर्व्यसनों को दूर भगाायें। जो दुर्व्यसनों से मुक्त होना चाहते हैं वे अपने दुर्गुणों को समाप्त करने का संकल्प लें। हमारे आन्तरिक दुर्गुण ही हमारे दुर्व्यसनों अर्थात् दुराचरणों, दुष्प्रवृ त्तयों और दुष्कर्मों के बीज हैं और इन्हीं दुर्व्यसनों का परिणाम दुःख है। यह मन्त्र हमारे दुःखों को दूर करने का वैदिक उपाय बताता है। आज हम अपने दुःखों को दूर करने के लए अनेक प्रकार के मनमाने उपाय करते रहते हैं या कसी गुरु घण्टाल के मायाजाल में फँस कर व वध प्रकार के पाखण्ड पूर्ण कृत्य करते-कराते हैं। हमारे मनमाने उपायों या गुरु घण्टालों के तन्त्र-मन्त्र से दुःा दूर हो जाते तो संसार में एक भी दुःखी नहीं होता।

मन्त्र में दूसरी प्रार्थना है – 'यद् भद्रं तन्न आसुव' अर्थात् जो कल्याण कारक गुण, र्का और स्वभाव हैं वह सब हम को प्राप्त कराइये। जब हम अपने जीवन के सब दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर करने का सशक्त संकल्प लेकर अपनी आन्तरिक बुराइयों के वरुद्ध सफल संघर्ष छेड़ देते हैं, दुर्गुणों, दोषों व दुष्कर्मों के पतनशील प्रवाह में निर्जीव तिनके की तरह बहते रहने से आत्मबल पूर्वक मना कर देते हैं और बुराइयों के चक्रव्यूह से बच निकलते हैं तो हमारे सामने अपने हृदय को अच्छाइयों से भरते रहने का प्रश्न खड़ा होता है। यह तो सब जानते हैं क संसार में ऐसा कुछ नहीं जो कसी प्रकार के गुणों से शून्य हो। ऐसे में हमारा हृदय-मन, बुद् ध और चत्त आदि भी गुणहीन स्थिति में नहीं रह सकते। दुर्गुणों को दूर करने के आन्तरिक अ भयान के साथ-साथ हमें कल्याण कारक गुणों का आह्वान करना होगा। दुर्गुणों को दूर करके उनके स्थान पर कल्याण कारक गुणों अर्थात् सद्गुणों को बसाना जीवन-निर्माण की आवश्यक प्र क्रया है। कसी बर्तन में कोई अनावश्यक व अनुपयोगी चीज भरी हो तो जब तक उसमें कसी अच्छी व उपयोगी वस्तु को रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती तब तक हम उस अनुपयोगी चीज को निकाल फैंकने के बारे में प्रायः नहीं सोचते। जब हमें कोई मूल्यवान व उपयोगी वस्तु की आवश्यकता अनुभव होती है तो हम उसे पाने के प्रयास करते हैं। पाने के प्रयास करने से पूर्व बुद् धमान व्यक्ति उसे सुर क्षत रखने के बारे में सोचता है तो उसे लगता है क यह जो अनावश्यक चीज इस बर्तन मे ंरखी है उसे निकाल फैंको और इस बर्तन को स्वच्छ करके उपयोगी वस्तु को इसमें रख दो।

यही स्थिति मानव के जीवन की है। सांसारिक वषय वासना व परस्पर के राग-द्वेष पूर्ण जीवन जाने वाले को जब कसी सद्ग्रन्थ के स्वाध्याय या सत्संग से यह पता चलता है क मेरा हृदय जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य का कबाड़ बनकर रह गया है, मेरे जीवन में

आलस्य, प्रमाद, दीर्घसूत्रता आदि दोष निरन्तर बिगाड़ पैदा कर रहे हैं, ये मुझे सुख-शान्ति, समृद् ध और सन्तुष्टि नहीं दे सकते। ये मेरे जीवन को सफल और सार्थक बनाने में उपयोगी नहीं हैं। यह ज्ञान स्वाध्याय व सत्संग के बिना नहीं होता। अ धकांश लोगों को लबे समय तक सत्संग स्वाध्याय करते रहने पर भी यह ज्ञान नहीं होता, ले कन जिन ववेकशील सज्जनों को यह ज्ञान हो जाता है तो उन्हें कल्याण कारक गुण, कर्म और स्वभाव की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। जब उन्हें सद्गुणों की आवश्यकता अनुभव होती है तो उन्हें लगता है क मेरे हृदय में तो दुर्गुण जड़ें जमाये बैठे हैं। जीवन को अच्छा,सुाी और सन्तुष्ट बनाने की प्रबल इच्छा जब तक हृदय में उठ खड़ी नहीं होती, तब तक हर मनुष्य को अपने हृदय में भरा पड़ा काम-क्रोध आदि दुर्गुणों का कूड़ा-कबाड़ भी काम चलाऊ अच्छा लगता है। जैसे ही उसके मन-मस्तिष्क में कल्याण कारक गुण, कर्म स्वभाव और पदार्थों की उपयो गता स्पष्ट हो जाती है, और वह उन्हें पाने के लए लालायित होने लगता है, वेसे ही उसे अपने अन्दर के काम, क्रोध, मोह आदि अनुपयोगी और अनावश्यक ही नहीं लगते, बल्कि काँटे की तरह चुाने लगते हैं । इस अवस्था में आकर वह ' वश्वानि दुरितानि परासुव' और 'यद् भद्रं तन्न आ सुव' की पुकार करने लगता है। इस अवस्था में सच्चे हृदय से की गई ऐसी प्रार्थना, पुकार ही लक्ष्य के निकट पहुँचाती है।

''यद् भद्रं तन्न आ सुव'' का जो अर्थ ऋ ष दयानन्द ने कया है, वह बहुत ही चमत्कार पूर्ण एवं जीवन-निर्माण की अन्तः क्रया को सन्तु लत-सयक् ढंग से प्रकट करता है। ऋ ष लखते हैं- 'जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं,वह सब हमें प्राप्त कराइये।' कल्याण करने वाले गुण, कर्म और स्वभाव की क्रमबद्धता पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। सुखी, शान्त व आनन्दपूर्ण जीवन के तीन घटक आन्तरिक हैं और पदार्थ बाहरी हैं। कल्याणकारक घटकों में गुण, कर्म और स्वभाव एक पात्रता है और पदार्थ उसमें रखी जाने वाली सामग्री। जिसने तप-साधना से अपने गुण, कर्म और स्वभाव को कल्याण कारक बना लया परमात्मा उसके लए कल्याणकारक पदार्थों की प्राप्ति सरल और सहज बना देते हैं। जो अपने गुण, कर्म और स्वभाव को कल्याणकारक बनाने के लए तप नहीं करते, स्वयं को सद्गुण सपन्न सदाचारी एवं सुा का सत्पात्र बनाये बिना ही जो कल्याणकारक सुखद पदार्थों को छल-बल या कल से ह थया लेते हैं, ऐसे अ भशप्त लोगों के हाथ लगे कल्याण कारक पदार्थ कभी उनको सच्चा सुख नहीं दे पाते। सीधे शदों में कहें तो गुण, कर्म और स्वभाव को कल्याणकारी बनाये बिना हम कल्याणकारी पदार्थों का सच्चा सदुपयोग नहीं कर सकते। बुद् धमान लोग काँटों का सदुपयोग बाड़ लगाकर फलों की सुरक्षा के रूप में करते हैं दूसरी ओर कुछ मूर्ख लोगों ने पा कस्तान में पंजाब के गवर्नर के हत्यारे आतं कयों पर गुलाब के फूलों की वर्षा करके भी वश्व के मानवतावादी जन समुदाय के बीच स्वयं को कलं कत कर लया।

''यद् भद्रं तन्न आ सुव'' की अन्तिम ले कन सर्वा धक महत्वपूर्ण वषय वस्तु को राना चाहते हैं। जो सच्चे अर्थों में सच्चे हृदय से अपना जीवन सुखी व श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं, उनके लए ऋ ष दयानन्द के शदों –'कल्याण कारक गुण, कर्म और स्वभाव' को समझ लेना बहुत ही आवश्यक है। जब हमारे कल्याणकारक गुण हमारे कमरें के माध्यम से सजीव होकर हमारे स्वभाव का अंग बन जाते हैं, तब जाकर हमारा जीवन कल्याणकारक पदार्थों को पाने का पात्र बन पाता है। आज के मानव की सबसे बड़ी समस्या यह है क वह अपने अन्दर की ढेर सारी अच्छाइयों को अपने कर्मों-व्यवहार में उतारने से डरता है। जब तक यह डर हमारे जीवन में डेरा डाले रहेगा, तब तक हर सच्चाई और अच्छाई मानव के संकीर्ण स्वार्थ के भार

तले दबकर दम तोड़ती रहेगी। पाठक ध्यान रखें क परमात्मा ने हमारे कल्याण को सरल और सहज बनाने के लए हमारे हृदय में सत्य के प्रति श्रद्धा और असत्य के प्रति अश्रद्धा स्वाभा वक रूप से प्रदान की है। प्रत्येक मानव का हृदय सदैव सत्य के प्रति श्रद्धालु रहता है, आक र्षत रहता है। असत्य मानव के हृदय को कभी अच्छा नहीं लगता। असत्य मानव के हृदय में सदैव काँटे की तरह खटकता रहता है। मानव-स्वभाव की व चत्रताा बड़ी अनौखी है। यह सच है क सरल चत्त के व्यक्ति के हृदय में असत्य काँटे की तरह ही खटकता है, ले कन जब वो स्वार्थ के खूंटे से बँधकर सत्य को स्वीकार करने का साहस नहीं दिखा पाता और इस असत्य रूपी काँटे से हृदय को लहूलुहान करता रहता है तो कुछ काल ऐसा ही होते रहने के बाद स्वार्थ पूर्ति से मलने वाले क्ष णक सुख के नशे में असत्य रूपी काँटे की इस तीखी चुभन को भी वह भाग्यहीन व्यक्ति ऐसे ही सहन करता रहता है जैसे एक शराबी मदके लए उसकी कड़वाहट व तीखेपन को सहन करता रहता है।

कल्याण की कामना वाले व्यक्ति को सांसारिक स्वार्थ पूर्ति से ऊपर उठकर एक अक्षय सुख पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। सुधी जन जानते हैं क झूठ की जितनी शक्ति है, जितनी आयु है, उससे मलने वाले सुख की शक्ति और आयु भी उतनी ही होगी उससे अ धक नहीं। झूठ सदैव सत्य से भयभीत रहता है, सत्य की एक करण झूठ को धराशायी कर देती है ठीक इसी प्रकार से असत्य के बल पर सुा शान्ति पाने वाले व्यक्ति सत्य से भयभीत होकर जीवन जीते हैं, उनका सुख सत्य की सभावना देखकर ही भाग खड़ा होता है। क्या लाभ उस टूटे-फूटे, डरे-सहमे सुख का? सत्य से डरकर उल्लू की तरह अँधेरे में कब तक ऐसे सुख को भोगकर सन्तुष्ट होते रहोगे?वह सुख ही क्या जो अपने इष्ट मत्रों व परिजनों के साथ मलकर खुले में सार्वजनिक रूप से न भोगा जा सके? इसी लए ऋ ष दयानन्द कल्याणकारक गुणों को कर्मों में सजीव और साकार करके अपने स्वभाव का अंग बनाने की सांकेतिक प्रेरणा कर रहे हैं। गीता में श्री कृष्ण जी भी शदान्तर से यही सन्देश दे रहे हैं क संसार में सब प्राण्ीा अपनी प्रकृति अर्थात् स्वभाव के अनुसार ही अपनी समस्त चेष्टाएँ (कर्म) करते हैं इस लए स्वभाव को ही अच्छा (श्रेष्ठ) बनाओ अपनी बुराइयों को छिपाकर अच्छा दिखने से क्या लाभ? स्वभाव को श्रेष्ठ बनाने -सुधारने का सच्चा और सरल रास्ता ऋ ष दयानन्द बता रहे हैं क अपने हृदय में सोये पड़े हुए अपने सद्गुणों को कर्मों में उतारिये। हम जब निरन्तर अपने सद्गुणों को कर्मों का सहारा देते रहेंगे तो एक दिन हमारे सद्गुण हमारे स्वभाव का अंग बन जाएँगे। जब तक अपने सद्गुणों को अपने कर्मों के द्वारा अपने स्वााव का अंग बना लेंगे तब इस संसार के समस्त कल्याण कारक पदाथरें को प्राप्त करने के अ धकारी-पात्र बन जाएँगे। दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुःखों से निकल कर कल्याणकारक गुण, कर्म स्वभाव और पदार्थों को प्राप्त करने की अन्तर्यात्रा का मंत्रानुसार ऋ षवर ने जिस रूप में रखा और वह जैसी मेरी समझ में आई वैसी मैंने सच्चे हृदय से, सुधीजनों के कल्याण की कामना से प्रकट कर दी। आशा है अध्यात्म पथ के प थक इससे लाभ उठाएँगे।

– जोधपुर,राजस्थान

हम अपने शहंशाह – सुकामा आर्या

AUGUST 5, 2015 LEAVE A COMMENT

अपना जीवन जीते हुए हमारे मन में व भन्न प्रकार की इच्छाएँ, तमन्नाएँ रहती हैं। हम अपने भावी जीवन के लए उत्साहित रहते हैं, बड़े सपने सँजोए रखते हैं। कुछ सपने तो बहुत आसानी से साकार हो जाते हैं और कुछेक अथक प्रयास के बावजूद सत्य सद्ध होने से कोसों दूर रहते हैं।

पहले तो हम बैठ कर यह वश्लेषण करें- क हमने क्या खोया-क्या पाया? यह जीवन भर का, कुछ वर्षों का, कुछ महीनों का भी कर सकते हैं। अगर हानि अ धक हुई है, असफलताएँ अ धक आई हैं तो थोड़ी ज्यादा गंभीरता से वचार करने की आवश्यकता है।

अब हमें यह पकड़ना है क हम चूकते कहाँ पर हैं? हमारे कमजोर स्थल कौन-से हैं? उन्हें जानकर-समझकर, उन पर कार्य करने की जरूरत होती है। मार्ग तो पता है हमें, पर उस पर तरह-तरह के काँटे, ईंट, पत्थर गंदगी आदि पड़े हैं। तीव्र गति से गमन करना है तो बस, बाधाओं को हटाएँ और मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

बाहरी वातावरण, परिस्थितियाँ, लोग हमारे नियंत्रण में नहीं होते- और होने की अपेक्षा भी रखना गलत है, परन्तु हम अपने आंतरिक संसार के ताज सहित बादशाह हैं, शहंशाह हैं। हम जैसा चाहें, जिस प्रकार जहाँ चाहें, कार्य कर सकते हैं- वहाँ हमारा हरेक कानून लागू होता है, हर एक बात बाइज्जत सुनी जाती है, ज्यों-की-त्यों समझी जाती है, इस लए बाहर की अपेक्षा पहले अपनी जरूरतों, सपनों, इच्छाओं को अंदर लागू करना होता है। अपने अंदर जितने हम स्पष्ट व साफ हो जाएँगे, उतनी ही बाहर की परिस्थितियाँ अनुकूल बनती जाएँगी। बाहर की बाधाओं के बादल स्वयं छटने लगेंगे।

सूक्ष्मता से देखें तो यह हमारे नियंत्रण में होता है क हम कस वचार को अपने अंदर उठने दें, उसे अनुमति दें, कसको चाहें तो न दें। जिस वचार को जब चाहें हम रोक सक ते हैं। हमें हर नकारात्मक, वध्वन्सात्मक वचार के लए अपने मन पर प्रयासपूर्वक 'नो एंट्री' का बोर्ड लगाना होता है। फर भी कुछ लोग, परिस्थितियाँ यदि जबरदस्ती अंदर घुसने का प्रयास करें तो हमें ईश्वर ने श्वास रूपी चौकीदार, सुरक्षाकर्मी दे रखा है। इसकी सहायता से उस वचार को बाहर छिटक दें। जैसे अगर घर में कोई अति थ आने वाला हो और उसके स्वागत के लए हमने तैयारी कर रखी हो, सुन्दर व्यवस्था कर रखी हो, उसी समय कोई शरारती बच्चा आ कर ऊधम मचाए, इधर-उधर वस्तुओं को बिखेर दे- तो हम क्या करेंगे? उसे पकड़ेंगे व यथासंभव प्रयास करेंगे क वह हमारी बनी बनाई व्यवस्था को खराब न करे। ठीक यही अवस्था मन के आँगन की भी है। हमें वहाँ भी अपनी स्थिति को बनाए रखने का प्रयास करना होता है- कोई भी अनचाहा वचार, व्यक्ति, परिस्थिति उसमें हमारी आज्ञा के बिना अंदर न घुस पाये। हम ईश्वर से भी यही प्रार्थना करते हैं क हमारा हमारे मन पर राज्य हो-

मेरी इन्द्रियाँ हों सदा मेरे वश में,

मेरे मन पे मेरा ही अ धकार कर दो।

मेरा सर झुके तो झुके तेरे दर पर,

मुझे ऐसा दुनियाँ में सरदार कर दो।

पाँचों इन्द्रियों के वषयों व मन पर अपना नियंत्रण करने के लए अपने श्वास रूपी सुरक्षाकर्मी को हमेशा सचेत रखें। जहाँ भी इसमें थोड़ी-सी ढ़ील हुई, वहीं पर वघ्न, बाधाएँ उत्पन्न हो जाएँगी। हम तीी तो ईश्वर को, उसकी सत्ता को नमन करते हैं। उसकी सहायता से ही हम अपने वचारों को रोक सकते हैं- यह कहते भी है और करते भी हैं-

हमारा नियंत्रण चूँ क हमारे अपने हाथ में हैं, यूँ कहें क हमारा रिमोट कंट्रोल जब हमारे हाथ में है तो दूरदर्शन पर चैनल भी तो हम ही बदलेंगे न। हम बाहर के दूरदर्शन को छोड़कर चत्त के दूरदर्शन पर कार्य प्रारभ करें। वहाँ जो चैनल हम चलाएंगे, वही हमारे बाहर भी प्रद र्शत होगा। वस्तुतः बाहरी संसार हमारे आन्तरिक संसार का ही प्रतिबिब है। जो भी परिस्थिति, इच्छा आप बाहर साकार हुई देखना चाहते हैं, उसे पहले अपने अंदर सफल होता हुआ चत्रित करें। अपने मन को शांत कर, श्वास से नियंत्रित कर तथा वह दृश्य अपने सामने लाकर उसे यथार्थ में परिवर्तित होता हुआ महसूस करें-अनुभूति के स्तर पर ले आएँ। यह ध्यानावस्था में करने योग्य कार्य है। इच्छा व स्वप्न के प्रति अपनी भावना, गहराई भी इसमें अहम रोल अदा करती है। जितनी अ धक एकाग्रता से यह कार्य होगा, उतनी ही शीघ्रता व कुशलता से कम समय में बाहर की परिस्थितियाँ बिना आपके ज्यादा हस्तक्षेप के अनुकूलता में बदलती जाएँगी।

इसके लए आवश्यक है क पहले अन्दर की सफाई की जाए। एक बार गलती से काँटों भरे खेत में चले गए- तो कतने ही काँटें कुछ मनटों में कपड़ों पर चपक जाएँगे। वा पस आकर निकालने लगेंगे तो घण्टों लगेंगे। गंदगी डालनी, बुराई करनी, द्वेष करना बहुत आसान है, क्षण भर में क्षोभ पैदा हो जाता है, पर जब सफाई करने बैठते हैं तो उफ, क्या परिश्रम करना पड़ता है! बस ह थयार छूट जाते हैं- यही महसूस होता है क ''लहों नोता की थी, सदियों ने सजा पाई।''

हमें प्रयास पूर्वक सजग रहना है क अगर मैं बुरा वचार करूँगा तो इसका परिणाम भी मुझे ही भुगतना पड़ेगा। दूसरे पर यह प्रभाव जाए न जाए, मेरी हानि अवश्य ही होगी। अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी चलाने वाली बात है। बीज तो छोटा-सा ही होता है, पर जब पेड़ बन के सामने खड़ा होता है तो काटना मुश्किल हो जाता है- हाथ थक जाते हैं, कुल्हाड़ी चलाते-चलाते। इस लए जब भी बुरी भावनाएँ, वचार उठें, उन्हें तुरन्त ही हटा दें- एक तरफ कर दें। ईश्वर को उसी क्षण अपने समीप महसूस करते हुए कोई जप प्रारभ कर देवें, याद क रें क प्रातःकाल जो प्रार्थना की थी-

सर्वे भवन्तु सु खनः,सर्वे सन्तु निरामयाः,

सर्वे भद्रा ण पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।

क्या जिससे मैं द्वेष कर रहा हूँ, वह 'सर्वे' में नहीं आता है? उस प्रार्थना के वपरीत अगर बाकी के 17 घंटे हम व्यवहार करेंगे तो उस प्रार्थना का कोई औ चत्य नहीं हैं। प्रार्थना का वधान है तो यह मानना पड़ेगा क द्वेष, घृणा, क्षोभ के लए मनाही है। प्रयासपूर्वक ईश्वर प्र णधान की सहायता से हमें उस वचार को क्षोभ को मन से निकाल देना है। धीरे-धीरे द्वेष होगा ही नहीं, होगा तो क्षीण-सा बहुत कम समय के लए होगा, क्यों क हम सजग हैं। हमें पता है क जितनी गंदगी हम फैलाएँगे-सफाई भी तो हमें उतनी ही करनी पड़ेगी।

जब हम चाहते हैं क हमारे शुभ संकल्प पूर्ण हों, सद्ध हों तो हमें उसके लए यथासंभव अपना पुरुषार्थ अपने आन्तरिक वातावरण को साफ, सुंदर व व्यवस्थित करने के लए करना चाहिए, क्यों क यहीं पर हमारा नियंत्रण है और यह परम आवश्यक है अपने जीवन में शांति व सफलता को प्राप्त करने के लए। तभी हम कह सकते हैं क-

तेरे पूजन को भगवान, बना मन-मन्दिर आलीशान।

– ऋ ष उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

सन्ध्या-रहस्य का यह संस्करण – राजेन्द्र जिज्ञासु

AUGUST 3, 2015 1 COMMENT

पं. चमूपति र चत सन्ध्या रहस्य पुस्तक के वषय में कुछ लखना, लेखक के लये एक गौरव की बात है। क्यों? इसका उत्तर मैं साधु ट.ल. वास्वानी के शदों में देना अ धक उपयुक्त मानता हूँ। अर्थात् मेरा जितना ज्ञान है आचार्य चमपति उससेाी कहीं अ धक गहराई से लखते हैं। इससे भी बढ़कर तो यह बात है क वे जो कुछ भी लखते हैं वह अत्यन्त सुन्दर, भक्तिभाव में डूबकर लखते हैं और जब लखना ही भक्ति पर, सन्ध्या उपासना पर हो तो उन्होंने कतना भक्ति वलीन होकर लखा होगा, यह बताया नहीं जा सकता।

योगनिष्ठ लेखक द्वारा ल खतः– आज का युग वज्ञापन का युग है। लोकैषणा को तजने की घोषणा व प्रतिज्ञा करने वाले साधु महात्मा भी आज वज्ञापन के संसार में कसी से पीछे नहीं। अपनी योग साधना व समा ध तक का ढोल बजाने वाले साधुओं पर गृहस्थों को आश्चर्य होना स्वाभा वक है। अपने जीवन-परिचय में आज समा ध लगाने का उल्लेख होता है। पं. चमूपति एक योगनिष्ठ वद्वान् थे, यह उस काल के सब जन जानते थे परन्तु, पं. चमूपति जी ने अपनी योग साधना का कभी भी, कहीं भी कोई संकेत नहीं दिया। हाँ! उनके निधन पर महाशय खुशहाल चन्द जी (महात्मा आनन्द स्वामी) ने एक शोक सभा में श्रद्धाञ्ज ल देते हुए उनके जीवन के इस पक्ष की चर्चा की थी। फर मैंने उनको निकट से देखने वाले कई पुराने आर्यों यथा पं. शान्तिप्रकाश जी, स्वामी सर्वानन्द जी तथा पं. ज्ञानचन्द आर्य सेवक आदि से भी इसके बारे में सुना।

वेदशास्त्र मर्मज्ञ द्वारा ल खतः– आचार्य चमूपति वेदशास्त्र मर्मज्ञ थे। ये तो वधर्मी भी स्वीकार करते हैं। इस सन्ध्या रहस्य पुस्तक-रत्न की वशेषता यह भी तो है क इसमें ईश्वर की सत्ता, उसके स्वरूप, उसकी रचना, उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना पर इस शैली से लखा गया है क उनकी यह कृति जन साधारण तथा वचारकों वद्वानों दोनों के लए अत्यन्त उपयोगी है। पुस्तक का एक-एक पैरा व एक-एक वाक्य हृदय स्पर्शी व मा र्मक है।

सन्ध्या गीतः– सन्ध्या रहस्य के कई प्रकाशकों ने कई संस्करण प्रका शत कये हैं। परोपकारिणी सभा द्वारा प्रका शत कये जा रहे इस संस्करण की एक वशेषता यह है क इसके साथ पण्डित जी के सन्ध्या गीत का शुद्धतम पाठ पहली बार छप रहा है। हमें इस सन्ध्या गीत की जानकारी बीकानेर के वयोवृद्ध आर्य और पुस्तक संग्रही श्रीमान् ठाकुरदास जी से प्राप्त हुई। उन्होंने इसकी प्रति ल प (जो उनके पास थी) हमें प्रदान की परन्तु, वह

दोषयुक्त थी फर भी हमने कुछ सुधार कर छपवा दी। अ धक छेडछाड़ का हमें क्या अ धकार था?

अब की बार सन्ध्या गीत की पं. चमूपति जी की अनु्ा् मका भी खोज कर दे दी है। सन्ध्या का पद्यानुवाद तो मुंशी केवल कृष्ण जी, पं. वासुदेव जी, श्री धर्मवीर जी (पंजाबी में), स्वामी आत्मानन्द जी महाराज, स्वामी अमृतानन्द जी, महाक व 'शान्त' लेखराम नगर कादियाँ आदि अनेक आर्य क वयों व वद्वानों ने कया परन्तु एक संगीत मर्मज्ञ ने इस लेखक को बताया क साहित्यिक तथा संगीत शास्त्र की दृष्टि से पं. चमूपति जी का यह पद्यानुवाद बेजोड़ है। मेरा यह मत है क स्वामी आत्मानन्द जी का पद्यानुवाद भी अत्यन्त साहित्यिक है। काव्य शास्त्र व संगीत शास्त्र की दृष्टि से वह भी अत्युत्तम है।

 पता पुत्र ने पद्यानुवाद कयाः– पं. चमूपति जी के सन्ध्या रहस्य व सन्ध्या गीत की तो सभी प्रशंसा करते ही हैं, हम पाठकों को यह भी बताना चाहते हैं क पं डत जी के ज्येष्ठ पुत्र डॉ. लाजपतराय डी. लट. ने भी सन्ध्या का पद्यानुवाद कया था जिसे स्वामी वेदानन्द जी महाराज जैसे शास्त्र मर्मज्ञ साहित्यकार ने छापा था। वह भी अदुत था।

गुत्थियों को सुलझाया हैः– पण्डित जी की इस व्याया पर पाठकों की सेवा में क्या-क्या वशेषतायें गनाई बताई जायें। मनसा परिक्रमा को पण्डित जी ईश्वर की रचना का मन से परिभ्रमण कहा करते थे। एक बार कहा क ईश्वर की सर्वव्यापकता, उसकी कला व महानता के बोध कराने वाले मन्त्र मनसा परिक्रमा क्या हैं, ¤्नह्म्शह्वठ्ठस्र ह्लद्धद्ग ख्शह्म्द्यस्र ख्द्बह्लद्ध ञ्जद्धद्ग रुशह्म्स्र.¤ अर्थात् यह तो प्रभु का ध्यान करके, प्रभु संग सृष्टि का परिभ्रमण है। उनके पुत्र डॉ. लाजपत का कहना था मनसा परिक्रमा से तो मन की दशा व दिशा का बोध होता है।

जीवन बीमाः– पं. चमूपति सन्ध्या को जीवन बीमा बताते हैं। यह भू मका उनकी एक मौ लक देन है। जप तप सचमुच जीवन बीमा हैं। कोई भी व्यक्ति और जाति तप शून्य होकर संसार में नहीं जी सकती। सन्ध्या रहस्य के आरभ में बहुरूपी सन्ध्या आदि जिन आठ बिन्दुओं पर पण्डित जी ने लखा है, वे सब पठनीय व मनन करने योग्य है। सच तो यह है क वैदिक अध्यात्मवाद का यह एक अनूठा दस्तावेज है।

सब शंकाओं का समाधानः– वैदिक आस्तिकवाद, त्रैतवाद व अध्यात्मवाद पर की जाने वाली सब शंकाओं का समाधान बहुत उत्तमता से इसमें कया गया है। ऋत क्या? सत्य क्या है? इस वषय में पं. चमूपति जी तथा पूज्य उपाध्याय जी का चन्तन अत्यन्त मौ लक व ता र्कक है।

अघमर्षण मन्त्र का रहस्यः– 'अघमर्षण' शद का अर्थ है पाप को दूर करना या पाप को मसलना। इन मन्त्रों में न तो पाप शद आया है और न ही मसलने व दूर करने की कोई बात कही गई है। इस प्रश्न को उपाध्याय जी ने भी उठाया है। हमारे प्रबुद्ध पाठक पं. चमूपति जी का समाधान पढ़कर वाह! वाह!! करने लगेंगे। पाप का मुय कारण तो अहंकार व हीन भावना ही हैं। अमरीका के एक प्रयात डाक्टर ने तो आज के युग के भयानक रोगों यथा रक्तचाप, हृदय रोग व तनाव का कारण अहंकार व हीन भावों की वकृति को बताया है। आत्महत्या का घृ णत पाप हीन भावना से ही मनुष्य करता है। पं. चमूपति जी की अघमर्षण

मन्त्रों की व्याया का प्रचार यदि आन्दोलन का रूप ले ले तो वश्व का बहुत कल्याण हो। उपाध्याय जी ने भी अपनी पुस्तक सरल सन्ध्या व ध में लखा है, ''जो पुरुष ब्रह्माण्ड में ईश्वर के अस्तित्व को अनुभव करता है वह पाप से बचा रहता है।''

यहाँ दोनों मनी षयों का चन्तन एक जैसा है। वैदिक सन्ध्या में मह र्ष दयानन्द जी ने वैदिक धर्म व दर्शन की अनूठी झांकी दी है। आज देश की गली-गली में गुरुडम वाले यह रा गनी सुना रहे हैं, 'भक्तों के वश में भगवान्' सन्ध्या मन्त्रों में आया है, ' वश्वस्य मषतो वशी' अर्थात् सारा वश्व उस प्रभु के वश में है। 'अदीनः स्याम शरदः शतम्' की व्याया जो आचार्य पं. चमूपति जी ने की है, वह संसार के कसी भी वृद्ध मतावलबी को सुनाकर पूछिये क्या ऐसी प्रार्थना संसार की कसी पूजा पद्धति में है? सबका हृदय बुढ़ापे में यही साक्षी देगा क इस वैदिक सन्ध्या का मर्म व महत्ता एवं उपयो गता कोई शदों में नहीं बता सकता।

– वेद सदन, अबोहर, पंजाब

गृहस्थाश्रम को स्वर्ग का साधन समझें – कन्हैयालाल आर्य

AUGUST 3, 2015 LEAVE A COMMENT

गृहस्थ और सुख? यह तो कुछ अनोाी बात है। इसमें इतने दुःख हैं क आरभ से ही इसे दुःखों का घर समझा जाता है। आधुनिक काल में जब क हमने अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को बहुत बढ़ा रखा है तो कुछ बात यथार्थ प्रतीत होने लगती है, परन्तु यदि गभीरता पूर्वक इस पर वचार कया जाये तो मह र्ष मनु की यह बात सही है क गृहस्थ आश्रम व्यवस्था की दृष्टि से ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ सद्ध है।

गृहस्थाश्रम तो लोक और परलोक दोनों को सुधारने का एक माध्यम है। इस माध्यम को मानव ने अपने स्वार्थ, आलस्य, प्रमाद, अतिवासना तथा लोभ और मर्ाता से बिगाड़ रखा है। हम स्वयं ही जंजीरे गढ़ते हैं और अपने हाथ-पाँव में बाँध लेते हैं और फर चल्लाने लगते हैं क हम बाँधे गये। गृहस्थाश्रम का तो इस लए निर्माण कया गया ता क लबी जीवन यात्रा में नर या नारी अकेला थक न जाये। लबी यात्रा में साथी साथ हो तो यात्रा सरल बन जाती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इन पाँचों को ठीक मर्यादा में रखने का सुन्दर साधन गृहस्थ है।

मह र्ष दयानन्द सरस्वती जैसे आजीवन ब्रह्मचारी वरले ही होते हैं, उन्होंने भी गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ कहा है। मह र्ष स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में बताया है क-

1. यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।

   तथैवाश्र मणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

-मनु. **6/90**

जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं हो जाते। वैसे ही गृहस्थ के आश्रम में सब आश्रम स्थिर रहते हैं, बिना इस आश्रम के कसी आश्रम का कोई व्यवहार सद्ध नहीं होता।

2. यथा वायुं समा श्रत्य, वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।

तथा गृहस्थमा श्रत्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।

-मनु. **3/77**

जैसे वायु के आश्रय पर सब प्राणी हैं वैसे गृहस्थाश्रम सब आश्रमों का आश्रय दाता है।

3. यस्मात्त्रयोऽप्याश्र मणो दानेनान्नेन चान्वहम्।

गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।

– मनु. **3/78**

जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देकर गृहस्थ ही धारण करता है इसी लए गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है।

4. स संधार्य्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षय मच्छता।

सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।

– मनु. **3/76**

जो अक्षय, मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो, वह प्रयत्न से गृहाश्रम धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बल इन्द्रिय, भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने योग्य नहीं है, उसको अच्छे प्रकार धारण करे।

इस लए जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहाश्रम है, जो यह गृहस्थाश्रम न होता तो सन्तानोत्प त्त के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहाँ से हो सकते? जो कोई गृहस्थ आश्रम की निन्दा करता है, वही निन्दनीय है, जो प्रशंसा करता है, वह प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहस्थाश्रम में सुख होता है, जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, वद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हो।

प्राचीन इतिहास बतलाता है क ऋ ष-मुनि गृहस्थाश्रम में रहकर सबका पथ प्रदर्शन करते थे और हमारे पूर्वज नारी जाति का अत्य धक मान करते थे, तभी तो कहा हैः-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।

जहाँ नारियों का समान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं। मह र्ष मनु ने तो यहाँ तक कह दिया है क नारी ही घर की शोभा है, जहाँ गृहिणी नहीं, वह घर ही नहीं। जहाँ पति और पत्नी

का एक दूसरे से प्यार है, वही घर स्वर्ग समान है। जहाँ पुत्र-पुत्रियाँ आज्ञाकारी हों, वही घर स्वर्ग समान हैं। स्वर्ग कसी ऊपर या नीचे के लोकों का नाम नहीं है, यदि इसी गृहस्थ में आप सुखी हैं तो आप इस जीवन काल में भी 'स्वर्गीय' अर्थात् सुखी बन सकते हैं। स्वर्गीय का अर्थ है- स्वर्ग में रहना, जहाँ प्रत्येक प्रकार का सुख, समृद् ध, सन्तोष हो, उसी का नाम स्वर्ग है और ऐसे स्वर्ग की प्राप्ति गृहस्थाश्रम के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है। इस लए यह धारणा क गृहस्थी सुखी नहीं हो सकता और गृहस्थ तो दुःखों का घर है, यह गलत है। गृहस्थ ही एक ऐसा आश्रम है जिसके माध्यम से धर्म, अर्थ, काम और अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

ववाह के समय वर-वधू का सात कदम एक साथ चलना भी इसी भाव का प्रतीक है। जहाँ अन्न शारीरिक बल, धन, सुख, सन्तान प्राप्ति, चारों तरफ की प्राकृतिक परिस्थिति का अनुकूल होना कहा है, वहाँ सातवाँ कदम रखते हुए वर कहता है-

ओ3म् सखे सप्तपदी भव वष्णुस्त्वा नयतु

पुत्रान् वन्दावहै, बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः

अर्थात् हम सदा साथ रहें, हममें मैत्री भाव रहे, तेरा मन मेरे मन के अनुकूल हो, हम दोनों मलकर पुत्र-पुत्रियों को प्राप्त करें और वे वृद्धावस्था तक जीने वाले हों।

शास्त्रों में गृहस्थ को एक आश्रम कहा गया है। यह एक मंजिल है। मंजिल तक पहुँचने के लए खड़े रहने से काम नहीं चलता, मंजिल की तरफ चलना पड़ता है। सप्तपदी का अ भप्राय यही होता है क वर-वधु को इस बात की प्रतीति कराई जाती है क गृहस्थाश्रम आराम से बैठे रहने का नाम नहीं है। इस आश्रम के कुछ उद्देश्य हैं, प्रयोजन हैं। इन प्रयोजनों को सद्ध करने के लए अलग-अलग नहीं, एक साथ चलना होगा, कदम से कदम मलाकर चलना होगा, तभी वे इस आश्रम के उद्देश्य को पा सकेंगे। तभी तो ऋग्वेद में कहा है-

ओ3म् समञ्जन्तु वश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।

सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ।।

हम दोनों पति-पत्नी निश्चयपूर्वक तथा प्रसन्नतापूर्वक यह घोषणा करते हैं क हम दोनों के हृदय जल के समान सदा शान्त रहें, जैसे प्राणवायु हमको प्रय है, वैसे हम दोनों एक-दूसरे के साथ प्रसन्न रहेगें, जैसे धारण करने वाला परमात्मा सबमें मला हुआ, सब जगत् को धारण करता है, वैसे हम दोनों एक-दूसरे को धारण करते रहेंगे।

गृहयसूत्र में लखा हैंः-

ओ3म् यदेतद् हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम्।

यदिदम् हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव।।

जो तेरा हृदय है, वह मेरा हृदय हो जाये और जो मेरा हृदय है, वह तेरा हृदय हो जाये।

ओ3म् मम व्रते ते हृदयं दधा म मम चत्तमनु चत्तं ते अस्तु।

मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।

हमारा एक-दूसरे के साथ श्रेष्ठ व्यवहार हो। हमारा चत्त एक-दूसरे के अनुकूल हो। प्रजापति ने हमें एक-दूसरे के साथ नियुक्त कया है। हमें इसका सफल निर्वाह करना है।

 ववाह का उद्देश्य तो जीवन के आदर्श को पूर्ण करने के लए एक साधन मात्र है। जीवन का आदर्श, सब प्रा णयों में अपनापन अनुभव करना है। इस लए ववाह में पति-पत्नी में मत्रता, सखा-भाव जरुरी है, नहीं तो ववाह का प्रधान उद्देश्य पूरा नहीं होता।

स्त्री-पुरुष में तो प्रेम स्वाभा वक है, इसे सीखने के लए कसी वद्यालय में नहीं जाना पड़ता। स्त्री तथा पुरुष के इसी स्वाभा वक प्रेम को प्रा णमात्र तक ले जाने का एक कठिन काम को आसान बनाने का प्रयत्न गृहस्थाश्रम द्वारा कया जाता है। इसी प्रेम का, मैत्री भाव का आगे वस्तार करना है। ववाह में यही प्रेम, सखा भाव ही एक ऐसा तत्व है जिसे संकु चत क्षेत्र से निकालकर हम वस्तृत क्षेत्र में वक सत करना चाहते हैं।

गृहस्थाश्रम में अपनेपन का केन्द्र अपने से हटकर दूसरों में जाना प्रारभ हो जाता है, स्वार्थ का अंश पर्दे की ओट में चला जाता है और उसकी जगह परार्थ का भाव सामने आने लगता है। अतः यह बड़ी जिमेदारी का आश्रम है।

आत्मा के अपने आदर्श लक्ष्य तक पहुँचने का उसके पूर्ण रूप में वक सत होने का यही उपाय है। ब्रह्मचर्यावस्था 'स्व' की उन्नति से प्रारभ होती है। इस आश्रम में 'स्व' या 'अपने' आपका उत्थान प्रमुख होता है, ब्रह्मचारी अपने इर्द- गर्द ही घूमता है परन्तु जब वह अपने 'स्व' को दृढ़ बना चुका होता है, तब उसे अपनी आत्मा को अ धक वक सत करने को कहा जाता है तो वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। ब्रह्मचर्य आश्रम अपने तक सी मत होता है परन्तु गृहस्थ आश्रम अपने से हटकर सन्तानों तक वस्तृत होता ही है। वह पूरे समाज में अपने आपको वस्तृत कर देता है। गृहस्थाश्रम आत्मिक वकास की एक सीढ़ी है यह सभी आश्रमों का पालक, पोषक एवं सहयोगी है। तभी तो इस आश्रम को स्वर्ग प्राप्ति का माध्यम माना गया है। मह र्ष मनु की स्पष्ट घोषणा है-

अनेन वप्रो वृत्तेन वर्तयन् वेदशास्त्र वत्।

व्यपेत कल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते।।

(4.260)

अर्थात् – जो वेद शास्त्रों को पढ़ने वाला गृहस्थ शास्त्रोक्त कर्त्तव्यों का पालन करता है वह पाप रहित जीवन स्वर्ग अथवा मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करता है।

– **4/44,** शवाजी नगर**,** गुड़गाँव**,** हरियाणा

चलभाष-**09911197073**

स्तुता मया वरदा वेदमाता-12

JULY 31, 2015 LEAVE A COMMENT

ज्यायस्वन्तश्चि त्तनो मा व यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः

अन्योऽन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणो म।।

– अथर्व. 3/30/5

परमेश्वर कहता है मनुष्यों इस घर में रहने के लए रहने वालों के हृदय वशाल होने चाहिए। मनुष्य का दिल बड़ा होने पर ही सबका उसमें समायोजन हो सकता है। मनुष्य शरीर से लबा-चौड़ा होने पर हृदय भी उसका वशाल हो यह अनिवार्य नहीं है। आकार प्रकार में छोटे लगने वाले मनुष्य का दिल बड़ा हो सकता है, बड़े शरीर का मन छोटा हो सकता है। मनुष्य को उसके पास वद्यमान सामग्री थोड़ी लगती है, तब उसका हृदय संकु चत होता है। उसे भय लगता है मेरी वस्तु समाप्त हो जायेगी। मैं दरिद्र या अभावग्रस्त हो जाऊँगा। मनुष्य संकु चत वचारों वाला होता है, तब स्वार्थी बन जाता है। उसका स्व का घेरा छोटा होता है। व्यक्ति का स्व जितना छोटा होगा, मनुष्य उतना ही अ धक अन्याय और पक्षपात करता है। जब वह अपने को केवल अपने तक सी मत करता है, तब वह अपने से अ धक नहीं सोच पाता। घर परिवार में रहता हुआ भी व्यक्ति केवल अपनी चन्ता करता है, अपने परिवार के अन्य सदस्यों के वषय में नहीं सोचता। मनुष्य स्वार्थी होता है, तो वह अपनी वस्तुओं का उपयोग केवल स्वयं करता है। ऐसे में एक मान सकता ऐसे लोगों में देखी जाती है। वह अकेले ही भोजन करता है। वह दूसरे से भयभीत होकर औरों से छिपकर भोजन करना पसन्द करते हैं। साधनों का अपने लये ही संग्रह करता है। मनुष्य अपने संस्कारों से व्यवहार करता है। यह संस्कार उसके पहले वचारों का परिणाम होता है। इन संस्कारों को श्रेष्ठ बनाकर सुधारा जा सकता है। यह वद्या व ज्ञान के प्राप्त करने से कया जाता है। इसके साथ उदार लोगों के संसर्ग से साधु-सन्तों के उपदेश से चत्त के संस्कारों में अन्तर लाया जा सकता है। मनुष्य के मन में वचारों की उदारता से ही मनुष्य सबको साथ लेकर चल सकता है। सब मनुष्य एक से नहीं होते हैं। सब अच्छे नहीं होते तो सब बुरे नहीं होते। मनुष्य के अन्दर अच्छा बुरा बनने की अपार सभावना होती है। अतः मनुष्य को बुराई से बचाकर अच्छाई की ओर ले जाने का प्रयत्न करना चाहिए, इसका उपाय है जो अपने से कम है उसको साथ लेकर चलना इसके लए मनुष्य को सहनशील होना पड़ता है। अपनी वस्तु उनको बांटनी पड़ती है, जिनके पास नहीं है। जो अभाव-ग्रस्त है, उसकी सेवा सहायता करना, हमारे द्वारा तभी सभव है जब हमारा हृदय वशाल हो।

मनुष्य के वस्तार की सीमा उसके वचारों के साथ घटती बढ़ती है। एक मनुष्य जो केवल अपने लए सोचता था, उससे वह बड़ा है, जो अपने परिवार के लए सोचता है। परिवार में कोई पति-पत्नी बच्चे को ही अपना परिवार समझता है, तो दूसरा माता- पता को भी स म लत करता है। तीसरा अपने माता- पता जी अपने भाई-बहन, उनके परिवार सगे सबन्धियों को भी अपने परिवार में मानता है। इसमें कतने बड़े रूप में अपने परिवार को स्वीकार करना चाहिए। उसका एक ही नियम है, वचारों की दृ ष्टि से सभी मनुष्य और प्रा णमात्र मनुष्य के परिवार में आते हैं। साधनों के वचार से जितने अ धक साधन जिसके पास है, वह अपने

परिवार को उतना वस्तार दे सकता है, उतना बड़ा बना सकता है। कम साधन होने पर परिवार के कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व के साथ निश्चित होते हैं, परिवार में सदस्यों की आवश्यकता और साधनों की प्राप्ति और उनके वतरण में मनुष्य के हृदय की वशालता का पता चलता है। संकु चत हृदय बहुत साधन होने पर भी देने में भरोसा नहीं करता। वशाल हृदय कम साधन होने पर भी वतरण में कष्ट अनुभव नहीं करता। हृदय की वशालता का अ भप्राय अपना सब कुछ सब में बांट देना नहीं है। अपने परिवार के लए साधन जुटाना अपने बच्चों को पढ़ाना- लखाना व्यक्ति का कर्तव्य है। उनको छोड़कर अन्य को पढ़ाना ये हृदय की वशालता नहीं है। अपनों के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए भी दूसरे का सहयोग करना, न कर पाने की स्थिति में सहयोग की भावना रखना, हृदय की वशालता का परिचायक है। सहयोग, सहानुभूति, समर्थन मनुष्य के वशाल हृदय का परिचायक है।

मन्त्र में परिवार को साथ लेकर चलने के लये सन्देश दिया है। उपाय बताया है ज्यायस्व अन्तश्चि त्तनो बनना है। ज्यायस्व बनने का अर्थ है- समर्थ बनना। समर्थ कैसे बन सकते हैं, उसके लए वेद कहता है- अन्तश्चि त्तनः बनना होगा। बड़े बनने का उपाय है, चत्त को अन्दर से वक सत करना है। चत्त को अन्दर से वक सत करने का उपाय चत्त को वद्या से युक्त करना, चत्त को सज्ञान करना-कराना। सामान्य प्रकृति के प्राणी में संकोच, स्वार्थ संकीर्णता होती है, वद्या, शास्त्र अध्ययन, उपदेश से ही इस संकीर्णता को स्वार्थ को दूर कया जा सकता है, इसी लए वेद ने कहा परिवार में समझ को वक सत करके मनुष्य को हृदय बड़ा करना होगा, कहा गया है-

ज्यायस्वान्ताश्चि त्तनो।।

ved
वैदिक धर्म, हिन्दी

सूर्य नमस्कारः सर्वोत्तम व्यायाम भी, धर्म भी : डॉ धर्मवीर

JULY 31, 2015 1 COMMENT

प्रधानमन्त्री मोदी के प्रयासों से इक्कीस जून का दिन योग दिवस के रूप में मनाने की घोषणा हुई। कुछ लोगों को क्यों क मोदी के नाम से ही चढ़ है, अतः मोदी का नाम आते ही उनका मुंह कड़वा हो जाता है। फर योग दिवस का सबन्ध मोदी के नाम से जुड़ गया तो योग भी उनके लए कड़वा हो गया और वे थूकने के लये मजबूर हैं। ऐसे लोगों का कहना है क योग हिन्दुओं का है। योग साप्रदायिक है। सूर्य नमस्कार नहीं करेंगे क्यों क मुसलमान खुदा के अतिरिक्त कसी के सामने सर नहीं झुकाता। उनको …….. और स्पष्टीकरण देने वालों की भी कमी नहीं। लोग कहते हैं योग धा र्मक नहीं। सूर्य नमस्कार व्यायाम है, धर्म नहीं। ये बेचारे जानते नहीं क हमारे सब कये जाने वाले काम धर्म ही होते हैं। जिस-जिस बात को हम धर्म मानते हैं, क्या ईसाई और मुसलमान उनको करना छोड़ देंगे या उनको मानना छोड़ देंगे? हम सत्य बोलना धर्म समझते हैं, आप सत्य बोलना-छोड़ना पसन्द करेंगे या झूठ बोलना स्वीकार करना चाहेंगे? हमारे यहाँ कौन-सा भला काम है जिसकी धर्म में गणना

नहीं की गई। हमारे यहाँ माता- पता की, गुरुजनों की, पी ड़तों की, असमर्थों की सेवा और रक्षा करना धर्म है। इनसे पूछो, ये क्या अपने बड़ों को, महापुरुषों को, देवी-देवताओं को, भगवानों को जूते मारने का वधान करेंगे। हमारे यहाँ जीवन की हर क्रया श्रेष्ठ रूप में की जा सके, अतः धर्म के साथ जोड़ा गया है, फर तो आपको हमारा धर्म स्वीकार करना पड़ेगा या मृत्यु को अपनाना पड़ेगा। इच्छा आपकी है, आप कौन सा वकल्प स्वीकार करेंगे? अतः यह तर्क क योग, सूर्य नमस्कार, व्यायाम करना हिन्दू धर्म है, अतः हम ऐसा नहीं करेंगे। हमारे यहाँ जीना धर्म है, तो क्या आप मरोगे। यह सब आपकी अज्ञानता और राजनीतिक धूर्तता है।

सूर्य नमस्कार एक सर्वांगीण व्यायाम है। इससे न केवल शरीर स्वस्थ होता है अ पतु मान सक, बौद् धक वकास भी होता है। पशु-पक्षी और प्राणी, जो वनों में स्वतन्त्रता से वचरते हैं, उन्हें भोजन और सुरक्षा के लए बहुत परिश्रम करना पड़ता है, अतः पृथक् से व्यायाम की आवश्यकता नहीं होती। मनुष्य बहुत कम परिश्रम से या बिना परिश्रम के ही भोजन सामग्री और सु वधायें प्राप्त कर लेता है। अतः उसका परिश्रम भी कम हो गया। परिश्रम कम होने से शरीर की क्रयायें प्रभा वत होती हैं। इससे मनुष्य का जीवन चक्र प्रभा वत होता है। उसका शरीर रोग, दुर्बलतादि से प्रभा वत होने लगता है। जैसे व्यय और संचय में सन्तुलन बिगड़ जाये या प्राप्ति अ धक हो जाये तो संग्रह बढ़ता जाता है, उसकी प्रकार मनुष्य बिना श्रम के भोजन करता रहता है तो मनुष्य के शरीर में भोजन का संग्रह होने लगता है। शरीर में चर्बी जमा होने लगती है। अ धक खाने से पाचन तन्त्र पर अ धक भार पड़ने से वह बिगड़ने लगता है, मनुष्य रोगी हो जाता है, उसके अन्दर आलस्य, प्रमाद के कारण श थलता आती है। जीवन रोगयुक्त भार बन कर दुःख का कारण बन जाता है। जीवन व्यर्थ लगने लगता है। अतः आज की परिस्थिति में शुद्ध अन्न, जल, हवा की आवश्यकता है, उसी प्रकार व्यायाम के द्वारा शरीर स क्रय व स्वस्थ रखने की आवश्यकता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखकर वद्यालयों-महा वद्यालयों में छात्रों के लये व्यायाम और खेलों की व्यवस्था की जाती है। ये व्यायाम और खेल बहुत साधन, स्थान और समय माँगते हैं। ये सब उपाय समाज में सबको सुलभ नहीं होते, अतः शरीर को स्वस्थ रखने के लए ऐसा वकल्प चाहिए जो सबको सदा सभी स्थानों पर सुलभ हो। सूर्य नमस्कार इस प्रकार का व्यायाम है, जो सबके लए सब स्थानों पर सुलभ है। अन्य व्यायाम जैसे कोई खेल खेलने के लए मैदान या खेल के स्थान की आवश्यकता होती है। कुश्ती के लए साथी और अखाड़े की जरूरत होती है। तैरने के लए तालाब, पानी की आवश्यकता होती है। दण्ड-बैठक करने के लए एकान्त स्थान या व्यायामशाला की सु वधा अपे क्षत है। घूमने के लए शुद्ध हवा का लबा-चौड़ा स्थान चाहिए। क्रकेट, फुटबाल, हॉकी, कबड्डी आदि सभी खेलों की सु वधा सबको प्राप्त नहीं होती। ये सभी व्यायाम शरीर की मांसपे शयों को पुष्ट करते हैं, शरीर को बलवान बनाते हैं परन्तु आन्तरिक भाग पर बहुत प्रभावशाली नहीं होते।

सूर्य नमस्कार इन सब प्रश्नों का एक मात्र समाधान है। व्यायाम करने से शरीर के वशेष अंगों पर प्रभाव पड़ता है, वहाँ सूर्य नमस्कार करने से पाँच संस्थान पर पूरा प्रभाव पड़ता है, आँतें-यकृत-प्लीहा (जिगर, तिल्ली) आदि। इनसे अग्निमान्ध, अजीर्ण, मलावरोध आदि उदर रोग के निवारण में सहायता मलती है। सूर्य नमस्कार में श्वास-प्रश्वास की वशेष क्रया होती है जिससे हृदय तथा फेफड़ों का व्यायाम होता है तथा खाँसी, दमा जैसे रोगों में लाभ होता है। इसके अतिरिक्त नाड़ी संस्थान, कमर, रीड की हड्डी का भी व्यायाम सूर्य नमस्कार करने से

ठीक हो जाता है। इस प्रकार सभी देशी- वदेशी व्यायामों में सूर्य नमस्कार सबसे श्रेष्ठ व्यायाम है। यह व्यायाम बालक-वृद्ध-युवा-स्त्री सभी वर्ग के व्यक्तियों को करना सभव है। सभी को इससे लाभ प्राप्त होता है। आयु और सामर्थ्य के अनुसार इसे कम अ धक कर सकते हैं। इसे कहीं भी, कसी भी आयु का व्यक्ति प्रारभ कर सकता है और आजीवन इसे करता रह सकता है।

सूर्य नमस्कार में नमस्कार शद का ग्रहण इस लये कया गया है क्यों क इस आसन को करते हुए साष्टांग नमस्कार की मुद्रा बनती है। अष्टांग नमस्कार में मस्तक, छाती, दो हाथ, दो घुटने, दो पैर, इनके साथ दृष्टि, वाणी, मन भी इसी क्रया में लगे होते हैं। इस नमस्कार मुद्रा को सूर्योदय के समय कया जाता है, इस लये इसे सूर्य नमस्कार कहते हैं। इस आसन को सूर्योदय के समय करने से इस व्यायाम का समय निश्चित होता है तथा सूर्य की रश्मियों का लाभ व्यायामकर्त्ता को मलता है। आजकल की जीवन पद्धति में नगरों में कार्य करने वाले और भीड़ भरे मकानों में रहने वाले और वातानुकू लत कक्षों में दिन का अ धक समय बिताने वाले लोग सूर्य के प्रकाश से वञ्चित हो जाते हैं। सूर्य के प्रकाश के सेवन के अभाव से च कत्सकों का मानना है क मनुष्य के शरीर में वटा मन डी की कमी हो जाती है, अतः प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन सूर्य की धूप का सेवन करना चाहिए। सूर्य नमस्कार करने से उदय होते हुए सूर्य की करणें सूर्य नमस्कार करने वाले को सहज मलती हैं। जिससे अतिरिक्त स्वास्थ्य लाभ होता है। भारतीय जीवन शैली में जिन वस्तुओं का मनुष्य उपयोग करता है, उनके प्रति समान प्रकाशन के लए देवता का भाव दिया जाता है। इस लये सूर्य को देव कहकर सूर्य के बारह नामों का उपयोग करके बारह बार उसका उच्चारण करते हैं। वेद के सूर्य वषयक मन्त्र के छोटे-छोटे खण्ड कर, उनके प्रारभ में ओम तथा अन्त में नमः जोड़कर मन्त्र बनाया गया है। ऐसा करने से एक कार्य उपासना में बदल जाता है। व्यायाम उपासना बन जाती है। कसी को मन्त्र से चड़ है तो वह यह व्यायाम बिना मन्त्र के कर सकता है। इसमें आग्रह-दुराग्रह की कोई बात नहीं है।

सूर्य नमस्कार करने की पद्धति है, व्यक्ति को प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व व्यक्ति को हल्के, ढ़ीले कपड़े पहनने चाहिए, खाली पेट, सामान्य दिनचर्या के कार्य करके सूर्य नमस्कार की क्रया करनी चाहिए। इस सूर्य नमस्कार में पहली स्थिति अवस्थान है, इस पहली मुद्रा में पहली स्थिति बनती है। दूसरी स्थिति जानु आसन, जिसमें सर घुटनों पर लगता है। तीसरे आसन में दोनों हाथ आगे रखकर दृष्टि ऊपर होती है, इसे ऊर्ध्वेक्षण कहते हैं। चौथी स्थिति में पूरे शरीर का हाथ पैर पर सन्तुलन बनाया जाता है, इसे तु लतवपु आसन कहते हैं। पाँचवी स्थिति साष्टांग दण्डवत् की स्थिति होती है। छठे आसन में हाथों पर सर ऊपरकर कमर को मोड़कर पीछे की ओर देखने का प्रयत्न होता है। कशेरूका संकोच का आसन है। सातवां आसन हाथ पैर के आधार पर ऊपर उठने से और सामने झुकने से रीढ की हड्डी के जोड़ खुलते हैं।

आठवें आसन के रूप में दोनों हाथों के मध्य पैर को लाकर ऊपर की ओर देखना पुनः ऊर्ध्वेक्षण है। नौवें आसन के रूप में खड़े होकर फर जानु आसन की स्थिति बनती है। इसमें हथे लयाँ भू म पर और सर घुटनों पर होता है। दसवीं स्थिति पुनः हाथ जोड़ कर अंगूठे, हृदय के साथ लगाते हुए नमस्कार की मुद्रा बनती है। इन आसनों का एक चक्र एक सूर्य नमस्कार होता है।

इस प्रकार इन आसनों के करने से गर्दन, छाती, कमर, पैर, पेट, जांघे, पण्ड लयाँ, स्नायु, पाचन तन्त्र, पीठ, गला, गर्दन, यकृत, तिल्ली, फेफड़े, पृष्ठवंश, आदि मजबूत होते हैं। सूर्य नमस्कार करने से इच्छा शक्ति दृढ़ होती है, मनोबल बढ़ता है। दृष्टि शक्ति बढ़ती है। मन्त्रपाठ से वाणी की शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार सूर्य नमस्कार एक सर्वांगीण व्यायाम है। सूर्य नमस्कार श्वास-प्रश्वास के साथ कया जाता है, इस तरह व्यायाम के साथ इसमें प्राणायाम की क्रया भी होती है। पहले आसन में श्वास के अन्दर लेने से पूरक, दूसरे में रोककर रखने से कुभक होता है। तीसरे आसन में पूरक, कुभक तथा चौथे आसन में कुभक, फर पाँचवें आसन में कुभक और रेचक प्राणायाम होता है। छठे आसन में फर पूरक कुभक, सातवें में कुभक, आठवें में कुभक, नवम में कुभक के साथ एक कया जाता है। इस प्रकार पूरे सूर्य नमस्कार आसनों के साथ प्राणायाम की क्रया जुड़ी होने से इसका लाभ अनेक गुणा बढ़ जाता है। सूर्य नमस्कार से जितना लाभ होता है, उतना लाभ कसी अन्य व्यायाम से नहीं होता।

भारतीय परपरा में एक अद्भुत वशेषता है, सामान्य से लगने वाले कामों से महत्त्वपूर्ण बातों का स्मरण करना तथा बड़े-बड़े लाभ के कामों को सद्ध करना। इस लये सूर्य नमस्कार में आसनों को सूर्य से जोड़ा है, सूर्य संसार का सबसे प्रथम और वशाल ऊर्जा का समुद्र है। मानव एवं प्राणी जगत् वनस्पतियों से ऊर्जा प्राप्त करता है और आज का वैज्ञानिक जानता है, सभी वनस्पति जगत् सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करता है। सभी प्राणी वनस्पतियों को खाकर ऊर्जावान् बनते हैं। अतः मनुष्यों को भी सूर्य से ऊर्जा लेनी चाहिए। इसी उद्देश्य से सूर्य की रचना की गई है। वैदिक साहित्य में सूर्य को औष धयों का राजा कहा गया है। वदेशी लोगों को सूर्य का पर्याप्त प्रकाश नहीं मलता, वे सूर्य स्नान की योजना करते हैं। सूर्य का प्रकाश न मलने से वनस्पतियाँ पीली पड़कर नष्ट हो जाती है। मनुष्य भी सूर्य के प्रकाश के अभाव में निस्तेज होता है। सूर्य के प्रकाश और गर्मी के न मलने से मनुष्य के शरीर से पसीना नहीं निकलता, शरीर के छिद्र न खुलने से शरीर को पर्याप्त प्राण वायु नहीं मल सकता। इस लए मनुष्य को अपने दैनिक जीवन में सूर्य के प्रकाश का सेवन करना चाहिए तथा व्यायाम करके शरीर की त्वचा को प्राणवायु प्राप्त करने में सक्षम बनाना चाहिए। जो पशु, गाय आदि सूर्य के प्रकाश में वचरण करते हैं, घास खाते हैं, उनके शरीर में सूर्य- करणों के प्रभाव से उनके दूध में स्वर्ण का प्रभाव उत्पन्न होता है। मनुष्यों को भी प्रातः-सायं खुले शरीर से सूर्य के प्रकाश में भ्रमण करना चाहिए। सूर्य से लाभ प्राप्त करने के लये ये पद्धति बनाई गई है, उसमें मूर्ति पूजा या जड़ पूजा की भावना करना नितान्त अज्ञान है। इस व्यायाम से स्वास्थ्य की वृद् ध होती है, रोगों का निवारण होता है और सब व्यायामों में बहुत धन व्यय होता है परन्तु सूर्य नमस्कार एक ऐसा व्यायाम है जिसमें एक पैसा भी खर्च नहीं होता। इसे धनी-निर्धन सभी स्वेच्छा पूर्वक कर सकते हैं। सूर्य नमस्कार करने वाला कभी रोगी नहीं हो सकता, जिन लोगों ने सूर्य नमस्कार का अयास कया है, उन लोगों का अनुभव है, इसके करने से पीठ और कमर के दर्द से छुटकारा मलता है। पेट के कष्ट नहीं होते, महिलाओं को भी उनके रोगों में अत्यन्त लाभ मलता है। बालक इस व्यायाम को करते हैं तो उनके बल, बुद् ध के साथ, उनके शरीर की लबाई भी आश्चर्यजनक रूप से बढ़ती देखी गई है। सूर्य नमस्कार का वरोध धा मक स्तर पर अज्ञानमूलक है और राजनीतिक स्तर पर एक धूर्तता पूर्ण कार्य है। इसके वरोध से राष्ट्र की स्वास्थ्य रूपी सप त का नाश होगा, अतः इसे बिलकुल मान्यता नहीं देनी चाहिए। शरीर के स्वस्थ रखने का मूलमन्त्र है- भोजन, वश्राम और संयम अर्थात् उ चत मात्रा में सात्विक भोजन समय पर करना, यथा समय सोना, जागना और व्यायाम, संयम करना। अतः आचार्य चरक ने ठीक ही कहा है-

आहारो निद्रा ब्रह्मचर्यम् त्रय उपस्तभा शरीरस्य।

– धर्मवीर

अज्ञान से ज्ञान की ओर – आचार्य शवकुमार आर्य

JULY 30, 2015 LEAVE A COMMENT

जो एकत्व भाव से सभी को देखता है, उसको मोह तथा शोक नहीं होता है-

यस्मिन् सर्वा ण भूतान्यात्मैवाभूद् वजानतः।

तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः।।

यजु. 40-7

पदार्थ – (यस्मिन्) जिसमें-जिसके हृदय में। (सर्वा ण भूतानि) सभी प्राणी (आत्मा एव) आत्मा ही (अभूत) हैं (वजानतः) जानते हैं (तत्र) उसके हृदय में (कः मोहः) कैसा मोह (कः शोकः) कैसा शोक (एकत्वम्) एकता को (अनुपश्यतः) देखने वाले को।

अर्थ- जो सभी प्रा णयों को आत्मा ही समझकर सब में एक जैसा अनुभव करता है, ऐसे व्यक्ति को कभी कोई मोह तथा शोक नहीं होता है। इन दोनों मन्त्रों में एक क्रम का वर्णन कया हैं। मनुष्य और अन्य प्रा णयों में तीन प्रकार के रोग होते हैं। पहले का नाम है व च कत्सा, दूसरे का नाम है मोह और तीसरे का नाम शोक है, परन्तु इन सभी दुःख निकायों का एक ही उपाय या समाधान है, जिसे कहते हैं समत्व। समत्व को व्यवहार के स्तर लाने के लए प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार तथा यथायोग्य सभी के साथ व्यवहार करना चाहिए।

इन तीन प्रकार की व्यावहारिक भूलों के कारण मनुष्यों को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसी प्रकरण को योग शास्त्र में बड़े अच्छे प्रकार से स्पष्ट कया है-

''मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां-

सुख-दुःख पुण्यापुण्य वषयाणाम् भावनातश्चित्तः प्रसादनम्''

– योग. द. समा धपाद-33

इस योगदर्शन के सूत्र में चत्त को प्रसन्न करने के चार उपाय बताये हैं। सुखी जनों को देखकर या मलकर प्रसन्न होना तथा दीन-दु खयों को देखकर करुणा के भाव रखना चाहिये और इनको सहयोग प्रदान करना चाहिए। इसी प्रकार से सज्जन मनुष्य या पुण्यात्माओं में मुदिता (हर्ष) के भाव रखने चाहिये। चौथा है अपुण्यात्मा, अर्थात् दुष्ट, अधर्मी। उसके प्रति सज्जन जनों को सदैव उपेक्षा के भाव रखने चाहिये, क्यों क दुष्ट व्यक्ति से दोस्ती तथा दुश्मनी-दोनों ही दुःखदायी होती हैं। इसी प्रकार से जो प्रतिपाद्य वषय है, उसमें एकता के स्थान पर अनेकता आती है, क्यों क भन्न- भन्न वस्तु व व्यक्ति के स्वभाव अथवा गुणों को देखकर उसी प्रकार की वृ त बदलती है, तभी मानव सुखी व प्रसन्न चत्त रह सकता है, जब

वह वस्तु के यथार्थ स्वरूप को देखे। सभी को सम दृष्टि से देखना तो सदैव अशान्ति का कारण होगा। वस्तुतः वेदमन्त्र प्रतिपादित ''एकत्व'' कसी अन्य बात को ही कह रहा है। जिस एकत्व के भाव से लोग मोह, शोकादि सभी अन्तर वकारों से शान्त या संयत हो जाते हैं, वह एकत्व क्या है? यह सर्वा धक वचारणीय बिन्दु है। जो भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद के वषय को समता में लाने तथा अनेकता में ही एकता को स्थिर करने का नाम एकत्व या समत्व है। जैसे एक सन्तरे के फल में व भन्न प्रकार के तत्त्व अथवा रसों के होने पर भी समत्व है, इसी प्रकार अन्य पदार्थों में अनेकता में एकता है। मानव शरीर में दस इन्द्रियाँ तथा चार अन्तःकरण हैं। मन, बुद् ध, चत्त तथा अहंकार ये सभी मलकर आत्मिक शान्ति को एक रूप में प्रकट करते हैं। मन तथा इन्द्रियों की अनेक क्रयाएँ एक ही सुखानुभूति को जन्म देती हैं तथा भन्न- भन्न, क्ष णक सुख बड़े सुखों में परि णत हो जाते हैं। इसी तरह समस्त जीवन के कर्म एक फल में समाहित हो जाते हैं। आत्मवत्- जो देखने का दृष्टिकोण है, वह यह नहीं कहता क अच्छी-बुरी वस्तु या व्यक्ति को यथार्थ में मत देखो। आत्मवत् दर्शन का अ भप्राय है क सभी जड़-चेतन व आत्मा-परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को जानो तथा जानकर वषमता को हटाकर समता स्था पत करो। भन्न-भिन्न पदार्थों का अपना-अपना एकत्व या समत्व है। उसी प्रकार से स्वयं आत्म तत्त्व की भी समसन्तुलन व एक अवस्था है। जो पदार्थ अपनी सच्ची शन्ति को भंग न कर सके और उस वस्तु के क्ष णक संसर्ग सुख के वशीभूत न हों, वह यथार्थ में एकत्व का स्वरूप है। समत्व को लाने के लए इस आत्मा को न जाने कतने जन्म धारण करने पड़ेंगे। क्यों क भौतिक वस्तुओं में तो सदैव एकत्व व समानता होती ही नहीं है, क्यों क इन पदार्थों में एक रूपता सदैव रहती ही नहीं। ये सर्वदा बदलते रहते हैं। जैसे-शीत काल में वायु शीतल अनुभव होती है, परन्तु वही वायु ग्रीष्म ऋतु में गर्म प्रतीत होती है। जैसे व्यवहार में अभी एक व्यक्ति हमारा मत्र है, कन्तु वही व्यक्ति कुछ काल बाद हमारा दुश्मन बन जाता है। जिस भोजन से हमें जीवन मल रहा है, वही भोजन अब वषम हो गया है और नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर रहा है। इस पंचभौतिक शरीर को कतने प्रयत्नों से पाला-पोषा था, कन्तु अब तो इसने जीवन जीने से स्पष्ट मना कर दिया। जो सभी सांसारिक सुखों का अ धकरण था, वही अंग-प्रत्यंग से श थल हो चुका है। वह अब नवीनीकरण चाहता है। वह सभी सुखों के स्थान पर दुःख देना प्रारभ कर देता है, अतः ध्यान देने योग्य बात यह है क सुख-दुःख तथा शान्ति-अशान्ति कोई वस्तुनिष्ठ नहीं है। इनमें तो एकान्तिक नियम स्था पत कया ही नहीं जा सकता है, जिसके लए वेद में उपदेश दिया जा रहा है। वस्तुतः कोई संशय तथा रोग व्यर्थ नहीं है, कन्तु उनका जो उत्पन्न होना है, उसका समु चत उपाय करना आवश्यक है। इसके आगे एक और समस्या है, उसे मोह कहते हैं। मोह और प्रेम के अन्तर को जानना भी बहुत जरूरी है, क्यों क इनके मौ लक भेद को जाने बिना सन्देह दूर नहीं हो सकता है, प्रायः मोह के दीवाने लोग प्रेम को अन्यत्र स्थानों पर घसीटते हैं और मोह पपासा को तृप्त करते हैं, कन्तु सच्चे प्रेम के अभाव में सच्ची शन्ति नहीं मलती है। आधुनिक क वयों ने मोहमयी वासनाओं को प्रेम के रूप में प्रस्तुत कया है। यह सच्चे प्रेम के साथ घोर अन्याय है। मोह तथा प्रेम में मौ लक अन्तर है, प्रेम निःस्वार्थ ववेकपूर्वक होता है, कन्तु मोह कसी वशेष स्वार्थयुक्त तथा ववेकशून्य होता है। ''मुह-वै चत्ये'' इस धातु से मोह शद सद्ध होता है। इसका अर्थ है चत्त का वच लत होना या वभ्रम होना। इसी प्रकार ''प्रीञ्-तर्पणे'' धातु से प्रेम शद सद्ध होता है, जिसका अर्थ होगा- तृप्ति, तो इन दोनों शदों के पृथक्-पृथक् अर्थ हैं। जिसमें क्ष णक सुख है अ पतु दुःख अ धक है, उसे मोह कहते हैं। दूसरा है प्रेम, जो स्थायी सुख तथा समत्व का कारण है। क्यों क

मोह का उत्प त्त स्थान स्नेह है। शास्त्र कहता है क ''नास्ति मोहसमासवः'' -महाभारत, अर्थात् मोह के समान कोईाी मादक द्रव्य नहीं है। जैसे अहंकार का मनुष्य के ऊपर प्रकोप होता है, तब वह ववेक शून्य हो जाता है, उसी प्रकार जब मनुष्य के ऊपर मोह का आक्रमण होता है, तब भी वह मोहान्धकार में अन्धा हो जाता है। एक माँ अपने अबोध बच्चे के दोषों को छिपाती है, क्यों? जिससे उसका पता उसे दण्ड न दे सके। यह उस माँ का मोह संयुक्त अज्ञान है। उसी मोह के साथ अन्य दोष भी जुड़ जाते हैं। धृतराष्ट्र का अपने पुत्रों के प्रति अत्यन्त मोह था। जिससे वह सत्यासत्य का निर्णय न कर सका और एकीषण युद्ध का कारण बना। ''मोहः पापीयान्'' की उक्ति यहाँ सार्थक सद्ध होती है। इस मोह की कई प्रकार की शाखाप्रशाखायें होती हैं। जैसे माता- पता, पति-पत्नी भाई-बहन, पुत्र, पौत्र, धन, धान्य तथा भवन-भोजनादि। इसके अतिरिक्त शरीर तथा प्राणों का मोह अतीव प्रगाढ़ होता है। जिस शरीर में आत्मा ने लबे समय तक वास कया है, उसके प्रति अब अत्य धक मोह जाग्रत हो जाता है, जब क जिसका संयोग हुआ है, उसका वयोग भी अवश्यंभावी है, क्यों क-

जरा मृत्यु हि भूतानां खादितारौ वृका वव।

ब लनां दुर्बलानाञ्च ह्रस्वानां महताम प।।

ये बुढ़ापा तथा मृत्युरूपी दो भे ड़ये हैं, जो निरन्तर मानव शरीरों को खाये जा रहे हैं। बलवान, दुर्बल या छोटा-बड़ा कोई भी हो, सभी को ये खाने वाले हैं। मनुष्य की अति आसक्ति प्रायः पद लप्सा होती है, जिसे शास्त्रों में लोकेषणा के रूप में उद्धृत कया है। मोह के लघु बन्धनों को छोड़ने के बाद यह लोक प्रतिष्ठा का मोह बाँध ही लेता है, जिससे बड़े-बड़े त्यागी तपस्वी लोग भी नहीं बच पाते हैं। वषय को वषाद करने के लए एक क व ने रूपक अलंकार के रूप में एक सुन्दर आयान दिया है। वह यहाँ प्रस्तुत है- आत्मा जब इस शरीर में आती है, तभी से पति-पत्नी सन्तान, चलाचल सप त्त और पद के मोह में फँस जाता हैं उसकी स्थिति एक भँवरे के समान होती है, जो एक कमल की सुगन्ध के सुगन्धि पर मुग्ध हो जाता है और उसी फूल में अपना आवास बना लेता है। प्रतिदिन के गमनागमन की परेशानी को दूर करने के लए उस फूल में बैठ जाता है, कन्तु रात्रि के समय पुष्प पराग के अन्दर बैठकर यह वचार करता है क-

रात्रिग मष्यति भ वष्यति सुप्रभातम्।

भास्वानुदिष्यति ह सष्यति पंकज श्रीः।।

इत्थं व चन्तयति शोकगते द् वरेफे।

हा हन्त, हन्त! न लनीं गज उज्जहार।।

अर्थात् वह मनोरथ करता है क रात्रि बीतेगी और सुन्दर प्रभात होगा, सूर्य उदित होगा, कमल खलेंगे ले कन उस भँवरे के मनोरथ पर जो तुषारापात हुआ, वह अत्यन्त दुःख भरा था। रात्रि के समय वहाँ एक जंगली हाथी आया और उसने जल पीकर जो उत्पात कया वह शदों में कहना कठिन है। उस मदान्ध गज ने सरोवर स्थित उस कमल वन को कुचल डाला और उन्हीं जिस कमल पुष्प में भौंरा बैठा हुआ था, वह भी कुचला गया। अतः इस मानव की दशा

वैसी ही होती है, जैसे क उस मूर्ख भौंरे की हुई। इसी लए मोह के स्वार्थ रूपी अन्धकार से निकलकर 'प्रेम' प्रकाश में आना चाहिये, जिससे संसार के बन्धन छूट सकें। इति।

-मह ष क पल आर्ष गुरुकुल (वैदिक आश्रम), कोलायत, बीकानेर, राज. चलभाष- **9413144029, 9166323384**

वेदो का वज्ञानं मानवमात्र के लए

JULY 28, 2015 1 COMMENT

।। ओ३म ।।

अयं त इध्म आत्मा जातवेदः।

"हे अग्ने ! तेरे लए सबसे पहला ईंधन "अयं आत्मा" – अर्थात यह यजमान – स्वयं है।"

वेदो का वज्ञानं मानवमात्र के लए :

क्षयरोग (TB – Tuberculosis) से बचाव और उपचार करता है यज्ञ।

सूर्य का प्रकाश मनुष्य के लए वैसे भी लाभदायक है। इससे शरीर में वटा मन डी बनता है, जिससे हड् डयां पुष्ट होती हैं। उदय और अस्त होने वाले सूर्य की करणे तो और भी अ धक गुणकारी होती हैं।

उद्यन्नादित्यः क्र महन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मि भः।
ये अन्तः क्रमयो ग व।।

(अथर्ववेद २।३२।१)

"उदय होता हुआ और अस्त होने वाला सूर्य अपनी करणों से भू म और शरीर में रहने वाले रोगजनक कीटो का नाश करता है।"

सूर्य का प्रकाश कृ मनाशक है। रोबर्ट काउच ने सन १८९० में अनेको प्रयोगो द्वारा यह सद्ध कया की क्षयरोग (फेफड़ो के क्षयरोग को छोड़कर) के कीटाणु इस प्रकाश में दस मनट से अ धक समय तक जी वत जी वत नहीं रह सकते। इस लए क्षयरोग से ग्रस्त व्यक्ति को धुप सेकनी चाहिए।

संभवतः जनसाधारण में इसको यह कहकर मान्यता प्रदान की जाती है की अँधेरे में क्षयरोग फूलता फलता है तथा प्रकाश में यह दम दबाकर भाग जाता है।

अतः यज्ञ के लए सूर्योदय के पश्चात तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय ही ठीक है।

आधुनिक वज्ञानं के अनुसार सूर्य की धुप क्षयरोग के लए बचाव और उपचार दोनों है

http://www.dailymail.co.uk/…/Sunshine-vitamin-helps-treat-p…

अब इस समय पर यज्ञ करना लाभदायक ही होगा क्यों क यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली सामग्री में मुख्य रूप से गौघृत, खांड अथवा शक्कर, मुनक्का, कश मश आदि सूखे फल जिनमे शक्कर अ धक होती है, चावल, केसर और कपूर आदि के संतु लत मश्रण से बनी होती है।

अब इस वषय पर कुछ वैज्ञानिको के वचार :

१. फ्रांस के वज्ञानवेत्ता ट्रिलवर्ट कहते हैं : जलती हुई शक्कर में वायु – शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति होती है। इससे क्षय, चेचक, हैजा आदि रोग तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

२. डॉक्टर एम टैल्ट्र ने मुनक्का, कश मश आदि सूखे फलो को जलाकर देखा है। वे इस निर्णय पर पहुंचे हैं की इनके धुंए में टायफाइड ज्वर के रोगकीट केवल तीस मनट तथा दूसरी व्या धयों के रोगाणु घंटे – दो घंटे में मर जाते हैं।

३. प्लेग के दिनों में अब भी गंधक जलाई जाती है, क्यों क इसमें रोगकीट नष्ट होते हैं। अंग्रेजी शासनकाल में डाकटर करनल कंग, आई एम एस, मद्रास के सेनेटरी क मश्नर थे। उनके समय में वहां प्लेग फ़ैल गया। तब १५ मार्च १८९८ को मद्रास वश्व वद्यालय के वद्या र्थयों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने कहा था – "घी और चावल में केसर मलकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है।" इस भाषण का सार श्री हैफ कन ने "ब्यूबॉनिक प्लेग" नामक पुस्तक मे देते हुए लखा है, "हवन करना लाभदायक और बुद् धमत्ता की बात है।"

मह र्ष दयानंद ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लखा है :

"जब तक इस होम करने का प्रचार रहा ये तब तक ये आर्यवर्त देश रोगो से रहित और सुखो से पूरित था अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।"

(स. प्र. तृतीय समुल्लास)

यहाँ ऋ ष इसी वज्ञानं को समझाने की को शश कर रहे हैं जो आज का आधुनिक वज्ञानं मानता है।

कृपया यज्ञ करे – राष्ट्र और पर्यावण को सुखी बनाये

आओ लौटो वेदो की और।

नमस्ते

नोट : इस पोस्ट की कुछ सामग्री "यज्ञ वमर्श" पुस्तक से उद्धृत है।

अनवर जमाल साहब की पुस्तक "दयानंद जी ने क्या खोया क्या पाया" के प्रतिउत्तर में :

JULY 28, 2015 11 COMMENTS

।। ओ३म ।।जनाब अनवर जमाल साहब ऋ ष के ज्ञान और वेद के वज्ञानं पर शंका उत्पन्न करते हुए लखते हैं :

यदि दयानन्द जी की अ वद्या रूपी गांठ ही नहीं कट पायी थी और वह परमेश्वर के सामीप्य से वं चत ही रहकर चल बसे थे तो वह परमेश्वर की वाणी `वेद´ को भी सही ढंग से न समझ पाये होंगे? उदाहरणार्थ, दयानन्दजी एक वेदमन्त्र का अर्थ समझाते हुए कहते हैं-
`इसी लए ईश्वर ने नक्षत्रलोकों के समीप चन्द्रमा को स्था पत कया।´ (ऋग्वेदादि0, पृष्ठ 107)
(17) परमेश्वर ने चन्द्रमा को पृथ्वी के पास और नक्षत्रलोकों से बहुत दूर स्था पत कया है, यह बात परमेश्वर भी जानता है और आधुनिक मनुष्य भी। फर परमेश्वर वेद में ऐसी सत्य वरूद्ध बात क्यों कहेगा?
इससे यह सद्ध होता है क या तो वेद ईश्वरीय वचन नहीं है या फर इस वेदमन्त्र का अर्थ कुछ और रहा होगा और स्वामीजी ने अपनी कल्पना के अनुसार इसका यह अर्थ निकाल लया । इसकी पुष्टि एक दूसरे प्रमाण से भी होती है, जहाँ दयानन्दजी ने यह तक कल्पना कर डाली क सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रादि सब पर मनुष्यदि गुज़र बसर कर रहे हैं और वहाँ भी वेदों का पठन-पाठन और यज्ञ हवन, सब कुछ कया जा रहा है और अपनी कल्पना की पुष्टि में ऋग्वेद (मं0 10, सू0 190) का प्रमाण भी दिया है-
`जब पृ थवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुश्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? (सत्यार्थ., अश्टम. पृ. 156)
(18) क्या यह मानना सही है क ईश्वरोक्त वेद व सब वद्याओं को यथावत जानने वाले ऋ ष द्वारा र चत साहित्य के अनुसार सूर्य व चन्द्रमा आदि पर मनुष्य आबाद हैं और वो घर-दुकान और खेत ख लहान में अपने-अपने काम धंधे अंजाम दे रहे हैं?

समीक्षा : अब हमारे जनाब अनवर जमाल साहब कुरान के इल्म से बाहर निकले तो कुछ ज्ञान वज्ञानं को समझे पर क्या करे अल्लाह मया ने क़ुरान में ऐसा ज्ञान नाज़िल कया की जमाल साहब उसे पढ़कर ही खुद आ लम हो गए। दे खये जमाल साहब ऋ ष ने क्या कहा और उसका अर्थ क्या निकलता है :

ऋ ष ने लखा :

`इसी लए ईश्वर ने नक्षत्रलोकों के समीप चन्द्रमा को स्था पत कया।´ (ऋग्वेदादि0, पृष्ठ 107)

अब इसका फलसफा और वज्ञानं देखो – ऋ ष को वेदो से जो ज्ञान और वज्ञानं मला वो इन जमाल साहब को नजर नहीं आएगा –

आकाश में तारा-समूह को नक्षत्र कहते हैं। साधारणतः यह चन्द्रमा के पथ से जुडे हैं, पर वास्तव में कसी भी तारा-समूह को नक्षत्र कहना उ चत है।

ऋ ष का अर्थ है क्यों क चन्द्रमा नक्षत्रो के पथ से जुड़ा है इस लए अलंकार रूप में वहां लखा है की नक्षत्रलोको के समीप चन्द्रमा को स्था पत कया –

अब इसका वैज्ञानिक प्रभाव देखो :

तारे हमारे सौर जगत् के भीतर नहीं है। ये सूर्य से बहुत दूर हैं और सूर्य की परिक्रमा न करने के कारण स्थिर जान पड़ते हैं—अर्थात् एक तारा दूसरे तारे से जिस ओर और जितनी दूर आज देखा जायगा उसी ओर और उतनी ही दूर पर सदा देखा जायगा। इस प्रकार ऐसे दो चार पास-पास रहनेवाले तारों की परस्पर स्थिति का ध्यान एक बार कर लेने से हम उन सबको दूसरी बार देखने से पहचान सकते हैं। पहचान के लये यदि हम उन सब तारों के मलने से जो आकार बने उसे निर्दिष्ट करके समूचे तारकपुंज का कोई नाम रख लें तो और भी सुभीता होगा। नक्षत्रों का वभाग इसी लये और इसी प्रकार कया गया है।

चंद्रमा २७-२८ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर घूम आता है। खगोल में यह भ्रमणपथ इन्हीं तारों के बीच से होकर गया हुआ जान पड़ता है। इसी पथ में पड़नेवाले तारों के अलग अलग दल बाँधकर एक एक तारकपुंज का नाम नक्षत्र रखा गया है। इस रीति से सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में वभक्त होकर 'नक्षत्र चक्र' कहलाता है। नीचे तारों की संख्या और आकृति सहित २७ नक्षत्रों के नाम दिए जाते हैं।

इन्हीं नक्षत्रों के नाम पर महीनों के नाम रखे गए हैं। महीने की पू र्णमा को चंद्रमा जिस नक्षत्र पर रहेगा उस महीने का नाम उसी नक्षत्र के अनुसार होगा, जैसे कार्तिक की पू र्णमा को चंद्रमा कृ त्तका वा रोहिणी नक्षत्र पर रहेगा, अग्रहायण की पू र्णमा को मृग शरा वा आर्दा पर; इसी प्रकार और सम झए।

ये ज्ञान और वज्ञानं वेदो में ही दिखता है क़ुरान में नहीं जमाल साहब।

क़ुरान का वज्ञानं हम दिखाते हैं जरा गौर से दे खये :

1. अल्लाह मयां तो क़ुरान में चाँद को टेढ़ी टहनी ही बनाना जानता है :

और रहा चन्द्रमा, तो उसकी नियति हमने मंज़िलों के क्रम में रखी, यहाँ तक क वह फर खजूर की पूरानी टेढ़ी टहनी के सदृश हो जाता है
(क़ुरआन सूरह या-सीन ३६ आयत ३९)

क्या चाँद कभी अपने गोलाकार स्वरुप को छोड़ता है ? क्या अल्लाह मयां नहीं जानते की ये केवल परिक्रमा के कारण होता है ?

2. सूरज चाँद के मुकाबले तारे अ धक नजदीक हैं :

और (चाँद सूरज तारे के) तुलूउ व (गुरूब) के मक़ामात का भी मा लक है हम ही ने नीचे वाले आसमान को तारों की आरइश (जगमगाहट) से आरास्ता कया।
(सूरह अस्साफ़्फ़ात ३७ आयत ६)

क्या अल्लाह मया भूल गए की सूरज से लाखो करोडो प्रकाश वर्ष की दूरी पर तारे स्थित हैं ?

3. क़ुरान के मुताबिक सात ग्रह :

ख़ुदा ही तो है जिसने सात आसमान पैदा कए और उन्हीं के बराबर ज़मीन को भी उनमें ख़ुदा का हुक्म नाज़िल होता रहता है – ता क तुम लोग जान लो क ख़ुदा हर चीज़ पर कादिर है और बेशक ख़ुदा अपने इल्म से हर चीज़ पर हावी है।

(सूरह अत तलाक़ ६५ आयत १२)

क्या सात आसमान और उन्ही के बराबर सात ही ग्रह हैं ? क्या खुदा को अस्ट्रोनॉमर जितना ज्ञान भी नहीं की आठ ग्रह और पांच ड्वार्फ प्लेनेट होते हैं।

4. शैतान को मारने के लए तारो को शूटिंग मसाइल बनाना भी अल्लाह मया की ही करामात है।

और हमने नीचे वाले (पहले) आसमान को (तारों के) चराग़ों से ज़ीनत दी है और हमने उनको शैतानों के मारने का आला बनाया और हमने उनके लए दहकती हुई आग का अज़ाब तैयार कर रखा है।

(सूरह अल-मुल्क ६७ आयत ५)

मगर जो (शैतान शाज़ व नादिर फरिश्तों की) कोई बात उचक ले भागता है तो आग का दहकता हुआ तीर उसका पीछा करता है

(सूरह सूरह अस्साफ़्फ़ात ३७ आयत १०)

क्या अल्लाह को तारो और उल्का पंडो में अंतर नहीं पता जो तारो को शूटिंग मसाइल बना दिया ता क शैतान मारे जावे ? और उल्का पंड जो है वो धरती के वायुमंडल में घुसने वाली कोई भी वस्तु को घर्षण से ध्वस्त कर देती है जो जल्दी हुई गरती है ये सामान्य व्यक्ति भी जानते हैं इसको शैतान को मारने वाले मसाइल बनाने का वज्ञानं खुद अल्लाह मयां तक ही सी मत रहा गया।

रही बात सूर्यादि ग्रह पर प्रजा की बात तो आज वज्ञानं स्वयं सद्ध करता है की सूर्य पर भी फायर बेस्ड लाइफ मौजूद है। ज्यादा जानकारी के लए लंक दे खये :

http://www.theonion.com/article/scientists-theorize-sun-could-support-fire-based-l-34559

अब कसको ज्ञान ज्यादा रहा जमाल साहब ?

आपके क़ुरान नाज़िल करने वाले अल्लाह मया को ?

या वेद को पढ़कर पूर्ण ज्ञानी ऋ ष की उपा ध प्राप्त करने वाले मह र्ष दयानंद को।

लखने को तो और भी बहुत कुछ लखा जा सकता है मगर आपकी इस शंका पर इतने से ही पाठकगण समझ जाएंगे इस लए अपनी लेखनी को वराम देता हु – बाकी और भी जो आक्षेप आपकी पुस्तक में ऋ ष और सत्यार्थ प्रकाश पर उठाये हैं यथासंभव जवाब देने की को शश रहेगी

खुद पढ़े आगे बढे

लौटो वेदो की और

नमस्ते

धर्म अनिवार्य क्यों है? डॉ – धर्मवीर

JULY 26, 2015 4 COMMENTS

हम समझते हैं- धर्म ऐच्छिक है, इसे हम मानें हमारी इच्छा, न मानें हमारी इच्छा। इसी प्रकार हम यह भी मानते हैं क धर्म अनेक होते हैं, इसमें भी वकल्प हैं। कोई कसी बात को धर्म मानता है, कोई कसी बात को। ऋ ष दयानन्द कहते हैं क धर्म दो नहीं होते, धर्म एक ही होता है। धर्म की कसौटी भी उन्होंने बता दी- जिसे दुनिया का कोई भी समझदार व्यक्ति मानने से इन्कार नहीं कर सके, उसे धर्म कहते हैं। धर्म के सबन्ध में यह जानना आवश्यक है क कोई वस्तु या वचार आवश्यक है या नहीं, इस बात का निर्णय उसकी आवश्यकता और उपयो गता से होता है। हमें धन की आवश्यकता का पता है, हमारे जीवन में उसकी उपयो गता का हमें अनुभव है, अतः उसे प्राप्त करना चाहते हैं। धन प्राप्त करने के उपाय भी खोजते हैं। इसके लए हम व्यापार करते हैं, नौकरी करते हैं, मजदूरी करते हैं, खेती करते हैं। कुछ भी करके हम धन कमाते हैं, क्यों क धन के बिना हमारा जीवन चलता नहीं है, इस लए अर्थ की हमारे जीवन में उपयो गता है। हमें लगता है क अर्थ की भाँति हमारे जीवन में धर्म की कहीं उपयो गता दृष्टिगत नहीं होती, अतः धर्म अनिवार्य नहीं, ऐच्छिक है। हमें व्यापार आदि के करने से अर्थ का लाभ होता है, परन्तु धर्म के करने से हमें कुछ प्राप्ति होती दिखाई नहीं देती, अतः हम स्वीकार कर लेते हैं क धर्म गौण और ऐच्छिक है।

अर्थ की आवश्यकता स्पष्ट है, धर्म की आवश्यकता स्पष्ट नहीं है। मनुष्य के पास जब पर्याप्त साधन हो जाते हैं, तब वह समझता है- मुझे कसी की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार सब अपने लये अपने-अपने पुरुषार्थ से धन कमा लेंगे, फर मेरे धन की भी कसी को आवश्यकता नहीं रहेगी। मैंने अपने प्रयत्न से अपनी सूझ-बूझ और बुद् ध से धन कमाया है, वह मेरा है, अतः मैं कसी को भी क्यों दूँ? यह वचार स्वाभा वक है, इस वचार को सुधारने के लए हमें वह प्रसंग खोजना होगा, जहाँ हमारे साधन सपन्न होने पर भी ये साधन हमारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। आज नेपाल में भूकप आया है, क्या वहाँ के साधन सपन्न लोगों को कोई कष्ट नहीं है? क्या उनकी सप त्त, उनके काम आ रही है? हम देखते हैं क सपन्न व्यक्ति का घर टूट गया है, उसके पास आज रहने के लए स्थान नहीं है, पीने के लए पानी नहीं है, पहनने के लए कपड़ा नहीं है, चोट और रोग की पीड़ा दूर करने के लए उनके पास औषध और च कत्सक नहीं है। आज उसके पास कोई सान्त्वना देने वाला भी नहीं है। ऐसी परिस्थिति में क्या धन उसकी सहायता कर सकता है? प्रथम तो उसके साधन नष्ट हो गये होते हैं, यदि साधन कहीं रखे भी हैं तो व्यवस्था के छिन्न- भन्न हो जाने से वे साधन उसे एक घूँट पानी या एक ग्रास भोजन दिलाने में भी असमर्थ हैं। ऐसे समय में उसे कोई व्यक्ति पानी, भोजन, वस्त्र आदि साधन और सान्त्वना क्यों देगा? बस यहीं से दूसरी व्यवस्था का जन्म होता है, जिसे हम धर्म कहते हैं।

धर्म का फल मलता है। लोग समझते हैं, धर्म का कोई फल नहीं मलता, धर्म का फल मलता है, क्यों क ऐसा सभव नहीं है क आपने कर्म कया हो, उसका फल न मले। जब बुरे कर्म का बुरा फल मलता है तो धर्म के रूप में अच्छे कर्म का अच्छा फल क्यों नहीं मलेगा? फल तो निष्काम कर्म का भी मलता है, क्यों क वह कर्म फल की आकांक्षा से प्रेरित होकर चाहे नहीं कया गया, परन्तु कर्म तो है। कर्म है तो फल भी होगा। सकाम कर्म में फल की इच्छा से कर्म कया जाता है। निष्काम कर्म में कर्त्ता के मन में फल की इच्छा नहीं रहती, फल परमेश्वर की व्यवस्था पर छोड़ दिया जाता है। सांसारिक कर्म पाप और पुण्य नहीं होने पर भी आवश्यक होने से फल की इच्छा से कये जाते हैं। धर्म के कार्य में और व्यापार के कर्म में अन्तर इतना ही है क व्यापार के फल के रूप में धन को ध्यान में रख कर व्यापार कया जाता है, धर्म पुण्य रूप फल को ध्यान में रखकर कया जाता है। रेल के डबे में दो लोग पानी पला रहे हैं या भोजन दे रहे हैं। एक जो पैसे लेकर देता है, उससे कोई भी व्यक्ति ले सकता है, परन्तु उसकी जेब में पैसे होने चाहिएँ। आपको कतनी भी भूख या प्यास लगी हो, यदि पैसे पास में नहीं हैं तो आप को भोजन या पानी नहीं मल सकता। पैसे हैं तो आप बिना आवश्यकता के भी सामान लेकर अपने पास रख सकते हैं। इसके वपरीत धर्म आपके पैसे नहीं देखता, धर्म आपकी आवश्यकता देखता है, आपकी पीड़ा या कष्ट दूर करता है। यही उसका मूल्य है। धर्म आपके कष्ट को दूर करने के लए कया जाता है, इसी कारण ऐसे कार्य को सेवा कहा गया है। पुराने लोगों ने सेवा को धर्म कहा है। जब कोई दुकानदार या सेवक सेवा करता है तो वह भी सेवा है, परन्तु धर्म की भाँति निष्काम कर्म नहीं है। जब धर्म समझ कर कसी की सेवा करते हैं, तब उसका धर्म, जाति, रूप, रंग, सबन्ध आदि में कसी का बोध नहीं होता। हम केवल उसकी पीड़ा से पी ड़त होते हैं और पीड़ा को दूर करना चाहते हैं। यदि सेवा में हम पक्षपात करते हैं, तब वह कार्य धर्म नहीं होगा, व्यापार होगा, सौदा होगा। बदले में आप कुछ भी क्यों न चाहते हों, जब आप बदला चाहते हैं, तब व्यापार करते हैं और तब वह पाप तो नहीं, परन्तु पुण्य भी नहीं, वह अपनों के साथ कया गया, कर्त्तव्य है। अतः जब कुछ देकर कुछ लया जाता है, वह व्यापार है। जो देकर ही सुख मानता है, वह कसे दे रहा है, इससे उसका कुछ भी सबन्ध नहीं रहता, तब वह कार्य धर्म कहलाता है।

लोग समझते हैं क धर्म बड़ी कठिन और गहरी वस्तु है, उसको समझना सबके लए सरल नहीं है। यह हो सकता है क ववेचना के स्तर पर तर्क- वतर्क में उसको समझना कठिन हो, परन्तु व्यावहारिक धरातल पर धर्म को समझना और करना दोनों ही सरल हैं। आप भोजन करते हैं, तब आप नहीं कहते क आप धर्म कर रहे हैं, परन्तु रोटी का छोटा-सा टुकड़ा थाली में से निकाल कर कसी नि मत्त से रखते हैं, तब आप धा र्मक भावना से भरे होते हैं। हमारे घरों में मातायें रोटी बनाते हुए पहली रोटी गाय के लए और अन्तिम रोटी कुत्ते के लए बनाती थीं। यह रोटी अपने लए नहीं होने से स्वार्थ नहीं, परोपकार है और परोपकार और धर्म दोनों पर्यायवाची शद हैं। जब हम स्वयं पानी पीते हैं, तब स्वार्थ होता है और जब सब के लए पानी पीने की व्यवस्था करते हैं, तब उसे धर्मार्थ प्याऊ कहते हैं। हम अपने लये भवन बनाते हैं, तब वह घर होता है, होटल होता है, जब उपकार की भावना से घर बनाते हैं, तब उसे धर्मशाला कहते हैं। इस प्रकार अपने बच्चों को पढ़ाना स्वार्थ है, परन्तु निर्धन, असमर्थ बच्चों की सहायता करना धर्म है। मनुष्य की जो-जो आवश्यकताएँ है, उनकी पू र्त स्वार्थ है। यदि हम उन्हीं आवश्यकताओं की पू र्त निस्वार्थ भाव से अन्यों की करते हैं, तब वह धर्म बन जाता है। धर्म मनुष्य को संवेदनशील बनाता है, उसका मुय कारण है- स्वार्थ में मनुष्य के मन में रजोगुण प्रबल होता है। जब मनुष्य धर्म का कार्य करने की इच्छा करता है, तब उसके अन्दर

सतोगुण की प्रबलता होती है। स्वामी दयानन्द जी के जीवन में आता है क जब एक कसान गाड़ी में जुते हुए बैलों को मार-मार कर कीचड़ से गाड़ी को निकाल रहा था, तब स्वामी जी ने स्वयं गाड़ी में जुतकर गाड़ी को कीचड़ से बाहर निकाल दिया। सभी महापुरुषों के जीवन में इस प्रकार की दया और करुणा से भरे कार्यों की चर्चा आती है।

धर्म और अर्थ के उपार्जन में मुय अन्तर परिणाम के प्राप्त होने का है। यथार्थ में धर्म भी व्यापार ही है, अन्तर इतना ही है क व्यापार में मनुष्य फल की प्राप्ति तत्काल चाहता है और जिसके प्रति कार्य कया गया है, उसी से फल की आशा करता है। जिसके लये कार्य कया है, जिसको सौदा दिया है, उसी से मनुष्य परिणाम के रूप में धन प्राप्त करता है, परन्तु धर्म में कार्य तो हुआ है, परन्तु फल कब मलेगा, कहाँ मलेगा, कस के द्वारा मलेगा- इसका धर्म करने वाले को पता नहीं होता। मनुष्य को वप त में जब सहायता मलती है तो वह फल ही है, परन्तु हमारे कौन से कार्य का, कसके प्रति कये गये कार्य का फल है- यह हम नहीं जान सकते। जैसे वर्तमान जीवन के लए धन की तत्काल प्राप्ति हमारे आजी वका के लये आवश्यक है, उसी प्रकार हमें वषम परिस्थितियों में, असमर्थता की दशा में धर्म की आवश्यकता होती है। व्यापार से, पुरुषार्थ से स्वयं धन कमाकर व्यक्ति स्वयं जी वत रहता है, परन्तु धर्म से अपने साथ-साथ दूसरों को भी जीवन देता है। मनुष्य को यदि दूसरे की सहायता की आवश्यकता न होती तो सभव था- धर्म की भी आवश्यकता न होती, परन्तु मनुष्य के जीवन पर दृष्टिपात करने पर देखते हैं- पदे-पदे मनुष्य को दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य का बालक सहायता के बिना जी वत नहीं रह सकता। उसे जीवन में सदा सहायता की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप से अपने कहे जाने वाले लोग जन्म से मृत्यु तक उसकी सहायता करते हैं। यह सहायता कर्त्तव्यवश या मोहवश की जाती है, परन्तु हमारे लोग सदा हमारे साथ नहीं होते या सदा समर्थ नहीं होते, ऐसी परिस्थिति में हमें अन्य की सहायता अपे क्षत है और यह सहायता हमें बिना धा र्मक बने नहीं मल सकती। धर्म के फल की प्राप्ति जब परमेश्वर हमें आवश्यक समझता है, तब कराता है। जब हमें कहीं से भी आशा की करण नहीं दिखाई देती, तब हम परमेश्वर को याद करते हैं, उससे सहायता की आशा करते हैं। वह सहायता क्या हमारे बिना कये कर्म का फल है? यदि ऐसा होता तो यह सहायता सबको सदा समान रूप से मल रही होती, परन्तु वप त सब पर आने पर भी दुःख सबको समान रूप से नहीं होता। दुःख में सहायता भी सबको समान रूप से नहीं मल पाती। कसी को तत्काल सहायता मलती है तो कसी को देर से, कसी को पर्याप्त, तो कसी को स्वल्प, ऐसा क्यों होता है? हमारे कर्मों की भन्नता के कारण फल की प्राप्ति भी भन्न होती है। जैसे व्यापार को सत्य व्यवहार से करने पर मन में सन्तुष्टि और धन की प्राप्ति भी होती है, उसी प्रकार धर्म का आचरण करने पर वर्तमान में सन्तोष का सुख और कालान्तर में परमेश्वर का सहयोग मलता है।

इस बात को एक और प्रकार से समझा जा सकता है। राममनोहर लोहिया ने एक बार धर्म और राजनीति को परिभा षत करते हुए कहा था क तात्का लक धर्म को राजनीति कहते हैं और दीर्घका लक राजनीति को धर्म कहा जाता है। उसी प्रकार तात्का लक लाभ को व्यापार और दीर्घका लक व्यापार को परोपकार या धर्म कहा जाता है। स्वार्थ और परार्थ दो कार्य हैं, दोनों की जीवन में आवश्यकता है, एक से कसी का भी कार्य नहीं चल सकता, परोपकार से स्वार्थ सद्ध हो सकता है, परन्तु स्वार्थ में धर्म का अंश न हो तो परोपकार की सद् ध नहीं हो सकती।

एक प्रश्न फर भी अनुत्तरित रह जाता है- धर्म के प्रति रु च कैसे जाग्रत हो? मनुष्य को धा र्मक होने के लये संवेदनशील होना आवश्यक है। संवेदना शून्य व्यक्ति क्रूर बन जाता है, दूसरों को दुःख देने में प्रसन्नता अनुभव करता है। इसके वपरीत संवेदनशील व्यक्ति दूसरों के दुःखों से स्वयं दुःखी होता है और अपने दुःख को दूर करने के लये वह दूसरों की सहायता करता है। इसी कारण धा र्मक परोपकार के कार्य करके मनुष्य को प्रसन्नता होती है और वह सन्तोष का अनुभव करता है। इसके लए चाणक्य ने कहा है- हम जो कुछ करें, उसे बुद् ध के प्रकाश में करें, संसार के सारे कार्य हमें करने हैं, यदि धा र्मक बुद् ध से कये गये तो हमारी प्रवृ त्त उस ओर होती है। वह धा र्मक बुद् ध कैसे प्राप्त होती है? तब कहा गया है, वह धा र्मक बुद् ध शास्त्रों के अध्ययन से मलती है। परमेश्वर की उपासना से मलती है। हम ईश्वर उपासक या ईश्वर के भक्त को धा र्मक कहते हैं और मानते हैं क जो धा र्मक होगा, वह ईश्वर का भक्त भी होगा। धा र्मक व्यक्ति को शास्त्र इस लए पढ़ना चाहिए क शास्त्रों की रचना धा र्मक और ईश्वर भक्त लोगों ने की है, उन्होंने इसमें धर्म पर चलने का मार्ग बतलाया है। धर्म पर चलने से क्या होता है? कोई व्यक्ति धा र्मक होता है तो कैसा होता है? धा र्मक होने से मनुष्य को क्या लाभ होता है? इसके लए गीता में कहा गया है- धर्म से वर्तमान में सुख होता है और बाद में कल्याण की प्राप्ति होती है। चाणक्य ने अ धक स्पष्ट करते हुए कहा है- जो मनुष्य धा र्मक होता है, उसकी बुद् ध निर्मल होती है, धा र्मक व्यक्ति की वाणी स्पष्ट होती है, उसके कार्य सरल होते हैं, उसके कार्य में कसी प्रकार की कुटिलता नहीं होती। धा र्मक व्यक्ति के जीवन में जो सर्वा धक उत्कृष्ट पक्ष है, वह कष्ट या दुःख आने पर वच लत नहीं होता और वैभव की प्राप्ति होने पर अहंकार का ग्रास नहीं बनता। दोनों परिस्थितियाँ मनुष्य को असामान्य बनाती हैं। सांसारिक पदार्थों के लाभ और प्राप्ति में मनुष्य अपनी उपल धयों से गर्व का अनुभव करने लगता है, पदार्थों के अभाव में घोर निराशा और दुःख में डूब जाता है, आत्महत्या कर लेता है, इस लये मनुष्य को वर्तमान लाभ के साथ परोक्ष के लाभ के लए धा र्मक होने की आवश्यकता होती है। मनु महाराज नेाी संवेदनशील बनने के लये कहा है-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं वधीयते।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।

– धर्मवीर

आओ, सोम-सरोवर के भक्ति रस-जल में स्नान कर आनन्दित हों' -मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

JULY 17, 2015 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

सामवेद उपासना तथा ईश्वर की स्तुति-गान का वेद है। उपासना ईश्वर के पास बैठकर आनन्द में सराबोर होना है। इसे सोम सरोवर का स्नान भी कह सकते हैं। पं. चमूपति मह र्ष

दयानन्द के आदर्श अनुयायी थे। वह उर्दू, अरबी, फारसी व अंग्रेजी के वद्वान होने के साथ संस्कृत व हिन्दी के भी वद्वान थे। आपने अनेक भाषाओं में रचनायें की है। आपकी अनेक प्र सद्ध रचनाओं में से एक है "सोम सरोवर"। इस पुस्तक में आपने सामवेद के पवमान सूक्त के मन्त्रों की भक्ति रस में डूब कर व्याख्या की है जो हृदय को झंकृत कर उसमें आस्तिक भाव को उत्पन्न करती है और जीवात्मा-पुरूष आनन्द रस में भरकर हरा-भरा हो जाता है। आर्यसमाज के एक दूरदर्शी नेता पत्रकार शरोम ण महाशय कृष्ण की 'सोम सरोवर' के सम्बन्ध में यह सम्मति थी क यह वश्व के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में से एक है। जिन साहित्यिक ग्रन्थों पर साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया जा चुका है, सोम सरोवर ऐसे कई ग्रन्थों से कहीं ऊंचा व श्रेष्ठ है। सोम-सरोवर पुस्तक का महत्व बताते हुए प्र सद्ध लेखक एवं वद्वान राजेन्द्र जिज्ञासु ने लखा है क हिन्दी के साहित्यकार, प्राध्यापक व प्रेमी यह जान लें क हिन्दी साहित्य में इस कोटि की दूसरी पुस्तक अब तक तो लखी नहीं गई। यदि कोई है तो वह पं. चमूपति कृत जीवन–ज्योति है। आईये इस पुस्तक सोम-सरोवर से दो मन्त्रों का पाठ व उसकी व्याख्या पढ़कर सरोवर में स्नान का आनन्द लेते हैं।

मन्त्र हैः यस्ते मदो वरेण्यस्तेनापवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा।। लेखक ने इस मन्त्र का शीर्षक "पाप–नाशक नशा" दिया है। मन्त्र का ऋ ष है 'अमहीयुः' अर्थात् एक ऐसा मनीषी जो पृ थवी की नहीं, आकाश से भी ऊपर द्युलोक की उड़ान लेने वाला। पहले इस मन्त्र के पदों वा शब्दों के अर्थ जान लेते हैं। (ते) तेरा (यः) जो (वरेण्यः) ग्रहण करने लायक (मदः) नशा है (तेन) उस (अन्धसा) प्राणप्रद संजीवन–रस से (आपवस्व) चारों ओर प वत्रता का प्रवाह चला। तू (देवावीः) दिव्य भावनाओं तथा दिव्य प्रजाओं का रक्षक तथा (अघशंसहा) पाप की प्रशंसा का घातक है।

अन्य सब नशे छोड़ देने चाहिए। वे मैले हैं, अप वत्र हैं। उन में पाप का पुट है। वे हिंसा से पैदा होते हैं। उन के खमीर में पाप है। वे पाप ही की उपज हैं और पाप ही की प्रेरणा करते हैं। परन्तु मोहन ! तेरे प्रेम का नशा प्राणप्रद है। इस से स्वास्थ्य बढ़ता है। इस के पान से शरीर नया जीवन-लाभ करता है। और मन की तो काया-पलट सी हो जाती है। यह नशा अत्यन्त प वत्र, अत्यन्त सुखदायक है।

देवताओं के लए यह नशा अमृत है। दैवी प्रवृ त्तयां सो रही हों तो इस नशे का ध्यान आते ही जाग जाती हैं, झूमने लगती हैं। भली भावना कसी संकट के कारण मृतप्राय हो तो केवल जी ही नहीं, लहलहा उठती हैं। साईं के स्नेह का नशा सत्य की, सरलता की, सन्तोष की, सदाचार की रक्षा करता है। लाख आप त्तयां आती हों, साईं का स्नेही धर्म के रास्ते से नहीं हटता। धर्म के लए संकट सहने में उसे आनन्द आता है। पाप की मोहिनी साईं के स्नेह के सम्मुख एक क्षण के लए भी नहीं ठहर सकती।

हमारा मन भटक जाता है। उस की रू च पाप की ओर हो जाती है। कोई अन्दर-अन्दर से मानो दबी सी आवाज में पाप की प्रशंसा करने लगता है। दिल कहता है-पाप है तो क्या, इस से लाभ ही होगा, झूठ बोल दो, इस से एक अपना ही नहीं, सम्पूर्ण जाति का लाभ है।

परोपकारार्थ छल करने से क्या दोष है? इस प्रकार के कतने छल हैं जो मेरा छली मन रोज करता रहता है।

प्रभो ! आप की आंख बचा कर तो यह छल चल भी जाये, परन्तु आप के सामने आते ही यह मोह–अज्ञान का ताना-बाना छिन्न- भन्न हो जाता है। आप की एक कृपा-कोर लाख पापों का बंटाढार कर देती है।

तो फर वह आप की कृपा–कोर कहां है? मेरे लए वही सोम है। मैं उसी का प्यासा हूं। एक प्याली! एक घूंट!! एक बूंद!!!

हम आशा करते हैं क उक्त मन्त्र की व्याख्या से पाठक आनन्दित एवं भाव- वभोर हुए होंगे। एक अन्य मन्त्र की व्याख्या और प्रस्तुत कर रहे हैं। इस मन्त्र का शीर्षक है 'इन्द्र की अर्चना'। मन्त्र प्रस्तुत हैः 'इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः। अर्कस्य योनिमासदम्।।' मन्त्रार्थः (इन्दो) ऐ जगत् को सरसाने वाले स्नेह–रस के सुधाकर मुझ (मरुत्वते) प्राणों वाले (इन्द्राय) मुझ इन्द्रियों वाले देहधारी के लए (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर होकर (पवस्व) प वत्रता का प्रवाह चला। मैं (अर्कस्य) अर्चना के (योनिम्) मन्दिर में (आसदम्) प्रवेश कर रहा हूं।

मेरे प्राण प्रबल हैं। शरीर स्वस्थ हैं। अंग-अंग में स्फूर्ति है। निठल्ला बैठने को जी नहीं चाहता। दसों इन्द्रियां शक्तिशाली हैं। यह सब कुछ होते हुए भी जीवन नीरस है। स्वास्थ्य के साथ भी दिन बीत जाता है। रोग की अवस्था में भी ज्यों त्यों रात कट जाती है। कसी ने कराह-कराह कर समय गुजार दिया, कसी ने हंस खेल कर दिन बिता दिये। स्मृति दोनों की नीरस है।

मुझे शक्ति का अ भमान तो होता है, रस नहीं मलता। गर्व से गर्दन उठा देता हूं और वह ऐंठ जाती है। पर ऐंठ में रस कहां? रस तो लचक में है। हां लचक ही में जीवन है।

प्रभो ! कोई लचकीला आनन्द ! कोई स्थायी स्थिर रस ! सुनता हूं, स्थिर रस तुम्हारी कृपा-कोरों में है। तुम्हारी कृपा-कोरों की चांदनी चांद के, तारों के प्रकाश के साथ-साथ जगत् को व्याप्त कर रही है। आकाश-गंगा प्रेम की गंगा बहाये जा रही है। मेरे हृदय-चकोर के चांद ! तुम्हारी स्निग्ध करणों ने ही तो अपने स्नेह-रस में सम्पूर्ण प्रकृति को गूंध-गूंध कर रसमय बना दिया है। तुम्हारा हृदय यदि आर्द्र न होता तो अणु-अणु पृथक भले ही रह जाता, पर इस में तरी न आती। पण्ड न बनते। ब्राह्माण्डों की सृष्टि-संसृष्टि-न हो पाती।

हे सृष्ट जगत् के संजीवन-रस। एक कृपा-कोर मेरी ओर भी।

मैं अपने ताप का कारण समझ गया हूं। वह है तुम्हारी करुणा से वमुखता। मेरे पास स्वास्थ्य है, स्फूर्ति है, पर इन दोनों का सार–तुम्हारा स्नेह मेरी आंखों से दूर है।

हे प्राणों के प्राण ! मेरे प्राणों को अपनी स्नेह–सुधा से अनुप्रा णत कर दो। मेरे जीवन को अपनी संजीवनी से उज्जी वत कर दो। मेरी इन्द्रियां तुम्हारी अर्चना के फूल बन जायें। मेरे प्राण तुम्हारी पूजा के नैवेद्य हों। आज मेरा नया जन्म हो। अर्चना के जीवन का जन्म। पूजा के नवजीवन का उदय।

मैं झुक जाऊं, लचक जाऊं, तुम्हारे चरणों में तन, मन, धन–सब अर्पण कर दूं। सफलता अर्पण में है। अर्चन में है। अर्पण व अर्चन एक हैं।

हम आशा करते हैं क पं. चमूपति जी की उपर्युक्त अर्चनाओं को पढ़कर पाठकों ने भक्ति के सोम-सरोवर में स्नान कर आनन्द का अनुभव अवश्य कया होगा। इस अर्पण व अर्चन को संजो कर र खये, बहुत काम आएगा।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001/**फोनः**09412985121**

क्या धर्म से सुखी हो सकते हैं?????

शवदेव आर्य, गुरुकुल पौन्धा, देहरादून मो.-8810005096

JULY 17, 2015 1 COMMENT

इस भूमण्डल पर प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है। हर कोई साधु-संन्यासी, बड़े-बड़े महन्त पूर्ण दावे के साथ सुख प्राप्त करा देने की बात करते हैं। ये बात कतनी ठीक है? ये तो नहीं जानता परन्तु निश्चित रूप से कह सकता हूॅं क यदि कोई व्यक्ति चाहे और प्रयास करने लग जाये, तो सुख का सोपान अलभ्य तो बिल्कुल नहीं है। प्रयत्न काल से ही सुख की वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है।

सुख कैसे प्राप्त हो ? इस प्रश्न का समाधान वैदिक वाङ्मय से सहजतया प्राप्त होता है क सुखस्य मूलं धर्मः अर्थात् सुख का मूल धर्म है। जी हा ॅं, ये तो बहुत आश्चर्य का वषय है क धर्म सुख का मूल कैसे हो सकता है? ये धर्म ही तो आज दुःख के कारण बने हुए हैं। जहा ॅं देखो वहीं धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़े हो रहे हैं। यहा ॅं कोई हिन्दु धर्म को मानने वाला है तो कोई मुस्लिम, कोई सख तो कोई ईसाइ आदि। ये जो परस्पर द्रोह करते रहते हैं। दुःख पहू ॅंचाने का सदैव प्रयत्न करते रहते हैं। अगर मैं इन धर्मों को मानू ॅंगा तो मैं भी इन के ही समान हो जाऊँगा तो ये धर्म सुख का साधन कैसे हो सकता है?

यह सर्वमान्य सत्य है क आज के समाज में धर्म के नाम पर पाखण्ड़ पनप रहा है। धर्मा धकारी धर्म का यथार्थ स्वरूप न बताकर मतान्ध बना रहे हैं। एक दूसरे से लड़ना सखा रहे है।ं चाहे कोई हिन्दू हो या मुसलमान, सक्ख हो या ईसाई, पारसी हो या बहाई, जैनी हो या बौध्द, कोई भी क्यों न हो, प्रत्येक एक-दूसरे को मारने-काटने को सदैव उद्यत रहते हैं।

हम अपनी सारी शक्ति लड़ने-झगड़ने में समाप्त कर देते हैं। हम अपने बारे में ही सोचते हैं। हम अपने से आगे कसी को देखना पसन्द नहीं करते। अगर कोई परिश्रम करके आगे निकल भी जाता है तो उसको पीछे करने के लए परिश्रम नहीं करते। बल्कि दूसरे मनुष्य के पैर पकड़ कर नीचे खींच देते हैं।

धर्म मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है, तोड़ता नहीं। जो एक-दूसरे के बीच में दरारें पैदा करता है, एक-दूसरे को तोडता है, झगड़े कराता है, वह धर्म कदा प नहीं हो सकता। धर्म तो एकता का पाठ पढ़ाता है, वैर- वरोध का नहीं। धर्म तो आपस में भाई-चारे का पाठ सखाता है, पे्रम का पाठ पढ़ाता है, सुख और शान्ति की सुगन्ध फैलाता है।

धर्म शब्द 'धृ धारणपोषणयोः ' इस धातु से औणादिक मन् प्रत्यय करने से सध्द होता है। सुख प्राप्ति के लए जिसको धारण कया जाये या जिसका सेवन कया जाये, उसे धर्म कहते हैं। अब प्रश्न उत्पन्न होता है क कसको धारण कया जाये? वह क्या हैं? इसका उत्तर देते हुए मनुमहाराज कहते हैं क धर्म के दश लक्षण हैं, जो इस प्रकार हैं-

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौच मन्द्रिय निग्रहः।

धी र्वद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

धृतिः धृति अर्थात् धैर्य को धारण करना। बड़ी से बड़ी आप त्त आने पर, अपने आप में धैर्य को बनाये रखना चाहिए।

क्षमाः क्षमा करने के सामथ्र्य को धारण करना। जैसे कोई जीव निर्बल है, उससे कोई गलती होने पर उसे माफ (क्षमा) कर देना ही क्षमा है।

दमः दमन करना अर्थात् रोकना। इन्द्रिया ॅं अपने वषयों में बार-बार चली जाती है। आ ॅंख अच्छा रूप देखना चाहती है परन्तु वषय वस्तुओं में लप्त हो जाती हैं। इनको रोकना ही दम है।

अस्तेय: चोरी न करना ही अस्तेय है। कोई भी तुच्छ से तुच्छ वस्तु को बिना स्वामी की आज्ञा से हाथ न लगाना अस्तेय कहाता है।

शौच: शु चता अर्थात् प वत्रता एवं स्वच्छतापूर्वक रहने को शौच कहते है। शु च रहने से मनुष्य परम शान्ति का अनुभव करता है।

इन्द्रियनिग्रह: इन्द्रियनिग्रह का तात्पर्य यह है क अपनी इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में रखना। हम कोई भी आकर्षक चीज देखते हैं तो उसे प्राप्त करने के लए हम अपनी इन्द्रियों के अधीन हो जाते हैं। इसी आकर्षण से बचने का नाम ही इन्द्रियनिग्रह है।

धी: अच्छी मति (बुध्दि) को धी कहते हैं। हमारे शरीर का मुख्य भाग बुध्दि है। वह बुध्दि अच्छी हो, पापाचार से अयुक्त हो तो सम्पूर्ण कार्य अच्छे होते हैं। इस लए गायत्री मन्त्र में परम पता परमेश्वर से '' धयो योः न प्रचोदयात्'' की प्रार्थना करते है।

वद्या: वद्या अर्थात् सत्य ज्ञान को पाकर, मानव अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त होता है। वद्या के वास्त वक स्वरूप को दर्शाते हुए कहा गया है क ''सा वद्या या वमुक्तये'' वद्या वही जो अमृतत्व को प्राप्त कराये।

सत्य: वास्त वकता को सत्य कहते हैं। अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही मानना, कहना, जानना और उसके अनुरूप कार्य करना ही सत्य है। कसी ने कह दिया और उसे हम सत्य मान ले, तो यह न्यायो चत नहीं है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लखते है क जो प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से युक्त और पाॅंच प्रकार की परीक्षाओं की कसौटी पर तुला हुआ हो, वही सत्य है।

अक्रोध: ''क्रोधो अमर्षा'' अर्थात् सहन न करने को क्रोध कहते है। कसी ने कुछ अपशब्द कह दिये तो उसे सहन न करना ही क्रोध है। क्रोध मानव का सबसे बड़ा शत्रु है। जब हम क्रोध में वशी भूत होकर धर्माधर्म में अन्तर नहीं समझते तब अधर्मयुक्त कुकृत्यों को कर बैठतें है।

ऋ षवर देव दयानन्द जी महाराज धर्म के स्वरूप को दर्शाते हुए आर्योदेश्य रत्नमाला में लखते हैं क-जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन पक्षपात रहित न्याय व सर्वहित करना है, जो क प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरी क्षत और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लए एक और मानने योग्य है, उसे धर्म कहते हैं।

न लंगधर्मकारणम्-संसार में व भन्न मतवालों ने अपने-अपने धर्म के नाम पर व भन्न चह्न बना रखे हैं। जैसे कोई केश बढ़ा रहा है, कोई लम्बी दाढ़ी बढ़ाये हुए है, कोई्र केश व दाढ़ी दोनों बढ़ाये हुए है, कोई पांच शखाएं रखे हुए है, कोई मूंछ कटाकर दाढ़ी बढ़ा रहा है और कोई चन्दन का तिलक लगा रहा है, कोई माथे को अनेक रेखाओं से अं कत कये हुए है और हाथों पर भी चह्न बनाये हुए है, कन्तु ये सभी धर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते हैं। अत एव बाह्य चह्नों को धर्म नहीं माना गया हैं।

धर्म को धारण करने से ही लौ कक तथा पारलौ कक सुख की प्राप्ति होती है। हमें जानना चाहिए क सुख-दुःख क्या हैं? सुख और दुःख संस्कृत भाषा के शब्द हैं- 'सु=शोभनं

खेभ्यः=इन्द्रियेभ्यः' अर्थात् जो इन्द्रियों को अच्छा लगे उसे सुख कहते हैं। और दूर्=दुष्ठु=अशोभनं खेभ्यः=इन्द्रियेभ्यः अर्थात् जो इन्द्रियों को अच्छा न लगे उसे दुःख कहते हैं।

आत्मा भोक्ता है, उसके भोग का आधार शरीर है, भोग के साधन नेत्रादि इन्द्रियाँ है। इन्द्रियों के अर्थ ही भोक्तव्य हैं, बुध्दि ही भोग है, और फल तथा दुःख का स्वरूप समझाते हुए लखा हैं-ससाधनं सुखदुःखोपभोगः फलम्। जन्म......सुखसाधनस्य दुःखानुषंगगात् व वधबधनायोगाद् दुःखम्।।

अर्थात् सुख-दुःख के साधनों का बुध्दि वषयत्वापन्न भोग ही फल है। सुख के साधनों का दुःख से सम्पर्क होना ही दुःख हैं। इसी बात को इस प्रकार कह सकते हैं क-

अनुकूलवेदनीयं सुखं प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्।।

अर्थात् आत्मा के अनुकूलता का ही नाम सुख है और प्रतिकूलता दुःख है। मह र्ष मनु ने सुख दुःख की व्याख्या इस प्रकार की है-

सर्वं परवश्ं ा दुःखम्, सर्वमात्मवशं सुखम्।।

एतद् वद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।।

सुख दुःख का संक्षेप में यही लक्षण जानना चाहिये अर्थात् दूसरों के अधीन होना ही दुःख है और अपने अधीन रहना ही सुख है।

सुख दुःख का प्रत्यक्ष ज्ञान हमें कैसे होता है। इसकी प्र क्रया समझाते हुए, न्यायदर्शन में वात्स्यायन भाष्य में लखा है क ''आत्मादिषु सुखादिषु च प्रत्यक्षलक्षणं वक्तव्यम्।'' आत्मादि तथा सुखादि का प्रत्यक्ष कैसे होता है उसका प्रकार समझाते है- जीवात्मा प्रथम मन से सम्पर्क करता है, मन इन्द्रियों से तथा इन्द्रियाँ अपने-अपने वषयों से सम्बध्द होकर प्रत्यक्ष कराती है।

वैशे षक दर्शनकार कणाद कहते हैं – ''यतोऽभ्युदयनिश्रेयस् बुध्दिः स धर्मः'' इस लए धर्म करने से ही मनुष्य का जीवन सार्थक है परन्तु आज सम्पूर्ण वश्व में लोगों को यह नहीं पता क धर्म क्या होता है? मुस्लिम, इसाई, बौध्द, जैन आदि मत-मतान्तरों को कुछ लोग धर्म मान लेते है और उस पर चलना प्रारम्भ कर देते है वे नहीं जानते क धर्म क्या है अथवा कसे कहते है? मुस्लिम वचार करता है क मुस्लिमत्व ही मेरा धर्म है, ईसाई वचार करता है क कृश्चीयन मेरा धर्म है, हिन्दु वचार करता है क हिन्दुत्व ही मेरा धर्म है परन्तु ये यह नहीं जानते क जिसका ये धर्म मानकर अनुष्ठान कर रहे है, वे धर्म नहीं मत-सम्प्रदाय है। वास्तव में जब धर्म का स्वरूप ही भ्रान्त हो जाएगा तो, धर्म का अनुष्ठान सर्वथा व्यर्थ है।

व्यक्ति के अवनति व वनाश के साधनों को जुटाने में जो ऊर्जा शक्ति का अपव्यय होता है, उससे आत्मिक बल और जीवनीय शक्ति का भी क्षय होता हैं। भय और हिंसक प्रवृ त्त बढ़ने लगती हे और निश्चित रूप से ववेक में न्यूनता आती है। उस व्यक्ति में स्वार्थ, लप्सा और मथ्याहंकार ज्ञान-चक्षुओं के पट खुलने नहीं देते। इसके दुष्परिणाम तत्काल या कालान्तर में

उस व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को भुगतने पड़ते हैं। इस लए जीवन में उन्नति के इच्छुक व्यक्ति को ववेक का वकास निरन्तर करते रहना चाहिए। यही यथार्थ में जीवन का पथ हैै।

आचार्य चाणक्य ने लखा है–''सुखस्य मूलं धर्मः धर्मस्य मूल मन्द्रियजयः।'' अर्थात् सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल है-इन्द्रियों को संयम में रखना। संसार में प्रत्येक मनुष्य की इच्छा होती है क मैं सुखी रहूँ और सुख की प्राप्ति धर्म के बिना नहीं हो सकती। अतः धर्म का आचरण अवश्य ही करना चाहिये। बिना धर्म को अपनाये कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता है। इसी लए वर्तमान में तथाक थत जो धर्म है, उसे स्वीकार न कर सर्वहितार्थ जो धर्म का स्वरूप यहाॅं बताया है, उसे ही धारण करना चाहिए। इसी से दुःख की निवृ त्त और सुख की प्राप्ति हो सकेगी। धर्म को धारण करने से सुख ही नहीं प्राप्त होगा अ पतु भावी जन्म में भी सहायक होगा।

संसार की कोई भी वस्तु सुख का हेतु हो सकती है परन्तु मरणोत्तर कसी के साथ नहीं जा सकती। शास्त्रकार कहते हैं-

'धर्म एकोऽनुगच्छति' अर्थात् एक धर्म ही मरणोत्तर मनुष्य के साथ जाता है। नीतिकार भी कहते है-

धनानि भूमौ, पशवश्च गोष्ठे, नारी गृहे बान्धवाः श्मशाने।

देहश्चितायां परलोकमार्गे, धर्मानुगो गच्छति जीवः एकः।।

अर्थात् भौतिक समस्त धन भू म में ही गड़ा रह जाता है अथवा आजकल बैंकों में या तिजोरियों में ही धरा रह जाता है और गाय आदि पशु गोशाला में ही बन्धे रह जाते हैं । पत्नी घर के द्वार तक ही साथ जाती है और परिवार के भाई-बन्धु व मत्रजन श्मशान तक ही साथ देते है एक मनुष्य का शुभाशुभ कर्म ;धर्मद्ध ही परलोक में मनुष्य का साथ देता है अर्थात् धर्म के अनुसार ही मनुष्य को परलोक में अच्छी-बुरी योनियों में जाना पड़ता है।

यतो धर्मस्ततो जयः गीता के इस श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है क धर्म सदैव वजयी होता है। चाहे अधर्मी कतना ही बलवान् हो उसकी हार अवश्य होती है लोक में भी यह देखा जाता है क अधर्मी की हार का कारण अधर्म ही बन जाता है। मनुस्मृति में भी सत्य ही कहा गया है-

अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्रा ण पश्यति।

ततो सपत्नान् जयति समूलस्तु वनश्यति।।

अर्थात् अधर्माचरण करने से व्यक्ति धन-सम्पदा बढ़ने से बढ़ता हुआ दिखाई देता है, तत्पश्चात् भद्र भी देखता है अर्थात् भौतिक साधनों की समृध्दि होने से बड़े-बड़े महल, कोठियाँ बना लेता हे, अपने वरो धयों पर येन-केन वजय प्राप्त कर लेता है। कन्तु अन्त में उसका सर्वनाश हो जाता है। इस लए हमें इस शाश्वत सत्य पर अवश्य दृढ़ वश्वास करना चाहिये-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति र क्षतः।

तस्माद् धर्मो न हन्तव्यः मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

जो धर्म को नष्ट करता है, धर्म उसका नाश कर देता है और जो धर्म की रक्षा करता हैं धर्म उसकी रक्षा करता है। इस लए अधर्म से प्राप्त लक्ष्मी कभी भी घर में न आने देवंे। अन्यथा ऐसा धन तीसरी पीढ़ी में अवश्य दुष्परिणाम दिखा देता है। लोक में ऐसे उदाहरण अ धकांशतया प्राप्त हो जाते हैं।

निष्कर्ष रूप में धर्म का ज्ञान तथा उसका आचरण मनुष्य के लए परमावश्यक है। यही हम सब का आधार है। हम सब के परमलक्ष्य का परम सहायक भी यही धर्म है। आओ! हम सब मलकर धर्म के यथार्थ स्वरूप को जाने तथा धारण कर सुख-सम्पन्नता के मार्ग को प्राप्त हो, मोक्षपथानुगामी हों।

सोम का वास्त वक अर्थ और सोमरस का पाखंड

JULY 8, 2015 1 COMMENT

अ हं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।

अ हं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः सा क्ष वश्वस्मिन्भरे ।।

– ऋ० मं० १०। सू० ४९। मं० १।।

हे मनुष्यो! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं। मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझ को वह वेद यथावत् कहता उस से सब के ज्ञान को मैं बढ़ाता; मैं सत्पुरुष का प्रेरक यज्ञ करनेहारे को फलप्रदाता और इस वश्व में जो कुछ है उस सब कार्य्य का बनाने और धारण करनेवाला हूं। इस लये तुम लोग मुझ को छोड़ कसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो।

नमस्ते मत्रो,

जैसा की आप सभी जानते हों हमारे देश में अनेको वद्वान और गुरुजन होते चले आये हैं और होते भी रहेंगे क्यों क ये देश ही वद्वान उत्पन्न करने वाला है, इसी लए इस देश आर्यावर्त को वश्वगुरु कहा जाता है, मगर ये भी एक कटु सत्य है की इसी देश में अनेको ऐसे भी तथाक थत और स्वघो षत वद्वान होते आये हैं जिनका उद्देश्य ही धर्म अर्थात वेद और वेदज्ञान का उपहास करना रहा है, ऐसे ही एक तथाक थत वद्वान हुए थे जिनका नाम था नारायण भवानराव पावगी इन्होने कुछ पुस्तके लखी थी जिनमे कुछ हैं

1. आर्यावर्तच आर्यांची जन्मभू म व उत्तर ध्रुवाकडील त्यांच्या वसाहती (इ.स. १९२०)

2. ऋग्वेदातील सप्त संधुंचा प्रांत अथवा आर्यावर्तातील आर्यांची जन्मभू म आ ण उत्तर ध्रुवाकडील त्यांच्या वसाहती (इ.स. १९२१)

3. सोमरस-सुरा नव्हे (इ.स. १९२२)

इन पुस्तको में लेखक ने वेदो, वैदिक ज्ञान और ऋ षयों पर अनेक लांछन लगाये जिनमे प्रमुखता से ये सद्ध करने की को शश की गयी की वैदिक काल में ऋ ष और सामान्य मानव भी होम के दौरान सोमरस का पान देवताओ को करवाते थे और अपनी इच्छित मनोकामनाओ की पूर्ति हेतु यज्ञ में पशु वध, नरमेध भी करते थे। अब इन आधारहीन तथ्यों के आधार पर अनेको वधर्मी और महामानव आदि अपनी वेबसाइट और लेखो के माध्यम से हिन्दुओ के मन में वेदज्ञान के प्रति जहर भरने का कार्य करते हैं, उनमे मुख्यत जो आरोप लगाया जाता है वो है :

वेदो और वैदिक ज्ञान के अनुसार ऋ ष आदि अपनी मनोकामनाए पूरी करने हेतु अनेको देवताओ को सोमरस (शराब) की भेंट करते थे।

सोमरस बनाने की व ध वेद में व र्णत है ऐसा भी इनका खोखला दावा है।

आइये एक एक आक्षेप को देखकर उसका समु चत जवाब देने की को शश करते हैं।

आक्षेप 1. वेदों में व र्णत सोमरस का पौधा जिसे सोम कहते हैं अफ़ग़ानिस्तान की पहा ड़यों पर ही पाया जाता है। यह बिना प त्तयों का गहरे बादामी रंग का पौधा है। जिसे यदि उबाल कर इसका पानी पीया जाय तो इससे थोड़ा नशा भी होता है। कहते हैं यह पौरुष वर्धक औष ध के रूप में भी प्रयोग होता है।
सोम वसुवर्ग के देवताओं में हैं ।
मत्स्य पुराण (5-21) में आठ वसुओं में सोम की गणना इस प्रकार है-
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोज्नलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोज्ष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

समाधान : सोमलता की उत्प त्त जो बिना पत्ती का पौधा है ऐसा इनका वचार है जो अफगानिस्तान की पहा ड़यों में पैदा होता है ऐसा इनका दावा है उसके लए ये ऋग्वेद 10.34.1 का मन्त्र "सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः" उद्धृत करते हैं। मौजवत पर्वत को आजके हिन्दुकुश अर्थात अफगानिस्तान से निरर्थक ही जोड़ने का प्रयास करते हैं जब क सच्चाई इसके वपरीत है।

निरुक्त में "मूजवान पर्वतः" पाठ है मगर वेद का मौजवत और निरुक्त का मूजवान एक ही है, इसमें संदेह होता है, क्यों क सुश्रुत में "मुञ्जवान" सोम का पर्याय लखा है अतः मौजवत, मूजवान और मुञ्जवान पृथक पृथक हैं ज्ञात होता है। वेद में एक पदार्थ का वर्णन जो सोम नाम से आता है वह पृथ्वी के वृक्षों की जान है। पृथ्वी की वनस्पति का पोषक है, वनस्पति में सौम्यभाव लाने वाला औ ष धराज है और वनस्पतिमात्र का स्वामी है। वह जिस स्थान में रहता है उसको मौजवत कहते हैं। मेरी पछली पोस्ट में गौओ के निवास को व्रज कहते हैं ये सद्ध कया था उसी प्रकार सोम के स्थान को मौजवत कहा गया है। यह स्थान पृथ्वी पर नहीं कन्तु आकाश में है। क्यों क वनस्पति की जीवनशक्ति चन्द्रमा के आधीन है इस लए उसका नाम सोम है वह औष ध राज है। अलंकारूप से वह लतारूप है क्यों क जो भी व्यक्ति शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष को समझते हैं जानते हैं उन्हें पता है की चन्द्रमा पंद्रह दिन तक

बढ़ता और पंद्रह दिन तक घटता है, इसे न समझकर व्यर्थ की कोरी कल्पना कर ली गयी की शुक्लपक्ष में इस सोमलता के पत्ते होते हैं और कृष्णपक्ष में गर जाते हैं।

सोम वसुवर्ग के देवताओ में हैं ये भी मथ्या कल्पना इनके घर की है क्यों क जो वसु का अर्थ भली प्रकार जानते तो ऐसे दोष और मथ्या बाते प्रचारित ही न करते, आठ वसु में सोम भी शा मल है उसके लए उप लं खत पुराण का श्लोक उद्धृत करते हैं

मत्स्य पुराण (5-21) में आठ वसुओं में सोम की गणना इस प्रकार है-
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोज्नलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोज्ष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

भागवत पुराण के अनुसार- द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और वभावसु। महाभारत में आप (अप्) के स्थान में 'अहः' और शवपुराण में 'अयज' नाम दिया है।

अब यदि इनसे पूछा जाए की – आठ वसुओं में सोम हैं मत्स्य पुराण के अनुसार जिसका अर्थ है मादक द्रव्य यानी शराब – तो भगवत पुराण में आठ वसुओं में सोम क्यों नहीं लखा ?

दे खये ऋ ष दयानंद अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में वसु का अर्थ कस प्रकार करते हैं :

पृ थवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से आठ वसु। (स. प्र. सप्तम समुल्लास)

ऋ ष ने बहुत ही सरल शब्दों में वसु का अर्थ कर दिया। अब अन्य आर्ष ग्रन्थ से आठ वसुओं का प्रमाण देते हैं :

शाकल्य-'आठ वसु कौन से है?'
याज्ञ.-'अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्र और नक्षत्र। जगत के सम्पूर्ण पदार्थ इनमें समाये हुए हैं। अतः ये वसुगण हैं।

(बृहदारण्यकोपनिषद, अध्याय तीन)

इन प्रमाणों से सद्ध है की आठ वसुओं में सोम नामक कोई नाम नहीं। हाँ यदि सोम का अर्थ चन्द्र से करते हो जैसा की इस लेख से सद्ध भी होता है तो आपकी सोमलता और सोमरस का सद्धांत ही खं डत हो जाता है।

आक्षेप 2. सोम की उत्प त्त के दो स्थान है- (1) स्वर्ग और (2) पा र्थव पर्वत । अग्नि की भाँति सोम भी स्वर्ग से पृथ्वी पर आया । ऋग्वेद ऋग्वेद 1.93.6 में कथन है : 'मातरिश्वा ने तुम में से एक को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारा; गरुत्मान ने दूसरे को मेघ शलाओं से।' इसी प्रकार ऋग्वेद 9.61.10 में कहा गया है: हे सोम, तुम्हारा जन्म उच्च स्थानीय है; तुम स्वर्ग में रहते हो, यद्य प पृथ्वी तुम्हारा स्वागत करती है । सोम की उत्प त्त का पा र्थव स्थान मूजवन्त पर्वत (गान्धार-कम्बोज प्रदेश) है'। ऋग्वेद 10.34.1

समाधान : यहाँ भी “आँख के अंधे और गाँठ के पुरे” वाली कहावत चरितार्थ होती है दे खये :

अप्सु में सोमो अब्रवीदंत वर्श्वानी भेषजा।
अग्निं च वश्वशम्भुवमापश्च वश्वभेषजीः।। (ऋग्वेद 1.23.20)

यहाँ सोम समस्त औष धयों के अंदर व्याप्त बतलाया गया है। इस सोम को ऐतरेयब्राह्मण 7.2.10 में स्पष्ट कह दिया है की “एतद्वै देव सोमं यच्चन्द्रमाः” अर्थात यही देवताओ का सोम है जो चन्द्रमा है। इस सोम को गरुड़ और श्येन स्वर्ग से लाते हैं। गरुड़ और श्येन भी सूर्य की करणे ही हैं। सोम का सौम्य गुण औष धयों पर पड़ता है, यदि स्वर्ग से गरुड़ और श्येन द्वारा उसका लाना है।

ऐसे वैदिक रीति से कये अर्थो को ना जानकार व्यर्थ ही वेद और सत्य ज्ञान पर आक्षेप लगाना जो सम्पूर्ण वज्ञानं सम्मत है निरर्थक कार्य है, क्यों क आज वज्ञानं भी प्रमा णत करता है की चन्द्रमा की रौशनी अपनी खुद की नहीं सूर्य की रौशनी ही है यही बात इस मन्त्र में यथार्थ रूप से प्रकट होती है और दूसरा सबसे बड़ा वज्ञानं ये है की चन्द्रमा जो रात को प्रकाश देता है उससे औष धयों का बल बढ़ता है।

आशा है इस लेख के माध्यम से सोमरस, सोमलता आदि जो मथ्या बाते फैलाई जा रही हैं उनपर ज्ञानीजन वचार करेंगे। ईश्वर कृपा से इसी वषय पर जो और आक्षेप लगाये हैं उनका भी समाधान प्रस्तुत होता रहेगा

लौटो वेदो की और

नमस्ते

यज्ञ में पशु-वध वैदिक काल में नहीं था

JULY 2, 2015 LEAVE A COMMENT

महाभारत काल में भी इसकी पुष्टि मलती है – क्यों क महाभारत में वृतांत आता है –

“यज्ञ में हिंसा की निंदा और अहिंसा की प्रशंसा”

ये वृतांत महाभारत में शांतिपर्व के अंतर्गत अध्याय २७२ में आता है – केवल इतना ही नहीं – यहाँ ये भी बताया गया है की यदि कोई यज्ञ में पशु वध करता है – तो निश्चय ही उसका सब तप नष्ट हो गया।

तस्य तेनानुभावेन मृगहिसात्मनस्तदा।

तपो महत समुच्छिन्नं, तस्माद्धहिंसा न य ज्ञया।।

अहिंसा सकलो धर्मोहिंसा धर्मस्तथा वधः।

सत्यंतेहं प्रवक्ष्या म, यो धर्मः सत्यवादिनाम्।।

इस प्रकरण में महाराज यु धष्ठर ने भीष्म पतामह से पूछा है की धर्म तथा सुख के लए यज्ञ कैसा करना चाहिए ? उसके उत्तर में पतामह ने एक तपस्वी ब्राह्मण -ब्राह्मणी दंप त्त का वृतांत देते हुए बतलाया है की कसप्रकार उस तपस्वी ब्राह्मण का महान तप, यज्ञ में पशुब ल देने के लए एक वन्य मृग को मारने की इच्छा मात्र से वनष्ट हो गया। इस लए यज्ञ में कभी हिंसा न करनी चाहिए। अहिंसा सार्वत्रिक और सारका लक नित्य धर्म है।

इस प्रमाण से ज्ञात होता है की न तो महाभारत काल में यज्ञ में पशु हिंसा का वधान था – न ही उससे पहले के काल में क्यों क अथर्ववेद 11.7.7 में लखा है –

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अकार्श्वमेधावुच्छिष्टे जीव बर्हिममन्दितमः।।

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अर्कमेध, अश्वमेध आदि सब अध्वर अर्थात हिंसा रहित यज्ञ हैं, जो क प्रा णमात्र की बुद् ध करने वाला और सुख शांति देने वाला है। एवं इस मन्त्र में राजसूय आदि सभी यज्ञो को "अघ्वर" कहा गया है जिसका
एकमात्र सर्वसम्मत अर्थ "हिंसा रहित यज्ञ है"

जो क निषेधार्थक नञ पूर्वक 'ध्वर' हिंसायां धातु से बनता है। घ्वरो हिंसा तदभावोत्र सोध्वरः।

अतः स्पष्ट है की वेदने कसी भी यज्ञ में पशुवध की आज्ञा नहीं दी, उल्टा पशुवध करने पर उसे यज्ञ ही नहीं माना। इस लए वेद के नाम पर यज्ञो में पशुवध करना अपने को धोखा देना है, दुसरो को उल्टा रास्ता बतलाना, अथवा अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। फर यह भी दे खये की पशु वध करने पर प्रा णमात्र की क्या वृद् ध हुई और उसे क्या सुख शांति मली, उल्टा प्राणी की हत्या करते समय उसे घोर यातना दी जाती है और उसका जीवन तक समाप्त कर दिया जाता है, तब वह कर्म "बर्हिममन्दितमः" कैसे रहा ?

उपरोक्त तथ्यों से प्रमा णत है की न तो इतिहास में यज्ञो में पशु ब ल का समर्थन मलता है – ना ही वेद में – ब्रह्माण्ड ग्रंथो में भी ऐसा कुछ पाया नहीं जाता –
ले कन फर भी कुछ मूढ या ज्ञक (पौरा णक) लोग "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का ढोल पीटते हुए यज्ञ में पशुवध को अहिंसा बताते हुए स्वर्ग का मार्ग तक सद् ध करने की को शश करते हैं –

ऐसा मालूम होता है इन लोगो की बुद् ध कहीं घास चरने चली गयी है, अन्यथा वे ऐसा कभी न कहते क्यों क दे खये मनु महाराज ने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का क्या अर्थ दिया है –

या वेद वहिता हिंसा, नियतास्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेव तां वद्याद्, वेदाद धर्मो हि निर्बभौ।।
योहिंसकानि भूतानि, हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृत्श्चैव, न कश्चित् सुखमेधते।।
(५.४४-४५)

अर्थात, जो वश्व संसार में दुष्टो – अत्याचारियो – क्रूरो – पा पयो को जो दंड – दान रूप हिंसा वेद वहित होने से नियत है, उसे अहिंसा ही समझना चाहिए, क्यों क वेद से ही यथार्थ धर्म का प्रकाश होता है। परन्तु इसके वपरीत जो निहत्थे, निरपराध अहिंसक प्रा णयों को अपने सुख की इच्छा से मारता है, वह जीता हुआ और मरा हुआ, दोनों अवस्थाओ में कहीं भी सुख को नहीं पाता।

दुष्टो को दंड देना हिंसा नहीं प्रत्युत अहिंसा होने से पुण्य है, अतएव मनु ने (8.351) में लखा है –

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवा वचारयन।।
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवती कश्चन।
प्रकाशं वाप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति।।

अर्थात, चाहे गुरु हो, चाहे पुत्र आदि बालक हो, चाहे पता आदि वृद्ध हो, और चाहे बड़ा भरी शास्त्री ब्राह्मण भी क्यों न हो, परन्तु यदि वह आततायी हो और घात-पात के लए आता हो, तो उसे बिना वचार तत्क्षण मार डालना चाहिए। क्यों क प्रत्यक्षरूप में सामने होकर व अप्रत्यक्षरूप में लुक-छिप कर आततायी को मारने में, मारने वाले का कोई दोष नहीं होता क्यों क क्रोध को क्रोध से मारना मानो क्रोध की क्रोध से लड़ाई है।

उपरोक्त मनु स्मृति के प्रमाण से भी स्पष्ट है की यज्ञ में पशु वध का निषेध है।
वेद प्रमाणों से स्पष्ट है की वेदो में पशु वध निषेध है – जब क वेदो में पशुओ को पालने का स्पष्ट निर्देश है – यहाँ तक की – गाय, घोड़ा आदि पशुओ की हत्या करने वालो को "प्राणदंड" तक का वधान है –

मनु स्मृति भी इस बात की पुष्टि करती है – ब्राह्मण ग्रन्थ भी यही कहते हैं = महाभारत भी यही कहती है – तो इससे सद्ध है – न तो वैदिक काल में यज्ञ में पशु वध होता था – ना ही महाभारत काल में – ये सब महाभारत युद्ध के ५००-१००० वर्ष बाद की उपज ही सद्ध होती है –

अतः सत्य सनातन वैदिक स्वरुप को पहचानिये –

सभी महानुभावो से वनम्र निवेदन है कृपया सत्य को समझे – और माने –

वेदो की और लौटिए –

सत्य और न्याय की और लौटिए।

नमस्ते

नोट : ये मनुस्मृति का श्लोक – श्री राम ने – बाली के वध के समय – बाली को सुनाया भी था – ता क बाली को पता हो की उसने जो वेद वरुद्ध कृत्य कया था – उसका दंड उसे वेद सम्मत और न्यायकारी प्र क्रया के अधीन ही दिया जा रहा है।